आधुनिक हिन्दी कविता—
सिद्धान्त और समीक्षा

डॉ० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय
एम० ए० (हिन्दी, संस्कृत) पी-एच० डी०
हिन्दी-विभाग
आगरा कॉलेज, आगरा

प्रभात प्रकाशन
दिल्ली * मथुरा

विषय-सूची

समर्पण

आगरा-कालेज के संस्कृत विभागाध्यक्ष
मेरे आत्मशिल्पी गुरु
आचार्य श्री कैलासचन्द्र मिश्र
के
चरणों में
सादर

भूमिका

प्रस्तुत पुस्तक का शीषक है आधुनिक हिन्दी कविता सिद्धात और समीक्षा । इस पुस्तक म भारतेन्दु युग से लेकर प्रयोगवाद तक विभिन्न काव्यधाराओ के जन्म विकास प्रवृत्तिया और उनके मूल्याङ्कन का प्रयत्न किया गया है । हिन्दी काव्य की इस दीघ-अवधि तथा उसकी विभिन्नता को देखते हुए प्रवृत्तियो पर ही ध्यान केन्द्रित किया गया है किन्तु मुख्य मुख्य कृतिकारो पर अलग से भी विचार किया गया है। भारतेन्दु पर विस्तार से विचार किया है और गीतकारो तथा प्रयोगवादी कवियो पर भी। सामान्य प्रवृत्तियो के अतिरिक्त अलग अलग भी अवलोकन किया गया है। प्रथम युग मे भारतेन्दु का अपना एक विशिष्ट स्थान है क्योकि आज की अनेक प्रवृत्तियो का प्रारम्भ भारतेन्दु से ही हुआ है। नए कवियो पर अलग से विचार करने की आवश्यकता इसलिए हुई कि प्रत्यक की विशिष्टता पाठक के सम्मुख स्पष्ट हो जाय। पुस्तक की सीमा के कारण नवीनतम धाराओ के साथ न्याय हो सका है यह तो नही कहा जा सकता परन्तु पाठक को नवीनतम हिन्दी काव्य के विषय मे कुछ जानकारी अवश्य होगी ऐसी आशा तो की ही जा सकती है। प्रयत्न यह किया गया है कि जो लेखक के दृष्टिकोण और निणय से सहमत न हो उन सामान्य पाठको को अपनी राय बनाने मे कम से कम बाधा हो। इसके लिए यथा सम्भव प्रत्येक कवि की उपलब्धियो की ओर पाठक का ध्यान आकर्षित किया गया है और आवश्यक उद्धरण भी दिए गए हैं।

छायावादोत्तर हिन्दी काव्य की प्रत्येक धारा पर अलग-अलग काय करने की आवश्यकता है। शोध-काय द्वारा इस काय को पूरा किया जा सकता है किन्तु शोध-काय मे तथ्य सग्रह अधिक होता है तात्विक चर्चा कम होती है। अतएव प्रगतिवादी काव्य गीतिकाव्य प्रबन्धकाव्य आदि पर स्वतत्र आलोचना ग्रन्थो की बहुत आवश्यकता है। मैंने इस पुस्तक के प्रकाशक महोदय से जब केवल छायावादोत्तर हिन्दी काव्य पर ही ध्यान केन्द्रित करने को कहा तो उन्होने आधुनिक हिन्दी काव्य पर समग्रत विचार करने के लिए मुझ

प्ररित किया। मैंने भी यह महसूस किया कि समग्रत विचार कर लेने के बाद अलग अलग नूतनतम धाराओ के स्वरूप को सुविधा से समझा जा सकता है। अत इस पुस्तक मे भारतेन्दु से लेकर अब तक हिन्दी काव्य प्रवाह पर समग्रत विचार किया गया है। इससे जहा हिन्दी प्रदेश तथा अहिन्दी प्रदेश के पाठको को हिन्दी काव्य के विषय मे धारणा निश्चित करने मे सहायता मिलेगी वहा यह सम्भव है कि किसी एक धारा मे ही दिलचस्पी रखने वाले पाठक को कुछ निराशा हो किन्तु अनेक धाराओ के समग्र अध्ययन मे शायद यह कमी रहती ही है। फिर भी प्रत्येक धारा की प्रमुख प्रवृत्तियो और प्रमुख रचनाकारो को सम्मिलित करने का प्रयत्न इस पुस्तक मे किया गया है। प्रारम्भिक कवियो की रचनाओ का विवरण भी प्रस्तुत किया गया है। प्रमुख शब्द पर विवाद भी हो सकता है किन्तु इस सम्बन्ध मे शायद विवाद स्वाभाविक ही है।

इस पुस्तक मे मैंने आधुनिक हिन्दी काव्य प्रवाह के दिग्दशन मे उदू काव्य पर भी विचार किया है। उदू का विवेचन पूण नही है परन्तु हिन्दी के साथ उदू काव्य को देखते चलने से हिन्दी आलोचना के क्षत्र म आलोचको का ध्यान इधर आकर्षित होगा और हिन्दी उदू की आधारभूत एकता सिद्ध होगी ऐसी आशा अवश्य है। साम्प्रदायिकता से हिन्दी आलोचक बुरी तरह पीडित हैं। हिन्दी आलोचना को पढकर कोइ भी तटस्थ विचारक इस तथ्य पर पहुचेगा। अत भारतीय समाज और सस्कृति की एकता के विकास के लिए भी यह आवश्यक है कि एक ही प्रदेश म एक ही भाषा की दो शैलियो को हम एक साथ समझाने का प्रयत्न करें और उनमे से एक के आनन्द से हिन्दी भाषी जनता को वचित न करें।

इसी प्रकार व्रजभाषा के आधुनिकतम कविया की चर्चा इस पुस्तक म मिलेगी। इस तथ्य पर विशेष बल दिया गया है कि आधुनिक शब्द के अथ को हम सकुचित न करें। जनपदीय भाषाओ के काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियो के बिना आधुनिक काव्य का अध्ययन पूण नही हो सकता।

मैं काव्य को समाज के विकास क सन्दभ म रखकर अध्ययन कर्त्ताओ का अनुगामी हूँ अत भारतेन्दु युग के पूव समाज और काव्य की स्थिति तथा छायावाद प्रगतिवाद आदि के अभ्युदय की सामाजिक और सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि प्रस्तुत करन का प्रयत्न भी किया गया है। इधर साहित्यिकता के नाम पर काव्य का केवल काव्य की दृष्टि स अध्ययन करने की बहुत पुकार मच रही है मैंने भी यह प्रयत्न किया है कि काव्य की अपनी मर्यादा का उल्लघन न हो

किन्तु काव्य समाज के विकास के साथ किस प्रकार अविच्छिन्न रूप से जुड़ा हुआ है, यह तथ्य भी इस पुस्तक से प्रमाणित होता है और साथ ही यह भी कि समाज और काव्य के सम्बन्ध का स्वरूप क्या है। सौन्दर्य-सृष्टि के मूल में किस प्रकार वास्तविकता कार्य करती है, यह तथ्य इस पुस्तक से स्पष्ट होना चाहिए।

मेरा अपना विचार है कि भारतीय काव्यशास्त्र से हम नवीनतम काव्य के मूल्यांकन मे भी सहायता ले सकते हैं। भारतीय काव्य शास्त्र, और योरोपीय काव्य शास्त्र के सम्बन्ध मे इधर हिन्दी में बहुत से ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं, यह भी कहा जाता रहा है कि विभिन्न काव्यशास्त्रो के मथन के बाद एक नूतन काव्यशास्त्र का निर्माण होना चाहिए। मैंने यह अनुभव किया है कि नूतन काव्य, कथा अथवा नाट्य-साहित्य के परीक्षण करते समय ही "समन्वय" का प्रयत्न किया जाय, तो शायद अधिक सफलता मिल सकती है। मैंने इस पुस्तक मे विकास के दिग्दर्शन मे द्वन्द्वात्मक दृष्टि का प्रयोग करके काव्य मूल्यांकन मे भारतीय काव्यशास्त्र से सहायता ली है। प्रतीत यह होता है कि इस पद्धति से सफलता मिल सकती है, किन्तु मैं कितना सफल हुआ हूँ, यह अन्य विचारक ही बता सकते हैं। यह कहा जा सकता है कि जब तक समाज के सामान्य विकास के सम्बन्ध में हमारी धारणा प्रगतिशील नहीं होगी तब तक रस, ध्वनि, वक्रोक्ति आदि तथा योरोपीय सिद्धान्तो का समन्वय "अपूर्ण मापदण्डो" की ही सृष्टि करेगा। 'काव्य के मर्म' की पकड हमारे प्राचीन काव्यशास्त्रियो मे गजब की है किन्तु उनमे समाज के विकास को समझने की शक्ति नही थी अत इन दोनों पद्धतियो से हम लाभ उठा सकते हैं।

मैं आलोचना को केवल 'वैज्ञानिक परीक्षण' नहीं मानता। आलोचना को मैं "रचनात्मक" मानता हूँ क्योंकि 'आस्वादन' की समस्या के समाधान मे आलोचक की 'तटस्थता' या "ऑब्जेक्टिविटी" के साथ-साथ 'रसज्ञता' या 'सहृदयता' की भी आवश्यकता होती है। 'आस्वादन' आलोचक मे कभी हर्ष, कभी विषाद, कभी अमर्ष और कभी व्यग्य की सृष्टि करता है। कवियो की "दृष्टि" के परीक्षण मे भी आलोचक 'तटस्थता' के साथ-साथ कोई न कोई 'परिप्रेक्षण' अवश्य रखता है, अत आलोचना मे रचनात्मक तत्व का समावेश स्वत हो जाता है।

इस पुस्तक से यह स्पष्ट होना चाहिए कि हिन्दी काव्य निरन्तर उन्नति के पथ पर अग्रसर हो रहा है। प्रगतिवादी, गीतिवादी और प्रयोगवादी

काव्य की नूतनतम प्रवृत्तियो का विश्लेषण इस तथ्य को पुष्ट करता है। प्रयोगवादी कथ्य से मैं सहमत नही हूँ। उसकी कमियों का मैंने विस्तार से विश्लेषण किया है। किन्तु यह स्मरणीय है कि प्रयोगवाद से हिंदी मे एक नूतन कथन भगिमा का विकास भी हुआ है। मैं इसे *गद्य-कविता* कहने के लिए तैयार हूँ किन्तु प्रयोगवाद मे कई कवि ऐसे भी है जो काव्य म प्रवाह और उचित स्थान पर पक्तियो को *विराम* देने की कला से परिचित हैं।[1] इसके सिवा प्रयोगवाद मे दृश्य वणन तथा व्यग्य का अच्छा विकास हुआ है। वैविध्य की दृष्टि से प्रयोगवादी इमेजरी मार्मिक कम है पर आकषक अवश्य है। इसके सिवा यह तथ्य भी इस अध्ययन से प्रमाणित होता है कि प्रयोगवाद मे कई कवि प्रगतिशील दृष्टिकोण से जगत और जीवन को देखते हैं। मैंने इन कवियो को प्रगतिवादी प्रयोगवाद के अतगत प्रतिष्ठित किया है इस प्रवृत्ति को प्रगतिशील प्रयोगवाद भी कहा जा सकता है वस्तुत यह दूसरा नाम अधिक व्यापक है।

मैंने आधुनिक हिंदी काव्य के इस समग्रत अध्ययन का इसलिए साहस किया क्योकि मैं हिंदी के प्रमुख वाद, पन्त जी का नूतन काव्य और दशन तथा महाकवि निराला पर अलग-अलग भी लिख चुका हूँ। इन उक्त कवियो के लिए मुझे बार बार आधुनिक काव्य के अध्ययन का अवसर मिला है। इसके सिवा कालेज मे आधुनिक काव्य के अध्यापन के सम्बन्ध मे भी ऐसा सुयोग मिलता रहा है। अत एक स्थान पर हिंदी काव्य की विभिन्न धाराओ का अध्ययन प्रस्तुत हो यह इच्छा इस पुस्तक मे साकार हो सकी है इसलिए मुझे स्वभावत प्रसन्नता है।

मैंने इस पुस्तक की तैयारी मे अनेक लखकों की कृतियो से लाभ उठाया है उनका उल्लेख किया गया है यहा उनक प्रति अपना हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ।

---

१ इस विषय मे, श्री वीरेन्द्रकुमार जन को 'अनागता की आँखें' काव्य-सकलन मुझे समय पर न मिल सकने के *कारण अनुल्लिखित रह गया।* 'अनागता की आँख प्रयोगवादी लेखन मे एक महत्त्वपूर्ण कृति है। श्री जैन चितन की दृष्टि से श्री सुमित्रानन्दन पन्त के साथ हैं, तथाकथित प्रयोगवादियों के साथ नहीं। वे वस्तुत कवल शली की दृष्टि से ही 'प्रयोगवादी' हैं और *वहाँ भी उनका आग्रह शब्द, उपमा और छन्द* वचित्र्य पर नहीं है।

इस पुस्तक के लेखन के समय सबसे अधिक असुविधा मेरी पत्नी श्रीमती श्रीदेवी उपाध्याय को हुई है। किन्तु मेरे 'धन्यवाद' से उन्हें अपार असन्तोष भी होगा, अत इतना उल्लेख ही पर्याप्त है।

आगरा कालेज के हिन्दी विभाग के साथी अध्यापक तथा श्री राजनाथ शर्मा, श्री रायसाहबसिंह 'अजीत, श्री कुन्दनलाल उप्रेति एव पो॰ बी॰ पी॰ श्रीवास्तव का स्मरण इस अवसर पर आवश्यक है किन्तु ये बन्धु मेरे इतने निकट हैं कि इन्हें धन्यवाद देकर मैं अपने लिए सकट मोल नही लेना चाहता।

श्री केशवदेव तिवारी के बिना मेरी कोई पुस्तक कभी तैयार नही हो पाई अत उनके प्रति मैं अपना आभार प्रकट करता हूँ।

विश्वम्भरनाथ उपाध्याय

प्रथम प्रवाह

भारतेन्दु युग

हिन्दी भाषा का आधुनिक युग भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से प्रारम्भ हुआ है, इस तथ्य को सभी विचारको ने स्वीकार कर लिया है। भारतेन्दु युग से हिन्दी भाषा मे एक नवीन चेतना, एक नवीन प्रवाह, एक नवीन मोड के दर्शन होते हैं। चेतना के एक नवीन प्रवाह की प्रमुखता के कारण ही भारतेन्दु युग'—ऐसा नामकरण हुआ है। किन्तु इस देश मे कतिपय विचारक ऐसे भी हैं जो भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग आदि नामो की सार्थकता स्वीकार नही करते। इन विचारको के अनुसार काव्य के स्थायी स्वरूप को ध्यान मे रखकर ही किसी युग का नामकरण होना चाहिए।

इन विचारको के अनुसार हिन्दी काव्य का स्वर्ण युग रीतिकालीन काव्य मे दिखाई पडता है। रीतिकाल के पूर्व हिन्दी काव्य स्थिरता प्राप्त नही कर सका था। आज भी भाषा मे इन विद्वानो के अनुसार पूर्व रीतिकालीन युग 'प्रयोग युग' था। पूर्व रीतिकालीन युग मे ब्रज भाषा का रूप स्थिर ही हो पाया था, उसमे परिष्कार नही हो पाया था। पूर्व रीतिकालीन काव्य मे लोकप्रिय भाषा के "ग्राम्य" और 'अग्राम्य'-परिष्कृत रूप साथ-साथ प्रयुक्त हो रहे थे। एक ओर तो 'मा मितुसार गुदारा लागा" (रामचरित मानस) जैसे प्रयोग मिलते हैं तो दूसरी ओर" "खजन मजु तिरीछे नैननि" अथवा "ककन किंकिनि नूपुर धुनि" जैसे परिष्कृत और कवित्व पूर्ण प्रयोग भी मिलते हैं। सूरदास की भाषा मे भी, इन विद्वानो के अनुसार, ग्राम्य और परिष्कृत प्रयोग साथ साथ मिलते हैं। एक ओर "स्याम रूप सरोज आनन, ललित अति मृदु हास, सूर ऐसे रूप कारन मरत लोचन प्यास" जैसे प्रयोग हैं तो दूसरी ओर "जोग सिखै ते राँडे" 'कुम्हाडे" "हाथिन के सग गाँडे" जैसे प्रयोग भी मिलते हैं और बहुत सख्या मे मिलते हैं। जब महाकवियो की भाषा मे एक परिष्कृत रूप सर्वत्र नही मिलता तब अन्य कवियो का कहना ही क्या है।

सन्त कवियों—कबीर नानक दादू तथा उनके शिष्य ता जानबूझ कर ग्राम्य और अशिष्ट शब्दावली का प्रयोग करते थे अत उक्त सिद्धान्त के अनुसार हिन्दी भाषा का कवितामय एव पूर्णत परिष्कृत रूप यदि कही मिलता है ता रीतिकाल म। रीतिकाल मे ब्रजभाषा का परिष्कृततम रूप ही नही मिलता वरन ब्रजभाषा की सम्पूर्ण सुकुमारता लचक मसृणता और रगीन शक्ति का पूर्ण दोहन भी रीतिकाल म ही हो सका था।

उक्त सिद्धान्त यह मानता है कि ब्रजभाषा जसी सब शक्तिमती पदावली का गद्य और पद्य की भाषा एक हो के नारे के कारण आधुनिक युग म बुरे दिन देखने पड फलत लगभग ६०० वर्षों स प्रयोग-पुरस्कृत ब्रजभाषा को छोडकर खडी बोली की काव्य मे स्वीकृति एक दुघटना थी अत आधुनिक शब्द से स्थायी हिन्दी काव्य के प्रति घृणा व्यजित होती है।

उक्त सिद्धान्त के अनुगामी विचारको का यह भी कथन है कि सम्पूर्ण आधुनिक काव्य म रीतिकालीन काव्य जसा सौन्दय रस और अभिव्यक्ति कुशलता कही भी नही दिखाई पडती। काव्य के मूलस्वरूप की रक्षा की चिन्ता किए बिना जो नए प्रयोग हुए हैं व कुतूहल वधक अधिक है। उनमे मानवीय हृदय को अधिक काल तक मोहित करने की शक्ति नही है। काव्य की शक्ति सबसे अधिक इस तथ्य म निहित होती है कि क्या उसमे काल के झ्यावात को सहने की शक्ति है? वीरगाथा कालीन भक्तिकालीन और रीतिकालीन काव्य ने काल के प्रबल प्रहारो को सहकर अपने को जीवित रखा है। आधुनिक काल मे अधिकाश काव्य ५ १० वर्षों के बाद ही आउट आफ डेट हो जाता है। वस्त्रो के बदलते फशनो की तरह काव्य के नए-नए फशन अपनी जीवन शक्ति को प्रमाणित न कर सकने के कारण महत्वहीन है और उन्हे आधुनिक केवल इस अथ म स्वीकार किया जा सकता है कि व १९–२०वी शताब्दी म लिख गए है। आधुनिक शब्द से यह ध्वनि नहा ग्रहण की जानी चाहिए कि उन्नीसवी और और बीसवी शताब्दी म स्थायी काव्य की सृष्टि हुई है।

आधुनिक हिन्दी काव्य पर विचार करते समय उक्त दृष्टि के उत्तर म यह कहना चाहिए कि जब ब्रज भाषा के ६०० वर्षों के विराट काल प्रवाह म केवल १७०० ई० स उन्नीसवी शताब्दी के मध्यकाल तक की अवधि म बनने वाले काव्य म परिपक्वता आपाई तब क्या यह उचित होगा कि खडी बोली म काव्य प्रारम्भ होते ही हम परिपक्व ब्रजभाषा स उसकी तुलना करें?

सभ्यता के सामान्य इतिहास की तरह प्रत्येक भाषा का भी अपना इतिहास होता है उसके विकास म समय लगता है। भाषा के विकास का आलेखक परिपक्वता की प्रतीक्षा न करके उसी क्षण से नए युग का सूत्रपात स्वीकार कर लेगा, जिस क्षण से कोई नई प्रवृत्ति दिखाई पडगी, ऐसी प्रवृत्ति, जिसके पीछ समाज की नई आकाक्षा कार्य कर रही हो। अत "आधुनिक" शब्द प्रवृत्ति की नवीनता को ध्यान म रखकर प्रयुक्त होना चाहिए न कि परिपक्वता को ध्यान मे रखकर। परिपक्वता किसी कालावधि के मध्य की एक पहुँच मात्र है। किसी कालावधि म सचरणशील कविवर्ग के लिए वह पहुँच" असम्भव भी नही है। और यह भी नही कहा जा सकता कि आधुनिक कविया ने उस 'पहुँच' को प्राप्त नही कर लिया है। खडी बोली के काव्य म एसा बहुत काव्य है अत आधुनिक शब्द का प्रयोग नवीन उपलब्धि की दृष्टि से भी किया जा सकता है।

जहाँ तक माध्यम विशेष की स्वीकृति का प्रश्न है, उसके उत्तर मे यह कहा जा सकता है कि माध्यम की स्वीकृति के लिए बाह्य परिस्थितियाँ जागरूक कविया और लेखका को विवश करती हैं। सामान्य व्यवहार की भाषा जब खडी बोली हो चुकी थी, सभी वर्ग जब अपन विचारो का आदानप्रदान खडी बोली म कर रहे थे, तब काव्य पढने समय अन्तर्प्रान्तीय स्तर से क्रमश सकुचित होती हुई और एक ही प्रान्त मे सिमिटती हुई ब्रजभाषा को छोडने के लिए कवि विवश थे। बहुत से कवि ब्रजभाषा म लिखने रहे, आज भी लिखते हैं और लिखना भी चाहिए किन्तु एक प्रान्त की भाषा के काव्य और अन्तर्प्रान्तीय भाषा के काव्य साथ-साथ ही चल सकेंगे। एक प्रान्त की भाषा का काव्य अन्तर्प्रान्तीय खडी बोली का स्थान नही ले सकता। यदि अन्तर्प्रान्तीय भाषा—खडी बोली—म वह परिपक्वता नही है, जो ब्रजभाषा मे है तो उसके लिए प्रयत्न करना अधिक उचित होगा। सस्कृत भाषा का भी एक दिन म निर्माण सम्भव नहीं हो सका। प्राकृत और अपभ्रशो का विकास भी क्रमश हुआ। अपभ्रशो से विकसित ब्रजभाषा और अवधी का विकास भी सहसा नही हुआ। इसी प्रकार खडी बोली के आधुनिक काव्य के विकास म भी समय की अपेक्षा मानती होगी। हम कह चुके हैं और आगे प्रमाणित भी होगा कि खडी बोली काव्य भाषा के रूप म परिपक्वता को प्राप्त कर चुकी है। रघुवरसहाय फिराक जैसे लोग यदि इस तथ्य को स्वीकार नही करते तो यह उनकी अपनी रुचि और दृष्टि का दोष हो सकता है। कोटि-कोटि शिक्षित

जन जिस काव्य से मुग्ध हो उसे पिछडी हुइ अपरिपक्व काव्य भाषा नही कहा जा सकता।

अत आधुनिक शब्द का प्रयोग हम दोना अर्थों मे कर रहे हैं करना चाहिए। प्रथम काल की दृष्टि से बीसवी शताब्दी का काव्य पूव शताब्दिया की तुलना म आधुनिक है और द्वितीयत नई प्रवृत्ति की दृष्टि से भी भारतेन्दु युग से अब तक के काव्य को आधुनिक कहना होगा क्योकि जिस प्रवृत्ति का उदय भारतेन्दु मे दिखाई पडा उसकी परिपक्वता—शैली तथा वस्तु दोनो दृष्टियो से—नए काव्य मे दिखाइ पडती है।

सवप्रथम हम उन प्रवृत्तियो को देखें और उनके कारणो का विवचन कर जिनक दशन सवप्रथम भारतेन्दु युग मे होते हैं और जो नाना बाधाओ के होने पर भी परिपक्वता की ओर उन्मुख होती ही गई हैं। इस विवेचन से स यह भी स्पष्ट होगा कि रीतिकालीन काव्य की कौनसी सीमाएँ थी जिनसे आधुनिक चेतना अपना तादात्म्य नही कर सकी और नए कवि ने उन सीमाओ को तोडकर अपने लिए एक स्वतन्त्र माग बना लिया।

भारतेन्दु युगीन नव चेतना—भारतेन्दुयुग के गभ म दो प्रवृत्तियाँ स्पष्ट रूप से दिखाई पडती हैं। प्रथम प्रवृत्ति मध्ययुगीन चेतना है और द्वितीय प्रवृत्ति नवीन चतना है। मध्ययुगीन चेतना म प्राचीन काव्य विषय और अभिव्यक्ति के पुराने स्वरूप अपनाए गए है। यह स्मरणीय है कि इम मध्य युगीन चेतना को भी नवचेतना ने प्रभावित किया है और नवचेतना को मध्ययुगीन चेतना ने प्रभावित किया है। फिर भी दो प्रकार के मानसिक प्रवाह की टकराहट हम स्पष्ट रूप से दिखाई पडती है।

वस्तुत जिसे हम नवीन चेतना कहते है वह यद्यपि आधुनिक युग म अपन युग के प्रभाव से विशिष्ट रूप धारण कर लेती है तथापि वह उस प्राचीन परम्परा मे अविच्छिन्न रूप से जुडी हुई है। इसी प्रकार मध्ययुगीन चेतना भी प्राचीन परम्परा का ही विकसित रूप है। वाल्मीकि रामायण म एक नवीन चेतना दिखाई पडती है। इस नवचेतना का लक्ष्य समाज का उच्चतर बनाने का प्रयत्न है। मानवीय करुणा से द्रवित चित्तवृत्ति ही आदिकवि को काव्य की ओर उन्मुख करती है। व्याध अत्याचारियो का प्रतीक है उस वग का जो निरस्त्र और असहाय जनता का बध करता था शोषण करता था। वाल्मीकि के सम्मुख भी स्पष्टत दो वग थ इनम एक क साथ आदि कवि की सहानुभूति स्पष्ट है। आदि कवि न शासकवग म स कोई ऐसा व्यक्ति चुनना

चाहा जिसका चरित्र निष्कलक हा जो सभी के लिए आदर्श हो।[1] नारद ने राम की ओर कवि का ध्यान आकर्पित किया और आदि कवि ने निर्बलो के सहायक राम का वर्णन किया। आदिकवि के सम्मुख विस्तारोन्मुख राष्ट्र की रक्षा, रजन और उन्नति का भी प्रश्न था। आदर्श व्यक्ति वह है जो राष्ट्र और समाज के नवनिर्माण के साथ साथ व्यापक मानवता के हित मे भी सलग्न रहे। राम एसे ही थे अत रामवत आचरेत न तु रावणवत्' की शिक्षा देने के लिए रामायण की रचना की गई।

अपन मम्मुख व्यापक लक्ष्य रखन वाले आदि कवि की चेतना इसलिए उन कविया स भिन्न दिखाई पडती है जिनके सम्मुख सकुचित लक्ष्य दिखाई पडता है। बाल्मीकि किसी राजदरबार से सम्बन्धित नही थे, उनके सम्मुख किसी राजा के 'रजन का प्रश्न नही था। अपनी रुचि को शासक की रुचि की दिशा म *सलग्न करने के लिए आदि कवि विवश नहीं हुए थे अत* सस्कृत के दरबारी कविया का काव्य बाल्मीकि के काव्य से भिन्न दिखाई पडता है।

रामायण और दरबारी काव्य के अन्तिम महाकाव्य श्रीहर्ष के नैषधीय की तुलना कीजिए। दाना म दो प्रकार की चेतना दिखाई पडती है। प्रथम मे जनवादी चेतना है और द्वितीय म रजनात्मक पार्श्व पर ही बल दिया गया है। सौन्दर्य का आदर्श नैषधीय म बदलता दिखाई पडता है फलत आग के लक्ष्य मे भी ये दोना प्रवृत्तियाँ दिखाई पडती हैं। भक्त और सन्त कविया म बाल्मीकि के व्यापक लक्ष्य को स्वीकार करने की प्रवृत्ति है। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए सन्ता और भक्ता न सस्कृत की दरबारी प्रवृत्तिया को नया रूप दिया है। उदाहरण के लिए सौन्दर्य और भोग का वणन भक्तिकाव्य म कम नही है परन्तु उन्हे '*दिव्य पुरुष के साथ सम्बद्ध कर दिया गया है। अत* जहाँ सस्कृतकाव्य म केवल 'रजन' पर ध्यान दिया गया है, वहाँ भक्तिकाव्य मे मोह द्वारा मोह

---

१ को वस्मिनसाम्प्रत लोके गुणवान्कश्च वीर्यवान्,
धमज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढव्रत
चारित्रेण च को युक्त सर्वभूतेपु को हित
विद्वान् क समर्थश्च कश्चैकप्रियदशन।
आत्मवान्को जितक्रोधो द्युतिमान्कोऽनुसूयक
कस्यबिभ्येति देवाश्च जातरोपस्य सयुगे।

—बाल्मीकि रामायण, बालकाड।

पर प्रम द्वारा विलास पर और रति द्वारा विरति पर विजय प्राप्त करने की प्ररणा दी गई है।

भक्त कवियो ने विशेषकर कृष्णभक्त कवियो ने सस्कृत की शृङ्गार परम्परा का इस ढग से अपने व्यापकतर लक्ष्य की पूर्ति के लिए प्रयोग किया है कि उस लक्ष्य को सम्मुख रखकर न चल सकने वाले रीतिकालीन कवियो मे पुन केवल रजन की ही प्रवृत्ति रह गई उन्नयन की प्रवृत्ति उनके हाथो से अनजाने ही निकल गई क्योकि उनके सम्मुख व्यापक लक्ष्य का अभाव था। अत मध्ययुगीन चेतना का रूप स्थिर होने लगा। यह मध्ययुगीन चेतना सस्कृत के दरबारी काव्य से भी गई बीती थी क्योकि सस्कृत के कवियो के समय देश परतन्त्र नही था अत पौरुष राजनीति धर्मनीति दर्शन अर्थनीति आदि समाज के लिए आवश्यक अन्य उपादानो का वर्णन भी सस्कृत के महाकाव्यो मे मिलता है। जीवन के लिए आवश्यक बहुत से विचार और तथ्य सस्कृत के महाकाव्यो मे सुरक्षित हैं। माघ के शिशुपाल वध का द्वितीय सर्ग पढिये स्पष्ट हो जाएगा कि सस्कृत कवि का ध्यान समाज के लिए आवश्यक अन्य विषयो पर भी था। रीतिकाल मे यह प्रवृत्ति भी लुप्त प्राय दिखाई पडती है।

रजन की प्रधानता के कारण ब्रजभाषा का शृगार हुआ। उसमे अत्यधिक सुकुमार पदावली का विकास हुआ। जीवन के कर्कश पक्षो का चित्रण न होने के कारण कर्कश पदावली का बहिष्कार किया गया। रगे सुरग रँग वही नहँदी मेहदी नैन जसी भाषा प्रचलित हुई। कोमल सुकुमार पदावली और मनोहर मधुर भावो का महत्त्व कम नहा है परन्तु केवल मधुरता एक जागरूक उन्नतिशील सतुलित सभ्यता का परिचायक हरगिज नही है। स्त्रियो के प्रति एक सामती दृष्टिकोण का वर्णन रीतिकालीन की विशेषता है और आश्चर्य का विषय यह है कि कविवर्ग के सम्मुख आदि कवि की सहज करुणा से युक्त दृष्टि नही है जो कोटि-कोटि क्रौञ्चो की मौन हत्या को देखकर तडप उठती। यही कारण है कि रीतिकालीन काव्य का कलेवर सकुचित होता गया।

किन्तु उक्त निर्णय को इधर के कतिपय विचारको ने चुनौती दी है। प० रामचन्द्र शुक्ल के हिन्दी साहित्य के इतिहास के प्रकाशन के पश्चात रीति काल की सकीर्ण विलास दृष्टि पर कठोर कशाघातो की एक परम्परा ही बन गई। प्रगतिवादी छायावादी तथा समाज सुधार के लिए चिन्तित विद्वानो ने

भारतीय राष्ट्र के पतन का कारण रीतिकालीन दृष्टि को भी बताया और यह अनुचित भी नहीं था। यह सही है कि रीतिकालीन काव्य में उत्तम और वरेण्य पद्यों का अभाव नहीं है। ऐसे पद्यांशों को चुनकर अलग से प्रचारित करने की आवश्यकता है किन्तु समग्र दृष्टि से रीतिकाल के विषय में जो कुछ कहा गया, वह उचित ही था। प्रतिक्रिया के उत्साह में सन्तुलन में कमी आ ही जाती है, यह एक तथ्य है और रीतिकाल के विरुद्ध प्रतिक्रिया कठोर हुई फलतः यह स्वाभाविक ही था कि रीतिकाल में जो वरेण्य है उसकी भी उपेक्षा हुई।

रीतिकाल के विरुद्ध कठोर प्रतिक्रिया को देखकर कुछ विद्वान रीतिकाल का समर्थन करने लिए उद्यत हो रहे हैं। इतिहास, सौन्दर्यशास्त्र आदि का आधार लेकर रीतिकालीन काव्य को सर्वश्रेष्ठ युग की उपाधि दी जाने लगी है। रीतिकाल की तुलना में इन विचारकों को अन्य युगों के काव्य नीरस और कवित्वहीन प्रतीत होने लगे हैं।

इन विद्वानों के तर्कों को हम संक्षेप में प्रस्तुत करना आवश्यक समझते हैं, इनकी परीक्षा भी इस सन्दर्भ में आवश्यक है क्योंकि उसके बिना आधुनिक काव्य का हम समझ ही नहीं सकते। आधुनिक काव्य रीतिकालीन काव्य को अपदस्थ करके हमारे सम्मुख आया है। आधुनिक काव्य के समान्तर रीति-कालीन काव्य की एक क्षीणधारा बराबर प्रवाहित होती रही है किन्तु उसकी ओर राष्ट्र-नेतृत्व करने वाली चेतना ने—समर्थ बुद्धिवर्ग ने, ध्यान देना भी छोड़ दिया है। यह उचित ही हुआ है।

रीतिकालीन काव्य के समर्थकों का प्रथम तर्क सामाजिक व्यवस्था से सम्बन्धित है। आचार्य शुक्ल तथा अन्य आलोचकों का कथन है कि रीति-कालीन काव्य मुख्यतः दरबारी काव्य है। दरबारी काव्य (Court poetry) में शासक वर्ग की चेतना के प्रकाशन का उतना प्रबल नहीं होता जितना कि शासकों की रुचि को सन्तुष्ट करने का प्रयत्न किया जाता है। शासित व्यक्ति की भावनाओं का इस दरबारी साहित्य में वर्णन नहीं होता। कवि शासित निम्न मध्यवर्ग से आता है किन्तु वह सामान्य जन के भावों का नेतृत्व नहीं करता जैसा कि *आधुनिक युग में हुआ है, वह शासकों की रुचि को अपना* लक्ष्य चुनता है अतः उस रुचि की पूर्ति के लिए वह प्राचीन साहित्य के केवल उसी रूप को चुनता है जो शासक की रुचि को सन्तुष्ट कर सके। यही कारण है कि रीतिकालीन कवि संस्कृत काव्य का नखशिख वर्णन, नायिकाभेद वाली

परम्परा को अपनाता है। रीतिकाल के प्रथम आचार्य कवि केशवदास ओरछा के राजा इन्द्रजीतसिंह की वेश्या की शिक्षा के लिए क्रौञ्चवध से कस प्ररित हो सकते थे ? अत कवि शिक्षा और रजनात्मक काव्य ही सम्मुख आया। बाद मे धन और मान की आखेट के लिए कविगण जागीरदारो या सामता तथा बड शासको के दरबारो के आभूषण बनने लगे। वाकचातुय अलङ्कृति शृगार और चमत्कार इन कवियो के काव्य मे स्वभावत भरने लगा। फलत काव्य जन सामान्य की भावना से कटकर अलग हो गया। भक्तिकाव्य से सामान्य जन अपना तादात्म्य कर सकता था। इस रीतिकालीन काव्य के साथ रसीले युवको को छोडकर अन्य लोग अपना तादाम्य नही कर सकते थे। अत शुक्ल परम्परा के विचारको का कथन है कि रीतिकालीन काव्य सामतवादी काव्य हैं और यह काव्य हिन्दू सामतो की रसीली प्रवृत्ति को ही सतुष्ट करने के लिए नही लिखा गया अपितु मुसलमानी दरबारो म फारसी की शृगारिक कविता से भी यह प्रभावित हुआ है।

रीतिकाल के समथक कहते हैं कि यह विवेचन गलत है। रीतिकालीन काव्य न तो सामती काव्य है और न वह फारसी के विलासवाद से प्रभावित है। उनके अनुसार रीतिकालीन काव्य विशेषज्ञो का काव्य है (Specialis ed poetry) है। नान के कुछ विशिष्ट क्षेत्रा म जिन्हे विशेषज्ञता प्राप्त थी उन्हाने इस प्रकार का काव्य लिखा है।

हम क्रमश एक एक तक पर विचार करगे। सव प्रथम व्यवस्था के तक को लगे। क्या रीतिकालीन काव्य सामता के दरबारा म पोषित हुआ है ? इसका उत्तर स्पष्ट है। केशवदास से अन्तिम महान कवि पद्माकर तक सभी प्रतिनिधि कवि—दरबारो से सम्बन्धित थे। केशव बिहारी मतिराम देव पदमाकर आदि सभी महाकवि दरबारी कवि थे। कुछ हिन्दू दरबारो स सम्बधित थ तो कुछ मुसलमानो क दरबारा म आश्रय प्राप्त कर चके थे। देव जसे कुछ कवि दोना से सम्बधित थे। इन दरबारा म भूषण सूदन और लाल जसे कवि केवल हिन्दुओ के दरबारो म रहकर वीरता का गायन करते दिखाई पडते हैं क्योकि भारतवष की अमुस्लिम जनता अनुदार मुगल विदेशी राज्य के प्रति पूणत तादात्म्य नही कर सकी थी। जनता की ऐसी भावना की अभिव्यक्ति उक्त वीर कविया म हुई है।

किन्तु दरबारो की प्रमुख प्रवृत्ति शृगारिक कविता म अभिव्यक्त हुई है। ऐतिहासिक परिस्थितिया क कारण प्रत्यक सामत जागीरदार और बड

बड़े सरदार सम्राट के विराट दरबार के आदर्श पर अपने दरबार सजाने लगे थे। शासक जनता में अपनी शान और रौब जमाने के लिए ऐसे दरबार सजाया करता था। कविगण इन दरबारों के आभूषण बनने लगे।

All the wealth of empire, jewels and pearls and gold and curios were displayed in the grand darbars held twice during the scale and presided over by the emperor in person In these darbars stood the nobles in their best costumes to listen to the announcements of reforms and honours, mellifluous music of the best singers of the age and the odes or verses of the greatest poets of India and Persia Here the king bestowed jagirs and promotions and rewarded the poets and the artists The nobles, of course, held their own assemblies on a scale equal to their wealth and position some of which were graced by the presence of the emperor Indeed on such occasions the spirit of rivalry swayed the nobility and each tried to excel his equal in grandeur and show[1]

अर्थात अकबर के समय में साम्राज्य की सम्पूर्ण सम्पत्ति मोती जवाहरात स्वर्ण विराट दरबारों में प्रदर्शित किए जाते थे। स्वयं सम्राट इन दरबारों में उपस्थित रहता था। सामंत अपने सर्वश्रेष्ठ वेष में उपस्थित होते थे और सम्राट द्वारा घोषित सुधारों को सुनते थे तथा सम्मान प्राप्त करते थे। देश का सर्वश्रेष्ठ संगीत तथा भारत और फारस के सर्वश्रेष्ठ कवियों का काव्य सुनते थे। यहां दरबारों में सम्राट जागीरें देता था तथा कवियों और कलाकारों को पुरस्कृत करता था। निश्चित रूप से सामंत-सरदार लोग अपने-अपने दरबार सजाते थे कभी कभी सम्राट भी उनमें पहुँचते थे। सामंतों में अपने-अपने दरबारों को अधिक से अधिक शानदार बनाने के लिए स्पर्धा रहती थी।

---

1 Rise and fall of the Mughal Empire—Dr R P Tripathi Allahabad—Page 257

डा० आर० पी० त्रिपाठी ने स्वीकार किया है कि अकबर के द्वारा आयोजित समारोहो पर फारस का प्रभाव था (पृष्ठ २५७)। अकबर के पूर्व प्रारम्भिक तुर्क शासको ने भी फारस के नमूने पर दरबारो का आयोजन किया था।

The early turkish rulers of India felt such a need and had elaborately organized their court and ceremonials after the fashion of the Kianian rulers of Persia (पृ० २५६)

बल्बन के दरबार को देखने के लिए दूर-दूर से लोग आते थे (२५६)। जहाँगीर और शाहजहा के समय यह दरबार-परम्परा अपनी शान की चरम सीमा पर पहुँच गई। शासक वर्ग की सम्पत्ति, शान रुचि—सबकुछ सामान्य जनता से अलग होती गई अत दरबारो मे एक विशिष्ट प्रकार के काव्य को आश्रय मिला। भूषण का काव्य औरगजेब के यहाँ कैसे पनप सकता था। प्रशस्ति और शृगार के लिए ही दरबारो मे गुन्जायश अधिक थी। 'उमरदराज महाराज तेरी चाहिए' की प्रवृत्ति प्रशस्ति कविताओ म दिखाई पडती है। सामतो की शान, प्रशस्ति म और रसिकता शृगार मे व्यक्त होने लगी।

डा० त्रिपाठी का यह कथन सही नही है कि दरबारो म सर्वश्रेष्ठ' कवियो का काव्य सुनने को मिलता था। क्योकि अकबर के समय के महानतम कवि दरबार के बाहर थे। पीडित जनता के प्रतिनिधि कवि धरती के भगवान (सम्राट्) की उपेक्षा कर शाहो क भी शाह—राम और कृष्ण के दरबारो म गाते थे। सस्कृत और कला की रक्षा के लिए अकबर के दरबारो को इन्हा सास्कृतिक स्रोतो से कुछ कलाकार मिल गए थ। सूर, तुलसी, और सगीताचार्य हरिदास को दरबारो म नही सुना जा सकता था।

जनता और दरबारी सस्कृति का यह समानान्तर विकास रीतिकाल मे भी दिखाई पडा। शाहजहाँ के दरबारी कविया म पण्डितराज थे, उनका काव्य रसिकता और चमत्कार से पूर्ण है किन्तु उसम व्यापकतर लक्ष्य का अभाव है जो आदि कवि म दिखाई पडता है, उसम राजरजन है, लोकरजन नही है। विश्वास और व्यापक दृष्टि के अभाव के कारण रीतिकालीन काव्य सकुचित हो गया है। शाहजहाँ के समय के हिन्दी के कवि बिहारी और देव हैं। पडित राज और बिहारी की दृष्टि एक है काव्य का स्वरूप एक है किन्तु उसी काल के सन्त कविया और भक्त कविया के शृगार से तुलना करने पर यह स्पष्ट हो

जायगा कि दरबारी शृंगार एक स्वतन्त्र रूप धारण करता हुआ दिखाई पड़ता है। दरबारी काव्य म चेतना के प्रक्षालन का प्रयत्न नही है केवल रजन का प्रयत्न है।

दरबारी कवि निम्न मध्य वग से आते थे किन्तु शासक की रुचि के अनुसार लिखते थे। बिहारी देव जैसे महान कवियो ने वृद्धावस्था मे अपने दरबारी जीवन पर क्षोभ प्रकट किया है। भक्त कवियो मे ऐसा पश्चाताप नही मिलता। देव ने विषयो के साथ जाने हुए अपने मन की भत्सना की है, 'नरनाहो के सम्मुख कला के प्रदशन पर क्षोभ प्रकट किया है।'[1] देव के कवित मे केवल यौवनावस्था की सहज भोग वृत्ति पर क्षोभ प्रकट नही किया गया है। वस्तुत देव के माध्यम से सम्पूण रीतिकालीन कविवग की विवशता और रुचि प्रकट हुई है।

सस्कृत के काव्यशास्त्र मे जब रस को काव्य की आत्मा मान लिया गया तो उत्तरकालीन काव्य-शास्त्र म रस और शृंगार रस को एक कर दिया गया। शृंगार रस का ही विवेचन पर्याप्त माना जाने लगा। यह प्रवृत्ति भोज के 'शृंगार प्रकाश' म स्पष्ट दिखाई पडती है। भानुदत्त की रस तरगिणी, भोज के शृंगार प्रकाश और अलकार का सक्षिप्त विवरण, नायिकाभेद और शृंगार रस का विस्तृत विवेचन और अलकारो की परिभाषाएँ प्रस्तुत करके शृंगार रस के उदाहरण देने की परम्परा प्रचलित हो गई। रीतिकाल मे नायिकाभेद, अलकार और रस (शृंगार रस) का विवेचन मुख्य रूप से दिखाई पडता है। रीतिकाल के समयको का कथन है कि यह सामतवाद का प्रभाव नही था क्योकि नन्ददास ने भी नायिकाभेद पर लिखा है। सूरदास मे भी यह प्रवृत्ति दिखाई पडती है। इसका उत्तर यह है तथा जैसा कि हम कह भी चुके हैं, कि भक्तिकाल मे सस्कृत की परम्पराएँ साधनात्मक साधना मे निमग्न होगई है। नन्ददास का ध्यान ईश्वर के प्रति आसक्ति पर है,

---

१ ऐसो जो जानतो कि जैहै तू विषय के सग,
ऐरे मन मेरे हाथ पाँव तेरे तोरतो।
आजु लग कत नरनाहन की नाहीं सुनि,
नेह सौं निहारि हारि बदन निहोरतो।
मारो प्रेम पाथर नगारो दै गरे मे बाँधि,
राधा वर बिरद के बारिध मे बोरतो।

नायिकाओ के चीरहरण पर नही। रीतिकाल मे इसके विपरीत "राधाकृष्ण" की उपासना बहाना बन गई है, और नायिकाओ का वर्णन मुख्य हो गया है। भक्तिकाल मे नग्न शृगारिक वर्णन एक उच्चतर मानसिक भूमि पर हुए हैं, लक्ष्य की उच्चता के कारण राधाकृष्ण के शृगारिक वर्णन हमारी चित्तवृत्ति को ऐहिकता की ओर नही ले जाते। रीतिकाल के विषय मे यह बात नही कही जा सकती। सखी सम्प्रदाय के काव्य को पढकर आपके मन मे विकार उत्पन्न नही होता, इसका एक मात्र कारण यह है कि भक्तो ने भगवान के विलास का वर्णन अपनी विलास वृत्ति पर विजय प्राप्त करने के लिए किया था। तभी भक्ति-काव्य मे एक निर्लिप्तता के दर्शन बराबर होते हैं। रीतिकाल मे यह प्रवृत्ति लुप्त हो जाती है।

यही यह तर्क दिया जाता है कि "रीतिकालीन कवि कुत्सित रुचि का प्रचारक नही है, न सकीर्णता का उस पर आरोप लगाया जा सकता है क्योकि रीतिकालीन कवि "शास्त्रीय कवि" है। सस्कृत मे वात्स्यायन का कामशास्त्र प्रसिद्ध है, वात्स्यायन को ऋषि या मुनि तक कहा जाता है। "आचार्य वात्स्यायन" नाम तो प्रसिद्ध ही है। इसी प्रकार बिहारी, देव, मतिराम आदि "आचार्य" कवि थे। फारसी के कवियो ने तो मुख से नीचे के अगो का भी वर्णन नही किया है तब हिन्दी के कवि जो गुप्तागो और विपरीत रति तक का वर्णन करते हैं, वह इसलिए नही कि उनकी रुचि कुत्सित थी, इसका एकमात्र कारण था कि रीतिकाल मे सस्कृत की एक परम्परा प्रचलित हो चुकी थी और कविगण उसमे विशेषज्ञ होते थे। अत 'कामशास्त्र' और शृगारिक काव्यो की परम्परा का ही रीतिकालीन कवियो ने विवेचन किया है। किसी 'शास्त्र' का विवेचन अपने मे अनुचित नही है। विशेषज्ञता' को विलास नही माना जा सकता। यदि आदर्श की बात है तो—रीतिकाल मे 'उत्तमा' नायिकाओ का वर्णन कम नही है। एकनिष्ठ प्रेम के जैसे वर्णन रीतिकाल मे हैं, वैसे आज भी कठिनाई से मिलेंगे।"

किन्तु मेरा निवेदन यह है कि दरबारा के विलासी वातावरण के कारण ही सस्कृत की शृगारिक परम्पर को आश्रय मिला था। विशेषज्ञता के लिए किसी शास्त्र विशेष के चयन मे उस युग की रुचि काम कर रही थी। रीतिकाल का कवि जानता था कि फारसी के ललित और शृगारिक काव्य के सम्मुख वह तभी "जम" सकता था जब वह उसी तरह का "जौहर" दिखाए जो शासन की विलास वृत्ति को सतुष्ट कर सके। इसी प्रवृत्ति के कारण 'नायिकाभेद' को बल मिला था। महाकवि देव ने 'जातिविलास' लिखा, उसके

लिखने मे देश की स्वाभाविक सुषुमा अथवा भौगोलिक ज्ञान के प्रदर्शन की प्रवृत्ति नही थी। बजारिन, मराठिन, कर्नाटकी, काश्मीरिन, बगालिन आदि नायिकाओ के वर्णन द्वारा शासक की रसिकता को सतुष्ट करने का प्रयत्न ही मुख्य था। नन्ददास और सूरदास का यह दृष्टिकोण हरगिज नही था अत रीतिकाल को भक्तिकाल का स्वाभाविक विकास नही कहा जा सकता। भक्तिकाल की परम्परा दरबार के बाहर के कवियो मे दिखाई पडती है। रीतिकाल मे ब्रज-प्रदेश मे रमने वाले भक्तो और अयोध्या के सखी-सम्प्रदाय के राम-भक्त कवियो के काव्य और देव-बिहारी के काव्य मे आकाश-पाताल का अन्तर दिखाई पडता है। शृगार भक्तो मे कम नही है—परन्तु रीतिकालीन शृगार और भक्तकवियो के शृगार मे वही अन्तर है जो लौकिक और साधनात्मक व्यक्तित्व मे अन्तर होता है।

रीतिकाल के अनुगामियो का कथन है कि "दरबारो मे विलासिता का अखड राज्य नही था। महान और प्रबल शासन जनता की कल्पना को जीतने के लिए दरबार सजाता था न कि विलासिता के अखड प्रदर्शन के लिए विलासिता आधुनिक युग मे रीतिकाल से कम नही है, बल्कि उसकी वृद्धि ही हुई है। रीतिकाल मे ऐसा कौनसा सामत था जिसे युद्धो का भय नही लगा रहता था। आधुनिक युग मे उच्च और मध्यवर्ग के सम्मुख वह भय भी नही है, तब रीतिकाल पर विलासिता का आरोप मिथ्या प्रमाणित होता है।"

किन्तु यह तर्क भी गलत है। महाकवि देव के "अष्टयाम" और 'पद्माकर' के वर्णनो से स्पष्ट है कि कवि शासको की विलासचर्या के लिए काव्य को उत्तेजक उपादान के रूप मे भी प्रस्तुत करते थे। 'पद्माकर' ने "गुलगुली गिलमे", गद्दा, सुराही, प्याला, आदि का वर्णन किया है। दूतियो के द्वारा राधा-कृष्ण के मिलन के बहाने अभिसारिकाओ, खडिताओ, वेश्याओ और दूसरी नायिकाओ के साथ सभोग के लिए प्रेरित करने पर रीतिकालीन कवि सबसे अधिक ध्यान देता है। आधुनिक युग 'नारी' के सौन्दर्य के साथ उसके व्यक्तित्व और गौरव का गायन है। सुमित्रानन्दन पन्त ने नारी को "देवि माँ, सहचरि और प्राण" के रूप मे देखा है और पल्लव की भूमिका मे नारी के प्रति विलासात्मक दृष्टि की निन्दा की गई है। कामायनी मे इडाओ के प्रति मनुष्य की विलास दृष्टि की भर्त्सना की गई है। प्रेम मे "समर्पण" पर बल दिया गया है। "राम की शक्तिपूजा" मे रावण-वध के लिए राम सीता की सुषुमा और महिमा से प्रेरणा लेते हैं। निराला नारी और ब्रह्म मे एक

ही सूक्ष्म छवि देखने के लिए अत्यधिक लालायित हैं। प्रकृति की मनोहर छवि के आगे पन्त जी बाला के बालजाल मे लोचन उलझाने को प्रस्तुत नहा हैं। महादेवी के शृगारिक वणन मीरा से मिलते जुलते हैं। मनोविज्ञान के नाम पर इधर जो नग्न वणन किए गए हैं उनके पीछे यह भावना है कि सभ्यता के नाम पर स्वाभाविक राग के दमन की आवश्यकता नहीं है। हालावाद म मयखाना सुराही प्याला आदि प्रतीकों के रूप मे वर्णित हैं। अत आधुनिक हालावाद एक प्रकार की त्राति का भी प्रतीक है। आधुनिक युग मे अभिसारिकावाद निन्द्य माना गया है। नारी जागरण को आधुनिक साहित्य मे सबसे अधिक वाणी मिली है। मनोवैज्ञानिक उपन्यासा म भी एक भ्रान्त सिद्धान्त को उपन्यास के रूप मे प्रस्तुत करने के कारण रीतिकालीनता' को बल अवश्य मिला है तथापि इस प्रवृत्ति से लोग शीघ्र ही ऊब उठ है और प्रम के वणन मे अनुत्तरदायित्व को क्षम्य नही माना गया है। अत नारी के व्यक्तित्व की उपेक्षा जैसी रीतिकाल मे मिलती है यह आधुनिक युग मे कहा है ?

आज का युग श्रेष्ठतम सामाजिक व्यवस्था के निमाण की ओर झुकता जा रहा है। आर्थिक दुरावस्था के कारण प्रत्येक व्यक्ति अपने को असुरक्षित अनुभव करता है। ववाहिक जीवन व्यतीत करना भी दुवह होता जारहा है अत बहुविवाह अभिसारिकावाद आदि का प्रश्न ही नही उठता। एक अत्यधिक सीमित वग मे विलास आज भी है और उसका कारण उस वग की मजबूत आर्थिक स्थिति और अनुत्तरदायी दृष्टिकोण है। इस वग पर समाज का रोष बढता जा रहा है और जिस दिन इस वग का नाश होजायगा विलास का अन्तिम गढ ढह जाएगा। जागरूक उन्नतिशील और समाजवादी समाज विलासी हो ही नहा सकता।

काव्य सम्पूण जीवन की अभिव्यक्ति है। यह तथ्य सबसे अधिक इस आधुनिक युग म स्वीकृत हो रहा है। जीवन के समग्र चित्रण पर इसी युग मे बल दिया जा रहा है। रीतिकाल म कवियो का ध्यान जीवन के एक पक्ष पर था और उस पक्ष का चित्रण कविगण केवल सम्पूण समाज की नही केवल अपनी उन्नति और केवल अपने यश के लिए करते थे। यही द्वद्व था जिसके कारण बिहारी और देव जैसे सफल कवि पश्चात्ताप करते दिखाई पडते हैं क्योंकि महाकवि के हृदया म अन्तरात्मा के विरुद्ध जीवनयापन एक अन्तद्वद्व की सृष्टि करता था। सूर और तुलसी ने जो परम्परा स्थापित की थी उस

परम्परा पर न चल सकने के कारण रीतिकालीन कवि का शुभ क्षणो मे अवश्य पश्चाताप होता था। राजाओ को रिझाने मे कवियो की वन्दना स्पष्ट है—

थारे हो गुन रीझते बिसराई वह बानि।
तुमहू कान्ह मनो भए—आज कालिह के दानि—बिहारी

राजाओ के बदन निहोरने की महाकवि देव ने निन्दा की है यदि मुख देखना ही है तो भगवान के रुख को देखने मे अधिक शांति मिलती है। बिहारी ने जगनायक जनार्दन भगवान कृष्ण का उपालम्भ दिया है कि तुम्हे भी रीतिकाल के राजाओ की हवा लग गई है—

कल को टरत दीन रट होत न स्याम सहाय।
तुमहू लागी जगतगुरु जगनायक जगवाय।

रीतिकालीन कवि अपने समय की हवा मे उडते भी थे और लाभ भी उठाते थे परन्तु उन्होने अपने समय के आदश को इष्ट कही नही बताया है क्योकि उनके पूर्व के कवि जो आदश उपस्थित कर चुके थे और सामान्य जनता के मन मे उस आदश के प्रति जो आदर उत्पन्न हो चुका था उसे रीतिकाल का कवि कभी पा नही सकता था यह वह जानता था अत पदमाकर देव आदि सभी कवियो ने अपने जीवन पर पश्चाताप किया है। यहाँ तक कि पण्डितराज को भी मुक्ति प्राप्त करने के लिए गगालहरी लिखनी पडी।

यदि यह भी मान लिया जाय कि रीतिकालीन कवि कामशास्त्र या नायिका भेद के विशेषज्ञ थे और तटस्थ होकर उन्होने अपने ज्ञान का प्रदशन मात्र किया है तब भी भक्तिकाल और आधुनिक काल के मध्य की यह विशेषज्ञता कम से कम आदश नही कही जा सकती। न इसे अनुकरणीय कहा जा सकता है। रीतिकाल की मुख्य प्रवृत्ति इस कवित्त मे वर्णित है—

प्रेम चरचा है अरचा है कुल नेमन रचा है
चित और अरचा है चित चारी को।
छोडयो परलोक नरलोक बरलोक कहा
हरष न सोक ना अलोक नरनारी को।
घाम सीत मेहना बिचारै सुख देह को
प्रीत न सनेह डर बन न अध्यारी को
भूलेहू ना भोग बडी बिपद बियोग बिथा
जोग हू तै कठिन सँजोग परनारी को।

भक्तिकाल के योग, साधना, तप, वैराग्य, दिव्यप्रेम और आदर्शों के ऊपर जीवन को बलिदान करने के स्थान पर परनारी सयोग' की नाना विधियो के आविष्कार (नायिकाभेद) और भोगविलास के विविध पक्षो के वणन मे ही काव्य सीमित हो गया। कविगण समाज के सामान्य व्यक्ति की भावनाओ की ओर से उदासीन होगया। भारतेन्दु युग मे हिन्दी-काव्य की इसी कमी की पूर्ति की ओर कवियो का ध्यान आकर्षित हुआ।

सामतो के दरबारो के आश्रय मे पलने वाला काव्य समाप्त नही होता यदि सामत १८५७ के युद्ध मे स्वय समाप्त न हो जाते और इस युद्ध के बाद हैदराबाद, रामपुर और दूसरे अवशेष दरबारो मे पुराने ढग का काव्य आगे चलता भी रहा किन्तु सामतवाद का मेरुदण्ड १८५७ के बाद टूट गया फलत नए प्रकार के काव्य का जन्म आवश्यक था। इस नयी चेतना के साथ जो नही चल सके वे पुराने सामतवादी दृष्टिकोण को आज तक अपनाए हुए हैं। कुछ कवियो मे दोनो प्रवृत्तिया साथ साथ दिखाई पडती हैं।

रीतिकाल के अनुगामियो का अन्तिम तक काव्य के स्थायित्व से सम्बन्धित है। शृगार मनुष्य की मूलभूत प्रवृत्तिया म से है, सवदा वह प्रिय रहेगा। शृगार का अथ पुरुष और स्त्री के मध्य आकषण का नाम है और यह प्रवृत्ति शाश्वत है। चूंकि रीतिकाल म ही पुरुष स्त्री के मध्य आकर्षण का मुक्त होकर वणन किया गया है अत रीतिकाल स्थायी काव्य है। उधर सामयिक प्रश्नो पर लिखा हुआ अस्थायी काव्य है, हडताल, टैक्स अकाल, महामारी, समाजसुधार आदि पर लिखी रचनाएँ इन समस्याओ का समाधान होजाने के बाद पुन नीरस लगती हैं अत आधुनिक युग का बहुत सा काव्य प्रचारमात्र है।

इसका उत्तर यह है कि शृगार सूर और तुलसी मे भी वर्णित है और अब भी वह पढा जाता है। वाल्मीकि ने भी शृगार का वणन किया है। कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तल नाटक मे शृगार कम नही है किन्तु उसकी दाम्पत्य म परिणति दिखाकर कालिदास ने मनुष्य की मूल प्रवृत्ति और सामाजिकता के द्वन्द्व को सुलझा दिया है। कुमारसम्भव मे भी यही स्थिति है। स्कन्द का जन्म कराकर कालिदास न उमा-पार्वती के सम्भोग को रीतिकालीन नही रहने दिया है। रीतिकाल का शृगार इस व्यापक दृष्टिकोण से रहित है।

रीतिकाल के नायक के सम्मुख कोई समस्या नही है शकुन्तला की तरह रीतिकालीन नायिका के मन म मानवीय मूल्यो अथवा अपने भविष्य के

विषय मे कोई आशका, कोई सदेह, कोई अन्तर्द्वन्द्व नही है । केवल भोगलिप्सा हमारे किसी प्राचीन कवि का ध्येय नही है । कुमारसम्भव मे परिस्थिति की विकटता मे शृगार का वर्णन है जो लोकहितकारक सन्तान की सृष्टि के कारण कल्याणकारी प्रतीत होता है । रीतिकाल मे किसी ओर से भी, कोई आशका और जीवन मथक कोई प्रश्न कही ध्वनित करता हुआ नही दिखाई पडता अत रीतिकालीन शृगार समग्रत स्थायी महत्व की चीज नहीं है । जागरूक समाज मे रीतिकालीन काव्य का पठन लम्पटता का प्रतीक माना जाने लागा है, रीतिकालीन काव्य की प्रत्यक्ष रूप मे भोग की अपील कुत्सित मानी जाने लगी है ।

किन्तु इसका अर्थ यह नही है कि रीतिकाल म सयोग और वियोग के चित्रणो मे "सर्वत्र' ऐसा हुआ है । भोग के पूर्व के अनेक सोपानो का—सहज अनुराग के अनेक रूपो का वर्णन रीतिकाल की महान उपलब्धि है—

सखी सिखावति मान विधि, सैननि बरजति बाल ।
हुरुए कहु मो हिय बसत, सदा विहारीलाल ॥

अथवा

देव मैं सीस बसायो सनेह कै, भाल मृगम्मद बिन्दु कै राख्यो ।
कचुकी मे चुपरयो करि चोवा, लगाय लियो उर सौ अभिलाख्यो ।
लै मखतूल गुहे गहने, रसमूरतिवत सिंगार कै चाख्यो ।
सांवरे लाल को सांवरो रूप मैं, नैननि मे कजरा करि राख्यो ।

शृगार के ऐसे निर्मल और अनुरागरजित पद्य रीतिकाल के उज्ज्वल पक्ष को प्रस्तुत करते हैं, वियोग पक्ष मे कहे गए पदो मे भी बहुत से पद्य मनोहर हैं । सयोगवियोग मे प्रकृति के भव्य और भावुक्तारजित रूप भी आकर्षक हैं—रीतिकाल की यह "स्थायी सम्पत्ति" है जो सर्वदा आदरणीय रहेगी । किन्तु अभिसारिकाओ के नाजओअन्दाज, रुदन, उपाय, खडिताओ की लीलाएँ और चीत्कार, नानाविध नायिकाओ के नखरे, दूतियो की दौडधूप, सपत्नियो के षडयन्त्र और ईर्ष्याएँ—ये सब "स्थायी" साहित्य की सृष्टि नही करते । बदलते हुए समाज मे इन सबकी सत्ता ही नही रहेगी तब ऐसे वर्णन उसी प्रकार 'इतिहास' बन जाएँगे *जिस प्रकार हडताल और टैक्स के वर्णन । स्वय रीतिकालीन कवियो को रीतिकाल की दुराचारात्मक दृष्टि* अनुचित प्रतीत हुई थी । महाकवि देव ने इसीलिए "स्वकीयावाद" को परकीयावाद से श्रेष्ठ स्वीकार किया था ।

२

अत रीतिकाल के अनुयायियों को इस प्रश्न का उत्तर देना होगा कि दरबारवाद और फारसी के विलासपरक काव्य से यदि हिन्दी कवि प्रेरित नहीं हुए तो उन्होंने संस्कृत के विषयपरक काव्य में से नखशिख षड्ऋतु वर्णन और कामशास्त्रपरक परम्परा ही क्यों स्वीकार की ? यदि रीतिकाल भक्तिकाल का ही सुखद सहज और अधिक कलापूर्ण विकास है तो रीतिकालीन काव्य में भक्तिकालीन उच्च चित्तवृत्ति के दर्शन क्यों नहीं होते ? रीतिकालीन कविता ने हिंदू धर्म को जनप्रिय बनाया—यह तर्क बहुत दूर तक हमें नहीं ले चलता। रीतिकाल में धार्मिकता का अंश अत्यधिक क्षीण है इसके विपरीत रीतिकाल के समानान्तर चलने वाले काव्य में धार्मिकता अधिक मिलती है। भारतेन्दु जी के काव्य में रीतिकाल से कहीं अधिक धार्मिकता है क्योंकि भारतेन्दु की चित्तवृत्ति भक्तिकाल से भी अत्यधिक प्रभावित थी अत भारतेन्दु के काव्य में परम्परागत रीतिकालीन काव्य भी कुछ नए रूप में रचित हुआ था। उसका आधार नहीं बदला है किन्तु रीतिकालीन आधार पर भारतेन्दु ने जिस काव्य को खड़ा किया है उसमें नए उपादानों के कारण नवीन परिस्थितियों की मांग के कारण एक नवीन रंग आ गया है अत रीतिकाल के अनुगामी को यह बताना होगा कि भारतेन्दु रीतिकाल के अंधानुयायी क्या नहीं है ? सामाजिक दृष्टिकोण काव्य के लिए आवश्यक है या अनावश्यक इस प्रश्न का उत्तर देना होगा। कला इतिहास में सामाजिक आग्रह चाहे वह धर्म के रूप में रहा हो या समाज सुधार के रूप में अथवा 'समाजवाद' के रूप में प्रारम्भ से ही है। अत निरपेक्ष कला के तर्क द्वारा रीतिकालीन काव्य के स्थायित्व की वकालत सम्भव नहीं है। महाकवि गोरी के नैन पर स्थायी काव्य की सृष्टि करता है तो हड़ताल में मरे हुए किसी गरीब मजदूर पर भी मार्मिक और स्थायी काव्य लिख सकता है। यदि ऐसा न हो तो निराला की विधवा वह तोड़ती पत्थर बादल तथा महादेवी की वह दे माँ मैं क्या देखूँ शीर्षक कविताएं इतनी प्रिय क्या लगती ? यान्त्रिक उन्नति में इलाहाबाद की सड़क पर पत्थर तोड़ने वाली स्त्रियाँ शायद इक्कीसवीं शताब्दी में न मिलें किन्तु निराला की कविता पढ़ कर लोग अवश्य प्रभावित होते रहेंगे क्या क मानवीय करुणा का उद्रेक जहाँ भी और जिस माध्यम से भी हुआ है सर्वदा स्थायी रहता है अत स्थायित्व की दृष्टि से भविष्य के उन्नतिशील समाज में निजी और कमजोर क्षणों में शायद खण्डितावादी काव्य को भी लोग पढ़ें उसमें रस लें किन्तु स्वस्थ और शुभ क्षणों में इस काव्य से मनुष्यता आनन्द नहीं ले सकती और शुद्ध सभ्यता का लक्षण ही यह है

कि उसमें स्वस्थ क्षण अधिक हों और दुर्बल क्षण कम। प्रेमीजन अपनी प्रेमिका के सम्मुख रीतिकालीन अभिसारिका का वर्णन करते समय आज भी लज्जित होते देखे गए हैं, उन्हें अपने विषय में प्रेमिका के अभिमत की चिन्ता रहती है। व्यक्तित्व की बढ़ती हुई गरिमा व्यक्तित्वहीन वासनापरक काव्य को स्थायी रहने देगा, इसमें सन्देह है, हाँ निर्मल प्रसंगों का प्रचार अवश्य होगा और होना चाहिए।

यह प्रश्न भी प्रस्तुत किया जाता है कि जब किसी युग विशेष का काव्य सामाजिक व्यवस्था के अनुरूप होता है तब उसे शुभ, अशुभ या कल्याण-कारक न कह कर केवल सुन्दर या असुन्दर ही कहा जा सकता है। उदाहरण के लिए यदि यह मान भी लिया जाय कि रीतिकालीन काव्य विलासपरक है तब यह विलास व्यवस्थाजन्य होने से निन्दित नहीं हो सकता। आधुनिक युग के दृष्टिकोण को मध्यकाल पर आरोपित नहीं किया जा सकता।

इसका उत्तर यह है कि प्रथमतः सौन्दर्य के मूल में सामाजिक व्यवस्था, उसके अनुरूप विकसित मूल्य (Values) और समग्रतः सांस्कृतिक तत्त्व कार्य करते हैं। सांस्कृतिक और सामाजिक तत्त्वों को ध्यान में न रखने से किसी युग के सौन्दर्य को समझा ही नहीं जा सकता और किसी युग के सांस्कृतिक और सामाजिक स्वरूप को समझ लेने पर, इतिहास के विराट प्रवाह में रखकर देखने पर, उस युग के सांस्कृतिक और सामाजिक स्वरूप की सीमाएँ भी हमारे सम्मुख स्पष्ट होजाती हैं। और उन सीमाओं के अनुरूप उस युग के सौन्दर्य की सीमाएँ भी स्पष्ट हो जाती हैं। अपने इतिहास के निर्माण में सलग्न जनता युगविशेष की सीमाओं की भी चर्चा इसीलिए करती है कि उन सीमाओं से हम बच सकें और इतिहास को अभीप्सित मोड़ दिया जा सके। अतः युगविशेष के सौन्दर्य को जहाँ हम उसको सामाजिक व्यवस्था के अनुरूप पाते हैं, वहीं उस सामाजिक व्यवस्था और उसके अनुरूप विकसित सौन्दर्य की कमजोरियों को भी हम बताते हैं, उसके उज्ज्वल और निर्बल पक्षों का विश्लेषण करते हैं, क्योंकि हमें एक ऐसी सभ्यता का निर्माण करना है जिसमें पूर्व युगों की उपलब्धियों की धरोहर तो सुरक्षित रहे किन्तु पूर्व युगों की दुर्बलताएँ उसमें प्रवेश न पा सकें। अतएव युग विशेष के साहित्य के सौंदर्य को हम हित-अहित के प्रश्नों से अलग करके नहीं देखते। सौन्दर्य के विषय में चर्चा करते ही हित-अहित का प्रश्न उपस्थित होता ही है क्योंकि हित भी हमें प्रिय लगता है, हित जहाँ नहीं है, वह हमें सुन्दर भी नहीं लगता। रुग्ण सभ्यता की पहचान ही यह है कि 'वरेण्य' की उसमें उपेक्षा होती है

समाज मे सतत जाग्रत नागरिक का सौंदय बोध व्यापक हित का अविरोधी हो जाता है। रीतिकाल मे यह कमी थी। भारतेन्दुयुग म राजनैतिक और सामाजिक शक्तियो मे परिवत्तन होते ही सौन्दय और हित म अविरोध स्थापित करने का प्रयत्न बडी द्रुत गति से हुआ भारतेन्दु के द्वारा यह प्रक्रिया सवप्रथम प्रकाश म आई अत उन्हे आधुनिक युग का जन्मदाता कहना उचित ही है।

नवचेतना का स्वरूप—भारतेन्दु का जन्म १८५० ई० मे हुआ अर्थात प्रथम स्वतन्त्रता-सग्राम के सात वष पूव[1] राष्ट्रीय काग्रस की स्थापना के बाद राष्ट्रीय जागरण का यह चन्द्रमा अस्त हो गया सन १८८५ ई० मे—जैसे जागरण का काय कांग्रस को सौंपकर भारतेन्दु ने देश से विदा ले ली हो[1]

भारतेन्दु के ऊपर इस प्रकार राष्ट्रीय स्तर पर राजनैतिक दलो के पूव की जाग्रति का उत्तरदायित्व आ पडा था। शताब्दियो की दासता और आर्थिक दुरावस्था से राष्ट्रीय चरित्र का पतन हो चुका था। विदेशी साम्राज्य वाद के सम्मुख इस देश को रूबरू खडा करने के लिए भारतीय मानस की पुन सृष्टि आवश्यक थी भारतेन्दु ने यही काय किया था। क्रान्ति का काय एक दिन मे पूरा नही होता। कोरे सिद्धान्तवादी कहेंगे कि शान्ति और विधि स्थापक सम्पूण प्रदेशो को एक ही केन्द्रीय सत्ता के नीचे लाने मे समय और इसलिए एक राष्ट्र के विकास की ओर उन्मुख महान ब्रिटिश राज्य की प्रगतिशील भूमिका के विरुद्ध असतोष उत्पन्न करने वाले भारतेन्दु क्या प्रति क्रियावादी नही थे? इसका स्पष्ट उत्तर है कि अंगरेजो का राज्य इगलैंड के विकास के लिए स्थापित किया गया था। भारत मे अंग्रेजी राज्य की भूमिका सन १८५७ की विद्रोही जनता ने भलीभाँति समझ ली थी। सन १८५७ की क्रान्ति को चाहे कोई भी नाम क्यो न दिया जाय यह मानना ही होगा कि विदेशी राज्य के विरुद्ध यह प्रथम असतोष की अभिव्यक्ति थी।[1] १८५७ की

---

१ यह दुख का विषय है कि भारतेन्दु और उनके युग के साहित्य के विषय मे सबसे अधिक सामग्री सम्मुख लाने वाले ब्रजरत्नदास जसे लेखक भी 'भारतेन्दुयुग' की भूमिका स्पष्ट नहीं कर सके और इसका प्रमुख कारण भारत मे अंग्रेजी राज्य के विरुद्ध असतोष के इतिहास को शुद्ध रूप मे न देख सकना है। श्री ब्रजरत्नदास के अठारह सौ सत्तावन के विषय मे क्या सोचते हैं यह उन्हीं के शब्दों मे पढ़िए—

क्रान्ति ने स्पष्ट कर दिया कि अँगरेजो का शासन हमे प्रिय नही है । राजा सामत और सिपाही वग के नेतृत्व और सामान्य जनता के सहयोग से तीन वष तक विदेशी लुटरो के विरुद्ध भीषण असतोष की आग धधकती रही । जो लोग इस क्रान्ति को सिपाहियो की बगावत कहते हैं उन्हे सिपाहियो का वग आधार देखना चाहिए । सन सत्तावन के सिपाहियो मे जनता से कट कर अलग होजाने वाले वेतनभोगी सैनिक मात्र नही थे । सिपाहियो म अधिकतर सिपाही कृषकवग से आए थे फलत सिपाहियो के असतोष मे गन्दे कारतूसो और *अधविश्वासा का योगदान नगण्य था । मुख्य असतोष का कारण था* किसाना की दुदशा जो कृषकवग से आने वाले सनिको के हृदयो म अग्नि बनकर भडक उठी थी ।

बहरहाल क्रान्ति की असफलता के बाद द्वितीय क्रान्ति का शुभारम्भ भारतन्दु द्वारा हुआ । असफल क्रान्ति के बाद प्राय विजेता के प्रति सहानुभूति रखने वाला एक वग उत्पन्न हो जाता है जो उससे सुविधा प्राप्त करने के लिए सहानुभूति प्रदर्शित करता है । भारतेन्दु वस्तुत वग की दृष्टि से इसी वग के थे परन्तु स्वय भारतन्दु अग्रचेता थे अत सामान्य जनता के मन की अभि व्यक्ति उनके माध्यम से हुई । यह असम्भव था कि भारतेन्दु आज के क्राति कारियो जैसे पूणत विद्रोही दिखाई पडते । भारतन्दु को भी अन्य लोगो की तरह कुछ भ्रम थे अत एक ओर उनमे राज्य भक्ति दिखाई पडती है तो दूसरी ओर अपने देश मे जागरण और राज्य के विरुद्ध विद्रोह की अग्नि भी उनमे दिखाई पडती है ।

'सम्वत १९१३ १४ मे भारत के कुछ भाग मे सिपाही विद्रोह हुआ । इस विद्रोह मे विशेष रूप से उन्हीं तिलगो या सिपाहियो ने भाग लिया था जो भारत मे ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साम्राज्य स्थापित करने मे मुख्य सहायक थे । इनके विद्रोह का कारण देश प्रम या देशभक्ति नहीं थी क्योंकि य मूलत देशद्रोही थे पर कुछ धार्मिक विश्वास के विरोधी कार्यों के कराए जाने तथा कुछ लोभ के कारण इनमे उत्तजना फली हुई थी । इन विद्रोह के फलस्वरूप उन देशद्रोही तिलगो की पल्टनो के अन्त के साथ ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन का भी अन्त हो गया और भारत का शासन इङ्गलैण्ड के शासको के हाथ मे चला गया । ऐसे विद्रोह को भारत की जातीय जाग्रति मानना कोरा भ्रम मात्र है ।" भारतेन्दु मडल, पृष्ठ ७)

सन १८२१ ई० मे कारनेटीक्स ने कहा था—

We must at once admit that our conquest of India was through every stuggle more owing to the weakness of the Asiatic character than to the bare effect of our own brilliant achievements on the same principal, we may set down as certain that whenever one twentieth part of the population of India becomes as provident and as scheming as ourselves, we shall run back again in the same ratio of velocity, the same course of our original insignificance [1]

अर्थात अँगरेजा की विजय एसिया के चरित्र की दुबलता के कारण हुई है। जब भारत की जनता का बीसवाँ भाग भी अग्रचेता और योजना निपुण हो जाएगा, हम अँगरेज लोग महत्त्वहीन हो जाएँगे।

अर्थात अँगरेजी राज्य का सबसे बडा विरोध तब होता, जब देश की जनता को अँगरेज जनता की तरह जागरूक बनाया जाता उसमे महान चरित्र और राजनैतिक, सामाजिक समझ का विकास किया जाता। यह कार्य यत्र तत्र शत्रुबध से अधिक महत्वपूण था क्योकि अग्रचेता मध्यम वर्ग के नेतृत्व मे राजनैतिक क्रान्ति तभी सफल हो सकती थी जब सामान्य जनता आगे बढते हुए नेताओ का पृष्ठपोषण करती। हरावल सेना तभी कामयाब होती है, जब उसके पीछे शेष सेना आगे बढती चलती है। अत भारतेन्दु को दो कार्य करने थे, अग्रचेता मध्यवर्ग की शिक्षा और उसकी पृष्ठपोषक सामान्य जनता का जागरण ताकि वह देशी नेतृत्व का महत्त्व समझ सके और उसका साथ दे सके।

भारतेन्दु के साहित्य का यही आदर्श था। इतने महान आदश के बिना साहित्य महान हो ही नही सकता था। भारतेन्दुयुग के पूर्व आदर्श और दृष्टि की यह विराटता केवल भक्तिकाल म ही दिखाई पडती है। भारतेन्दु की परम्परा को स्मरण रखने वाला साहित्यकार साहित्य को 'निरपेक्ष" नही मान सकता। कोरा 'सौन्दर्यवादी आन्दोलन' भारतन्दु की परम्परा क विरुद्ध है। सौन्दर्यवाद

---

१ "भारत मे अँगरेजी राज्य"—सुन्दरलाल—द्रष्टव्य-श्रीधरपाठक। तथा पूर्वस्वच्छन्दतावादी काव्य—रामचन्द्र मिश्र, पृष्ठ ४६।

वही सफल हो सकता है जो साहित्य के गर्भ में स्थित महान अभिप्राय को कलापूर्ण व्यंजना दे। 'सौन्दर्य' के क्षेत्र से स्रष्टा के "प्रयोजन" को निकालकर केवल 'प्रक्रिया" की सफलता की चर्चा करना गतव्यहीन यात्रियों द्वारा की गई बहस ही हो सकती है।

पुन शका होगी कि भारतेन्दु के ऊपर यह सब आरोप स्वय लेखकों द्वारा हुआ है। भारतेन्दु ने समाज सुधार पर अधिक ध्यान दिया था। भावी क्रान्ति की पृष्ठभूमि के रूप में भारतेन्दु के कार्य को स्वीकार नही किया जा सकता। भारतेन्दु ने राज्य भक्ति के बराबर गीत गाए हैं। हाँ, अपने देश और समाज के विषय में भी उन्ही प्रशस्तियों में उन्होंने कुछ कह दिया है, उससे यह प्रमाणित नही होता कि भारतेन्दुयुग इतना जागरूक था।

इतिहास के विकास में किसी व्यक्ति का योगदान समझने के लिए वह व्यक्ति अपने विषय में क्या कहता है, यह महत्त्वपूर्ण नहीं है। देखना यह चाहिए कि जो कार्य उसने किया है, उसका 'प्रभाव' क्या हुआ है, इसके बाद, उस कार्य की 'परम्परा' समाज को किस ओर ले गई है और बाद में उस परम्परा का समाज पर क्या प्रभाव पड़ा है। भारतेन्दु अपने को चाहे राजभक्त प्रजा ही समझते रहे हो, जैसा कि कुछ लोगो ने प्रमाणित किया है, चाहे वह अपने किए गए कार्य को इतना महत्त्वपूर्ण न भी समझते हो परन्तु उस कार्य का तात्कालिक 'प्रभाव' और बाद में उसकी 'परम्परा' का प्रभाव इस देश की मुक्ति-प्राप्ति और नवनिर्माण में निर्णायक हुआ है। अत. भारतेन्दु का काव्य और साहित्य एक क्रान्तिकारी परम्परा के प्रथम प्रवाह के रूप में ही देखा जा सकता है।

रीतिकाल के अनुगामियों का कथन है कि अन्तत. शुद्ध काव्य के रूप मे भारतेन्दुयुग रीतिकाल के समक्ष नहीं ठहर सकता क्योंकि अधिकतर भारतेन्दुयुगीन काव्य प्रचारात्मक है। और जहाँ रीतिकाल के आदर्श पर भारतेन्दु प्रेमघन आदि ने लिखा है, वहाँ वह रीतिकाल से आगे नहीं बढ सके हैं।

जैसा कि लौंजाइनस ने लिखा है कि साहित्य मे केवल भाषा और छन्द का सौन्दर्य ही सब कुछ नहीं है, कभी-कभी कोई विचार ही अपनी नवीनता और परिस्थिति-औचित्य के कारण हमें मुग्ध कर देता है। भारतेन्दुयुग का काव्य अपनी नवीन दृष्टि के कारण हमें प्रभावित करता है। यह नवीनता प्रयोगवादियो जैसी नवीनता के लिए नवीनता नहीं है अपितु वह नवीनता सामाजिक चेतना के अनुरूप है अतः अभिव्यंजना की दृष्टि से अधिक परिमार्जन

न हाने पर भी भारतेन्दुयुग की नवीन चेतना हमे प्रभावित करती है। जिस प्रकार हम कामायनी के सौन्दर्य-वर्णन को पढकर मुग्ध होते रहेंगे उसी प्रकार राष्ट्रीय चेतना के विकास का इतिहास भी हमारे लिए मनोरजक बना रहेगा और तब हमे भारतेन्दु युगीन काव्य अवश्य रुचिकर लगेगा। हाँ जिन्ह सामाजिक चेतना के विकास की चिन्ता नही है जिन्हे केवल एक ही प्रकार का जीवन और एक ही प्रकार का काव्य प्रिय है उनके लिए उसे छोड सब कुछ प्रचार है। नवयुग के सूत्रधार कवि कला की दृष्टि से महान न हाने पर भी अपनी दृष्टि की अग्रगामिता के कारण हमे प्रभावित करते हैं।

खडी बोली का आदिकाव्य

भारतेन्दुयुगीन काव्य का स्वरूप—भारतेन्दुयुग मे काव्य की भाषा यद्यपि ब्रजभाषा ही रही तथापि पुरानी चेतना के गर्भ म जिस प्रकार नवीन चेतना पल रही थी उसी प्रकार शन शन खडी बोली भी ब्रजभाषा के साथ साथ विकसित हो रही थी।

हिन्दी भाषा का जन्म सिद्धो की यथार्थवादी कविता के साथ हुआ। रीतिकाल के पूर्व तक वह शुद्ध जनमानस को व्यक्त करती रही। निर्गुणपंथी सतो ने खडी बोली की क्रियाओ का भी यत्र तत्र प्रयोग करके जिस खडी बोली मे अपनी भावनाएँ व्यक्त की थी वह खडी बोली दरबारो को सजाने वाली ब्रजभाषा के समान्तर इन्ही निर्गुणपंथियो द्वारा विकसित होने लगी। ब्रजभाषा काव्य की मोहिनी और शृगारिता के सम्मुख खडी बोली मे समान्तर रूप से लावनी साहित्य का जन्म हुआ। खडी बोली के लावनी काव्य की विशेषता यह भी थी कि उसमे हिन्दू मुसलमान सभी सन्तो ने सहयोग दिया। खडी बोली का आदिकाव्य असाम्प्रदायिक था—हिन्दू मुसलमानो की एकता का प्रतीक।

१८वी शताब्दी को रीतिकालीन शताब्दी कहा जाता है किन्तु इसी युग मे खडी बोली मे भी रचनाएँ हुई हैं और सुन्दर रचनाएँ हुई हैं। किन्तु यह काय सन्ता ने ही किया है। १८वी शताब्दी के प्रारम्भिक भाग मे सन्त सीतल हुए हैं (जन्म सन १७२३ ई०) उनकी कविता का नमूना देखिए—

पकज पर भौरे मधुमाते ससि पर अहिपति की भौरें हैं।
मखतूर नीरमनि चाह चौंर उपमा नहि आवत नीर हैं।
कै वरक तिल्लई पर सीतल ये खैंच दई तहरीरें हैं।
या लाल बिहारी के मुख पर क्या कहर जुल्फ जजीरें है।[1]

---

[1] साहित्य प्रवाह पृष्ठ २-३ से उद्धृत—कृष्णदेवप्रसाद गौड, बनारस।

सीतल मस्त सन्त कवि थे। वैष्णव फकीर थे अत उनकी कविता म सांवरिया के सौन्दर्य का वर्णन है परन्तु दरबारी काव्य म यह मस्ती कहाँ ?

हम दर्दमन्द मुशताक रहे तुझ बिन उर दूजा दुरा नही।
तीखी चितवन का जख्म लगा, दिलमे सो अब तक पुरा नही।
तुझ हुस्न बलख मे ए दिलवर कुछ हम लोगो का बुरा नही।
विहँसन क मोल विकाते हैं, सीतल इन मोला बुरा नही।[1]

सीतल के सम्प्रदाय (टट्ठी सम्प्रदाय) के ही एक और सन्त 'भगवत-रसिक' के काव्यो मे भी यही मस्त परम्परा है, मुक्त होकर खडी बोली की क्रियाआ, सस्कृत, पजाबी और उर्दू के शब्दो द्वारा खडी बोली का काव्य 'सधुक्कडी" परम्परा के कवियो द्वारा विकास को प्राप्त हुआ है, यह अब सिद्ध हो चुका है—महात्माओ का हम पर कितना ऋण है !

फक्कड के टक्कर अब सबसे हला न भला हलारी।
दफ्तर फार खुशामद हूँ का डार दिया डर भारी।

जब रीतिकाल मे कवियो द्वारा राजाओ की खुशामद का बोलबाला था तब सीतल और भगवतरसिक खुशामदाना प्रवृत्तियों के विरुद्ध जनघोष कर रहे थे—

दफ्तर फार खुशामद हूँ का डार दिया डर भारी।

भगवतरसिक (सहचरीशरण) ने मस्त भक्ता को 'शेर बच्चा" कहा है। वस्तुत दरबारी परम्परा के समानान्तर सहचरीशरण का स्वर केहरीनाद सा लगता है। वे राजाओ की खुशामद के स्थान पर राजाधिराज भगवान के प्रेम मे मस्त होने के लिए ललकारते हैं—

हरदम याद किया कर हरि दरद निदान करेगा।
मेरा कहा न खाली ऐ दिल आनद कद करेगा।
ऐसा नही जहाँ बिच कोई लगर लोग लरेगा।
सहचरिसरन सेरदा बच्चा क्या गजराज करेगा।[2]

ईश्वर प्रेम के माध्यम से दरबारो, राजलिप्सा, अत्याचार आदि के विरुद्ध सन्तो और भक्ता ने जनमानस की घृणा प्रकट की है। रीतिकालीन काव्य के विरुद्ध खडी बोली के इन कवियो की चेतना बहुत आगे थी। यही

---

१ साहित्य प्रवाह, पृष्ठ २—३ से उद्धृत—कृष्णदेवप्रसाद गौड,बनारस।
२ वही।

परम्परा—दरबारो से घृणा धनसग्रह के लिए शोषण और अत्याचार से ग्लानि हिन्दू मुसलमानो मे एकता का प्रयत्न—ये सब परम्पराएँ खडी बोली को प्रारम्भ से ही मिली थी—यह परम्परा ही नजीर अकबराबादी के काव्य मे व्यक्त हुई थी। यही परम्परा ललितकिशोरी (सन् १८६३ ई० कविताकाल) के काव्य मे व्यक्त हुई थी।

१६वी शताब्दी के प्रारम्भ से ही लावनी, का प्रचार बहुत बढ गया। १६वी शताब्दी के प्रथम चरण मे रिसालगिरि तथा तुकनगिरि आदि के अखाडे स्थापित हुए। रिसालगिरि के शिष्य बनारसी (मृत्यु सन् १८६३ ई०) की एक लावनी श्री गौड ने उदधृत की है—

दिल मे पाये दीदार वो वशी अटके।
शिरमौर मुकुट कटि कसे जरी के पटके।
कहै देवीसिंह हैं अजब खेल नटखट के।
कहैं बनारसी हम आशक नागर नट के।[1]

श्री रूपकिशोर की लावनी तो अलकृत काव्य का एक अच्छा उदाहरण है परन्तु जनता से दूर नहीं। जनकाव्यो मे कही कही अत्यधिक अलङ्कृति होती है परन्तु जनकवि उसे इस ढग से प्रस्तुत करता है कि जनता उसे समझ लेती है—

है शीश पै शीशफूल शोभित स्वरूप आभा अखड का है।
मनो भुजगी की भूमिका पै निवास श्री मारतण्ड का है।
ये फूल तेरे न आज उपमा गगन के गुरु की हरन करी है।
कनक शिखर पर कि वासुकी ने–उगल के मस्तक पै मनि धरी है।
बनाया किसने ये फूल जिसमे प्रकाश मणिगण प्रचण्ड का है।[2]

यह स्मरणीय है कि लावनीकार यद्यपि तुर्रा और कलगी—इन दो अखाडा म विभक्त थे और इनके प्रवतक ब्रह्म और माया को केन्द्र मानकर चले थे परन्तु लावनियाँ विविध विषयो पर भी बनने लगी और इस प्रकार का भेद व्यवहार म समाप्त होगया। जनता के मनोरजन के लिए तरह तरह के विषय अपनाए गए।

'जिस समय हिन्दी के कवि काव्य की भाषा को जो उस समय ब्रज भाषा थी, राजदरबार के कठघरे मे शब्दो की रूढियो से जकड रहे थे, उस

---

१ साहित्य प्रवाह, पृष्ठ २–३ से उद्धृत—कृष्णदेवप्रसाद गौड, बनारस।
२ वही।

समय जनता के खुले आँगन मे खुले भाव से चग की उन्मुक्त थाप म लावनी साहित्य का जन्म हुआ जिसकी भाषा ब्रज नही वरन ऐसी खडी बोली थी जिसम अरबी फारसी से शब्द प्रचुर मात्रा म कधे से कधा मिलाकर हिन्दी के साथ जड है रीति युग की प्रवृत्तिया के विरोध म लावना गायन की यह परम्परा वास्तव मे ज्ञानाश्रयी और प्रममार्गी साधुआ की एक सम्मिलित प्रक्रिया के रूप म मौलिक सृजन थी।[1]

तुरा वाला के गुरु थ तुकनगिरि। तुकनगिरि के चार शिष्य थे। रिसालगिरि ने उत्तरप्रदेश महाराजगिरि ने मध्यभारत श्यामगिरि ने दिल्ली प्रदेश और पजाब तथा लक्ष्मणगिरि ने राजस्थान म तुरा वाला के अखाड स्थापित किए। मदारीलाल न कानपुर म और हरदयालसिंह ने आगरा म अखाड स्थापित किए। भरतपुर म हरनन्द न और अलवर म मूर ने अखाड बनाए। चूडामन ने अम्बाला म और सुखलाल ने शाहदरा म अखाड स्थापित किए। आगरा म ख्याल गायक आज भी प्रसिद्ध हैं।[2]

लावनी और ख्याल बाजी के साथ पक्षेबाजी का भी प्रचार हुआ जिसम गायक वाक्चातुय द्वारा एक दूसरे को पराजित करने का प्रयत्न करते थे। जनता का इससे बहुत बडा मनोरजन होता था—

दद हो दुश्मन के जब दगल म मरा छन्द हो।
दुम दबा भाग उड़ मुह बन्द हा मुह बन्द हा।

कलगी वाले—ओ पर बिन्दी लग ग्रग की तब होना वह आकारी।
दुर्रा वाले—ओ को अगर अलग करूँ ता बिन्दी क्या है बचारी।[3]

महफिल के शायरा पर भा लावनी का प्रभाव पडा उसी प्रकार जिस प्रकार भारतन्दुयुगीन कवि उससे प्रभावित हुए थे। फरहत साहब ने लिखा—

मन कौन भरोसे भूला है।
सुख सम्पति सब घडी दिन पल की तापर इतना करता मान।
मरी सुन नादान क्या फूला है?[4]

---

१ लावनी का उदय—रामनारायण अग्रवाल—समालोचक, नवम्बर १९५८।
२ वही ।
३ वही ।
४ साहित्य प्रवाह, पृष्ठ ६।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने लावनी वालो के स्वर मे स्वर मिलाकर कहा था—

अग्नि वायु जल पृथ्वी नभ इन तत्वो का मेला है।
इच्छा कम सयोगी इजन गारड आप अकेला है।
जीव लाद खीचत डोलत औ तन स्टशन झला है।
जयति अपूरब कारीगर जिन जगत रेल को रेला है।[१]

सन्तो द्वारा प्रवर्तित लावनी की टक पर भारतेन्दु ने नाटको मे भी प्रयोग किए हैं—

ऐसा है कोई हरिजन मोदी तन की तपन बुझावेगा।
पूरन प्याला पिये हरी का फर जनम नही पावेगा।[२]

इसी पैटन पर भारतेन्दु ने बहुत सी रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। यहाँ तक कि एक लावनी सस्कृत मे भी लिखी है।

मजा कही नही पाया जग मे नाहक रहा भुलाया।
छिन के सुख की लालच जित तित स्वान लार लपटाया।
यह जग मे विसको अपना कर यूठा भरम बढाया।
+ + + +
तुझ पर काल अचानक टूटगा।
गाफिल मत हो लवा बाज ज्यौं हँसी खेल मे लूटगा।
+ + + +
क्या वे क्या करने जग मे तू आया था क्या करता है।
गरभ बास की भूल गया सुध मरनहार पर मरता है।
खाना पीना सोना रोना और विषय मे भूला है।
यह तो सूअर मे भी हैं तू मानुस बनि क्या फूला है।
+ + + +
नही का बाकी वक्त नही है जरा न जी मे शरमाओ।
लब पर जो हैं भला अब तो प्यारे मिलते जाओ।
कहाँ गई वह पिछली बातें कहाँ गया वह था जो प्यार।
बेहोशी मे घबडा घबडा करके यही कहता हूँ पुकार।[३]

---

१ साहित्य प्रवाह पृष्ठ ६।
२ वदिकी हिंसा न भवति।
३ भारतेन्दु ग्रन्थावली—भाग २।

स्पष्ट है कि भारतेन्दु न सन्ता, भक्ता और सूफिया द्वारा खडी बोली के नमून पर बहुत सी कविताएँ लिखी थी किन्तु फिर भी आलोचक कहते है कि भारतेन्दु को खडी बाली काव्य के लिए उपयुक्त नही प्रतीत हुई। फूला का गुच्छा" म भारतेन्दु ने खडी बोली का ही प्रचार किया है। प्रेम की रसभीनी कविताओं के लिए खडी बोली की अनुपयुक्तता भारतेन्दु को अवश्य खटकती थी किन्तु जगत की नश्वरता, चेतावनी, व्यग्य, भर्त्सना आदि विषयो के लिए स्वय भारतेन्दु ने यत्रतत्र खडी बोली का सफल प्रयोग कियाहै। उक्त रचनाओ को पढकर लगता है कि कोई मस्त फकीर दुनियाँ की नश्वरता, विलासिता और भ्रम पर उसे डाँट रहा है।

देश की दुदशा पर भी लक्ष्मीप्रसाद की एक रचना मिलती है—

दुर्दशा तेरी है जब ध्यान म आती इकबार।
आँसू आँखा मे उमड आता है बँध जाता है तार।
सोच यो व्यग्र है करता कि न रहता है विचार।
सबया जी से विसर जाता है जग का व्यवहार।
सोना स्वप्न होता है, अच्छा नही अन लगता है।
शोक की आग मे भस्म होने बदन लगता है।[1]

श्री कृष्णप्रसाद गौड ने रायसोहनलाल, प० अम्बिकाचरण व्यास तथा बाबू महेशनरायन पटना की रचनाओ के कुछ उद्धरण दिए हैं। ये अत्यधिक महत्वपूर्ण उदाहरण हैं। खडी बोली मे रचनाएँ भारतेन्दु युग मे भी होती रही हैं और लावनीबाजा की परम्परा भी जीवित रही है यह तथ्य प्रमाणित होता है। जिस प्रकार उर्दू की गजलो के आधार पर भारतेन्दु ने कई गजलें खडी बोली मे भी लिखी थी[2]। उसी प्रकार बाबू महेशनरायण ने प्रकृति वर्णन के लिए

---

१. साहित्य प्रवाह—पृष्ठ ७।

२ दुनियाँ मे हाथ पैर हिलाना नहीं अच्छा।
मरजाना पै उठके कहीं जाना नहीं अच्छा।
फाकों से मरिए पर न कोई काम कीजिए।
दुनियाँ नहीं अच्छी है जमाना नहीं अच्छा।

× × × ×

दिलबर के इश्क मे दिल को एक मिलावे।
काले गोरे का एक रग बस सूझे।
दुश्मन को दोस्त को एक नजर से देखे।
मेखाना मस्जिद मन्दिर एकी समझे।
अपने को खोए तब अपने को पावे॥

उर्दू की मसनवी शैली मे एक कविता लिखी थी, परन्तु उसमे भी कुछ पंक्तियाँ तोड कर उसे एक नया रूप दे दिया था—

सब्जी का बना था शामियाना।
और सब्ज ही मखमली बिछौना।
फूलो से बसा हुआ था वह कुञ्ज
था प्रीत मिलन के योग्य वह पुञ्ज
एक कुञ्ज
बहुत गुञ्ज
पेडा से घिरा था
झरनो के बगल मे,
बिजली की चमक भी न पहुचती थी जहा तक
एसा वह घिरा था
जस दीप हो जल मे
पानी की टपक राह भला पावे कहाँ तक।

सन् १८८६–८७ मे कविता की भाषा खडो बोली हो या ब्रजभाषा, ऐसा विवाद छिडा किन्तु इसके पूव खडी बोनी म बहुत सी रचनाएँ लिखी जा चुकी थी, प्रकाशित भी हुई थी। इसके सिवा लावनी—ख्याल परम्परा मे मग्न जनता कविता को अपनी ओर उन्मुख कर रही थी। प० प्रतापनारायन मिश्र न ब्रजभाषा मे भी लावनियाँ कथी हैं। भारतेन्दु स्वय कभी कभी लावनी बाजा मे मिलकर गाया करते थे। खडी बोली की यह परम्परा 'नवीन' इसलिए थी कि इसमे ब्रजभाषा की शृगारिकता क स्थान पर नवीन सवेदना के दशन होरहे थ। उर्दू मिश्रित खडी बोली म भारतेन्दु ने नवीन चेतना का मार्मिक वणन किया है—

नाम सुनते ही टिक्स का, आह करके मर गए।
जान ली कानून ने—बस मौत का हीला हुआ।

लावनी के प्रवाह म भारतेन्दु ने अपनी नवीन चेतनात्मक धाराएँ प्रभावित की थी, ब्रजभाषा म भी भारतेन्दु ने लावनी कही है—

मोहिं छोडि प्रान प्रिय कहू अनत अनुराग।
अब उन बिनु छिन छिन प्रान दहन दु ख लागे।
रहे एक दिन वे जा हरि ही के सग जाते।

वन्दावन कुञ्जन रमत फिरत मदमाते।
न्नि रैन श्याम सुख मेरे ही सग पाते।
मुख देखे विन इक छन प्यारे अकुलाते।

(प्रम तरग से)

भारतेन्दु जी न खडी बोली मे जो प्रयोग किए थे उनमे नवीन चेतना के दशन होते हैं। जिन प्रयोगो के बाद भारतेन्दु ने शिकायत की थी कि खडी बोली मे कविता जमती नही फिर भी प्रयत्न करने के लिए प्रण किया था उन प्रयोगो म भी नवीन चेतना दिखाई पडती है—

बरसा सिर पर आगई हरी हुई सब भूमि।
बागा मे चले पड रहे भ्रमरगण भूमि।
खोल-खोल छाता चले लोग सडक के बीच।
कीचड मे जूता फँसे जसे अघ मे नीच।

एक गीत भी लिखा था जिसमे भी प्रकृति का तटस्थ वणन है—

गरमी के आगम दिखलाने रात लगी घटने।
कुहू कुहू कोयल पेडा पर बैठ लगी रटने।
ठडा पानी लगा सुहाने आलस फिर आई।
सरस सुगध रिसि फूलो की वासा छाई।
उपवन मे कचनार बना मे टसू हैं फूले।
मदमाते भौंरे फूलो पर फिरते हैं फूल।[१]

वस्तुत यह गीत भी लावनीकारा से प्ररित होकर लिखा गया है। खडी बोली के उक्त उदाहरणा से स्पष्ट है कि खडी बोली के काव्य का श्रय सन्तो भक्ता और सूफिया की नावती-परम्परा को है। भारतेन्दुयुगीन कवियो को खडी बोली का एक सीमा तक जो विकसित रूप मिला था वह लावनीकारो की ही कृपा से उन्हें प्राप्त हुआ था। रासधारी नौटकी जोगीडा लावनी आदि गाना स खडी बोली का गढ दढ करने मे बडी सहायता मिली यह नोग जानबूझकर ऐसे प्रयोग नही करते थे कि कविता खडी बोली मे लिखी जाय। वह जनता की रुचि के अनुसार उनके समझने योग्य भाषा काम मे लाते थे।[२] हाथरसी चिरजीलाल तथा नथाराम का

---

१ भारतेन्दुयुग—डा॰ रामविलास शर्मा, पृष्ठ १५६।
२ साहित्य प्रवाह—पृष्ठ ५।

श्रवण चरित्र, सगीत चित्रकूट, लाला गोविन्दराम का सगीत भैन भैया, उरई के मातादीन चौबे का साँगीत पूरनमल, सुदामा चरित्र, तथा हरिश्चन्द्र आदि "सागीतों" ने खडी बोली के विकास मे अत्यधिक सहायता की है।

ब्रजभाषा का काव्य

भारतेन्दुयुगीन काव्य का स्वरूप—भारतेन्दुयुगीन काव्य का श्रेष्ठ रूप ब्रजभाषा मे मिलता है। १८६६ ई० मे भारतेन्दु ने कवि-वचन सुधा नामक पत्रिका प्रकाशित की। यह स्मरणीय है कि यह पत्रिका भारतेन्दु ने अपनी प्रसिद्ध जगन्नाथयात्रा के बाद प्रकाशित की थी। इस यात्रा के पश्चात् भारतेन्दु के हृदय मे देश सेवा की लगन उत्पन्न हो चुकी थी। जगन्नाथ यात्रा से लौटने के पश्चात् प्रथम साहित्यिक कार्य "कविवचन सुधा" का प्रकाशन था।

कविवचन सुधा द्वारा अँगरेजी साहित्य के पीछे उन्मत्त लोगो के सन्मुख भारतीय साहित्य की श्रेष्ठता प्रमाणित करना और इस प्रकार भारतीयो को अपने साहित्य की ओर उन्मुख करने की प्रेरणा भारतेन्दु मे कार्य कर रही थी अत 'कविवचन सुधा' मे प्रकाशित महाकवि देव का अष्टयाम, दीनदयाल-गिरि का 'अनुराग बाग', जायसी का 'पद्मावत', कबीर की 'साखी' और बिहारी के दोहो का महत्त्व स्पष्ट हो जाता है और इन सब काव्यो के प्रकाशन का लक्ष्य भी स्पष्ट हो जाता है। भारतेन्दु को अपने देशवासियो की हीनता का भाव दूर करने की चिन्ता थी और यह कार्य प्राचीन साहित्य को सम्मुख रखने से ही सम्भव हो सकता था। हिन्दी भाषा इस नवीन जागरण का माध्यम थी अत. हिन्दी की उन्नति विदेशी साम्राज्यवाद के विरोध मे पडती थी और इसी प्रकार अपने काव्य, अपने साहित्य का प्रचार भी अँगरेजी मे शिक्षित लोगो का ध्यान देशी साहित्य की ओर खीचता था।

इस सन्दर्भ मे यह असम्भव था कि भारतेन्दु रीतिकाल का अंधानुकरण करते। देश की दशा और अपने कुल के सस्कारो के प्रभाव से भारतेन्दु का हृदय दिव्य प्रेम मे मग्न हो रहा था। भारतेन्दु का दिव्यप्रेम भक्त कवियो की परम्परा की एक सजल शृङ्खला है। किन्तु पूरी साहित्य-परम्परा से भारतेन्दु लाभ उठाना चाहते थे। उनके मन पर देव, बिहारी पद्माकर आदि महाकवियों की रससिद्ध रचनाओ का प्रभाव पड चुका था अत रीतिकालीन कला से भी उन्होंने लाभ उठाया और यह बुरा नही हुआ। समूची काव्य-धरोहर का निष्पीडन करके ही भारतेन्दु की प्रतिभा का विकास हुआ था।

भारतेन्दु मे रीतिकालीन और भक्तिकाल की धाराएँ एक होकर प्रवाहित होती दिखाई नही पडती है। कही-कही धाराएँ अलग-अलग दिखाई पडती हैं, कही ये दोनो एक होकर नवीन धारा को जन्म देती हैं और कही भारतेन्दु अपना स्वतन्त्र मार्ग बनाते हुए दिखाई पडते हैं। इसके अतिरिक्त रीतिकालीन काव्य को भारतेन्दु ने भक्तिकालीन नेत्रो से देखा था। जो पद श्रृगारिकता से ओतप्रोत माने जाते हैं, उनमे भारतेन्दु दिव्य प्रेम की भी झलक देखते थे अत भक्तिकाल और रीतिकाल मे जो विरोध हमे प्रतीत होता है, वह भारतेन्दु को प्रतीत नही होता। भारतेन्दु की "रसिकता" लौकिकता और अलौकिकता दोनों दृष्टियों से एक और अभिन्न दिखाई पडती है। उनमे लौकिक श्रृगार मे भी दिव्य श्रृगार के दर्शन की शक्ति थी अत भारतेन्दु को रीतिकाल का अंधानुकर्त्ता नही कहा जासका। भारतेन्दु के काव्य की महत्ता के विषय मे इस प्रथम प्रतिपत्ति को स्मरण रखना होगा। "रसिक" शब्द का यही अर्थ भारतेन्दु को अभिप्रेत है—

सर्वसु रसिक के, सुदास दास प्रेमिन के
सखा प्यारे कृष्ण के, गुलाम राधा रानी के।

भारतेन्दु की रचनाओं से उक्त तथ्य प्रमाणित होता है। भक्तसर्वस्व, प्रेममालिका, कार्तिक स्नान, वैशाखमाहात्म्य, प्रेमसरोवर, प्रेमाम्बु-वर्षण, प्रेम-माधुरी, प्रेमतरग, उत्तरार्द्ध भक्तमाल, गीत गोविन्दानन्द, होली, मधुमुकुल, रागसग्रह, वर्षा विनोद, प्रेमफुलवारी, कृष्णचरित आदि काव्य भक्ति-परम्परा के काव्य हैं जिनमे कई शैलियो का प्रयोग किया गया है। जैनकौतूहल, विनय-प्रेमपचासा जैसी रचनाओ मे सन्तो की तरह कविता का दृष्टिकोण आलोचना-त्मक होगया है। 'सतसई श्रृङ्गार' मे जो स्पष्टत. रीतिकालीन कृति है, कवि ने भक्तिभाव की मात्रा बहुत अधिक कर दी है, बिहारी के भाव का पल्लवन भक्तिभावोन्मुख प्रतीत होता है। भारतेन्दु की स्फुट रचनाओ मे भक्तिभावात्मक रचनाएँ बहुत सी हैं। देवीछद्म लीला, मगल पाठ, दैन्यप्रलाप, उरहना, तन्मय लीला, दानलीला, रानीछद्म लीला, सस्कृत लावनी, बसत होली, स्वरूप-चिन्तन, सर्वोतम स्तोत्र, निवेदन पचक, अपवर्गदाष्टक, वेणुगीति, पुरुषोतम-पचक, सीतावल्लभ स्तोत्र, रामलीला, भीष्मस्तव, मानलीला, आदि रचनाओ के शीर्षको से ही उनकी भक्तिभावात्मकता स्पष्ट है।

प्रेममाधुरी, वर्षाविनाद और स्फुट रचनाओ आदि मे बहुत से कवित्त और सवैया रीतिकाल के पैटर्न पर भी लिखे गए हैं। उनमे नखशिख, नायिका

भेद आदि के भी वणन हैं परन्तु भारतेन्दु का काव्य विलासलिप्सा जाग्रत नही करता कतिपय पद्यो को छोडिये भारतेन्दु की भावुकता उनकी 'रसिकता' में गुणात्मक अन्तर उत्पन्न कर देती है।[1] बिहारी के दोहो पर भारतेन्दु ने कुण्डलियाँ लिखी है। इनमे बिहारी के दोहा के भावार्थ-पल्लवन मे भी भारतेन्दु की भावुकता स्पष्ट है।

इन दुखिया अखियान का सुख सिरजौई नाहिं।
देखें बनै न देखतें बिन देखे अकुलाहिं।
बिन देखे अकुलाहि बिकल अँसुवन भर लावैं।
सनमुख गुरुजन लाज भरी ये लखन न पावैं।
चित्रहु लखि हरिचन्द नैन भरि आवत छिन छिन।
सुपन नीद तजि ताव चन कबहु न पायो इन।
बिनु देखे अकुलाहिं बिरह दुख भरि भरि रोवैं।
खुली रहैं दिन रैन कबहूँ सपनेहु नहिं सोवैं।
हरीचन्द्र सजोग विरह सम दुखित सदाही।
हाय निगोरी आखिन सुख सिर जौई नाही।

उपयुक्त कथन का यह तात्पय नही है कि एक स्वय आरोपित नैतिकता के कारण उक्त प्रवृत्ति भारतेन्दु म मिलती है। मन्तव्य यह है कि भारतेन्दु की 'रसिकता और रीतिकालीन रसिकता' मे गुणात्मक अन्तर अवश्य है। समग्रत भारतेन्दु काव्य रीतिकालीन हरगिज नही कहा जा सकता। अत यह धारणा सही है कि कविता का विषय शृङ्गार रहने पर भी भारतेन्दु रीतिकालीन परम्परा से बहुत कुछ भिन्न हैं। उनके छन्द लक्षणग्रन्थो के आधार पर नही बने उनमे *आत्माभिव्यजन के लिए एक नया प्रयास है।* [2]

इस आत्माभिव्यञ्जन के दो पहलू हैं—एक तो भक्तिकालीन भावुकता और दूसरा अपनी निजी भावनाओ का प्रकाशन जो रीतिकाल म महाकवि देव को छोडकर अन्य कवियो म नही मिलता। अलङ्कृति लक्षणग्रन्थो का अनुकरण महाकवियो की पदावली का यथावत् प्रयोग आदि प्रवृत्तियाँ भारतेन्दु के काव्य म बहुत कम मिलती हैं। अनुकरण की दृष्टि से भारतेन्दु ने भक्तिकालीन

---

१ 'भारतदुर्दशा' नाटक मे भारतेन्दु ने स्पष्ट कहा है कि ईश्वर के प्रति प्रेम की व्यजना, देशप्रेम का आवश्यक आधार है—द्रष्टव्य—भारत दुर्दशा नाटक, पृष्ठ ४७२। भारतेन्दु ग्रन्थावली, भाग १

२ भारतेन्दुयुग, डा० रामविलास शर्मा।

कवियों का अधिक अनुकरण किया है क्योंकि भक्तिकालीन काव्य का अनुकरण अधमर्यक माना जाता था ।

भक्तिकालीन भावुकता—भारतेन्दु की भक्ति को प्रथम विशेषता उसकी सच्चाई है । रीतिकालीन कवियो की भक्ति पश्चातापपरकता से मुक्त है, प्रथम विलासलिप्सा और वृद्धावस्था मे भक्ति के उद्गार—रीतिकाल की यह विशेषता है । भारतेन्दु मे यह प्रवृत्ति नही मिलती । भारतेन्दु मे प्रारम्भ ही भक्तिकाव्य से होता है । उसमे यत्र तत्र नवचेतना भी मिलती है—

मायावाद-मतग-मद, हरत गरजि हरिनाम ।
जयति कोऊ सो केसरी, वृन्दावन वनधाम ।[१]

प्रेममालिका के समर्पण मे भारतेन्दु ने कहा है—"इस छोटे से ग्रन्थ मे मेरे बनाए हुए कीर्तनो मे से कतिपय कीर्तन एकत्र किए गए हैं । इनमे कीर्तन तीन भाँति के है—एक तो लीला सम्बन्धी, दूसरे दैन्य भाव के और तीसरे **परम प्रेममय अनुभव के हैं । इसको एकत्र करना और छपवाना आयोजन था, क्योंकि एक तो ससार मे प्रायः अनधिकारी लोग हैं, दूसरे इसके द्वारा लोगों मे अपनी प्रसिद्धि की इच्छा नहीं ।**

इस प्रकार 'परम प्रेममय अनुभव' का गायन भारतेन्दु का आदर्श था । राधाकृष्ण के प्रेम गायन के बहाने यश अथवा धनप्राप्ति उनका उद्देश्य नही था, जैसा कि रीतिकालीन कवियों का लक्ष्य था । यही कारण है कि दिव्य प्रेम के वर्णन मे कवि का हृदय सर्वत्र झलकता दिखाई पडता है ।

प्रतिभा—भारतेन्दु ने राधा और कृष्ण का अपने कल्पना के नेत्रो से साक्षात्कार किया था । वह "विज़न" इतना मनोहर था कि कवि उसकी छवि, उसके आनन्द का वर्णन करते नही थकता । भक्तकवियों ने जो "विज़न" देखा था, उसके लिए अलौकिक प्रतिभा की आवश्यकता थी । अपने शरीर, और अन्त करण को वश मे करके राधा-कृष्ण की दिव्य लीला का स्वेच्छा से अपनी चेतना मे स्फुरण और विलयन, पुन स्फुरण और पुन विलयन—यह भक्त कवियो का उद्देश्य था । इस प्रकार प्रत्येक क्षण अपनी चित्तवृत्ति को भगवान की छवि मे लीन रखने मे कवि सफल हुए थे । राधा-कृष्ण की कल्पना "सुन्दर" (Beautiful) की कल्पना थी । विश्व के किसी साहित्य मे इतनी कोमल, मधुर और सुन्दर कल्पना नही दिखाई पडती । सुन्दर को अनन्य प्रेम के आदर्श से "शिव" के साथ सयुक्त कर दिया गया था । प्रेम के

१. भक्तसर्वस्व ।

अभाव म आपाधापी म मग्न समाज के लिए प्रम के देवता का गायन मानवीय सम्बन्धा को प्रम के आधार पर प्रतिष्ठित करने का भी लक्ष्य मनीषिया के सम्मुख था अत यह विजन भारतन्दु ने भी अपनाया था। उन्हे कुल परम्परा से बहुत सी वस्तुएँ मिली थी। धन राज्यभक्ति महत्त्व सम्मान—सब कुछ मिला था किन्तु मनीषी भारतेन्दु ने धन राज्यभक्ति आदि सब कुछ त्याग दिया था तब क्या राधाकृष्णवाद को वह न छाड सकते थे? *अग्रचेता भारतेन्दु पर विचारहीनता का आरोप गलत होगा अत यही सम्भव* प्रतीत होता है कि राधा-कृष्ण को उन्हाने सुन्दर के वणन के लिए ही नही अपनाया अपने समय के मानवीय सम्बन्धा को अभीप्सित रूप देन के लिए भी अपनाया। अत राधा कृष्ण का वणन केवल व्यक्तिगत विश्वास के रूप मे स्वीकार नही किया जा सकता। यह प्रमसाधना थी और प्रमसाधना के आविष्कारका ने इसे सवथा व्यक्तिगत मुक्ति के साथ-साथ समाज क कल्याण के लिए भी आवश्यक माना था अतएव टैक्स महामारी सामाजिक कुरीतिया के विरुद्ध लिखे हुए काव्य के साथ साथ इस प्रममय काय का भी अपना महत्त्व है। इसे दूर कर देने पर भारतेन्दु की कला क्षीण हो जायगी। कौन कह सकता है कि भारतेन्दु की यह स्निग्ध चन्द्रकला—राधा कृष्ण प्रम—दाहकारिणी है? इसमे शीतलता है परन्तु चतना की उष्मा का यह नाश नही करती। *इसमे प्रम की महिमा है परन्तु भारतेन्दु इस प्रम मे ही पाठक को* मुग्ध न रखकर आगे की बात भी कहते है किन्तु साथ ही वाह्य सघष को शून्य पर आधारित नही किया जा सकता। मानवीय प्रम ही जब वाह्य सघष का आधार बनता है तब वह सघष भी मानवीय रहता है अत भारतेन्दु के परमप्रममय अनुभव का महत्त्व सौन्दय और समाज दोना दष्टिया से स्वीकार करना होगा। रीतिकाल के अन्त मे भक्तिभाव की एक बार पुन लहर जाग्रत करन म भारतेन्दु पूण सफल हुए हैं।

काव्य में प्रतिभा नवान्मेष की ओर उन्मुख होती है। राधा कृष्ण की नव-नव छविया क अकन म कवि की कल्पना उसके सम्मुख शतश सुन्दर चित्र लाकर उपस्थित करती है। यह किसी क्षण विशेष म भास्वरित या *बहती हुई अनुभूति नहा है। निष्ठा क कारण सौन्दय-देवता के सुन्दर चित्रो* का प्रवाह उत्पन्न करना ही यहा कल्पना का काय है। भारतेन्दु ने इस कल्पना का अभ्यास भक्तकविया के काव्याराधन द्वारा किया था और रीतिकालीन काव्य द्वारा *उसकी अभिव्यजना का परिष्कार भी किया था किन्तु अलकृति* का माग छोडकर सहज ढग से कहने की प्रवृत्ति उनकी अपनी थी। कल्पना

द्वारा लाए गए सुदर चित्रो से मुग्ध कवि की चेतना जैसे नदी की तरह स्वत उमड पडती हो। प्रम की यह सहज अभिव्यक्ति भारतेदु की विशेषता है—

कहा कहूँ छवि कहि नहिं आवै वे सवार यह गोरी।
ये नीलाम्बर सारी पहिने उनकी पीत पिछौरी।

प्रथम पक्ति के पश्चात अय कवि अलकारो की वर्षा करने लगता किन्तु भारतेदु की अन्तर्दृष्टि अधिक विकसित थी अत वह पदार्थ या व्यक्ति के सहज आकर्षण की ओर ध्यान खीचने के लिए वर्ण्यविषय तक ही अपने को सीमित रखते हैं यह प्रवृत्ति भारतेदु मे बहुत स्थानो पर मिलेगी। अलकृत वर्णन भी उनमे कम नही है परन्तु सौदर्यदर्शन के समय वर्ण्यविषय को ही इकटक देखने की कला मे भारतेदु एक श्रष्ठ कवि हैं।

आज उठि भोर वृषभानु की नन्दिनी—
फूल के महल तें निकसि ठाडी भई।
खसित सुभ सीस त कलित कुसुमावली
मधुप की मण्डली मत्त रस ह्वं गई।
कछुक अरसात सरसात सकुचात अति
फूल की बास चहु ओर मोदित छई।
दाम हरिचन्द छवि देखि गिरिधर लाल
पीतपट लकुट सुधि भूलि आनदमई।

सहजसौन्दय के दर्शन मे कवि की प्रतिभा निश्चित रूप से शक्तिमती थी। वर्ण्यविषय का आकर्षण कभी-कभी इतना महान होता है कि कवि उससे अपनी दृष्टि हटाना ही नही चाहता उपमाओ से दर्शक का ध्यान इधर उधर उडता है कभी-कभी अप्रस्तुत विधान कष्टकर प्रतीत होता है।

फली छवि थोरे ही सिंगार।
बिना कचुकी बिनु कर ककन सोभा बढी अपार।
खसि रहि तन तै तन सुख सारी, खुलि रहे सोध वार।
हरीचन्द मनमोहन प्यारो रिझयो है रिझवार।

कही-कही कवि एक दो उत्प्रक्षाएँ देकर वर्ण्यविषय के आकर्षण को स्पष्ट करता है—

आजु सिर चूडामनि अति सोहै।
जूडो कसि बाध्यो है प्यारी, पीतम को मन मोहै।
मानहु तम के तुङ्ग सिखर पैं बालचन्द उदयो है।

कल्पना के बल पर राधा-कृष्ण के युगल के एक से एक सुन्दर चित्र भारतेन्दु ने प्रस्तुत किए हैं—

जुगल जलद केकी जुगल दोऊ चन्द चकोर।
उभय रसिक रसरास जय राधा नन्दकिसोर।

परस्पर प्रेम के ऐक्य के देवता का यह रूप भारतेन्दु को बहुत प्रिय था। इसका वर्णन करते वह नहीं थकते। प्रेम के देवता की परस्परनिष्ठता ही भारतेन्दु के मन में एक दूसरे के प्रति निष्ठावान एक दूसरे के प्रति प्रेमभाव रखने वाले व्यक्तियों के विकास की कल्पना जाग्रत करती थी। बाह्य जगत् में सम्पूर्ण व्यवहारों को प्रेम से भर देने पर सारा कार्य कलाप कितना सुखद और शीतल हो जाएगा इसलिए राधाकृष्ण के अनन्य प्रेम की आराधना व्यावहारिक जगत में कूदने से पूर्व आवश्यक मानी जाती थी। अतः उमंग में जब कवि राधा के लिए दोनों लोकों की उपेक्षा करने को उतरता है तब उसे उपलक्षण मात्र मानना चाहिए। अन्तदृष्टि बाह्यजगत् में न मिलने वाले अलभ्य दृश्य का साक्षात्कार करते समय क्षुभित नहीं होना चाहती—

मेरी गति होउ सोई महारानी।
जासु भौंह की हिलनि विलोकत निसुदिन सारङ्गपानी।

अथवा

साँचहि दीपसिखा सी प्यारी।
धूमकेश तन जगमग द्युति दीपति भई दिवारी।

भारतेन्दु ने प्रेम की परिभाषा यह की है कि जिसे प्राप्त कर फिर अन्य किसी की प्राप्ति की इच्छा न हो वह है प्रेम। इस प्रेम का आधार है सौन्दर्य और शील। राधा-कृष्ण में ही ये सब एक साथ मिलते हैं अन्यत्र नहीं—

जिहि नहिं फिरि कछु लहन की आस न चित में होय।
जयति जगत पावन करन प्रेम बरन यह दोय।

इस प्रेम का प्रतिभा से घनिष्ठ सम्बन्ध है। इस प्रकार का प्रेम जाग्रत होकर मनुष्य के आंतरिक नयन खोल देता है। अनमोल व अलभ्य अनुभव होने लगते हैं आश्चर्यजनक चित्र मनमें उतरने लगते हैं प्रेम कल्पना के पंखों में वेग भरता है एक सर्वथा नवीन गगन कल्पना के उड़ने के लिए खुल जाता है और विशिष्टता यह है कि यह गगन कभी भी उस कल्पना विहग को थकाता नहीं है। भक्तों ने इसी निष्काम प्रेम द्वारा उस सुन्दर श्याम और श्यामा

के दर्शन किए थे। अत भावुकता —प्रेम से तरंगित अवस्था और कल्पना दोनो जहाँ साथ चलती हैं, वहीं श्रेष्ठ ,काव्य का जन्म होता है। भारतेन्दु ने भक्तो की इस विशिष्टता को भलीभाँति समझा था। भक्तो के बाद "कल्पना" प्रबल होगई किन्तु कवियो की चेतना निष्कलंक नहीं रह सकी—'परमार्थ, परोपकार जैसे महत् उद्देश्यो से रहित काव्य मूलतत्त्व से रहित होता गया। भारतेन्दु इस खतरे से सावधान थे अत उन्होंने अपने चित्त को द्रवित ,होने से रोका नही, कोरे बुद्धिवाद का वह घोर विरोध करते हुए दिखाई देते हैं।

भए सब मतवारे मतवारे।
आपुनौ आपुनौ मत लै लै सब झगरत ज्यौं भटियारे।

अथवा

नहिं इन झगडन मे कछु सार।
क्यो लरि लरिकै मरो बावरे बादन फोरि कपार।

+ + +

कहा धरयो तेहि कहूँ पाइहौ, क्यो बिन बातन छोलौ।
क्यो इन थोथिन पोथिन लै कै, बिना बात ही बोलौ।[1]

काव्य के लिए स्निग्ध चित्त की आवश्यकता होती है। कोरी तर्कवादिता और उखाड पछाड अधिक सहायता नही करती। हिन्दी मे आर्यसमाजी कवि इसलिए महान् काव्य की सृष्टि नही कर सके क्योंकि उनका आलोचनात्मक पक्ष बहुत प्रबल हो गया, और उसका अपना आकर्षण और महत्त्व भी है, तथापि समग्रत यह देखा जा सकता है कि आर्यसमाज मे स्निग्धता का अभाव था। सम्भवत· सनातनियों, आर्यसमाजियों, जैनियो आदि की आपसी "चखचख" से बेजार होकर ही भारतेन्दु ने उक्त पक्तियाँ लिखी थी। भक्तकवियो ने अधिक "चतुराई" की सर्वदा निन्दा की है, भारतेन्दु इस तथ्य से परिचित थे—

बिना प्रेम रूखी लगै, बादि चतुरई सोय।

भारतेन्दु ने प्रेम और प्रतिभा के लिए आदर्शरूप काव्याकारो मे *नन्ददास, आनदघन, सूर, नागरीदास, कृष्णदास, हरिवस, चैतन्य, गदाधर* और व्यास को उद्धृत किया है—

---

१. जैन कुतूहल से उद्धृत।

नददास आनदघन सूर नागरीदास ।
कृष्णदास हरिवस चैतन्य गदाधर व्यास ।[1]

चित की आतरिक प्रलयावस्था के बाद अदभुत चित्रो की सृष्टि होती है इस तथ्य को समझकर ही भारतेन्दु द्रवण शीलता' का प्रदशन सवत्र करत हैं । प्रम सरोवर का समपण दखिए—

आज अक्षय तृतीया है दखो जलदान की आज कैसी महिमा है क्या तुम मुच फिर भी जलदान दोगे ? कहा ? उस जो मधुर घन की ध्वनि भी न सुन पड तो कसे प्राण बचे ? देखो यह कैसी अनीति है वही आनदघन जी का कहना—सब छाडि जहा हम पाया तु हैं हमैं छाडि कहो तुम पायो कहा' । प्यारे यह अक्षय सरोवर नित्य भरा रहेगा और उसम नित्य नए कमल खिलेंगे और कभी इसम मल न आएगा और इस पर प्रमिया की भीड नित्य लगी रहगी और प्रम शब्द को विषय का पूजादिक कहन वाले या प्रमाधिकारी के अतिरिक्त काई भी इस ताथ पर कभी न आवेगे ।

यह भावुकता भारतेन्दु के व्रजभाषा काव्य की एक प्रमुख विशेषता है। भारतेन्दु मुख्यत भावनाओ के कवि हैं। दृश्यो का चित्रण भी उन्होन किया है परन्तु मुख्यत वह आतरिक भावो के उदय म अधिक आनन्द लते हैं और उनके चित्रण भी इसी स्थिति म होन क कारण प्राय तटस्थ चित्रण नही हैं। आवेग को दबाकर काव्य की रचना भारतेन्दु की प्रकृति के विरुद्ध है।

प्राय प्रकृति भारतेन्दु की आन्तरिकता के सन्दभ म ही चित्रित हुई है—

सखी री साँझ सहायक आई।
मटघो भय प्रकास बैरी को सब कुछ दीन दुराई।
गरजि बुलावन तेहि चचला चमकत राह दिखाई।
औरन के चकचौंधा लागन तरी करत सहाइ।

बिजली की चमक को देखकर किसी पर क्या बीतती है इसे भारतेन्दु ने अधिक देखा है बिजली को देखकर तरह तरह की कल्पनाओ म वह निमग्न नही हुए उनकी कल्पना आवेग का साथ नहा छोडना चाहती।

प्रतिभा (कल्पना) और प्रमावग के सामञ्जस्य क कारण ही भारतेन्दु रीतिकालीन अलकृत नाद क बच सके हैं काव्य का बोझिल बनान स उन्हें अरुचि है। भारतेन्दु के सरल और प्रवाहमय रूपक देखिए—

---

१ प्रेम सरोवर।

आजु तन आनँद सरिता बाढी ।
निरखत मुख प्रीतम प्यारे को प्रीति तरगनि वाढी ।
लोक बेद दोउ कूल तरोवर गिरे न रहे सम्हारे ।
हाव भाव के भरे सरोवर बहे हाइ के न्यारे ।
बुझे दवानल परम विरह के प्रेम परब भो भारी ।
मीन वान के जो प्रेमी जन, जल लहि भए सुखारी ।

रीतिकाल के पूर्व यह प्रवृत्ति सूरदास' मे मिलती है । सूरदास ने लोक-तत्त्व और कलाकारिता का अद्भुत समन्वय किया था । भारतेन्दु म भी यही प्रवृत्ति दिखाई पडती है । हम कह चुके हैं कि भारतेन्दु ने सबसे अधिक सूरदास से प्रेरणा प्राप्त की थी । रीतिकाल के बाद पुन लोक भाषा की ओर मुडन की प्रवृत्ति भारतेन्दु मे ही दिखाई पडती है । आवेगहीन कवि इस तथ्य को समझ ही नही सकते ।

हमारे नैन वही नदियाँ ।
बीती जानि औधि सब पी की जे हम सौ बदियां ।

छोटे-छोटे शब्दा मे प्रवाह उत्पन्न करते हुए भारतेन्दु ने अपने आवेग को इस प्रकार प्रकट किया है कि वह विशेषज्ञो का काव्य नही प्रतीत हाता, वह जनप्रिय हो गया है । रीतिकाल की चमत्कारक उक्तिया को भी इस प्रकार *अपने प्रवाह मे मिला लिया है कि वह अनुकरश नही लगता*—

सब रग मिलि के बसन छापित म प्रगट मुख जोत ।
पिय को निचोरत चूनरी मैं रग दूनो होत ।

'चौगुनौ रग चढ्यौ चित मे, चुनरी के चुचात, लला के निचोरत" की एक ध्वनि कवि के मन मे अवश्य थी परन्तु कितने मौलिक ढग से कवि ने उसे अपना बना लिया है ।

लोक तत्त्व—भारतेन्दु ने काव्य को दरबारो की साज सज्जा से निकाल कर जनता तक पहुचाया था । इसके लिए उन्होंने जनता मे काम करने वाले सन्तो और भक्तो को देखा था । स्वय जनता के मनोवेगो को समझने का प्रयत्न किया था । कोई ऐसी पक्तिनिकले जिसे सुनकर लोग सिर धुनें, छाती पीटें, बेहोश हो जायें, लोटपोट हो जायें, ऐसा प्रयत्न भारतेन्दु ने बहुत कम किया है । यहाँ तक कि सवैयो और कवित्तो मे भी ऐसा प्रयत्न कम ही है । भारतेन्दु किसी भाव को मन मे भरते थे, उसे बार-बार घुमडने देते थे और भाव से आच्छादित अवस्था मे ही कहने लगते थे, पक्तियाँ भाव का अनुसरण स्वय

करने लगती थीं। यही पद्धति लोकगीतो मे मिलती है। लोकगीतो मे अनुभूति का आनद है। फडक उत्पन्न करने वाली पक्तिया लोकगीतो मे कम ही मिलती हैं। जनमानस जो अनुभव करता है उसे यथावत कह देने मे ही वह रुचि लेता है अभिव्यक्तियो के आविष्कार म समय लगाना लोकमानस को पसद नही है। भारतेन्दु म भी यही प्रवृत्ति दिखाई पडती है—

सखी अब आनँद की रितु ऐहै।
एहैं री चुकि चुकि कै बादर चलिहैं सीतल पौन।
कोइल कुहुकि कुहुकि बोलैंगी बैठि कुञ्ज के भौन।
बोलत पपीहा पिउ पिउ बन अरु बोलगे मोर।
हरीचन्द यह रितु छवि लखि कै मिलिहैं नन्दकिशोर।

यहा एकदम ताली तडकाने वाली एक भी पक्ति नही है। वर्षा ऋतु आने पर सुखद अनुभवो का स्वरूप मात्र यहा चित्रित है इससे क्रमश हमारे मन म उल्लास का उदय होता है और एक सुखद स्मृति मे हम मग्न हो जाते हैं। *हिन्दी काव्य का यह प्रकृत रूप चमत्कार वादिया के हाथ मे पडकर* विकृत हुआ है। अनुभूति का सहज स्पश देखिए—

सखी री कछु तौ तपन जुडानी।
जब सौं सीरी पवन चली है तब सौं कछु मनमानी।
कछु रितु बदल गई आली री, मनु बरसेगो पानी।
हरीचन्द नभ दौरन लागे बरसा के अगवानी।

यह शुद्ध लोकपद्धति है। कहीं-कही कवि ने लोकगीता का पूण अनुकरण किया है—

कैसे नैया लागे मोरी पार खिवैया तोरे रूप से हो।
औडी नदिया नावरि झँझरी जाय परी मँझधार।
देइ चुकी तन मन उतराई छोडि चुकी घर बार।
कहि हरिचन्द चढाइ नेवरिया करो दगा मत यार।
× × × ×
रँगीले रँग दे मेरी चुनरी।
स्याम रग से रग दे चुनरिया हरीचन्द उनरी।
× × ×
चलो सोय रही जानी, अँखियाँ खुमारी से लाल भई।
सगरी रैन छतिया पर राखा अधरन का रस लीना।
हरीचन्द तेरी याद न भूलै, ना *जानौं कहा कीना।*

यहाँ कहा जा सकता है कि ऐसी रचनाएँ हल्की होगई हैं अथवा इनमे ग्राम्यत्व दोष है अथवा इनमे परिष्कृति का अभाव है कही-कही शिष्टता का भी अभाव है किन्तु परिष्कृति के अधिक्य से रीतिकालीन व्रजभाषा सामान्य जन से दूर पडती जा रही थी। व्रज प्रदेश के लोग कभी कभी अत्यधिक परिष्कृत प्रयोगो को नही समझ पाते थे। अनुप्रास के लिए शब्दो की तोड मरोड भी बहुत हो चुकी थी अत भारतेन्दु ने साहित्यिकता का अति देखकर पुन काव्य को जनता की बोली मे कहना प्रारम्भ किया। जब जब काव्य अत्यधिक उच्चशिखरो की ओर भागता है तब तब उसे नीचे की ओर खीचने की आवश्यकता पडती है। वाल्मीकि का काव्य सस्कृत के चमत्कारवादी कलाकारो के हाथ मे पडकर स्वय पडितो की समझ मे नही आता था। इसी प्रकार यमक और श्लेष के पचडा मे पड कर काव्य का प्रकृत रूप लुप्त हो जाता है। भारतेन्दु इसके विरुद्ध वाल्मीकि और सूर की तरह भाषा के लोकरूप के पास जाते हैं उसे सुनते हैं और काव्य म प्रयुक्त करते हैं। अपने मन के आवेगो को चडाऊ भाषा मे प्रकट भी नही किया जा सकता अत भारतेन्दु ने सज्जा को छोडकर स्निग्धता पर अधिक बल दिया है। भारतेन्दु मे जहाँ अलकृति है उसे यदि उनके काव्य से निकाल भी दिया जाय तो भारतेन्दु की हानि नही होगी किन्तु यदि भारतेन्दु के सहज काव्य को निकाल दिया जाय तो उनका व्यक्तित्व पहचानना ही कठिन हो जाएगा।

यही कारण है कि भारतेन्दु ने सैया बदरदी दरद नहि जानै जवनियाँ मोरी मुफुत भई बदनाम छबीले आजा मोरी नगरी हो का करौ गुइया अरुझि गई अखिया नयन की मत मारो तरवरिया काहू न लागै गोरी काहू के नयनवा वेपरवाह मोहन मीन हौ तो पछिताई दिन देकै सेजिया जिन आओ मोरी मैं पइया लासगों तोरी आओ रे मोरे रूठ पियरवा धाय लागो प्यारी के गरवा सजन तोरी ही मुख देखे की प्रीति मेरे प्यारे सौं सँदेसवा कौन कहै जाय बल खात गुजरिया बिरहभरी हमसे प्रीत न करना प्यारी हम परदेसी लोगवा, नजरहा छैला रे नजर लगाए चला जाय आदि प्रमतरग के गीत शुद्ध लोक पद्धति पर ही लिखे हैं। आकाशचुम्बी पाडित्य वारीक बीनी विरोधमूलक और शब्दमूलक अलकृति से निकाल कर काव्य का उद्धार करने के लिए यह आवश्यक था। इससे कवियो का ध्यान जनमानस की ओर उन्मुख हुआ। विदेशियो के साहित्य के सौन्दय को ही सौन्दय समझने वाले शिक्षितो का भी ध्यान लोकगीत की अक्षय निधि की ओर आकर्षित हुआ। रीतिकाल

के उत्तरकालीन वातावरण म ऐसे गीत कहना भारतेन्दु का ही काम था मामूली शख्स या रास्ता बनाने में भय खाते हैं—

> शिकारी मियाँ के जुलफा का फन्दा न डारो।
> जुलफा के फन्दे फँसाय पियरवा नैन बान मत मारो।
> पलक कटारन मार भँवन की मत तरवार निकारो।

भारतेन्दु को यह प्ररणा सूरसाहित्य के अनुशीलन से प्राप्त हुई थी। सूर की सफलता और उनका अन्य कवियो पर प्रभाव भारतेन्दु देख चुके थे। विश्वास की दृष्टि से भी भारतेन्दु सूरदास के ही मनावलम्बी थे अत सूरदास की नाक्तत्वोन्मुखता का उन्होंने ग्रहण किया था तभी वह सूर के अनुकरण पर 'मोहन मीत हो मधुबनियां मतवारो प्यारो रसवादी रसिया छैल चिकनियाँ' जैसे गीत लिखते हुए दिखाई पडते हैं किन्तु आश्चय यह है कि सूर के अनुकरण करने पर भी भारतेन्दु एकदम मौलिक कवि हैं। सूर के अनुकरण म सबसे बडा भय यह है कि कवि अपना व्यक्तित्व खो सकता है किन्तु भारतेन्दु की महत्ता इसी तथ्य म है कि उन्होंने अपने समय के लोकगीतो को अपना कर अपने अस्तित्व की रक्षा कर ली है। सूरदास की पद्धति पर 'मौलिकता' की रक्षा का प्रमाण लीजिए—

> नखरा राह राह को नीको।
> इत तो प्रान जात हैं तुम बिनु तुम न लखत दुख जीको।
> धावहु वेग नाथ करुना करि करहु मान मत फीको।
> हरीचन्द अठलानि पने को दियो तुमहि विधि टीको।

अपने समय के लोक प्रयोगा द्वारा ही उक्त पद म भारतेन्दु ने अपनी रक्षा की है इसी प्रकार खटाई पोरहि पोर भरी कुढत हम देखि देखि तुव रीनें सब पै इक सी दया न राखत नई निकारी नीतें जोह को खोज लाऊँ लरिए हम अबलन पै बिना बात ही रोस नही करिए आदि पदा मे भारतेन्दु ने उन्नीसवी सदी के लोक प्रयोगा और नूतन भावनाओ से अपनी रक्षा की है।

चाहे कवि लोकपरक प्रयोग करे अथवा साहित्यिक प्रयाग—दोनो प्रकार के प्रयोगो म एक ही मानसिक स्थिति दिखाई पडती है—

> भरित नेह नव नीर नित बरसत सुरस अथोर।
> जयति अपूरब घन कोऊ, लखि नाचत मन मोर।

प्रेम का भाव नाना लोक प्रयोगो और कल्पनाओ मे एकता स्थापित किए रहता है। कवित्तो, सवैया म भी इन मूलस्थित प्रेमभाव न कवि को चमत्कारवाद से बचा लिया है। कवित्त सवैया मे रीतिकाल का आदर्श कवि ने स्वीकार किया है तथापि भारतेन्दु की रससिद्धता न उनके अस्तित्व को सुरक्षित रखा है। भारतेन्दु म यह प्रवृत्ति नही मिलती जैसा कि रत्नाकर म दिखाई पडती है कि वह देव, पद्माकर, घनानन्द जैसा लिख सकें। भारतेन्दु केवल काव्य रूप अपनाते हैं किन्तु उसम आत्मा अपनी भरते हैं। यह आवश्यक नही था कि सर्वत्र कवि का मफनता मिलती, समस्यापूर्तिया तथा अन्यत्र भी भारतेन्दु ने ऐसे कवित्त सवैए कहे हैं कि यदि उन्हे रीतिकालीन काव्य म फेंक दिया जाय तो पहचानना कठिन हो जाय किन्तु बहुत से कवित्त, सवैया एसे भी हैं जो रीतिकाल से भिन्न पद्धति का सकेत करते हैं।

पदो और कवित्त सवैया म एक अन्तर है। पदो मे भाव को क्रमश व्यक्त किया जा सकता है। किन्तु कवित्त, सवैया के लिए अन्तिम पक्ति का महत्व सबसे अधिक है। यदि अन्तिम पक्ति अशक्त है तो आनन्द नही आता, कारण कि श्रोता इस आशा से सुनता है कि अन्तिम पक्ति से एक अप्रत्याशित आनन्द प्राप्त होगा। अत कवित्त-सवैया म भावावेग के साथ-साथ अभिव्यक्ति का प्रश्न जटिल होजाता है। रीतिकाल मे भी चमत्कार कवित्त सवैया मे अधिक दिखाई पडता है—दरबारो मे गाए जाने वाले पदो मे भक्ति- कालीनता अधिक मात्रा म मिलती है—रीतिकाल पर विचार करते समय यह अन्तर स्मरण रखने योग्य है।

भारतेन्दु ने कवित्त-सवैय पदो की शैली मे लिखे हैं, अन्तिम पक्ति को प्रभावशाली बनाने के लिए प्रथम तीन पक्तियो को भरती के रूप मे प्रस्तुत करने का प्रयत्न उन्होने बहुत कम किया है, पर किया अवश्य है। इस सम्बन्ध मे भी दो मत हैं। पद्माकरी काव्य से प्रभावित व्यक्ति को भारतेन्दु के सवैये और कवित्त अधिक प्रभावित नही करेंगे किन्तु रसखान के सवैयो की भी एक परम्परा बन चुकी थी जिसम चारो पक्तियाँ एकसी प्रभावशाली होती थी और भावुकता की प्रधानता रहती थी। भारतेन्दु वस्तुत इसी परम्परा के कवि हैं यद्यपि उनमे उतना माधुर्य नही है, भारतेन्दु का आकर्षण उनके समर्पण मे है, उनकी निश्छल भाव पद्धति मे—

पहले ही जाय मिले गुन मे श्रवन फेरि,
रूपसुधा मधि कीनो नैनहू पयान है।

माहि मोहि मोहन मई री मन मेरो भयो—
हरीचन्द भेद ना परत कछु जान है।
कान्ह भये प्रानमय प्रान भये कान्ह मय
हिय मे न जानी परै कान्ह है कि प्रान है।

मोहि मोहि मोहन मई पंक्ति पर स्पष्टत महाकवि देव का प्रभाव है। किन्तु अन्तिम पंक्ति मे कवि की आतरिकता ने कवित्त को मौलिक बना दिया है। आन्तरिक अनुसधान की स्थिति मे कवि सोचता है कि कही मेरे प्राणो के स्थान पर कृष्ण का निवास ही तो नही हो गया है। यह अनुभूति समर्पित चित्त की शक्ति की ही परिचायक है। इसी प्रकार समर्पित चित्त की अनुभूति अन्य कवियो मे कवि की मौलिकता की रक्षा करती है—

करि कै अकेली माहि जात प्राननाथ अबै।
कौन जानै आय कब फेर दुख हरिहौ।
हरीचन्द साथ नाथ लेन मैं न मोहि कहा
लाभ निज जीअ मैं बताओ तो बिचारि हौ।
देह संग लेते तो टहल हू करत जातो,
ए हो प्रान प्यारे प्रान लाइ कहा करिहौ।

यदि शरीर साथ ले जाते तो आपकी सेवा भी होती किन्तु केवल प्राण साथ ले जाकर आपको क्या लाभ होगा ?

सवैया मे भी कवि ने केवल अनुभूति पर ही बल दिया है—अन्तिम पंक्ति के लिए अन्य पंक्तियो का बलिदान नही किया गया है—

छीजत देह के साथ मे प्रानहु हा हरीचन्द करौ का उपाई।
क्याहू बुझै नहि आँसू के नीरन लालन कैसी दवारि लगाई।

सौन्दर्य का मुग्ध हो हो देखने मे कवि निपुण है यह हम पहले कह चुके हैं, इस मुग्धता के वर्णन म कवि पूरी स्वच्छन्दता बरतता है। और इसम कवि पूर्णत सफल हुआ है—

साई पिया अरसाय कै सेज पै सो छबि लाल विचारत ही रहे।
पोछि रुमालन सों श्रमसीकर भौंरन कौं निरुवारत ही रहे।
त्यौं छबि देखिबे कौं मुख तैं अलकैं हरिचन्द जू टारत ही रहे।
द्वैक घरी लौं जके से खरे वृषभानु-कुमारि निहारत ही रहे।

छवियो के अकन की दृष्टि से भारतेन्दु की यह पक्ति बहुत प्रसिद्ध है—

प्रानहू ते प्यारो रहै प्यारो तू सदाई तेरी,
पीरो पट सदा जिय बीच फहरयो करै।

भारतेन्दु छवि और छवि के प्रभाव के एक साथ चित्रण म भी अत्यधिक निपुण थे।[१] महाकवि देव की तरह पूरे वातावरण के सगीतमय चित्रण मे भी उन्ह पूर्ण सफलता मिली है। भारतेन्दु अनुप्रासा के पीछ न जाकर अपने मन को टटोलते थे, अपनी चेतना के क्षोभ को ही वाणी देने का प्रयत्न करते थ अत उन्हे नए-नए ढङ्ग सूझ जाते थे।[२] अत्यधिक रत्नजटित भाषा का प्रयोग न कर कृष्ण जिस माटी" को खाया करत थ उसकी सुगधि अपने काव्य मे भरने का प्रत्यन उन्होने अधिक किया है।

पुराने काव्य के अनुशीलन स भारतन्दु को नए-नए भाव सूझते थ। नई सूझ के नाना कवित्त सवैये भारतेन्दु म मिलते हैं।

क्यो इन कोमल गोल कपोलन देखि गुलाब को फूल लजायो।
त्यौं हरिचन्द जू पकज के दल सो सुकुमार सबै अँग भायो।
अमृत से जुग ओठ लसे, नव पल्लव सोक्र क्या है सुहायो।
पाहन सो मन होते सबै अँग कोमल क्या करतार बनाया।

स्वच्छ अभिव्यक्ति और घनीभूत अनुभूति स ओतप्रोत कवित्त सवैये भारतेन्दु मे कम नही है यद्यपि यह भी सही है कि अशक्त पद्य भी उन्होंने

---

१ कहा कहौं प्यारे जू वियोग मे तिहारे चित,
बिरह अनल लूक भरकि भरकि उठै।
कैसे मे बिताऊँ दिन जोबन के हा हा काम,
कर लै कमान मो पै तरकि तरकि उठै।
भूलै नाहि हसनि तिहारी हरिचन्द तैसी,
बाँकी चितवनि हिय फरकि फरकि उठै।
बेधि बेधि उठत विसैले नैन बान,
मेरे हिय मे कटीली भौंह करकि करकि उठै।

२ होते म लाल कठोर हते जु पै होते कहू तुमहू बरसानियाँ।
गोकुल गाँव के लोग कठोर करै छत हीय मे मारि निसानियाँ।
यों तरसावत हौ अबलागन को मुख देखिबे कौं दधिदानियाँ।
दीनता की हमरे तुमरे निरदैपनहू की चलैंगी कहानियाँ।

बहुत से कहे है अशक्त पद्यो म न तो अनुभूति का दम है और न अभिव्यक्ति कुशलता समस्यापूर्तियो म ऐसे पद्य बहुत से मिलते है।[१]

रीतिकालीन बारीक सूझ बूझ का परिचय भी भारतेन्दु ने दिया है—

नीलपट तरो आज और रङ्ग भयो काट
मेरे जानि बिछुरि पिया त पीरो परिगो।

× × × ×

श्याम बसैं उर मैं नित ताही सा पीतहू कचुकी होत हरी है।

जहाँ भारतेन्दु ने यथावत् अनुकरण किया है वहाँ उनके पद्य प्रभावित नही करते किन्तु जहा उन्होने अपनी स्वाभाविक और निजी पद्धति अपनाई है वहा वह प्रभावित अवश्य करते हैं। अपनी स्वाभाविकता मे कवि न नानाविधि काव्य कलियो को जन्म दिया है जा नवीन भूमि नवीन खाद और नवीन जल के कारण नवता धारण कर लती हैं—इस पूरी प्रक्रिया को कवि ने मधुमुकुल शीर्षक देकर स्वीकार किया है और समपण म स्वय लिखा है— यह मधुमुकुल तुम्हारे चरण कमण म समर्पित है। अङ्गीकार करो। इसम अनक प्रकार की कलियाँ हैं कोई स्फुरित कोई अस्फुटित कोई अत्यन्त सुगधमय कोई छिपी हुई सुगध लिए किन्तु प्रम सुवास अतिरिक्त और किसी गन्ध का लेश नही। तुम्हारे कोमल चरणो म य कलिया गड न जायें यही सन्देह है।

उमग की यह उमड कवित्त-सवया म नही मिलती यह मानना हागा। प्रिय क मिलन की जा उमग पदा मे मिलती हैं[२] वह कवित्त सवैया म नही मिलती। पदा म कवि ने विविध प्रयाग भी किए हैं लोक ससपश भी पदो मे ही अधिक है।

---

१ (अ) बसन के दाग धोवैं, नखछत एक टोवै,
चूर लै चुरी को खल एक जूसताव है।

(ब) साँचे में ढरी सो, परी सीसी उतरी सी खरी,
बाजूबन्द बाँध बाजू पकरि किवारि के।

[पदमाकर के 'एक कर कज एक कर है किवार पर" का अनुकरण सफल नहीं हुआ]

२ घर म छिन हू थिर न रहै।
दौरि दौरि झाँकति दुआर लगि, पिय को दरस चहै।

यह आश्चर्य का विषय नही है कि भारतेन्दु दिव्य प्रेम के वर्णन मे देश की दशा को नही भूलते। दिव्य शृङ्गार की महत्ता मे जब उनकी चित्त-वृत्ति निमग्न रहती है तब भी उनकी चेतना को देशभक्ति की लहरें झकझोरने लगती हैं। यह अन्तर्द्वन्द्व नही है, अपितु एक ही मानसिक स्थिति के दो रूप हैं जो कभी अलग-अलग और कभी साथ-साथ मिलते दिखाई पडते हैं। "गोरी गुजरिया भोरी सङ्ग लै कान्हा," तथा 'ए री जोबन उमग्यो फागुन लखि कै कोउ विधि रह्यो न जात" जैसी भावनाओ के साथ-साथ भारत की दुर्दशा की ओर भी उनका मन स्वभावत जाता है। काश! देश स्वतन्त्र होता! काश! देश समृद्ध होता! तो होरी की उमङ्ग कितनी बढी हुई होती। किन्तु ऐसा नहीं हो सका अत कवि सरसो के पुष्पो मे "पीली प्रजा" का प्रतिबिम्ब देखता है, रगभरी पिचकारिया मे वह अश्रुप्लावित नेत्रो के दर्शन करता है, यहाँ रीतिकालीन प्रवृत्ति और नवजागरण के अग्रदूत कवि भारतेन्दु मे अन्तर है। एक आसपास के वातावरण की चिन्ता न कर, मरुस्थल मे स्थित नख-लिस्तान के गीत गाता है, दूसरा नखलिस्तान के गीत इसलिए गाता है कि मरुस्थल जैसे मन मे कुछ सपने जगें, उन सपनो के लिए लोग प्रयत्न करें और पूरा मरुस्थल नखलिस्तान बन जाए! जब ऐसा नही होता, जब कवि देश की अधीनता देखता है तब वह सपनो के चित्रणो के बीच भी देश की दुर्दशा से कराह उठता है। काश! यह मानवप्रियता प्रयोगो के पीछे पागल कवियो मे सुरक्षित रहती।

> भारत मे मची है होरी।
>
> इक ओर भाग, अभाग एक दिसि होय रही झकझोरी।
>
> अपनी अपनी जय सब चाहत होड परी दुहूँ ओरी।
>
> दुन्द सखि बहुत बढी री।

होरी को प्रतीक के रूप मे क्या कवि ने यहाँ चित्रित नही किया है? एक ओर का दल भाग्यशालियो का दल है, दूसरी ओर अभाग्यशाली भारत वासी हैं—भारतेन्दु ने इस 'द्वन्द्व' को कितनी स्पष्टता के साथ देख लिया था।

> धूर उडत सोई अबिर उडावत सबको नयन भरो री।
>
> दीन दसा अँसुअन पिचकारिन सब खिलार भिजयो री।
>
> भीजि रहे भूमि लटोरी।

भइ पतझार तरव कछु नाही सोई बसन्त प्रकटो री।
पौरे मुख भई प्रजा दीन ह्वै सोई फूली सरसो री।
सिसिर को अन्त भयो री।

यही नही प्रयोगवादियो की तरह कवि निराश नही हो जाता वह अभाग के पक्ष की अ त मे विजय दिखाता है

हारचो भाग अभाग जीत लजि विजय निशान ह्यो री।
तब स्वाधीनपनो धन बुधि बल फगुआ माहि नयो री।
नारी बकत कुफार जीति दल तासु न सोच लयो री।
मूरख कारो काफिर आधो सि ठित सबहि भयो री।
उत्तर काहू न दयो री।

उठौ भया क्यों हारौ अपुन रूप सुमिरो री।
राम युधिष्ठिर विक्रम की तुम झटपट सुरत करो री।
दीनता दूर धरो री।

भारते दु की यह होली आजादी प्राप्त करने और अपने समाज के पुनर्निर्माण का मैनीफस्टो है सन १८८० ई० की यह रचना है। राष्ट्रीय काग्रस ने पूण स्वत त्रता की आवाज सन १९२९ मे लगाई थी किन्तु भारते दु ने सन् १८८० ई० मे ही यह आवाज बुलन्द की थी—राजनीति से कवि दस कदम आगे चलता हुआ दिखाई पडता है। जो भारते दु को ब्रिटिश राज्य का रक्षक कहते हैं उ हे य पक्तियाँ ध्यान से पढनी चाहिए—

धिक वह मात पिता जिन तुमसो कायर पुत्र जन्या री।
धिक वह घरी जनम भयो जामें यह कलक प्रगटचो री।
जनमतहि क्या न मरो री।
उठौ उठौ सब कमरन बाँधौ शस्त्रन शान धरो री।
विजय निसान बजाय बावरे आगइ पाँव धरो री।

भारतेन्दु जानते थ कि हमने ईर्षा द्वेष की होली म सब फूक दिया है—

फूक्यो सब कछु भारत ने कछु हाथ न हाथ रह्यो री।

अतएव वह भारतीय समाज म आमूल चूल परिवतन चाहते थे। वह यह भी समझत थ कि ब्रिटिश रा य देश के असगठित रहते समाप्त नही हो सकता अत उसकी तारीफ करक उसस सुविधा पाने के लिए भी प्रयत्न करते थ। असगठित देश के नेता सुविधा चाहत हैं और सगठित राष्ट्र स्वतत्रा

मागता नहीं है ल लता है। इस सीधी बात का न समझ कर ही भारतेन्दु पर आक्षेप होते हैं अनन्त राष्ट्रीय काग्रेस के नेता भी बहुत दिनों तक सुविधाएँ ही माँगने रहे तब भारतेन्दु यदि किसी लाड की प्रशसा कर अपने प्यारे देशवासियों के लिए सुविधाएँ मागते थे तो अनुचित क्या था। समय से पूर्व का काय अन्याय से भी अधिक खतरनाक होता है।

भारतेन्दु ने राधाकृष्ण की होरी बड़ी ही उमग से वर्णित की है। धार्मिक भावना का उत्साह उनके मन म काय तो करता ही था किन्तु साथ ही नाना वादविवादो तथा सम्प्रदायो म ग्रस्त भारत क लिए प्रेम का सदेश देने के लिए भी वह भगवान की प्रेमचर्चा का वणन बहुत करते थे। इस तथ्य की ओर कवि ने मधुमुकुल के अन्त म सकेत किया है—

श्री वल्लभ प्रभु वल्लभिजन विन तुम्हे कहा कोई जानै हो।
करमठ श्रुतिरत कमप्रवतक जनपुरुष कहि भाखै हो।
ज्ञानी भाष्यकार आतमरत विषयविरत अभिलाखै हो।
प्रगन्त निज जन म निज लीला आपुहि द्विज बपु लीन्हा हा।
हरीचन्द बिनु निज पन्सेवक औरन नाही चीन्हो हो।

भारतेन्दु के युग म यह एकताविधायक दृष्टि अत्यधिक महत्त्वपूर्ण थी। एक ओर तो यह ईसाई मत की वृद्धि क विरुद्ध स्वदेशी विश्वासो के लिए सुन्द गढ का काय करती था दूसरे अपने दुग क भीतर तरह तरह के वितडावादो क विरुद्ध एकता की विधायक थी। आय समाज ने अधविश्वासो का विरोध किया यह बहुत बडा काय था परन्तु हिन्दू मुसलमानो के मध्य जो कटुता का बीज वपन हुआ उसका फल हम बाद म भोगना पडा और अब भी पजाब क विभाजन क समय बढती हुई साम्प्रदायिकता क कारण भोगना पड रहा है अत भारतेन्दु का दिव्य श्रृगार और सहिष्णुता महत्त्वहीन नही है उसे व्यापक दृष्टि स देखने की आवश्यकता है।

आत्माभिव्यक्ति—भारतन्दु के *श्रृगारिक अथवा भक्तिकाल म भक्तो* जैसी आत्माभिव्यक्ति मिलती है। यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि कवि एक प्रचलित परम्परा का पालन मात्र नही कर रहा है अपितु उसके हृदय की वास्तविक भावनाएँ व्यक्त हो रही हैं। कवि ने राधाकृष्ण के श्रृगार विहार आदि का स्वय अनुभव किया है। युगल विहार का वणन ही भारतेन्दु क के काव्य का मुख्य विषय रहा है उसम कवि की पवित्र विश्वास भी व्यजना है। युगल पर बलिबलि जान की भावना कवि म प्रमुख रूप से मिलती है।

"भक्त सर्वस्व" मे कवि ने समर्पित चित्त से आराध्य के चरणचिन्हो का वर्णन किया है। अंतिम दोहे का स्वरूप देखिए, कितनी भावुकता मिलती है—

अहो सहो नहिं जात अब बहुत भई नँदनन्द।
करुनाकरि करुनायतन, राखहु जन हरिचन्द॥

ऐसे पद्यो मे भावना की सच्चाई स्वत प्रमाणित है। कवि आराध्य को दोपहर मे बुलाता है और अपनी पलको को वस्त्रो के रूप मे मार्ग मे बिछा देता है—

अहो पिय पलकन पै धरि पाँव।
ठीक दुपहरी तपत भूमि मे नांगे पद मत आव।
करुनाकरि मेरो कह्यो मानि कै धूपहिं मैं मति धाव।
मुरझानो लागत मुखपकज चलत चहूँ दिसि दाव।

ऐसे पदो की सख्या भारतेन्दु मे कम नही है। युगल-विहार के वर्णन मे भारतेन्दु मे अद्भुत निष्पापता मिलती है। भारतेन्दु ने अन्य भक्त कवियो की ही तरह युगल विहार का सागोपाग स्पष्ट वर्णन किया है किन्तु उनकी चित्तवृत्ति की उच्चता के कारण ऐसा नही लगता कि उनका गायन उनकी अपनी अनुभूति नही है। पद पद मे कवि की निजी भावना भरी हुई है—

मनोराज्य—अहो हरि वेहू दिन कब ऐ हैं।

जा दिन मे तजि और सग हम ब्रजवास बसैहैं।
सग करत नित हरिभक्तन को हम नेकहु न अघैहैं।

दीनता—उधारौ दीनबन्धु महाराज।

जैसे हैं तैसे तुमरे ही नाहिं और सों काज।

मिलन—अरी यह को सांवरो सो लगर ढोटा ऐडोई ऐंडो डोलैं।

काहू की कोहनी काहू की चुटकी काहू सों हँसि बोलै।

रूपश्री—नटवर रूप निहार सखी री।

ललित त्रिभग काछनी काछे अमल कमल से नैन।
कर लै फूल फिरावत गावत मोहत कोटिक मैन।

बाधा—गुरजन की भय अटा झरोखा हू नहिं बैठन पावैं।

राह बाट मैं लाज निगोडी, कैसे नैन मिलावैं।

प्रशसा—रावरी रीझ की बलि जैये।

महा पतित सो प्रीति पियारे एक सुमहिं मे पैये।

आत्मकथन—हम तौ मदिरा प्रेम पिये ।
अब कबहूँ न उतरिहै यह रँग एसो नम लिए ।
भई मतवार निडर डोलत नहिं कुलभय तनिक हिये ।
डगमग पग कछु गैल न सूझत निज मन मनमान किए ।
रहत चूर अपुने प्रीतम पैं तिन पैं प्रान किए ।

अनुरोध—लाल यह सुन्दर बीरी लीजैं ।
हँसि हँसि कै नँदलाल अरागी मुख,ओगार मोहिं दीजैं ।

कतिपय भक्तिभाव विषयक पक्तियो को पढकर ही स्पष्ट हो जाता है कि भारतेन्दु के काव्य म सबस अधिक कृत्रिमता का अभाव है जो रीतिकाल की विशेषता थी । कवि ने अपनी हार्दिक भावनाओ का सहज प्रकाशन किया है । आराध्य क प्रम म मस्त होकर जो कहा जाता है वह हृदयरस के कारण प्रभावशाली हो जाता है कवि ने स्वय कहा है—

'हम तौ मदिरा मत्त पिये ।'

भक्तिकाल की परम्परा म यह पवित्र मत्तता ही भारतेन्दु के काव्य मे आत्माभिव्यजन का कारण है । भारतेन्दु ने आराध्य के सौन्दर्य, उस सौन्दर्य के प्रति अपनी मुग्धता, उसके सयोग मे सुखानुभव व उसके विरह की पीर का बडा ही हृदयग्राही वणन किया है—आत्माभिव्यजन का अथ तरह-तरह के अहकारमय विचारो की घोषणा नही है—कवि की अपनी वास्तविक अनुभूति का प्रकाशन ही वास्तविक आत्माभिव्यजन है ।

इधर जो 'नया' आत्माभिव्यजन चला है, उसम कृत्रिमता, अहकार, पराए विचारो की मुनादी, आतक उत्पन्न करने की प्रवृत्ति और सबसे अधिक कवि की वास्तविक अनुभूति के अभाव का प्रदशन हो रहा है किन्तु भारतेन्दु का अपना विश्वास था उन्हे उसके प्रदशन की आवश्यक्ता नही थी अत भारतेन्दु का आत्माभिव्यन सहज और सुखद है । वास्तविक्ता तो यह है कि भारतेन्दुयुग के बाद कवियो के साथ पाठक जो एक तादात्म्य अनुभव करता है, वह बराबर कम होता गया है । अपवादो को छोडकर आधुनिक काव्य रौबीला अधिक हो गया है । प्रदशन दूसरो द्वारा अपनी बलात् स्वीकृति के लिए किए गए प्रयत्न, प्रकाशन आतुरता आदि अवगुणो के कारण ही नही, विश्वास के कारण भी आत्माभिव्यजन पाया प्रतीत होता है । भक्तो जैसी निष्ठा का अभाव आधुनिकयुग म बहुत खलता है । छायावादी और प्रगतिवादी कवियो म भी अपने विश्वास के प्रति वह दृढता और आत्मविसर्जन नही मिलता ।

अत आधुनिक काव्य के जन्मदाता की विश्वास-दृढ़ता को हम भलीभाँति नहीं अपना सके हैं, यह मान लेने म कोई हर्ज नहीं दिखाई पडता।

भारतेन्दु के काव्य मे उनका आत्मविसर्जन व्यक्त हुआ है। आयास-हीनता उनके काव्य का सबसे सुन्दर आभूषण है। अपनी चेतना के मथन को व्यक्त करने मे कवि पूर्ण सफल हुआ है। राधा-कृष्ण के गायन द्वारा कवि ने अपनी आत्मा के गायन को व्यक्त किया है। सयोग मे कवि की उमग, विनोद और कौतुक के साथ मुग्धता और वियोग मे आत्मा की तडप[1] इतनी सच्ची है कि पढने ही बनता है।

भारतेन्दु ने स्पष्ट कहा है कि जीवन का उद्देश्य प्रीति का प्रकाशन है किन्तु यह कार्य अत्यधिक कठिन है, फिर प्रेम को समझने वाले भी बहुत नही देता हैं। प्रेम उपहासका विषय बनता है, आत्माभिव्यजन का यह अकाट्य प्रमाण है--

प्रीति तुव प्रीतम कौं प्रकटैये।
कैसे कै नाम प्रकट तुव लीजै कैसे कै बिथा सुनैये।
को जानै समुझै जग जिन सौ खुलि कै भरम गवैये।
प्रगट हाय करि नैननि जल भरि कैसे जगहि दिखैये।
कबहू न जाने प्रेमरीति कोउ सुख सो दुरे कहैये।
हरीचन्द पै भद न कहियै भले ही मौन मरि जैये।

भारतन्दु अपन प्रति इतन सच्च थे कि उन्हे अपयश की चिन्ता नही थी। पिय के प्रेम मे मस्त, अपने आत्मानुभवा म मग्न, कवि सारे जगत् को चुनौती है। अपनी घरफूंक मस्ती के कारण भारतेन्दु 'कामल कबीर" कहे जा सकते हैं—

बिहरिहै जगसिर पै दै पाँव।
एक तुम्हारे ह्वै पिय प्यारे छाँडि और सब गाँव।
निन्दा करौ बनाओ बिगरी धरौ सबै मिलि नाँव।
हरीचन्द नहि कबहू चूकि हैं, हम यह अब को दाँव।

---

१ एतो हरि जी सों कहियो रोय हो रोय।
तुम बिन रहत सदा ब्रज सुन्दरि।
असुअन सों पट धोय धोय।
हरिचन्द अब सहि न सकत दुख—
होनी होय सो होय हो होय।

आत्माभिव्यक्ति परक ऐसे पद भारतेन्दु ने शतश लिखे है। रीतिकाल मे ऐसा कवित्व किस कवि का है ?

विभिन्न प्रयोग—प्रतिभाशाली कवि काव्य मे नाना प्रयोग करते है। बँधी हुई लीक पर चलते हुए भी उनकी गति कुछ भिन्न हो जाती है। एक ही राजमार्ग पर जैसे विभिन्न अश्व विभिन्न गतियाँ भरते है उसी प्रकार मौलिक कवि की गति मे नवीनता आ ही जाती है। भारतेन्दु के प्रयोग अपने समय तक प्रचलित सभी शैलियो मे मिलते है। इसके अतिरिक्त उन्होने लोककाव्य के अनेक प्रयोग भी अपनाए है और उन्हे अपने ढग से प्रयुक्त किया है। इसके अतिरिक्त भारतेन्दु ने प्रान्तीय भाषाओ मे कई भाषाओ को अपनाया है, पजाबी बँगला, उर्दू आदि का स्पर्श देकर हिन्दी मे नाना प्रयोग करके भारतेन्दु ने आगे के कवियो के लिए मार्ग प्रदर्शन किया है।

भारतेन्दु ने जिस प्रयोग को अपनाया है, उसके विषय का भी ध्यान रखा है, उदाहरणत निर्गुण काव्य परम्परा का अनुकरण देखिए—

साझ सबेरे पछी सब क्या कहते है कुछ तेरा है।
हम सब इक दिन उड जाएँगे यह दिन चार बसेरा है।
आठ बेर नौबत बज-बज कर तुझको याद दिलाती है।
जाग जाग तू देख खडी यह कैसी दौडी आती है।

खडनमडन के प्रयोग—शिवोह . भाखत है सब. लोग।
कहँ शिव कहँ तुम कीट अन के यह कैसो सयोग।
अरध अ ग मे धारवती हू शिवहि न काम जगावै।
तुमको तो नारी के देखत अ ग गुदगुदी आवै।

उर्दू—कहूँ दस्कपेचाँ आशिक को पेच मे भी यह लाते है।
फाँसी भी है मुसाफिर को बेतरह फँसाते है।
हजार सिर बुलबुल ने पटका हुई न एसी साँवलिया।
सिवार ने भी शम स पानी मे मुँह डुबा लिया।

बगला—कोथाय रहिल सखि से गुनमान।
विच्छेद यातना आर जे सहेना।
कि करि बल न ओ प्रात सजनी।
केमने एखन धरिब जीवन।
से कात विहन बल ओ धनी।

"फूला' का गुच्छा" मे भारतेन्दु ने बडे मनोरजक प्रयोग किए है। ऐसा प्रतीत होता है कि मस्त फकीरो या सूफियो के प्रयोग भारतेन्द को बहुत

रचते थे। लावनी, होली, झूलना, बारहमासा, आदि काव्य-प्रयोगो के विविध रूप भारतेन्दु मे सुरक्षित हैं, सस्कृत की एक लावनी देखिए—

कुंज कुंज सखि सत्वर
चल चल दयित प्रतीक्षते त्वा तनोति बहु आदर।
सवी अपि सगता।
नो दृष्ट्वा त्वा तासु प्रियसखिहरिणाऽह प्रेषिता।
मान त्यज वल्लभे।
नास्ति श्री हरिसदृशो दयितो वच्मि इद ते शुभे।

कोरे मनोरजन और कुतूहल वृत्ति के सतोष के लिए भी भारतेन्दु ने रचनाएँ प्रस्तुत की थी। अलवरत अन्तर्लापिका, जीवन जी महाराज, चतुरग, बसन्तहोली काव्य, मूक प्रश्न, मानलीला फूल बुझौवल काव्य, रिपनाष्टक के कुछ पद्य, नए जमाने की मुकरी, समधिन मधुमास, मनोमुकुल माला, मुद्रालकार आदि रचनाओ मे कवि ने पाठको के मात्र मनोरजन का प्रयत्न किया है। रीतिकाल की परम्पराओ को अन्तत कवि कैसे छोड सकता था।

विक्टोरिया के प्रति एल्बर्ट की मृत्यु पर सन् १८६१ ई० मे भारतेन्दु ने *अन्तर्लापिका लिखी थी किन्तु कवि को किंचित् भी दुख नही है, अलबर्ट* या अलवरत शब्द का चमत्कार ही यहाँ प्रस्तुत किया गया है, राज्यभक्त भारतेन्दु का महारानी के पति की मृत्यु पर की गई शब्द क्रीडा देखिए।

कह सितार को सार ? शत्रु के किमि मन मेरे ?
काकी मार प्रहार सीस अरि हनै घनेरे।
का तुम सैनहि देत सदा उनतिसएँ ही दिन
कहा कहत स्वीकार समय कछु अवसर के छिन
को महरानी को पति परम सोभित स्वर्गहि हूँ रह्यो
'अलवरत' एक छत्तीस इन प्रश्नन को उत्तर कह्यो।

(१) सितार का "रव" (२) शत्रु के मन "अबल" हैं (३) शत्रु के शीश पर "तबल" की मार दी जाती है (४) सैनिको को उन्तीसवें दिन "तलब" दी जाती है। (५) स्वीकार करते समय "अलबत" (हाँ, अवश्य) कहा जाता है (६) महारानी के पति का नाम है अलवरत (अलबर्ट)[१]

---

१. भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि—किशोरीलाल गुप्त बनारस, पृष्ठ १८७।

श्री किशोरीलाल गुप्त ने इस प्रकार के चमत्कारो पर बहुत लिखा है पाठको को वही देखना चाहिए।[1] इन प्रयोगो से यह स्पष्ट है कि भारतेन्दु की विनोदवृत्ति बडी विचित्र और मनोहर रूप धारण करती थी। समस्यापूर्तियो से तो प्राय पाठक परिचित ही है। दुखिया अँखिया नहिं मानती हैं अथवा प्रथम समागम को बदलो चुकाए लेत आदि समस्याओ पर भारतेन्दु ने अच्छ पद्य बनाए हैं।

भारतेन्दु ने समनधि स्वाग मुकरी बन्दर सभा जैसे प्रयोगा से लेकर दोहा कवित्त सवैया छप्पय पद आदि छन्दो मे प्राचीन काव्य के सभी प्रयोगो तथा लोकगीतो म कजली होली लावनी बारहमासा गाली सेहरा चैता दादरा पूरबी ठुमरी खिमोरी आदि तथा प्राय सभी रागरागिनियो के प्रयोग दीघ लघु काव्य कथा काव्य समस्यापूर्तिया स्फुट चित्रण–अर्थात शास्त्र लोक और सभी काव्य परम्पराओ म जितने भी प्रयोग प्रचलित थे सभी के कुछ न कुछ प्रयोग भारतेन्दु ने प्रस्तुत किए हैं। ऐसी बहुविधि प्रतिभा बहुविधि रुचि और बहुविधि काव्यशक्ति बहुत कम कवियो म मिलती है। तुलसीदास के बाद किसी भी कवि ने अपने समय की इतनी शैलिया मे इतने अधिक प्रयोग नही किए और विशिष्टता यह है कि प्रत्येक प्रयोग मे भारतन्दु को सफलता मिलती है। ब्रज भाषा और उदू के तो वह सफल कवि थे किन्तु लोकगीतो मे भी उन्हे पूण सफलता मिली है। इसके सिवा भारतन्दु ने प्रत्यक प्रयोग मे अपनी मौलिकता को सुरक्षित रखा है। हूबहू नकल भारतेन्दु कर ही नही सकते थे। यथावत अनुकरण के लिए जिस मानसिक जडता की आवश्यकता होती है वह भारतेन्दु को प्रकृति से प्राप्त ही नही हुई थी।

भाषा—हम देख चुके है कि भारतेन्दु ने सरल और प्रचलित भाषा का प्रयोग किया है। प्रतिभाशाली कलाकार की तरह जहा उन्होने अलकृत काव्य लिखा है वह किसी से पीछ नही दिखाई पडते परन्तु उनका मौलिक रूप सरल भाषा मे ही दिखाई पडता है। रीतिकाल की अप्रचलित पदावली से वह बराबर बचे है क्योकि वह जानते थे कि यह भाषा लोगा की समझ मे नही आती। रीतिकाल का वही रूप उन्होने अपनाया है जो अपक्षाकृत सरल है। अत्यधिक समासप्रधान भाषा के प्रयोग उन्होने कम किए हैं और दूसरी ओर ग्राम्यत्व दोष से भी उन्होने अपने काव्य को बचाया है। अलबत्ता लोक गीतो और व्यावहारिक बोलचाल की भाषा के शब्दा के बधडक प्रयोग उन्होने किए हैं

---

[1] वही,

इससे उनकी भाषा नाना पहचाना सी लगती है। भाषा के चलते हुए मिश्रण ही उन्होंने अपनाए हैं। अलंकार प्रधान काव्य में भी उन्होंने इस तथ्य का ध्यान रखा है।[1]

तद्भव शब्दों का भारतेन्दु ने अत्यधिक प्रयोग किया है। भारतेन्दु जानते थे कि हिन्दी भाषा का रूप तद्भव शब्दों में ही सुरक्षित रह सकता है, अतः गेय छन्दों में भी तद्भव शब्दों का प्रयोग उन्हें प्रिय है—

एसी नहिं कीजै नाथ देखत सब संग की बात
काहे हरि गए आजु कहूँ इतराई।
मुख क्यों न दीन कहु अँचरा मेरो छाँडि देहु
जाम मेरो लोन रहै करो सो उपाइ।

सामान्यतः भारतेन्दु की भाषा का यही रूप है। किन्तु मानसिक स्थितियों के अनुसार महाकवियों की पद्धति पर भारतेन्दु की भाषा नाना रूप धारण करती है। *कवित्व की सृष्टि करते समय भी कवि भाषा का मौलिक* स्वरूप सुरक्षित रखता है, विषय और भाव के साथ वह इतना नहीं बह जाता कि भाषा का रूप ही अव्यवस्थित हो जाय। जहाँ तक ब्रज भाषा का प्रश्न है, भारतेन्दु की भाषा 'सक्रान्तियुग' की भाषा नहीं है, वह महान परम्परा के अन्तिम विकसित रूप को हमारे सम्मुख प्रस्तुत करती है। भारतेन्दु ने भक्तिकाल से प्रेरणा लेकर ब्रजभाषा का 'स्वभावीकरण' किया था यह स्मरणीय है।

ब्रजभाषा की स्वाभाविकता—आम बोलचाल की ब्रजभाषा में सर्वदा मधुर शब्द ही नहीं आते। अनेक तद्भव शब्दों में व्यावहारिक शब्द ऐसे भी हैं जो मधुर नहीं कहे जा सकते कवि ने ऐसे शब्दों का भी चुनकर प्रयोग किया है—

(१) लगाओ बदन पै हरताल।

---

(१) आजु तन नीलाम्बर अति सोहै।
मनु तनमन लियो जानि चंद्रमा सौतिन मध्य बस्यो है।
कै कवि निज जजमान जूथ में सुंदर आइ बस्यो है।
सघन तमाल कुंज में मनु कोउ कुंद फूल प्रगट्यो है।
हरीचंद मोहन मोहनि छवि बरनै सो कवि को है।

[यहाँ 'सौतिन', 'जजमान' जैसे तद्भव शब्दों से तत्समता का कुप्रभाव कम होगया है]

(२) दीपन उलटी करी सहाय
(३) मुरछल चँवर रुमाल अडानो पीकदान लै बारी।
(४) लगाओ चसमा सबै सफर
(५) खराबी देखहु हो भगवान की
(६) सुखद अति खिचरी को त्यौहार

रीतिकाल मे अनुप्रास प्रियता से भाषा मे सगीत और श्रवण सुखदता का जन्म हुआ था परन्तु उसके प्रसादगुण की हानि हुई थी भारतेन्दु न ब्रज-भाषा को इस दोष से मुक्त किया। अपवादो को छोडकर भारतेन्दु की भाषा म अनुप्रास प्रियता नही मिलती। कवि किसी भावना, दृश्य या घटना का मन लगाकर वणन करता है वह इस ओर ध्यान नहा देता कि शब्दो की लडिया बनती चल रही है या नहा अत उसकी भाषा प्रचलित भाषा के स्तर स इतनी दूर नहा जाती कि वह दुरूह हो जाए—

आजु ब्रज होत कुलाहल भारी।
जित तित न धाई टीको ल अति आकुल ब्रजनारी।
गावत गोप चोप भरि नाचत दै द कै कर तारी।
बाज बजत उडत दधि माखन छीर मनहु घन वारी।

इस भाषा म डबल अनुप्रासो का प्रयोग नहा होता। भारतेन्दु मे आदि से अन्त तक एसी अनुप्रासो से जडी हुई पंक्तिया बहुत कम मिलती हैं—

छाडि कै मोहि गए मथुरा कुबरी तहँ जाय भई पटरानी।
जो सुधि लीनी तो जोग सिखायो भए हरीचन्द अनुपम ज्ञानी।

अधिकतर सवैय और कवित्त इसी सादु और सरल भाषा म मिलते हैं। इसका अथ यह नही कि अनुप्रासयुक्त ब्रजभाषा वह लिख नही सकता था—

कूकै लगी कोइलें कदवन पै बैठि फरि—
धोए धोए पात हिलि-हिलि सरसै लगे।
फरि झूमि झूमि बरषा की रितु आई फरि
बादर निगोरे झुकि झूमि बरसै लगे।

अथवा

गडि-गडि उठन कँटीले कुच कोर तरी
सारी सा लहरदार लहरि-लहरि उठैं।
सालि सालि जात आध-आध नैन बान तेरे
घूँघट की फहरानि फहरि-फहरि उठैं।

फिर भी देव; मतिराम आदि आदि कवियो जैसी चिकनी और सगीतात्मक भाषा का प्रयोग भारतेन्दु ने जानबूझ कर नही किया था। एक तो उस तरह की भाषा अपने विकास के चरमशिखर हर पहुच चुकी थी, दूसरे उससे उत्पन्न दुरूहता के डर से कवि वैसे प्रयोगो से बचता था।

मानसिक स्थितियाँ और भाषा—प्रतिभाशाली कवि मानसिक स्थितियो के अनुसार भाषा का प्रयोग करते हैं अथवा यो कहे कि भाषा स्वत मानसिक स्थितियो के अनुरूप रूप धारण कर लेती है। शब्द सामर्थ्य के बिना इस कार्य मे प्राय कवि असफल होते हैं। भारतेन्दु को शब्द शक्ति पर असाधारण अधिकार था अत उन्हे किसी भी मानसिक क्षोभ को व्यक्त करने मे कठिनाई नही हुई—

मुग्धता—भरित नेह नवनीर नित, बरसत सुरस अथोर।
जयति अलौकिक घन कोऊ, लखि नाचत मन मोर।

अपनत्वयुक्त उपहास—कत है बहुरूपिया हमारो।
ठगत फिरत है भेस बदलि जग आप रहत है न्यारो।
बूढो, ज्वान, जनी जोगिन को स्वांग अनेकन लावै।
कबहू हिन्दू जैन कबहु अरु कवहु तुरक बनि आवै।

दैन्य—*दीन पै काहे लाल खिस्याने।*
अपुनी दिसि देखहु करुनानिधि हमपैं कहा रिसानैं।
माछर मारे हाथ जर्लाह इक कहत बात परमाने।
महा तुच्छ हरिचन्द दीन हौं, नाहक भौंहहिं ताने।

विरह-व्यथा—एरी बिरह बढावन आयो फागुन मास री।
हौं कैसी अब करूं कठिन परी गांसरी।
औरें रितु ह्वै गयी बयारहु और री।
औरें फूले फूल और बन ठौर री।
या घर मे सखि क्यों नहि लागत आगरी।
जाके डर हौं खेलन जात न फाग री।

आसक्ति—घर मैं छिनहू थिर न रहै।
दौरि-दौरि झांकति दुवार लगि, प्रिय को दरस चहै।

मद—अठलात सँवरिया, मद तें भरी।

क्रीडा—चले दोउ हिलि मिलि दै गलबाही।
फैली घटा चहु दिसि सुन्दर—*कुञ्जन की परछाही।*

वेग—चारु चल चक्र चित्रित विचित्रित परम,
जगत-विजयी जयति कृष्ण को जैत्ररथ।
अति तरल तर बलाहक शैब्य सुग्रीव मनिपुष्प,
तुरग योजित चलत पथ सुपथ ।
फहरत ध्वज उडत नव पताका परम कलस,
कल इन्द्र सम सकल चमकत अकथ।
झाझ झनकत करत घोर घटा घहटि घने।
घुंघरु थिरत फिरत मिलि एक जथ।

उपालम्भ—जुरे हैं झूठे ही सब लोग।
जैसे स्वामी तैसे परिकर तैसो ही सयोग।
वे तो दीनानाथ कहाये करि इत उत कछु लाज।
एक एक की लाख इन्होने गाई तजि कै लाज।

नैकट्य प्रदर्शन—प्यारी मो सो कौन दुराव।
कहि किन अरी अनमनी सी क्यो—काहे की जिय चाव।
काहे को अँसुवन मुख धोवन, बारी नैक बताव।

समर्पण—लालन पौढे हौं बलि जाउँ।
चाँपा करन, कहानी भाखौ करि मनुहार सोवाऊँ।
सीत-भीत परदा बहु डारौ नवल अँगीठी लाऊँ।

अप्रिय व्यवहार के क्षण—लाल यह तौ तुरकन की चाल।
दुख दीनो गल रेति-रेति कै करनो ताहि हलाल।

उक्त उदाहरणा से ही यह स्पष्ट है कि कवि मे विविध भावनाओ को विविध शब्दा मे प्रकट करने की शक्ति थी। कवि ने ऐसी मिश्रित भाषा का भी आविष्कार किया है जो शायद बोलचाल मे यथावत प्रयुक्त न होकर भी बोलचाल की भाषा के सदृश थी। इस प्रकार की मिश्रित भाषा का निर्माण भारतेन्दु ही कर सकते थे—

कहनवा मानो हो दिल जानी।
तुम हो अनोखे बिदेस जवैया हरीचन्द सैलानी।

अवधी ब्रजभाषा और उर्दू के प्रचलित शब्दो से भाषा का एक नया रूप हमारे सम्मुख प्रस्तुत हुआ है। यह सक्रान्तियुग की अव्यवस्था नही है, जागरूक कवि के नए प्रयोग मात्र है।

मेरे नैनो का तारा है, मेरा गोविन्द प्यारा है।
वो सूरत उसकी भोली सी वो सिर पगिया मठोली सी।
वो बोली मे ठठोली सी बोलि दृग बान मारा है।

खडी बोली, ब्रजभाषा और उर्दू की यह बहार मनोरंजक अवश्य है।

तोरे पर भए मतवार रे नयनवाँ।

मदिरा प्रेम पिये मतवारे सबसे करत बिगार रे नयनवाँ।

लोक लाज जग अजस न मानै, सरस रूप रिझवार रे नयनवाँ।

इस प्रकार कहीं शुद्ध अवधी, कहीं शुद्ध उर्दू, कहीं शुद्ध ब्रजभाषा, और कहीं इनके मिश्रण से भाषा में विभिन्न गतियाँ प्रस्तुत करने में भारतेन्दु ने अत्यधिक निपुणता प्रदर्शित की है।

भारतेन्दु का सबसे बडा योगदान ब्रजभाषा के लिए यह था कि उसे उन्होंने शृंगार के अतिरिक्त विभिन्न विषयों के लिए योग्य बनाया। हिन्दी की उन्नति पर उनके प्रसिद्ध व्याख्यान को पढ़िए, स्वतः स्पष्ट होगा कि भारतेन्दु ने ब्रजभाषा में आधुनिक विचारधारा को कितने सरल और कवित्व पूर्ण ढंग से व्यक्त किया है—

पढ़े फारसी बहुत विधि तौहू भये खराब।
पानी खटिया तर रहे, पूत मरे बकि आब।
नारि पुत्र नहि समझहीं, कछु इन भाषन माहिं।
तासों इन भाखान सौं, काम चलत कछु नाहिं।
रेल चलत केहि भाँति सौं, कल है काको नाँव।
तोप चलावत किमि सबै, जारि सकत जो गाँव।
उतरत फोटोग्राफ किमि छिन महँ छाया रूप।
हाय मनुष्यहिं क्यों भये हम गुलाम, ये भूप।
मारकीन मलमल बिना चलत कछू नहिं काम।
परदेसी जुलहान के मानहु भये गुलाम।

राधा-कृष्ण-विहार में जो भाषा अत्यधिक कोमल दिखाई पडती है, वही भाषा ऐसे प्रसङ्गों में तीव्रता से भर उठती है। यही नहीं, अवधी भाषा में भी कवि ने नए भावों को बाँधा है। गली-गली और गाँव-गाँव सरल लोक-भाषाओं में जागरण-गीत फैल जायें, कवि का यही उद्देश्य था। कवि की भाषा ऐसे प्रसंगों में परिस्थिति के अनुरूप धारण करती है—

काहे तू चौका लगाय जयचँदवा।
अपने स्वारथ भूलि लुभाए,
काहे चोटी कटवा बुलाए जयचँदवा।
अपने हाथ से अपने कुल के—
काहे तें जड़वा कटाए जयचँदवा।

अथवा

की केहू हिन्दू कै जयमल नाहीं की जरि भेलैं छार।
की सब आज धरम तजि दिल्लैं भैलैं तुरुक सब इकवार।
केहू भागत गोहार न गौरा रोवैं जार बेजार।
अब ना हिंद केहू नाही, झूठें नामैं कै बवहार ॥

राष्ट्रीय जागरण के लिए लिखी कविताओं की भाषा और भारतेन्दु की नीति को यदि अब तक अपनाया गया होता तो क्रान्ति के लिए प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती। जिस भाषा को जनता समझती है, भाषा का जो रूप जनता मे प्रचलित है उसी म नए भाव लिखकर उनका प्रचार करो, भारतेन्दु की यही नीति थी। केवल शिक्षित और विदेशी साहित्य को पढकर रुचिभ्रष्ट वर्गों की रुचियो का ध्यान रखकर ही काव्य लिखना जनप्रवाह है भागीरथी को एक गर्त मे रोक रखने के समान अपराध है किन्तु कोरे कलावादी भारतेन्दु से यह शिक्षा लेना नहीं चाहते उन्हे इसमे प्रचार की गंध आती है। कोरे कलावादियों की कविता चाहे वह और उनके मित्रो तक ही सीमित रहे, चिन्ता नही, यदि काव्य सामान्य जनता म गया, तो यह कविराज का अपमान होगा। सूर, तुलसी, भारतेन्दु कवि नहीं थे, प्रचारक थे !

अलङ्कार—कवि ने या तो प्रेम का वर्णन किया है अथवा जागरण सम्बन्धी काव्य की रचना की है। जागरण सम्बन्धी काव्य अनलकृत, सच्चा और सरल है, उसमे बाह्य विन्यास के स्थान पर आतरिक भावशबलता अधिक मिलती है। अत अलकृति या तो चित्रणप्रधान काव्य मे मिलती है अथवा लीला वर्णन मे।

सहज अनुप्रासो के प्रयोग भारतेन्दु मे मिलते हैं। चित्रणप्रधान काव्यो[१] मे अथवा रीतिकालीन काव्य के पैटर्न पर लिखे हुए काव्य म अनुप्रासो की अधिक बहार मिलती है। यमक के कतिपय उदाहरण ही मिलते हैं[२] "मान लीला फूल बुझौवल" के ३१ दोहो मे प्रत्येक दोहा म पुष्पो के नाम आए हैं, अर्थात् मुद्रालकार का प्रयोग हुआ है।

---

(१) तरनि तनूजा तट तमाल तरवर बहु छाए।

(२) सबर न तोहि सकेत की, बही केत की बार।
चलि पग कुज निकेत की कित की ठानत आर।—मानलीला फूल-बुझौवल

[द्रष्टव्य—किशोरीलाल गुप्त, पृष्ठ ३१४-१५]

उपमायें—कतिपय मौलिक उपमाओ का प्रयोग भारतेन्दु मे मिलता है परन्तु अधिकतर कवि ने पुरानी उपमानो का नया विन्यास प्रस्तुत किया है। नूतन विन्यास से प्राचीन उपमाएँ आकर्षक हो गई हैं। यह भी स्मरणीय है कि कुछ उपमान ऐसे हैं जो आज भी प्रयुक्त होते हैं और हमेशा होते रहेंगे, उन्हे कोई अपदस्थ नही कर सकता—चन्द्र, कमल, भ्रमर जैसे उपमान नूतन विन्यास से मर्वदा आकर्षक बन जाते है।

(१) साँचहि दीप शिखा सी प्यारी।

(२) (अ) लाल यह लौ तुरकन की चाल

(ब) सब बकरी ही से मरि जैहै—स्वै दिन चार गुरज्ज।

इस प्रकार की मौलिक उपमाएँ बहुत नही हैं पर है अवश्य।

(३) फूल्यो सो दूलह आजु फूल ही को साजै साज,

फूली सी दुलही पाइ फूल्यो फूल्यो डोलै।

(४) कोकिल समान बोलि उठे है सुकवि सवै—

कामदार भौंर से बधाई लै लै धारा है।

लागि उठी लाय बिरहीन की सी बैरनि कौं,

बौरि उठे हाकिम रसाल से सुहाये हैं।

(५) फैली फिरि फिरि चन्द्रफेन सी वदन कांतिवर।

(६) विस्फुलिंग से अगदुख तजि···।

"क्यो फिरत दिवानी सी" समस्या पूर्ति मे भारतेन्दु ने नई उपमाओ के प्रयोग किए हैं।

यथा विजया छानी सी, पीक छाप पहिचानी सी आदि

सन्देह अलङ्कार—चन्दन की डारन मे कुसमित लता केधौ

पोखराज माखन मे नवरत्न जाल है।

चन्द्र भी मरीचिन मैं इन्द्रधनु सौहै कै

कनक जुग कामी मधि रसन रसाल है

हरीचन्द जुगल मृनाल मे कुमुद बेलि

मूँगा की छरी मे हार गुथ्यो हरिलाल है।

कैधौं जुग हस एकै, मुक्तमाल लीनें कै

सिया जू करन माँह चारु जयमाल है।

भारतेन्दु ने संदेह, उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा अलकारो का वर्णन अधिक किया है, इनमें भी अधिकतर रूपक उन्हे सूरदास की तरह ही प्रिय है। यह लक्ष्य करने योग्य तथ्य है कि कवि ने विरोध मूलक अलकारो का प्रयोग

बहुत कम किया है। कुछ चित्रकाव्य मुद्रालकार आदि को छोडकर चमत्कार-प्रदर्शन से भारतेन्दु बराबर बचे हैं, वह शुद्ध रसवादी परम्परा के कवि हैं।

रूपक अलकार के प्रयोग मे भारतेन्दु ने ऐसी वस्तुओ का आरोप नही किया, जिसम सादृश्य का अभाव हो वे दुष्ट उपमानो का प्रयोग नही करते थे। उचित उपमान मिलने पर ही उसका प्रयोग करते थे। सादृश्य के अभाव मे उपमान केवल कुतूहल की सृष्टि करता है, काव्य का उद्देश्य प्रकृति या मनुष्य निर्मित पदार्थों का काव्य मे बलात् प्रयोग नही है रागात्मक सम्बन्ध के विस्तार का अर्थ यह नही है कि प्रत्येक वस्तु को उपमान बना देने से ही उससे हमारा रागात्मक सम्बन्ध दृढ होता है। गद्यसाहित्य मे आप उन पदार्थों का वर्णन कर सकते है जिनका प्रयोग काव्य मे नही हो सकता। प्रत्येक क्रिया, प्रत्येक पदार्थ और प्रत्येक प्राकृतिक हलचल को प्रतीक मानकर चलने वाले कवि यह तथ्य भूल जाते हैं कि प्रतीकात्मकता से वस्तु अपने आकर्षण को खो बैठती है। कालिदास ने हिमालय को प्रतीक को रूप मे नही, एक उदात्त वस्तु के रूप मे ग्रहण किया था अत उसका सौन्दर्य आज भी आकर्षक लगता है। यह दूसरी बात है कि वर्णन करते समय कही वस्तु की प्रतीकात्मकता भी सकेतित हो जाय किन्तु प्रत्येक बाह्य क्रिया को आतरिक हलचल की ओर सकेत करने वाली प्रक्रिया बना देने पर, योगियो जैसी मानसिक स्थिति मे गूढता बढेगी जो नवीनता के कारण कुछ समय तक आकषक प्रतीत होकर बाद मे अपना आकर्षण खो बैठेगी।

भारतेन्दु का उपमान-विधान प्रतीकात्मकता से सर्वथा रहित है। उन्होंने अपने प्रिय रूपको और उत्प्रेक्षाओ मे भी सरल और छोटे-छोटे दृश्यो की आयोजना की है। दृश्य को भारावनत नही होने दिया।

उत्प्रेक्षाएं—कल्पना-वैभव—कल्पना शक्ति द्वारा वर्ण्यविषय से सादृश्य रखने वाली सम्भावित चित्रावली का अवतरण उत्प्रेक्षाओ मे देखा जाता है। दुर्बल कल्पनाशक्तिमान् कवि सादृश्य मूलक अलकारो मे असफल होता है, वाक्चातुर्य से वह विरोधमूलक अलकारो मे भले ही सफल हो जाए परन्तु कल्पना-वैभव—बाह्य प्रकृति को ध्यान से देखने, उनसे अभीप्सित चित्र चुनने, या सर्वथा नवीन चित्र गढने का कौशल, सादृश्य मूलक अलकारो मे ही दिखाई पडता है।

(१) लपटी लता तरोवर सा बहु फूल फूलि मन भाई।
मनु मण्डप मे दुलहा, दुलहिन रहे सिहरन लाई।

(२) चरन मंजु मंजीर विविध नग जटित न परत लखाने।
मनु मनिगन मिस मुनिजन को मन रहत चरन लपटाने।
(३) जुगल पीडरी गुरफन की छवि लगत दृगन अति नीकी।
मनु वैदूर्य्य डार जग सुंदर करत जगत छवि फीकी।
(४) मनु घन मैं घिरि दामिनि लपटी नीलहिं कंचन-बेली।
रस सिंगार मैं विरह लता सुतमालहिं पीत चमेली।
(५) झरित कल केस कुंचितन तें नीरकन।
मनहुं मुक्तावली नवल उज्जवल झरत।
(६) नील बसन श्याम रंग झलकत सोभा नहिं कहि जाई।
मनहुं नीलमनि सीसे संपुट धरयो अतिहि छवि छाई।

भारतेंदु की सहज विनोदमयी वृत्ति ने रूपक अलंकारों के कतिपय प्रयोग अत्यधिक मनोरंजक किए हैं। लिहाफ के भीतर राज्याभिषेक का रूपक देखिए—

रजाई करत रजाई माँही।
राजा कृष्ण राधिका रानी दिए बाँह में बाँही।
सुखद सेज सोइ राजसिंहासन छत्र ओढ़ना सोहै।
चँवर चिकुर डोलत चहुं दिसि तें को वह जो नहिं मोहै।
बजत निसान जीति जग किंकिन कंकन की बहु भाँती।
झरत बादला मोती दीनी सोइ दीनन मति पाँती।
बँधुआ मदनहिं बाँधि मँगायो लै पाइन तर पेल्यो।
कियो खिराज सकल सुख संपति आनंदसिंधु सकेलो।
तब बन्दीजन बेद श्वास कढ़ि पढ्यो विरद अकुलाई।
कियो स्वेद अभिषेक रीति कचखसत कुसुम झर लाई।
राजतिलक सिर दियो महावर अधर सुधा नजरानो।
तिहि लहि सवस दियो सरोपा साथ नील पट बानो।
नाची बसर बारिमुखी तहँ परमानंद रह्यो छाई।
हरीचंद अवसर तब लिखिकै प्रेम जागीर लिखाई।

इसी तरह हरिमाया भटियारी का रूपक मनोरंजक है।[1]
भारतेंदु के मधुर और लघु रूपक उनकी अपनी विशेषता है—

---

१ विनय प्रेमपचासा

प्यारी कीरति-कीरति वेलि
प्रफुलित रूपरासि-कुसुमावलि गुनसुगधि रसकेलि।
सिंची प्रम जीवन हरि बारौ जनभव आतप ठलि।
हरीचद हरि कलपतरावर लपटी सुखहिं सकेलि।

सूरदास के प्रसिद्ध पद लखियत कालिदी अति कारी से प्ररित होने पर भी निम्न साग रूपक सूर के पद से हीन नही कहा जासकता। इससे यह स्पष्ट प्रमाणित हो जाता है कि भारतेन्दु राचमुच एक महाकवि थे। किसी महाकवि के मौडिल' पर काम करके मौलिक्ता की रक्षा सबसे अधिक कठिन काय है भारतेदु ने सयोगिनी यमुना का वणन किया है—

अहो सखि जमुना की गति ऐसी।
सुनत मुकु द गीत मधु श्रवनन विह्वल ह्वै गई कैसी।
भँवर पडत सोइ काम वेग सौं थकित होत गति भूली।
तरनि घास अकुरित देखियत सोइ रोमावलि फूली।
चुबन हित धावत लहरन सौं कर लै कमल अनेक।
मानहु पूजनहेत चरन कौं यह इक कियो विवेक।
चरनकमल के सदश जानि तेहि निसि दिन उरपैं राख।
हरीचन्द जहँ जल की यह गति अबलनि को कहा भाखै।

इसी प्रकार आनन्द सरिता का रूपक भी अत्यधिक स्वच्छ और सरल है।[१] इसी प्रकार सत्य हरिश्चद्र नाटक मे काल रूपी कापालिक स ध्याकाल मसान तथा पावस—मसान के रूपक भी कवि की कल्पना-वैभव के प्रमाण हैं।

भारतेन्दु काव्य मे सबसे अधिक रूपक का प्रयोग हुआ है। पदो मे रूपको की सफलता का कारण सूरदास से ली गई प्ररणा है रामचरित की

---

१ आजु तन आनद सरिता बाढी।
निरखत मुख प्रीतम प्यारे को प्रीति तरगिनि काढी।
लोक वेद दोउ कूल तरोवर गिरें न रहे सम्हारें।
हाव भाव के भरें सरोवर, बहे होइक न्यारे,
दुख दवानल परम विरह के प्रम परव भो भारी।
मीनबान के जे प्रमीजन जल लहि भए सुखारी।
भई अपार न छोर दिखाव नीतिनाथ नहिं चाली।

तरह सूरदास के काव्य से ली गई प्रेरणा मे सत्वचित्व उत्पन्न करने की अदभुत क्षमता है, कोई भी कवि बन सकता है—

सूर ! तुम्हारा ऐसा कुछ सत्काव्य है।
कोई कवि बन जाय, सहज सम्भाव्य है।

सूरदास पारस हैं जो उन्हे स्पर्श करता है, स्वर्ण बनता है। भारतेन्दु का काव्य-स्वर्ण उसी पारस मणि का प्रभाव है। संस्कृत के बहुत "लदड" रूपको से बचकर सूरदास ने स्वच्छ, स्पष्ट और छोटे छोटे रूपको द्वारा पाठको की कल्पना शक्ति जाग्रत करने की परम्परा स्थापित की थी। परवर्ती कवियो मे सबसे अधिक इस परम्परा की पहचान भारतेन्दु को थी— रत्नाकर" पर रीतिकाल का बहुत अधिक प्रभाव था।

भारतेन्दु मे सूरदास की रमावगाहन क्षमता तथा विनोद वृत्ति दोनो का अदभुत संयोग मिलता है किन्तु भारतेन्दु मे वह अनठापन नही मिलता जो सूरदास मे मिलता है अत वैषम्यमूलक अलकारो का प्रयोग उनमे बहुत कम मिलता है। भारतेन्दु 'रसिक' अधिक थे, रससिद्धता के लिए रसरूप भगवान कृष्ण और रसरूपिणी राधा के सौन्दर्य और विहार के चित्रण मे भारतेन्दु सूर के ही समकक्ष पहुचते प्रतीत होते हैं किन्तु सूरदास की वाणी मे जो विदग्धता है, वह भारतेन्दु मे नही है। शायद भारतेन्दु के पदो का अधिक प्रचार न होने का एक यह मुख्य कारण है। विदग्धता प्रधान युग मे केवल रसिकता का महत्त्व कुछ कम हो ही जाता है, यद्यपि होना नही चाहिए।

प्रकृति प्रयोग—प्रकृति का अप्रस्तुत विधान के रूप मे प्रयोग कोई नवीन बात नही है। प्रकृति से नवीन उपमान चुनने की ओर भारतेन्दु की रुचि भी नही थी। वह रस सिन्धु मे एक ऊब-डूबकर्त्ता कवि थे। फिर भी अलकारो के लिए दिए गए उक्त उदाहरणो को ध्यान से देखने पर यह स्पष्ट होगा कि कवि मे प्राकृतिक पदार्थों द्वारा वर्ण्यविषय को स्पष्ट करने की शक्ति अवश्य थी। इसके सिवा वर्ण्यविषय के अतिरिक्त उपमानो की अपना आकर्षण भी हमारे सम्मुख उक्त उदाहरणो मे प्रस्तुत किया है। मध्यकाल मे कवियो ने इसीलिए स्वतन्त्र और तटस्थ रूप मे प्रकृति का वर्णन नही किया था, क्योंकि मानवीय भावनाओ के सन्दर्भ मे ही प्रकृति की उपयोगिता को वे स्वीकार करते थे। द्रष्टा से रहित होकर 'दृश्य' की स्वतन्त्र सत्ता नही है, शायद इस सिद्धान्त का कुछ प्रभाव रहा हो, जो हो परन्तु यह निश्चित है कि दृश्य के सौन्दर्य का मानवीय भावो के माध्यम से ही व्यक्त किया गया है। सम्भवत कविगण

सोचते थे कि भाव के स्पश से प्रकृति का सौदय अपनत्व से युक्त हो जाता है।

बहरहाल भारतेदु मे प्रकृति को देखने की पद्धति अधिकाशत मध्यकालीन है। यह स्मरणीय है कि उद्दीपक रूप मे भी प्रकृति-वणन के लिए काफी गु जायश रहती थी। केवल इसी रूप मे प्रकृति के एक से एक सुदर चित्र भक्तो और रीतिकालीन कवियो ने प्रस्तुत किए हैं। उदाहरण के लिए सयोग मे नायक या नायिका का मन प्रसन्न है वे चारो ओर आमोद मूलक दृष्टिपात करते है। इस स्थिति म ही महाकवि देव ने रँगराती हरी हह राती लता चुक जाती समीर के झुकन सो जसे प्रकृति के अनुपम चित्र दिए हैं जिन्हे आजतक अपन्स्थ नही किया जा सका। इसी प्रकार पदमाकर द्वारा अँगारन के पु ज जैसे अनार के पुष्पो और पत्तो का बिहारी द्वारा अँगार जैसे उडते हुए जुगनुओ का मतिराम द्वारा मजुल बजुल कु जो और तमालो का तथा महाकवि देव द्वारा बसत प्राची आदि के वणना का गौरव आज भी सुरक्षित है। छायावाद मे उद्दीपनवादी रचनाओ की कमी नही है और उनमे सौदय का भी अभाव नही है। उद्दीपन के रूप मे चित्रित प्रकृति की सहानुभूति ही व्यक्त होती है अत भारतेन्दु ने पुरानी पद्धति के भीतर ही अपना कल्पनावैभव तथा प्रकृति प्रम प्रदर्शित किया है। तटस्थ होकर भी उन्होने प्रकृति को देखा है पर कम। उपमानो के रूप मे प्रकृति का सौन्दय केवल एक ही पद से स्पष्ट हो जायगा—

> आजु तन नीलाम्बर अति सोहै।
> तैसे ही केश खुले मुख ऊपर देखत ही मन मोहै।
> मनु तमगन लियो जीति यमुना सौतिन मध्य बध्या है।
> कै कवि निज जजमान जथ म सुदर आय बस्यो है।
> सघन तमाल कु ज मे मनु कोउ कुद फूल प्रगट्यो है।

इस प्रकार के अनेक पन्ने मे कवि ने प्रकृति से सुदर चित्रो को हमारे सम्मुख प्रस्तुत किया है। यह प्रकृतिप्रम का ही एक रूप है।

प्रकृति का दूसरा प्रयोग वहा मिलता है जहा कवि किसी मानवीय प्रसग मे प्रकृति का अपेक्षाकृत विस्तार से वणन करता है ऐसे स्थलो को तटस्थ चित्रण' के स्थल भी मान सकते हैं। भारतेदु ने ऐसे ही स्थलो मे अपने व्यापकतर स्नेह की व्यजना की है।

> श्याम पियारे आजु हमारे भोरहि क्यो पगुधारे।
> बिनु माल्क ही आज कहो क्यो घूमत नैन [illegible]

स्पष्टत. खडिता का प्रसग है परन्तु प्रकृति का कैसा यथार्थ वर्णन है—

दीपक जोति मलिन भई देखौ पच्छिम चन्द सिधार्‌यौ ।
सूरज किरन उदित उदयाचल पच्छिम शब्द उचार्‌यौ ।
कुमुदिनि सकुची कमल प्रफुल्लित चकवाक् सुख पायौ ।

इसी प्रकार बादलो का वर्णन है—

बादल—*आज कछु मगल घन उनए ।*
गरजत मद मद सोई मगल मनवत कु ज छए ।
बरसत बूँदन मनु अभिसेचत मगल कलस लए ।
चमकि मगलामुखी दामिनी मगल करत नए ।

बसन्त—सखी लखि यह रितु वन की शोभा ।
कुहकत कुज कु ज मे कोकिल लखि कै सब मन लोभा ।
नए नए वृक्ष नए नए पल्लव नए नए सब गोभा ।
नए नए पात फूल फूल नए नए नए देत हिये चोभा ।
सीतल चलत समीर सुहायो लेत सुगध झकोर ।
तैसोइ सुख घन उमडि रह्यो है, जमना जू लेत हिलोर ।
नाचत मोर और चहु ओरन गु जत अलि बहु भाँति ।
बोलत चातक सुक पिक चहु दिसि लखि कै घन की पाति ।

"दिवस का अवसान समीप था, गगन था कुछ लोहित हो चला" जैसे वर्णनो मे जो "तटस्थ अकन" है, उससे कम "तटस्थ अकन" यहाँ नही दिखाई पडता । इतना अन्तर अवश्य है कि इस पद के अन्त मे यह पक्ति जुडी हुई है—

जहँ राधा अरु माधव विहरत कु जन छिपि छिपि जावै ।

केवल इसी पक्ति से उक्त प्रकृति-वर्णन सयोग के उद्दीपक रूप मे स्वीकार कर लिया गया है । किन्तु ऐसे चित्रणो मे भी प्रकृति का तटस्थ चित्रण हुआ है, यह स्पष्ट है ।

इसी प्रकार सखी को सम्बोधित किए गए कई पदो मे प्रकृति के मनोहर चित्र कवि ने दिए हैं—

सखी री मोरा बोलन लागे ।
मनु पावस को टेरि बुलावत तासो अति अनुरागे ।

अथवा

देखि सखि चन्दा उदय भयो ।
"कबहुक प्रगट लखात कबहु बदरी की ओट भयो ।

इसी प्रकार वसत का प्रेम जोगिनी के रूप मे, सावन की रात का द्रोपदी के रूप मे, बसत का आक्रान्ता के रूप मे, चौथ के चाँद का बादर के टुकडे के रूप मे, और कही स्वतत्र रूप मे प्रकृति की छवियो का अकन किया गया है।[1] भारतेन्दु ने हिंडोला और होली के वर्णन मे वर्षा और बसन्त के एक से एक सुन्दर चित्र दिए हैं। कही कही अलकृत रूप मे प्रकृति दर्शन मे कवि ने अपनी सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति का परिचय दिया है—

उर बघनहा बिराजत सखि की उपमा नहिं कहि आवैरी।
मनु फूली अगस्त की कलिका सोभा अतिहि बढावै री।

बँगला के पयार छन्द मे सन् १८७४ ई० मे भारतेन्दु ने "प्रात समीरन" पर स्वतन्त्र रूप से एक कविता 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' मे प्रकाशित की थी। यह प्रकृति के 'तटस्थ चित्रण' का सुन्दरतम उदाहरण है। इसमे प्रात समीरण का गति, प्रभाव आदि का विस्तृत वणन मिलता है। इस प्रकृति वणन मे कई विधियो का प्रयोग किया गया है—

गति का वर्णन—नाचत आवत पात पात हिहिनात
तुरग चलत चाल पवन प्रभात।
आवै गुजरत रस फूलन को लेत
प्रात को पवन भौंर सोभा देत।

प्रभाव—गात सिहरात, तन लागत सीतल
रैन निद्रालस जनसुखद चचल।
नेत्र सीस सीरे होत सुख पावै गात
आवत सुगध लिए पवन प्रभात।

जिसे हम आज "मानवीकरण" कहते हैं, उसकी एक झलक पवन के विविध रूपो म अवश्य मिलती है—

---

१ कहु कहु सघन तरोवर सो मिलि मडल सुदर छायो।
पत्ररन्ध्र सो धूप चांदनी मिलि कै लगत सुहायो।
कहु कुटी कहु सघन कुटी कहु कदम खण्डिका छाई।
कहु वितान कहु कुज मडप, कहु छई छांह मन भाई।
झरना झरत विमल जल के जहु करत हस कल गाना।
कहु कहु झुके तरोवर जल मे, मनु निज प्रिय को भेंटें।
मुकुर माँहि सोभा लखि अपनी कै जिय को दुख मेटें।
कहु कहु कुड तलाब बावरी भरे फटिक से नीरा।
कहू झील लहरत अपने रग देखि दुरत दृग पीर

पातन कै पावै लेत पराग खिराज
आवत गुमान भरयो समीरन-राज ।

प्रात काल का वर्णन—

चटकै गुलाब फूल कमल खिलत—
कोई मुख बन्द करै परन हिलत ।
गावत प्रभाती बाजै मन्द मन्द ढोल—
कहूँ कहूँ जय द्विजगन जय बोल ।
उडत कपोत कहूँ काग करै रोर
चुहू चुहू चिरैयन कीनी अति रोर ।
बोलै तम चोर कहूँ ऊँचो करि माथ—
अल्ला अकबर करै मुल्ला साथ साथ ।
बुझी लालटैन लिए झुकि रहे माथ—
पहरू लटकि रहे लम्बो किए हाथ ।
स्वान सोये जहाँ तहाँ छिपि रहे चोर—
गऊ पास बच्छन अहीर देत छोर ।
दही फल फूल लिए ऊँचे बोल बोल,
आवत ग्रामीन जन चले टोल टोल ।
काज व्यग्र लोग धाए कन्धन हिलाय,
कमे कटि चुस्त बने पगडी हिलाय ।
अरुन किरन छाई दिसा भई लाल,
घाट नीर चमकन लागे तीन काल ।

कवि ने नगर मे बैठकर प्रात काल का वर्णन किया है और "मधुपवृत्ति" वाले कवियो की तरह केवल कमलो, कुमदो आदि को ही न देखकर कपोतो, कागो, मुसलमानो की अल्ला अकबर की पुकारो, ग्रामीणो द्वारा दही दूध की आवाजो को ही नही, कवि ने बुझी हुई लालटेन लिए हुए और नीद के कारण झुके हुए मस्तक वाले गरीब पहरेदारो को भी देखा है—हम प्रारम्भिक कवियो की कलाहीनता की निन्दा करते हैं किन्तु यह नही देखते कि इन महान आत्माओ मे प्रकृति और मनुष्य की एकता के प्रति कैसी निष्ठा थी। उनके मानववाद ने प्रकृति को भी मानवीय बनाया है, उनकी कला को मानवीय बनाया है।

"...शैशव की तरह भारतेन्दु ने भारत-भिक्षा नामक कविता मे

राजदरबार का भव्य वणन किया है।[1] इससे यह स्पष्ट होता है कि मानवकृत वस्तुओं के वणन की ओर भी कवि की रुचि थी।

इस प्रकार भारतेन्दु ने यद्यपि अधिकतर प्रकृति वणन म प्राचीन परम्परा का ही प्रतिपालन किया है परन्तु राजमाग पर गतिमान विभिन्न अश्वो की तरह उनकी अपनी गति है अपनी शान है। भारतेन्दु ने प्राचीन काव्य धरोहर को आगे बढाया किन्तु उस परम्परा का अपने मौजी स्वभाव और व्यापक सहानुभूति के कारण—विस्तार भी किया। प्रकृति के क्षेत्र मे भी भारतेन्दु के कतिपय प्रयोग नवीन हैं उस समय की दृष्टि से जब रीतिकालीन परम्परा प्रचलित थी प्रातसमारत जैसे वणन भारतेन्दु को आधुनिक युग के जन्मदाता का पद देते है। रत्नाकर अधिक प्रौढ और समासप्रधान ब्रजभाषा लिखते थे परन्तु भारतेन्दु जैसी व्यापक दृष्टि और मानवतावाद रत्नाकर मे उस मात्रा मे हरगिज नही था। भारतेन्दु के बाद सुन्दर के अतिरिक्त यथाथ जीवन और सुन्दर पदार्थों के साथ साथ साधारण पदार्थों के वणन की प्रवृत्ति पुन कविरत्न सत्यनारायण मे मिलती है। भारतेन्दु समकालीन कवियो मे भी यह प्रवृत्ति थोडी बहुत मात्रा मे मिलती है पर अधिक नही।

भारतेन्दु का प्रकृति दशन एक विश्वास पर आधारित था कि यह प्रकृति प्यारे कन्हैया की लीलाभूमि है। इस आशा और आमोदमूलक विश्वास के कारण प्रकृति के नाना रूपो के प्रति कवि की आसक्ति एक धार्मिक व्यक्ति जैसी आसक्ति होने के कारण गम्भीर और स्थायी मनोराग की व्यजिका है। प्रकृति को तमाशबीनो की तरह कवि ने नहीं देखा न *पदार्थपरिगणन प्रणाली'* किसी रोग के रूप मे तब प्रचलित थी। भारतेन्दु की प्रकृति का उल्लास जैसे पुरुष को रिझाने का एक प्रयत्न जैसा दिखाई पडता है अत प्रकृति और अपने

---

१ फर फर फहरत धुजा पताका।
चम चम चमकत कलस बलाका।
अटा अटारी बादर मोखन
छज्जे छातन गौख झरोखन
दीपक दीपक परत लखाई
मनु नभ मे तारावलि छाई।
दिन को रवि अकास लखि लज्जित
मनहु हीरगिरि खडव सज्जित।
छुटत अतसबाजी रगरगी।
गगन प्रकट मनु अनल फिरगी।

अन्तःकरण की एक सी स्थिति कवि को दिखाई पड़ती है। निष्ठा एक दृष्टि देती है। उसी दृष्टि से भारतेन्दु ने प्रकृति को देखा है अत प्रकृति उनके अपने मन के बहुत समीप है, वह कोई पराई वस्तु नहीं है। मनुष्य और प्रकृति के बीच किसी प्रकार का सघर्ष कवि ने कहीं नहीं देखा अपितु एक ही साध्य की ओर प्रधावित दो इकाइयों के रूप में कवि ने प्रकृति और अपने को देखा है—वह साध्य है—भगवान की नित्य लीला में प्रवेश! दुखी, विषमताग्रस्त, पराधीन और जड़-समाज के समानान्तर एक मनोमय वैकुण्ठ की कल्पना में जब तब मग्न होजाना बुरा नहीं था, इससे कवि निराश नहीं होता था। मन में एक सम, एक लय और एक स्वप्न रहने से बाह्य कटुता का सामना सुविधा से किया जा सकता है अत भारतेन्दु के मन में जो लय थी, जो स्वप्न था, उसी स्वप्न की पूर्ति के लिए प्रकृति को भी प्रयत्न करते हुए दिखाया गया। यह सक्षेप में कवि का "प्रकृति-दर्शन" था। इसके अतिरिक्त कवि के उपरिवर्णित प्रयोग भी मनोरंजक और कुतूहलवर्द्धक हैं। प्रयोगों की विशेषता यह है कि वे कवि की निष्ठा के साथ सलग्न हैं। निष्ठाहीनता में ही प्रयोग हो सकते हैं अथवा प्रयोगों के लिए किसी श्रेष्ठ विचारधारा में विश्वास अवाछनीय है, इस भ्रान्ति का खडन तो आधुनिक हिन्दी का विधाता ही कर देता है!

भारतेन्दु के ब्रजभाषा काव्य की महत्ता और सौन्दर्य को पीछे स्पष्ट किया जा चुका है। भारतेन्दु ब्रजभाषा के आधुनिक कवियों में महानतम कवि हैं, आज तक कोई कवि उनके समकक्ष नहीं पहुँचता प्रतीत होता। पुराने कवियों में वे एक ओर सूरदास के समकक्ष पहुँचते प्रतीत होते हैं तो दूसरी ओर रीतिकालीन कवियों से स्पर्धा करते प्रतीत होते हैं। भक्ति, रीतकालीन तथा लोककाव्य—इन तीनों पद्धतियों का अलग-अलग और एक साथ प्रयोग करने में भारतेन्दु अन्यतम कलाकार थे। उन्होंने ग्यारहवीं शताब्दी से अपने समय तक के काव्य-प्रवाह में अवगाहन करके अपनी प्रतिभा का प्रक्षालन किया था, साथ ही कोटि-कोटि जनता के मानस की सामूहिक अभिव्यक्ति जिन लोकगीतों में हो चुकी थी हो रही थी, उनकी शक्ति और सौंदर्य को स्वीकार किया था अत शिक्षित और शास्त्रीय तथा प्रचलित और स्वच्छन्द धाराओं का गगा-जमुनी मिलन भारतेन्दु में ही दिखाई पड़ता है। भारतेन्दु के ब्रजभाषा काव्य में 'सगम' जैसा सौन्दर्य है। त्रिवेणीसगम जैसी ही उनके काव्य में शुचिता और शाति का समन्वय है। भक्तिकाल की भागीरथी के सयोग के कारण रीतिकालीन यमुना [illegible] जो अधिक मटमैला होगया था, उसे भी 'स्वच्छ' रूप में प्रतिवि[illegible] [illegible] प्रयत्न भारतेन्दु ने किया था। अद्भुत थी, वह प्रतिभा

जिसने पौराणिकता, भक्तिकालीन भावुकता और रीतिकालीन रसिकता को इस प्रकार अपनाया है कि प्रत्येक का उज्ज्वल रूप ही हमारे सम्मुख प्रस्तुत हुआ है। भक्तिकाल की साम्प्रदायिकता पर उन्हाने जिस प्रकार जय प्राप्त की थी उसी प्रकार रीतिकालीन रसिकता का पाचन कर उन्होने अधिक उच्च मानसिक स्थितियो की व्यजना करने मे सफलता प्राप्त की थी।

भारतेन्दु का धार्मिक विश्वास सामयिक जागरूकता मे बाधक नही बनता। जिस प्रकार तुलसीदास अपने विश्वास का प्रचार करते हुए सामयिक जागरूकता मे अग्रगण्य थे उसी प्रकार भारतेन्दु ने अपने युग पर केवल अपने व्यक्तिगत विश्वास को आरोपित न करके, सामयिक जाग्रति को पहचानने का भी प्रयत्न किया था। इस सामयिक जागरूकता की प्रतिक्रिया सम्भवत उनके व्यक्तिगत विश्वास पर हुई थी और शायद इसीलिए उनके व्यक्तिगत विश्वास मे जडता और सकुचित भावना का अभाव मिलता है। इसी प्रकार सामयिक चेतना को भी कुछ उनके व्यक्तिगत विश्वासा ने प्रभावित किया था अत प्रेमदीक्षा मे दीक्षित भक्त कवि की तरह वह उग्र और अतिवादी नही हो सके। हिन्दी और तात्कालिक जाग्रति के लिए यह एक शुभ प्रवृत्ति थी। भारतेन्दु मे जो 'लचक' दिखाई पडती है, उसके बिना वह जागरणकार्य के लिए सगठन मे सफल नही हो सकत थे। यह "लचक' भारतेन्दु को प्रेम-साधना द्वारा प्राप्त हुई थी। सम्पूर्ण जगत् को यह समझना, माना वह किसी प्रेमी द्वारा प्रेम-प्रक्रिया की अनुभूति मात्र हो, भारतेन्दु की विशेषता थी और इस विशेषता ने ही उनके काव्य मे अक्षय रस भरा था। ब्रजभाषा मे व्यक्त वह "रस" ही सामयिक क्षोभ को सहन करने की शक्ति भारतेन्दु को देता था। 'रस' से हम परिचित हो चुके अब हम उस क्षोभ को देखेंगे जो आधुनिक क्रान्ति का प्रथम रूप था।

भारतेन्दु का जागरण-काव्य—प्रसाद जी ने भारतेन्दु की इस प्रवृत्ति को सर्वप्रथम पहचाना था कि भारतेन्दु "महान्" के अतिरिक्त लघु की आर भी दृष्टिपात करने वाले कवि थे। इससे भारतेन्दु की यथार्थवादी प्रवृत्ति अवश्य स्पष्ट होती है, परन्तु उनके जागरण-काव्य का पूर्ण रूप स्पष्ट नही होता। भारतेन्दु कोरे प्रमी भक्त ही न थे, वह अपने युग के परिवतनों को ध्यान से देख रहे थे। वर्गत साम्राज्यवाद के समर्थक परिवार मे जन्म ले‌ चिन्तन की दृष्टि से वह जनवादी थे अत जनमानस को आधार बना ऊपर के वर्गों पर दृष्टि डाली थी। सामान्य जन को आधार बन वाला

चिन्तक समाज का सही निदान करने म कभी गलती नहीं करता अत भारतेन्दु न अपन समाज के दु खो के निदान करत समय सबसे अधिक ध्यान अपन समाज की कमजोरिया पर दिया है और उन कमजोरियो क लिए जो वग उत्तरदायी थे उनकी खुलकर भत्स ना की है उनका उपहास किया है। भारतेन्दु जानते थे कि एक जागरूक समाज पर विदेशी शासन बहुत समय तक अपना प्रभाव नही रख सकता किन्तु वह यह भी जानते थ कि शिक्षा के साथ-साथ समाज मे विदशी शासन की कमजोरिया का पर्दाफाश भी आवश्यक है अन्यथा बिना राजनतिक चेतना के बिना आर्थिक चेतना के समाज केवल सुधारो से अपना उद्धार नही कर सकता। इस चिंतन म यह स्वाभाविक था कि भारतेन्दु से गलतिया हानी क्योकि सामाज विज्ञान और इतिहास विज्ञान के वह पडित नही थे यो पडित भी गलती कर जाते है। अत अँगरेजो के विषय म भारतेन्दु जी प्राय यह समझते थ कि देश म सुरक्षा और शाति-स्थापना करने म अँगरेजा की दन स्वीकार करनी ही होगी। । और इसके अतिरिक्त उनके अपने वग के चिन्तन का भी उन पर कुछ प्रभाव रहना स्वाभाविक ही था जो अँगरेजो को देश का हितैषी समझता था और राजभक्ति को गव से घोषित करता था।

इधर १८५७ की क्रान्ति पर कई इतिहास प्रकाशित हुए हैं। जब पी० सी० जोशी (साम्यवादी) जैसे लखक यह नहा मान सके कि १८५७ की क्रान्ति शुद्ध जनक्रान्ति थी तब सेना और मजूमदारा स क्या शिकायत हो सकती है।[1] अत जब अँगरेजा की देन के विषय म हम आज भी एकमत नही हो सके हैं तब यह आशा करना कि भारतेन्दु जैसे शान्त प्रकृति के विचारक अँगरजा के विरुद्ध साहित्य मे जिहाद बोल देते यह समय से अधिक आगे की माग है। फिर भी भारतेन्दु युग के लेखका म अँगरेजो द्वारा होने वाली सबसे बडी आर्थिक हानि के प्रति अत्यधिक रोष था। भारतेन्दु जी देश की आर्थिक दुरवस्था स सबसे अधिक चिंतित दिखाई पडते हैं अत साम्राज्यवाद के दबाव के उस बिन्दु का भारतेन्दु न हमारे राजनैतिक विचारका के पूव और उनके पथ प्रदशन के बिना ही पहचान लिया था जिस बिन्दु पर देश की सबसे अधिक हानि हो रही थी।

मरे एक राजनीतिज्ञ और इतिहासज्ञ मित्र का कथन है कि साहित्यकार प्राय दार्शनिकों मनोवैज्ञानिका अथवा राजनीतिज्ञा का अनुकरण करता है।

---

१ । ज्यक्रान्ति—डा० रामविलास शर्मा

प्रगतिवाद मार्क्सवाद का साहित्यिक सस्करणमात्र है, इसी प्रकार मनोविज्ञान का प्रचार इधर के उपन्यासो मे मिलता है, मध्यकाल मे साहित्य किसी दार्शनिक या धार्मिक का अधानुगामी दिखाई पडता है अत साहित्य को इतना महत्त्व देने की आवश्यकता ही क्या है ? इसके सिवा थोडा बहुत "पाप्यूलराईजेशन"—दूसरो के विचारो के प्रचार के अलावा साहित्य का *अपना प्रकाश क्या है ?*

यद्यपि उक्त कथन निराधार नही है किन्तु पूर्णत सत्य भी नही है। जीवन को देखने और समझने के लिए किताबी ज्ञान के बिना भी कवियो ने सफलता प्राप्त की है और लोक साहित्य तो उक्त तथ्य को पूर्णत खडित कर देता है। लोकसाहित्य क्रान्ति का वास्तविक आधार बनता है और लोकसाहित्य केवल अपने वास्तविक जीवन-अनुभवो पर ही आधारित रहता है। इसके सिवा हमारे मध्यकालीन कवियो और भारतेन्दु के बाद के कवियो के विषय मे उक्त सिद्धान्त एक सीमा तक भले ही लागू होता हो किन्तु भारतेन्दु युग के कवि राजनीतिज्ञो के मैदान मे आने के पूर्व ही राजनैतिक, सामाजिक और राष्ट्रीय चेतना फैलाते हुए दिखाई पडते है। सन् १८८५ मे कांग्रेस की स्थापना हुई किन्तु १८५७ की क्रान्ति के बाद ही हमारे अग्रचेता कवियो और लेखकों ने अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया था अत बाद के राजनीतिज्ञ भी भारतेन्दु-युग से प्रेरणा ले सकते थे और कुछ उनसे प्रेरित हुए भी थे। आधुनिक भारतीय राजनीत के प्रथम केन्द्रबिन्दु भारतेन्दु और उनके समकालीन लेखक ही थे। राजनीति विज्ञान के विशेषज्ञ बाद ही मे सम्मुख आए अत. भारतेन्दु के विषय मे उक्त मित्र की धारणा गलत साबित होती है।

राज्यभक्ति बनाम देशभक्ति—सन् १८५८ ई० के नवम्बर मास मे विक्टोरिया की घोषणा ने बदनाम कम्पनी के शासन को समाप्त कर दिया। सम्पूर्ण सधियो के पालन की घोषणा हुई। देशी राजाओ का अस्तित्व सुरक्षित कर दिया गया। रगभेद की नीति के विरुद्ध समान अवसर देने का भी आश्वासन मिला। धर्म मे हस्तक्षेप न करने की नीति घोषित हुई। फलत भारतवर्ष के लोगो की प्रसन्नता का एक आधार अवश्य था। आज की दृष्टि से विक्टोरिया की यह एक चाल थी और इसका विरोध होना चाहिए था किन्तु उस समय क्रान्ति के बाद के भारत से पूछिए, अनुमान कीजिए क्रान्तिकारियो के सघर्ष को अत क्रान्ति की असफलता के बाद भी सुविधाओ की घारणाओ का स्वागत किया गया और उनमे देश को अपनी क[illegible] एक "प्रच्छन्न विजय" की भी ध्वनि सुनाई पडी। अत· 'विक्टोरिया' की [illegible] भी ने एक स्वर से की है। भारतेन्दु ने विक्टोरिया को "पूरी अमी[illegible]" कहा

है। अन्यत्र उन्होंने ईश्वर से महारानी की सुरक्षा और स्वास्थ्य की कामना की है—

> प्रभु रच्छहु दयाल महारानी।
> बहु दिन जिए प्रजा सुखदानी।
> रहै प्रसन्न सकल भय खोई।
> राज करै बहु दिन नौं सोई।

इसे कवि ने जातीय सगीत कहा है। इस जातीय सगीत मे जो विक्टोरिया की प्रशस्ति है अकाल और उपद्रवो को भी कवि नही भूल सका है। अर्थात राज्यभक्ति के नाजुक से नाजुक अवसरो पर भी कवि अपने देश की दुदशा की ओर शासको का ध्यान आकर्षित करता है। लाड रिपन के लिए लिखे गए अष्टक मे भी कवि की प्रशसा का आधार लार्ड रिपन द्वारा की गई प्रजा सेवा ही है—लाड रिपन को कवि ने मुद्रास्वाधीन करन पीडित जन दया प्रकाशन प्रजाराज्यस्थापन करन दीन भारत विपद हरन कर वधन मथर कर जनसिच्छाहितसमिति सिच्छा-सस्थापक सेतासेत वरन सम सम्मत मापक जन दुखमारन' आदि विशेषण दिए हैं और स्पष्ट कहा है कि क्लायव से लिटन तक कोई लाड देश की भक्ति नही पा सका केवल लाड रिपन ही देश का प्रेम प्राप्त कर सके हैं—भारतेन्दु मे दास-मनोवृत्ति कहाँ है ?

> जदपि बाहुबल क्लाइव जीत्यौ सगरो भारत।
> जदपि और नाटनहू को जन नाम उचारत।
> जदपि हेस्टिग्ज आदि साथ धन लै गए भारी।
> जदपि लिटन दरबार कियो सजि बडी तयारी।
> पै हम हिन्दुन के हीय की भक्ति न काहू सँग गई।
> सो केवल तुमरे सँग रिपन छाया सी साथिन भई।

इस प्रकार भारतेन्दु की राज्यभक्ति सवदा देश के प्रति किए गए काव्यो को ध्यान मे रखकर घटती बढती थी। भारत वीरत्व' मे अँगरेजी राज्य की प्रशसा मे भी कवि ने देश के लिए किए गए काव्यो का स्मरण किया है—

> बाँधि सेत जिन सुतर किए दुस्तर नद नारे।
> रची सडक बेधडक पथिक हित सुख बिस्तारे।
> निकम प्रति प्रबल पाहरू बिए बिठाई।
> — भय सा चोर वृन्द सब रहे दुराई।
> ग्र दत्तकप्रथा कृपा करि निज थिर राखी।

भूमि कोख को लोभ तज्यो जिन जग करि साखी।
करि वारड कानून अनेकन कुलहिं बचायो।
विद्यादान महान नगर प्रति नगर चलायो।
सबही विधि हित किये विविध विधि नीति सिखाई।

मतलब यह कि सुरक्षा, कानून, शाति, व्यवस्था आदि की स्थापना के कारण कवि राज्य की प्रशसा करता है। मिश्र विजय के समय (१८८२ ई०) अँगरेजो की देखरेख मे युद्ध करने वाली भारतीय सेना की प्रशसा कवि न इसलिए की है कि वह "भारतीय" सेना थी—

आरजगन के नाम आजु सब ही रखि लीनो।
पुनि भारत को सीस जगत महँ उन्नत कीनो।

किन्तु इसी 'भारत वीरत्व' मे ही कवि अँगरेजो द्वारा की गई लूट पर रो उठता है—

जो भारत जग मे रह्यो, सबसो उत्तम देस।
ताही भारत मे रह्यो, अब नहिं सुख को लेस।
याही भुव मे होत हैं, हीरक, आम, कपास।
इतही हिमगिरि, गगजल, काव्यगीत परगास।
हाय वहै भारत भुव भारी,
सब ही विधि तें भई दुखारी।
रोम ग्रीस पुनि निज बल पायो,
सब विधि भारत दुखित बनायो।

इस कविता मे कवि ने बताया है कि स्याम, और जापान से भी भारत की दशा हीनतर होगई है। भारतेन्दु कहते हैं कि रोम नष्ट होगया, वैभव के चिन्ह न रहे, यह अच्छा है क्योकि इस अधीनता मे चित्तौड जैसे अवशेषो को देखकर दुःख होता है।

जा दिन तुव अधिकार नसायो।
ताही दिन विन धरनि समायो।

प्राचीन भारतीय गौरव की गाथा का [illegible] साम्राज्यवाद के विरुद्ध किस प्रकार जनता को सगठित करता था, इसका [illegible] प्रमाण है—"भारत-वीरत्व"। कवि ने ऊपर से अँगरेजा के लिए मिस्र देश [illegible] [illegible]ने की प्रेरणा दी है परन्तु इस काव्य का मतव्य अँगरेजो के विरुद्ध क्रा[illegible]

[illegible] फेरी।
सोई भारत भूमि भई सब भाँति [illegible] सोई।
रह्यो न एकहु वीर सहस्रन कोस [illegible] कोई।

भारतेन्दु युग के कवियो मे सवथा स्वच्छन्द माग का अनुसरण करने वाले कवियो मे ठाकुर जगमोहनसिंह उल्लेखनीय हैं। जगमोहन ने अनेक प्रकार की रचनाएँ प्रस्तुत की है।[1] परन्तु प्रमुखत वह प्रम और प्रकृति के स्वच्छन्द कवि थे। रीतिकाल मे जो स्थान घनानन्द का था वही स्थान भारतेन्दुयुग मे जगमोहन का था। जगमोहन के काव्य मे कही भी आयासप्रियता नही है जैसे उमडते हुए भाव स्वय व्यक्त हो गए हो। फिर भी जगमोहन की भाषा एकदम निमल है। ठाकुर साहब प्रमी को रिझाने और पटाने की कला मे सबसे अधिक प्रवीण प्रतीत होते हैं। उनके काव्य की पसु एसिवनैस वडी ही मार्मिक है।

पैंयाँ परौ वनि हा हा करौ चल बगि बुझाइय ताप जो वाको।
दीज दिखाय अली मुखचन्द न जीवहिगो पिय तेरे बिना को।
बैठो वहाँ मनमोहन है मिलि भटि अनद लहौ जु छिना को।
पाछ भले पछितावहुगी यह जोबन पाहुनो चार दिना को।

आत्माभिव्यजन जसा ठाकुर जगमोहनसिंह मे मिलता है उसे पढ कर आज का गीतिकार भी ईर्ष्या कर सकता है क्योकि ठाकुर जगमोहन सिंह की आत्माभिव्यक्ति मे आप बीती का वणन स्वाभाविक है, पोषित अथवा आरोपित नही है।[2] अत रीतिकालीन काव्य से जगमोहन का काव्य भिन्न स्वभाव वाला है।

भारतेन्दु युग मे प्रत्येक कवि ने उदू के आधार पर कविताएँ लिखी हैं किन्तु उसे कोई भी पचा नही सका। एक मात्र कवि जगमोहन ही इस काय मे सफल हुए है। उदू की धारा को वे इस स्वच्छ पद्धति पर व्यक्त करने वाला अन्य कोई कवि नही मिलता।[3]

---

१ दोहावली, प्रमरत्नाकर, प्रमिताक्षर दीपका, ऋतुसहार, प्रम हजारा, कुमार सम्भव पचक, चित्रकूट वणन, कपोत विरहाष्टक, मेघदूत, सज्जनाष्टक, श्यामा[illegible], प्रम सम्पत्तिलता, श्यामास्वप्न के पद्य।

२ यह भाग की मेरी सदा गति री, अति रोवति प्यासी रहैं अखियाँ।
इनको न मिल्यौ सुपने सुख हाय ए पातकी घातकी सी दुखियाँ।
लगतो नहिं बैर इन्हें लगते लखते जगमोहन की सखियाँ।
सुख राम रच्यौ न इन्हें कबहू, समझावत कोऊ नहीं सखियाँ।

३ निसि द्यौस तिहारई सूरति श्यामली लेखिबे कौं अखियाँ ललक।
मुख रूप सुधानिधि देखे बिना कहू नींदहु मे न लग पलक।

भारतेन्दुयुग के अन्य कवियो ने राधा-कृष्ण पर अधिक लिखा है अत उनमे आत्माभिव्यजन की मात्रा जगमोहन से बहुत कम है। यद्यपि सूफियो की तरह ठकुर साहब ने भी अपनी प्रमिका को आराध्य बना दिया है परन्तु निजी प्रम की व्यजना के कारण वह पाठको के हृदयो के अधिक निकट प्रतीत होती है। जगमोहन की कविता भक्त की आत्तपुकार नही है वह लौकिक प्रम के मधुर दाह से मार्मिक हुइ है।[१]

प्रम काव्य की दृष्टि से भारतेन्दु युग म जगमोहन का अपना महत्त्व है। अन्य कोइ कवि उनका अनुकरण नही कर सका।

प्रकृति के यथाथ किन्तु भव्य वणन जैस जगमोहन क काव्य मे मिलते हैं वैसे वणन अन्यत्र दुलभ हैं। अन्य कवियो मे विषय वैविध्य तो है किन्तु कला का स्वरूप स्थिर नही हो पाया है। जगमोहन ने छन्द पुराने चुने हैं परन्तु वणन नवीन हैं। महानदी की बाढ का दृश्य देखिए—

गहा कीट कोरी कढ धाम छोडी।
चढ डार डारे मढ जौंक दौडी।
कहू वच्छ के हान गैया डकार।
कहूँ वच्छ हू मातु गऊ पुकारै।
पडा हू पड भूमि कपै दुखारी।
सैसै वच्छ धनु मरैं सीत भारी।
कहूँ पख ओदे गिरे भूमि पखी।
गुहेरिनि हेरैं तिन्हैं जो असखी।

चित्रकूट का पुरानी शैली मे भव्य वणन देखिए—

जगमोहन मूरति जीवन मूरि बिना तेहि प्यासी परी झलकै।
निज तेरी गलीन की पावन धूरि कौ अन्जन आजि सदा कलकै।
—श्रीधर पाठक—रामचद्र मिश्र पृष्ठ १३२

१ सोवत सरोज मुखी सपने मिली री मोहि—
तारापति तारन समेत छिति छायो री।
कज कर कोमल पकरि जगमोहन जू
अधर गुलाब चूमि मधुप लुभायो री।
चकृत सों बैरिन कहाँ से खुली घौं आख—
हाय प्रानप्यारी हाय कठ न लगायो री।

जहँ पुरैन के हरित पात बिच पक्ज पाँति सुहाई।
मनु पन्नन के पत्र पत्र पै कनक सुमन छवि छाई।
नील पीत जलजात पात पर बिहँग मधुर सुर बोलें।
मधुकर माधवि मदन मत्तगन मैन अधर से डोलें।

प्रकृति का उद्दीपक रूप भी कवि ने अत्यधिक सशक्त और शिथिलता रहित शैली मे चित्रित किया है—

श्यामल श्याम लखात चहू नभ मडल मे बग पाति सुहाई।
मूल हरी हरी गलैं गई मुँदि हा हा हरी सुधि हू बिसराई।
त्या जगमोहन पीरी परी बिरहानल ने सब देह जगाई।
तेरे बिना घन घरि घटा तरवार लै बिज्जु अटा चढ़ि आई।

अथवा

जलनिधि जल गहि जलधर तारन धरनीधर धर आए।
पटल पयोधर नवल सहावन इत उत नभ घन छाए।
फरफरात चचल चपला मनु घन अवली दृग राजैं।
गरजत घूमि भूमि छवै बादर धूम घूसरे साजैं।

लेखनी और हृदय दोना की शक्ति और समद्धि जगमोहनसिंह के काव्य की विशेपता है। ब्रजभापा को रीतिकाल के बन्धना से मुक्त करने म जगमोहन का काय महत्वपूण है। प्रकृति और प्रम के क्षत्र म जगमोहन भारतेन्दु और प्रमघन के ही समान समय कवि हैं। उनके काव्य मे अव्यवस्था नही है। प्रयोगो के लिए वह उतने आतुर नही थे जितने किसी प्रचलित प्रयोग को सफलता क साथ निर्वाह करने के लिए वह उत्सुक थे।

यह कथन सही नही है कि जगमोहन का स्वच्छन्दतावाद कोई अप्रत्याशित वस्तु थी। भारतेन्दु युग मे प्रत्येक कवि स्वच्छन्दतावादी था। किन्तु इसमे सन्देह नही कि भारतेन्दु युग के अन्य कवि प्रम के क्षत्र के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रो म स्वच्छन्द प्रयोग अधिक करते थे। प्रम के क्षत्र मे लोकगीता का प्रयोग अवश्य नूतन स्वच्छन्द प्रयोग था किन्तु जगमोहनसिंह ने पुरानी शैली म ही घनानन्द की तरह भावना की स्वच्छन्दता प्रकट की है।

भारतेन्दुयुगीन श्रप्ठ कविया मे प्रमघन ने भारतेन्दु का यथावत् अनुगमन करने का प्रयत्न किया था। भारतेन्दु की ही तरह प्रमघन ने सद्धर्भ सभा और रसिक समाज की स्थापना की थी (तदीय सभा के अनुकरण पर)। भारतेन्दु की पत्रिकाआ स प्ररित होकर प्रमघन ने आनन्दकादम्बिनी (सवत् १९३८ वि०) और पुन नागरी नीरद नामक पत्र निकाला था। उनकी

सम्पूर्ण काव्यरचनाओं का आदर्श भारतेन्दु की रचनायें थी।[1] प्रेमघन (जन्म १८५५ ई० मृत्यु १९२२ ई०) ने भारतेन्दु युग के अतिरिक्त द्विवेदी युग भी देखा था अत खडी बोली मे भी अन्य कवियो से कुछ अधिक मात्रा मे लिखा है, किन्तु समग्रत प्रेमघन भारतेन्दु युग के बाद अपने युग का ही प्रतिनिधित्व करते हैं।

भारतेन्दु मे जो समाज के यथावत् चित्रण की प्रवृत्ति मिलती है, वह प्रवृत्ति प्रमधन के जीणजनपद मे सुरक्षित है, यह स्मरणीय है कि इस काव्य की रचना सवत १९६६ वि० मे हुई अर्थात् भारतेन्दु की मृत्यु के बाद। यह भी सम्भव है कि श्रीधर पाठक के ऊजड ग्राम से कवि प्रभावित हुआ हो। जो हो, भारतेन्दु युग के यथार्थवाद की प्रवृत्ति का सर्वोत्तम रूप प्रमधन के ग्रामीण चित्रणो म मिलता है। लोग रटते आ रहे है कि भारतेन्दु युग की ब्रजभाषा मे रीतिकालीनता मिलती है परन्तु ग्रामो का यह वणन देखिये—

> खेतन म जल भरयो शस्त्र उठि ऊपर लहरत।
> चारहुँ ओरन हरियारी ही की छवि छहरत।
> भोरी भोरी ग्राम वधू इक सग मिलि गावत।
> इक सुर म रस भरी गीत झनकार मचावति।
> कहुँ नागरी नवेली ए तीखे सुर पावैं।
> रगभूमि को कोरस सो रस वद वरसावै।

---

१ प्रेमघन सर्वस्व मे प्रकाशित रचनाएँ। जीर्णजनपद, गोल्डस्मिथ के Deserted Village का अनुवाद। "अलौकिक लीला"—द्विवेदी युग की कृति है, प्रियप्रवास के अनुकरण पर। युगल स्तोत्र, ब्रजचन्द-पंचक, कलिकालतर्पण, पितर-प्रलाप, (भारतेन्दु के बकरी विलाप से प्रभावित) शोकाश्रुबिन्दु (भारतेन्दु के देहावसान पर), होली की नकल (भारतेन्दु कृत "उर्दू का स्यापा" के अनुकरण पर), मन की मौज, प्रेम-पीयूष वर्षा (कवित्त सवैये), सूयस्तोत्र, मगलाशा (दादाभाई नौरोजी के सन्सद् सदस्य होने पर) हास्यबिन्दु, हार्दिक हर्षादर्श (विक्टोरिया-स्तुति) आनन्द बधाई (हिन्दी के कचहरी प्रवेश पर) लालित्य लहरी (दोहे) भारत बधाई (सम्राट एडवर्ड सप्तम के अभिषेक पर) स्वागत सभा, आनन्द अरुणोदय (खडी बोली मे) आर्याभिनन्दन (प्रिंस अलबर्ट के आगमन पर) सौभाग्यसमागम (पचमजार्ज प्रशसा) मयक महिमा (खडी बोली) सगीत काव्य (गजलें, कजलियाँ, होलियाँ, ठुमरी आदि)।

भारतेन्दु युग के कवियो मे सर्वथा स्वच्छन्द मार्ग का अनुसरण करने वाले कवियो म ठाकुर जगमोहनसिंह उल्लेखनीय हैं। 'जगमोहन' ने अनेक प्रकार की रचनाएँ प्रस्तुत की है।[1] परन्तु प्रमुखत वह प्रेम और प्रकृति के स्वच्छन्द कवि थे। रीतिकाल म जो स्थान घनानन्द का था वही स्थान भारतेन्दुयुग मे 'जगमोहन' का था। जगमोहन के काव्य म कही भी आयासप्रियता नही है जैसे उमडते हुए भाव स्वय व्यक्त हो गए हो। फिर भी जगमोहन की भाषा एकदम निर्मल है। ठाकुर साहब प्रेमी को रिझाने और 'पटाने' की कला मे सबसे अधिक प्रवीण प्रतीत होते हैं। उनके काव्य की पर्सुएसिवनेस" बडी ही मार्मिक है।

पैयाँ परौ बलि हा हा करौ चल वगि बुझाइय ताप जो वाको।
दीजै दिखाय अली मुखचन्द न जीवहिगो पिय तेरे बिना को।
बैठो वहाँ मनमोहन है मिलि भेटि अनद लहौ जु छिना को।
पाछे भल पछितावहुगी यह जोबन पाहुनो चार दिना को।

आत्माभिव्यजन जैसा ठाकुर जगमोहनसिंह मे मिलता है, उसे पढ कर आज का गीतिकार भी ईर्ष्या कर सकता है क्योकि ठाकुर जगमोहन सिंह की आत्माभिव्यक्ति मे आप बीती का वणन स्वाभाविक है, घोषित अथवा आरोपित नही है।[2] अत रीतिकालीन काव्य स जगमोहन का काव्य भिन्न स्वभाव वाला है।

भारतेन्दु युग मे प्रत्येक कवि ने उर्दू के आधार पर कविताएँ लिखी हैं किन्तु उम कोई भी पचा नही सका। एक मात्र कवि जगमोहन ही इस कार्य मे सफल हुए हैं। उर्दू की धारा को इस स्वच्छ पद्धति पर व्यक्त करने वाला अन्य कोई कवि नहीं मिलता।[3]

---

१ दोहावली, प्रेमरत्नाकर, प्रमिताक्षर दीपका, ऋतुसहार, प्रेम हजारा, कुमार सम्भव, पव[illegible], चित्रकूट वर्णन, कपोत विरहाष्टक, मेघदूत, सज्जनाष्टक, श्याम[illegible]र, प्रेम सम्पत्तिलता, श्यामास्वप्न के पद्य।

२ यह भाग की मेरी सदा गति री, अति रोवति प्यासी रहें अखियाँ।
इनको न मिल्यौ सुपने सुख हाय ए पातकी चातकी सो दुखियाँ।
लगती नहि बेर इन्हें लगते लखते जगमोहन की सखियाँ।
सुख राम रच्यो न इन्हें कबहू, समुझावत कोऊ नहीं सखियाँ।

३ निसि द्यौस तिहारई सुरति श्यामली लेखिबे को अखियाँ ललकें।
तुव रूप सुधानिधि देखे बिना कहू नीदहु मे न लगें पलकें।

भारतेन्दुयुग के अन्य कवियो ने राधा-कृष्ण पर अधिक लिखा है अत उनमे आत्माभिव्यजन की मात्रा जगमोहन से बहुत कम है। यद्यपि सूफियो की तरह ठाकुर साहब ने भी अपनी प्रेमिका को आराध्य बना दिया है परन्तु निजी प्रेम की व्यजना के कारण वह पाठको के हृदयो के अधिक निकट प्रतीत होती है। जगमोहन की कविता भक्त की अर्न्तपुकार नही है, वह लौकिक प्रेम के मधुर दाह से मार्मिक हुई है।[1]

प्रेम काव्य की दृष्टि से भारतेन्दु युग मे जगमोहन का अपना महत्त्व है। अन्य कोई कवि उनका अनुकरण नही कर सका।

प्रकृति के यथार्थ किन्तु भव्य वर्णन जैसे जगमोहन के काव्य मे मिलते हैं, वैसे वर्णन अन्यत्र दुर्लभ हैं। अन्य कवियो मे विषय वैविध्य तो है, किन्तु कला का स्वरूप स्थिर नही हो पाया है। जगमोहन ने छन्द पुराने चुने हैं परन्तु वर्णन नवीन हैं। महानदी की "बाढ" का दृश्य देखिए—

महा कीट कीटी कढें धाम छोडी।
चढे डार डारे मढे जौंक दौडी।
कहूँ वच्छ के हीन गैया डकारें।
कहूँ वच्छ हू मातु गाया पुकारै।
पशा हू पडे भूमि कम्पै दुखारी।
सेंसे वच्छ धेनु मरें सीत भारी।
कहूँ पख ओदे गिरे भूमि पखी।
गुहेरिनि हेरैं तिन्हैं जो असखी।

चित्रकूट का पुरानी शैली मे भव्य वर्णन देखिए—

जगमोहन मूरति जीवन मूरि बिना तेहि प्यासी परी झलकें।
निज तेरो गलीन की पावन धूरि कौ अन्जन आँजि सदा कलकें।
—श्रीधर पाठक—रामचन्द्र मिश्र पृष्ठ १३२

१ सोवत सरोज मुखी सपने मिली री मोहि—
तारापति तारन समेत छिति छायो री।
कज कर कोमल पकरि जगमोहन जू
अधर गुलाब चूमि मधुप लुभायो री।
चहूत सों बैरिन कहाँ से खुली धौं आँख—
हाय प्रानप्यारो हाय कठ न लगायो री।

जहँ पुरैन के हरित पात बिच पकज पाँति सुहाई।
मनु पन्नन के पत्र पत्र पै कनक सुमन छवि छाई।
नील पीत जलजात पात पर विहँग मधुर सुर बोलै।
मधुकर माधवि मदन मत्तगन मँन अधर से डोलै।

प्रकृति का उद्दीपक रूप भी कवि ने अत्यधिक सशक्त और शिथिलता रहित *शैली मे चित्रित किया है*—

श्यामल श्याम लखात चहू नभ मडल मे बग पाँति सुहाई।
मूल हरी हरी गैलै गई मुँदि हा हा हरी सुधि हू बिसराई।
त्यो जगमोहन पीरी परी, बिरहानल ने सव देह जगाई।
तेरे बिना घन घेरि घटा, तरवार लै बिज्जु अटा चढि आई।

अथवा

जलनिधि जल गहि जलधर वारन धरनीधर धर आए।
पटल पयोधर नवल सुहावन इत उत नभ घन छाए।
फरफरात चचल चपला मनु घन अवली दृग राजै।
गरजत घूमि भूमि छ्वै बादर घूम धूसरे साजै।

लेखनी और हृदय दोनो की शक्ति और समृद्धि जगमोहनसिंह के काव्य की *विशेषता है। व्रजभाषा को रीतिकाल के बन्धनो से मुक्त करने मे जगमोहन* का कार्य महत्वपूर्ण है। प्रकृति और प्रेम के क्षेत्र मे जगमोहन भारतेन्दु और प्रेमघन के ही समान समर्थ कवि हैं। उनके काव्य मे अव्यवस्था नही है। प्रयोगो के लिए वह उतने आतुर नही थे, जितने किसी प्रचलित प्रयोग को सफलता के साथ निर्वाह करने के लिए वह उत्सुक थे।

यह कथन सही नही है कि जगमोहन का स्वच्छन्दतावाद कोई अप्रत्याशित वस्तु थी। भारतेन्दु युग मे प्रत्येक कवि स्वच्छन्दतावादी था। किन्तु इसमे सन्देह नही कि भारतेन्दु युग के अन्य कवि प्रेम के क्षेत्र के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रो मे स्वच्छन्द प्रयोग अधिक करते थे। प्रेम के क्षेत्र मे लोकगीतो का प्रयोग अवश्य नूतन स्वच्छन्द प्रयोग था किन्तु जगमोहनसिंह ने पुरानी शैली मे ही, घनानन्द की तरह भावना की स्वच्छन्दता प्रकट की है।

भारतेन्दुयुगीन श्रेष्ठ कवियो मे प्रेमघन ने भारतेन्दु का यथावत् अनुगमन करने का प्रयत्न किया था। भारतेन्दु की ही तरह प्रेमघन ने सद्धर्म सभा और रसिक समाज की स्थापना की थी (तदीय सभा के अनुकरण पर)। *भारतेन्दु की पत्रिकाओ से प्रेरित होकर प्रेमघन ने आनन्दकादम्बिनी* (सवत् १९३८ वि०) और पुन "नागरी नीरद" नामक पत्र निकाला था। उनकी

सम्पूर्ण काव्यरचनाओं का आदर्श भारतेन्दु की रचनायें थी।[1] प्रेमधन (जन्म १८५५ ई० मृत्यु १६२२ ई०) ने भारतेन्दु युग के अतिरिक्त द्विवेदी युग भी देखा था अत खडी बोली मे भी अन्य कविया से कुछ अधिक मात्रा मे लिखा है, किन्तु समग्रत प्रेमधन भारतेन्दु युग के बाद अपने युग का ही प्रनिनिधित्व करते हैं।

भारतेन्दु मे जो समाज के यथावत् चित्रण की प्रवृत्ति मिलती है, वह प्रवृत्ति प्रमधन के जीणजनपद मे सुरक्षित है, यह स्मरणीय है कि इस काव्य की रचना सवत् १६६६ वि० मे हुई अर्थात् भारतेन्दु की मृत्यु के बाद। यह भी सम्भव है कि श्रीधर पाठक के ऊजड ग्राम से कवि प्रभावित हुआ हो। जो हो, भारतेन्दु युग के यथार्थवाद की प्रवृत्ति का सर्वोत्तम रूप प्रेमधन के ग्रामीण चित्रणा म मिलता है। लोग रटते आ रहे हैं कि भारतेन्दु युग की व्रजभाषा मे रीतिकालीनता मिलती है परन्तु ग्रामो का यह वर्णन देखिये—

खेतन मे जल भरयो शस्त्र उठि ऊपर लहरत।
चारहुँ ओरन हरियारी ही की छवि छहरत।
भोरी भोरी ग्राम वधू इक सग मिलि गावत।
इक सुर म रस भरी गीत झनकार मचावति।
कहूँ नागरी नवेली ए तीखे सुर पावैं।
रगभूमि को कोरस सो रस वद वरसावैं।

---

१ प्रेमघन सर्वस्व मे प्रकाशित रचनाएँ। जीर्णजनपद, गोल्डस्मिथ के Deserted Village का अनुवाद। "अलौकिक लीला"—द्विवेदी युग की कृति है, प्रियप्रवास के अनुकरण पर। युगल स्तोत्र, ब्रजचन्द-पंचक, कलिकालतर्पण, पितर-प्रताप, (भारतेन्दु के बकरी विलाप से प्रभावित) शोकाश्रुबिन्दु (भारतेन्दु के देहावसान पर), होली की नकल (भारतेन्दु कृत "उर्दू का स्यापा" के अनुकरण पर), मन की मौज, प्रेम-पीयूष वर्षा (कवित्त सवैये), सूर्यस्तोत्र, मगलाशा (दादाभाई नौरोजी के सन्सद् सदस्य होने पर) हास्यबिन्दु, हार्दिक हर्षादर्श (विक्टोरिया-स्तुति) आनन्द बधाई (हिन्दी के कचहरी प्रवेश पर) लालित्य लहरी (दोहे) भारत बधाई (सम्राट एडवर्ड सप्तम के अभिषेक पर) स्वागत सभा, आनन्द अरुणोदय (खडी बोली मे) आर्याभिनन्दन (प्रिंस अलबर्ट के आगमन पर) सौभाग्यसमागम (पचमजार्ज प्रशसा) मयक महिमा (खडी बोली) सगीत काव्य (गजलें, कजलियां, होलियां, ठुमरी आदि)।

कितो युवति तिनमैं अति रूप सलौनो पाए।
किए कज्जलत नैन सीस सिन्दूर सुहाए।
धान खेत मे बैठी चचल चखनि नवावति।
बन मे भटकी चकित मृगी सी छवि दरसावति।

रीतकालीन नायिकाओ के नाज नखरो का चित्रण और यह शुद्ध देहाती सौन्दर्य एक ही नही है।

उक्त चित्रण एकदम मौलिक है। यथार्थ जीवन का एक और दृश्य देखिए—

पौला सबके पगन सीस धोबी कै छतरी।
लैकर लाठी चलैं, मेड बाढे सब पतरी।

सुमित्रानन्दन पन्त जी की 'ग्राम्या' प्रकाशित होने पर कोई अद्भुत बात नही हुई। ग्रामो के चित्रण की नीव भारतेन्दुयुग मे न केवल पड चुकी थी अपितु ग्राम चित्रणात्मक काव्य का भवन भी खडा हो चुका था। जीर्ण जनपद गोल्डस्मिथ का सिर्फ भावानुवाद है, कवि ने अपने देश और ग्राम के वर्णन के लिए केवल सहायक रूप मे गोल्डस्मिथ के काव्य को अपना लिया है।

भारतेन्दु युग मे प्रेमघन ने सर्वाधिक अपने प्यारे हरीचन्द का अनुकरण किया है किन्तु प्रेमघन का व्यक्तित्व, उनकी मौलिकता उनके विषय निर्वाह मे पूर्णत व्यक्त हुई है। शक्तिशाली व्यक्ति प्रभावित होकर भी अपनी गति का सौन्दर्य सुरक्षित रखता है।

प्रेमघन ने भक्तिकालीन परम्परा मे शृगार विहार सम्बन्धी जो पद्य कहे हैं, उनमे 'प्रेमघन' की अपनी भावाविभोरता और कला पूर्णत विद्यमान है।[1] प्रेमघन के कवित्तो और सवैयो पर भारतेन्दु का प्रभाव देखा जा सकता है[2] किन्तु प्रेमघन का व्यक्तित्व तिरोहित नही हुआ। बहुत से छन्द स्वतन्त्र भी हैं और प्रेमघन भी शब्द विन्यास कला का परिचय देते हैं।[3] ग्रामीण सौन्दर्य

---

१ छहरैं मुख पै घनश्याम से केश, इतै सिर मोर पखा फहरैं।
उत गोल कपोलन पै अति लोल अमोल लली मुकता थहरैं।
इहि भाँति सों बदरीनरायण जू दोऊ देखि रहे जमुना लहरैं।
निति ऐसे सनेह सों राधिका श्याम हमारे हिये मे सदा बिहरैं।

२ किशोरीलाल गुप्त—पृष्ठ ३६७।

३ सजि सूहे दुकूलन झूलन झूलत बालम से मिलि भामिनियाँ।
घरसावत सो रस, राग मलार अलापत मजु कलामिनियाँ।

का वर्णन आपने सवैयो मे भी किया है।[१] प्रकृति वणन म—पावस ऋतु के वणन मे प्रमधन' श्रष्ठ कवि हैं।[२]

जीणजनपद के चित्रण प्रमाभिव्यजना तथा प्रकृति वणन के अतिरिक्त भारतेन्दु की परम्परा मे प्रमधन ने लोकगीतो मे अनक रचनायें की हैं। भारतेन्दु युग का लोकसाहित्य प्रम देखते ही बनता है। इधर लोक साहित्य का बहुत अध्ययन हो रहा है। बड-बड सिद्धान्तो की चर्चा उनमे रहती है किन्तु वास्तविक लोकसाहित्य से प्रम भारतेन्दु युग मे ही मिलता है।

प्रमधन ने सुहाती और रुलाती गालिया लिखी है जिनम नवीन चेतना है। आज नई नई विचारधाराओ देश के नवनिर्माण सम्बन्धी प्ररणाओ को लोकगीतो मे यदि व्यक्त किया जाय तो वर्षों का काय महीनो मे हो जाय किन्तु कौन सुनता है?[३] प्रमधन की कजरिया प्रसिद्ध हैं मीठी बोली मे अपनी कजरिया मे प्रमधन ने इतना रस भरा है कि पढते ही बनता है।[४] यही नही प्रमधन ने होरी पर गाए जाने वाले शिष्ट कबीर भी लिखे है। गावो के कबीर अश्लील होते थे अत उनकी जगह प्रमधन ने नए कबीर लिखे है।[५] कबीरो मे सुधारात्मक भावनाएँ भी भरी गई है। नारियो की प्रशसा छायावाद के बहुत पहले प्रमधन ने की थी।

---

१ जगनायक चरी बनाय लियो, अरी वाह री वाह अहीरनी तू।

२ बरसत नेह, मह बरसत रूप यह
  बरसत मेह साझ सम दूर धाम है।
 गरजि-गरजि वह त्रास उपजाव उर
  निपट अकेलो दूसरी न कोऊ बाम है।
 कहा करू करू जाऊ आनि न परत—
  उत घरे घनश्याम, इत घरे घनश्याम है।

३ पितामही भारती तुम्हारी तुम सो समुझि निकारी।
 सातसिन्धु तरि म्लेच्छन के घर जाय बसी करि यारी।

४ गुय्यॉ देखो री कन्हैया रोक मोरी डगरी।
 ओढे भारी कमरी, सिर पर टेढी पगरी।
 गारी बसी बीच बजावै, देखो ऐसो रगरी।

५ तरसाय जनि रूप भिखारी को।
 दै दिखाय मुखचन्द टारि टुक प्यारी घूघट सारी को

प्रमधन ने प्रबन्ध काव्य (जीर्णजनपद) लिखकर भारतेन्दु युग की कमी को पूरा किया। ब्रजभाषा मे नए भावो का आयोजन किया और लोकगीतों के क्षत्र मे महान कवियो को काम करने के लिए प्ररित किया। प्रमधन भाव और अभिव्यक्ति दोनो पर सबसे अधिक ध्यान देने वाले कवियो मे थे अत भारतेन्दु के बाद वह सबसे बड कवि माने जाते है। वह भारतेन्दु की मृत्यु के बाद उनके सबसे बड प्रतिनिधि थे।

प्रमधन की तरह प० प्रतापनरायण मिश्र[1] भारतेन्दु से बहुत अधिक प्रभावित थ। मिश्र जी भारतेन्दु को अपना आराध्य कहते थे। मिश्र जी अपनी जन्मजात मस्ती के कारण किसी बँधी बँधाई पद्धति पर चल नही सक्ते थे। किन्तु ब्रजभाषा' को ही काव्यभाषा के उपयुक्त मानने के कारण इनकी स्वच्छन्दता पर कुछ रोक लग गई थी फिर भी मिश्र जी ने कही तो कबीर के पदो के आधार पर भजन कहे है।[2] कुछ लोकप्रचलित तर्जों पर। मजा यह है कि इन प्रचलित तर्जों पर लिखे गए भजनो मे भाव बिलकुल नए है। भारतेन्दु युग के कवि जन मानस को शक्ति—स्रोत मानते थे कतिपय वर्गों अथवा मित्रों का मनोरजन इनका उद्देश्य न था अत प्ररणा के लिए अँगरेजी जानने पर भी जान बूझकर मिश्र जी ने लोक गीतो की ओर ध्यान दिया था। लोग उनके गवारूपन पर आक्षप करते थे किन्तु उन्होने कभी चिन्ता नही की। उन शिष्ट और विदेशी साहित्य से परिचिता को ऐसे गीत न भाते थे—

कैसे भाई हो चढी है तुम्हे होरी की सनक।
इन ढँगन लाज नहिं रहिहै तनक।
प्यारे आज तो एक बार गले लगि जाहु।
होरहि के मिस दूर करौ कछु या छतिया को दाहु।

मिश्र जी ने प्रमधन से भी अधिक लोकगीता मे नवीन भावनाओ को प्रविष्ट किया है। उनकी अधिकतर होलियो म नवीन चेतना मिलती है। भारतेन्दु के फूला का गुच्छा की तरह मन की लहर म मिश्र जी ने

---

१ जन्म—१८५६ ई० मृत्यु १८९४ ई०। रचनाए—प्रेमपुष्पावली, मन की लहर (विभिन्न भाषाओं मे लावनिया) शृंगारविलास, दगलखड (आल्हा) बँडला स्वागत, सागीत शाकुतल दीवाने बरहमन, रसखान शतक तथा लोकोक्ति शतक।

२ (अ) साधो मनुवाँ अजब दिवाना।
(ब) जागो भाई जागो रात अब थोरी।

लावनियाँ अधिक लिखी हैं। इनमे भी नए भाव हैं[1] किन्तु सबसे अधिक सफलता मिश्र जी को "आल्हा" मे मिली है। कानपुर महात्म्य मे कवि ने कानपुर पर आल्हा छन्द मे व्यग प्रस्तुत किया है। कानपुर की भूमि मे कुछ ऐसा प्रभाव है कि भले से भले लोग बुरे बन जाते हैं। मिश्र जी को कानपुर की हृदयहीनता से बडी शिकायत थी। इतने बडे नगर मे रह कर भी बेचारे 'ब्राह्मण' जैसे पत्र को चलाने मे बार-बार असमर्थ हो जाते थे अत "आल्हा" मे उन्होंने कहा है कि कानपुर की तोताचश्मी त्रेता युग से ही चली आई है।[1]

मिश्र जी की परिहासास्पद रचनाएँ इनके जीवनकाल मे ही बहुत प्रसिद्ध हो चुकी थी। मैंने अपने पूज्य ताऊजी प० द्वारकाप्रसाद उपाध्याय से निम्न लोकगीत से मिलते जुलते एक गीत को बहुत बार सुना था। पूछने पर वह यह नही बता सके कि यह किसका लिखा हुआ है।

मरे नित्त हक नारि, बिटेवा होय ना।
बकरा भच्छत चिकवा समझै कोय ना।
करि धाकर घर ब्याह रुपैया रोलना।
इतना दे करतार अधिक नही बोलना।

मूर्ख और लालची कान्यकुब्जो पर कैसा कठोर व्यग्य है।

मिश्र जी 'महान् कलाकार' नही थे किन्तु उन्हे इस प्रकार का कोई रोग भी नही था कि अपने महाकवित्व को सिद्ध करने के लिए जनता के निकट न जाकर उस पर रौब गालिब करते। मिश्र जी शीघ्रातिशीघ्र नवीन राष्ट्र और राष्ट्रीय व्यक्तित्व का उदय चाहते थे। बुराइयो का नाश और अच्छाइयो का प्रचार चाहते थे। काव्य का लक्ष्य उनके सम्मुख स्पष्ट था—सामाजिक और

---

१. भुम्याँ गँए कानपूर की, माता नावें न जनौ तुम्हार।
जग हंम महनामय करिबे कौ, दूसरी बेला को औतार।
मर्यादा पुरुषोत्तम कहिए, राजा राम धरम अवतार।
जिनको नाम लेत मनई के, सिगरे पाप होय जर छार।
उनके भैया बीर लच्छमन, जानै चार बेद की बात।
रोवत छोड़ि गए सीता कौ, बन माँ भूलि जनम को नात।
छीता छोड़ी तहं लछमन ने, यह सब धरती को परभाव।
तोता चसमी कानपूर की, है यह त्रेता जुग ते चाल।

राष्ट्रीय भ्रान्ति। उनके प्रत्येक पद्य मे यही राग गूँजता है—यही उनकी महिमा है।[1] काव्य के इस स्पष्ट लक्ष्य की पूर्ति मे मिश्र जी ने अलङ्कृति की चिन्ता न करके समाज के मन को सँवारने के लिए प्रत्यक्ष पद्धति अपनाई थी। अलङ्कृत काव्य का उतना प्रभाव हो ही नही सकता था अत अलङ्कृतकाव्य की दृष्टि से उनका स्थान ऊँचा न हो परन्तु जनप्रिय काव्य की दृष्टि से उनका काव्य आज भी हमारे लिए प्रेरक है। प्रगतिशील बधु भी सिद्धान्तत 'जनवादी' कहलाकर भी *जन साहित्य म अपना क्या योगदान दे रहे हैं यदि इसका लेखा जोखा किया जाय तो मिश्र जी सबसे अधिक जनवादी ठहरेंगे।* कोरा सौन्दर्यवादी दृष्टिकोण प्रचलित हो जाने पर काव्य का अतम् शुष्क हो जाता है अत इन प्रारम्भिक गुरुओ के काव्य की शक्ति को पहचानना होगा। ये प्रारम्भिक कवि नीव के पत्थर नही हैं जो दिखाई न पडें, ये कवि आधुनिक सरस्वती के प्रथम पूजक हैं इनकी पूजा का स्वरूप समझे विना हमारी आराधना अवैध हो जाएगी।

प्रेमधन, प्रतापनारायण मिश्र जैसे ब्रजभाषा म नूतनभावदाताओ के अतिरिक्त भारतेन्दु युग म सेवक, रघुराजसिंह रीवा नरेश, सरदार रामसनेही ललितकिशोरी, लछराम और नवनीत चौबे का नाम भी उल्लेखनीय है। इन कवियो म कवित्व शक्ति का पूर्ण स्फुरण हुआ है यद्यपि नवीनता का अभाव होने से य पुराने खेवे के कवि' माने गए हैं। इनम सेवक तो नायिका भेदी थे ही[2] सरदार कवि[3] तथा लछराम[4] यह भी इसी परम्परा के कवि थे। रीवा नरेश[5] तथा ललित किशोरी[6] भक्त कवियो की परम्परा म आते हैं और नवनीत में

---

१ अगरेजों के दासो पर व्यग्य—

गोरडदास उवाच—जगजानें इग्लिश हमे, बाणी वस्त्रहिं जोय।
मिटै बदन कर श्याम रग, जन्म सफल तब होय

गौरागदेव उवाच—नित हमरी लातें सहैं, हिन्दू सब धन खोय
खुलै न इंग्लिश पालिसी, जन्म सुफल तब होय।

२ 'वाग्विलास' ग्रन्थ नायिका भेद पर। (जन्म सवत् १८७२, मृत्यु—१९३८ वि०)

३ साहित्य सरसी, वाग्विलास, षट्ऋतु, शृगार सग्रह आदि।

४ प्रेमरत्नाकर, प्रतापरत्नाकर, कमलानद कल्पतरु आदि

५ रामस्वयवर, रुक्मिणी परिणय, आनन्दाम्बुनिधि, रामाष्टयाम

६ स्फुट पद, गजलें आदि।

दोनो प्रवृत्तियाँ मिलती हैं। गोवन्दगिल्लाभाई भी, इसी प्रकार भक्ति-रीतकाल का प्रतिनिधित्व करते हैं। किन्तु रीतिकाल का प्रभाव अधिक था।[1]

उपसहार—भारतेन्दु युग की शक्ति एक ओर तो उसके कवियो के 'प्रेम सिद्धान्त' मे निहित थी और दूसरी ओर उनकी शक्ति का अक्षयस्रोत जनता थी। भारतेन्दु युग का कवि सामान्य जन को ओर देखता था, उस पर होने वाली प्रतिक्रियाओ का वर्णन ही अधिकाशत इस युग के कवियो ने किया है।

इस युग के कवियो की विशेषता है कि उनके लिए राजनीति, समाज नीति और काव्य के मध्य कोई लक्ष्मण रेखा नही खीची गई। व्यक्ति को प्रभावित करने वाली सभी शक्तियो का स्वरूप चित्रण इस काव्य की विशेषता है। किसी प्रकार की एकागिता इस युग मे नही दिखाई पडती। एकागी चिन्तन प्रेरणा को शुष्क बनाता हैं। चूँकि इस युग के कवि ने समग्र दृष्टि से जीवन को देखा था अत प्रेरणा और वर्ण्य विषयो के लिए आन्तरिक अनुसधान की आवश्यकता ही नही थी अत एक स्वाभाविक भ्रम के लिए गुञ्जायश रही कि यह काव्य अत्यधिक स्थूल है। इस युग की कला भावुकता-प्रधान है किन्तु जैसा हमने पीछे देखा है कि इस काव्य की स्थूलता भी अपनी व्यापक प्रेरणा और जनहितैषिणा के कारण हमे प्रभावित करती है। नवयुग के इन कवियो को भिभन्न मोर्चो पर काम करना पडा था अत यह स्वाभाविक था कि इनके काव्य मे परिपक्वता का अभाव हो किन्तु यह कार्य बाद के कविया के लिए छोडकर इन कवियो ने आगे के कवियो के लिए वर्ण्य-विषय निश्चित किए। भाषा के विषय मे यह निश्चय नही कर पाए परन्तु व्रज भाषा म ही नवीन चेतना की अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने भरसक प्रयत्न करके, रीतिकालीन चेतना को अपदस्थ करने की प्रक्रिया प्रारम्भ करदी। इतिहास इन कविया के माध्यम से अपना स्वरूप निर्माण कर रहा था। इतिहास के इस कार्य के लिए एक ओर इन कवियोंने विदेशी साम्राज्यवाद के विरोध मे—अतीत गौरव, देशी सस्कृति, देशी भाषा, देशी भावो आदि का प्रचार किया और दूसरी ओर विदेशियो और देशी पूजीपतियो द्वारा नवीन व्यवस्था की स्थापना के कारण नवीन भावनाओ के जन्म के लिए उपयुक्त परिस्थिति की सृष्टि आरम्भ की।

---

१ शृगार सरोजिनी, षट्ऋतु, पावस पयोनिधि, समस्यापूर्त्तिप्रदीप, श्लेष चन्द्रिका, श्रवनीसागर, प्रारब्ध पचासा आदि।

समग्रत हिन्दी का प्रारम्भिक आदोलन सुधारका का आदोलन प्रतीत होता है किन्तु सुधारक शब्द म जो हलकापन है वह इन कवियो मे नही था। इनकी गद्य और पद्य की रचनाआ को पढकर इनके हृदय की विशालता उच्चतर लक्ष्य और मुक्ति के लिए जो आतुरता दिखाई पडती है वह इह सुधारक के पद से उच्चतर स्थान देती है। राजनतिक दृष्टि से ये कवि राजभक्ति के गुण गाकर भी परिस्थिति की नजाकत को समझकर चुपचाप अपने देश की जनता को भावी राजनतिक क्राति के लिए शिक्षा देते हुए प्रतीत होते है। क्या हम आज उस परम्परा का पालन कर रहे हैं ?

सामाजिक दृष्टि से ये कवि अपने समाज को भावी व्यवस्था के लिए तयार करत प्रतीत होत है। शूद्रा नारी तथा अय उपेक्षित वर्गों के प्रति उनकी दृष्टि वही नही है जो रीतिकाल मे मिनती है। समाज के उच्च वर्गो को वह सावधान करते दिखाई पडत हैं उनके अतर्विरोधा की भत्सना करते हैं। य कवि—उस वग के प्रति कठोर आलोचनात्मक रुख अपनात हैं जो साम्राज्य वादिया के साथ उनके एजेण्ट के रूप मे काम करने लगता है। इस नए बाबू वग की अनुकरणावृत्ति पर भारतदु और अय कवियो ने कठोर कशाघात किए है। इही कविया के प्रयत्न से यह नया वग भारतीयता की ओर उन्मुख हुआ यह मान लने म कोई हानि नही है। इसी तरह साम्राज्यवाद की एक शाखा के रूप मे काम करने वाली ईसाइयत और ईसाई प्रचार पर इन कवियो ने उग्र आक्रमण किया था और स्वदेशीधम और आस्था का प्रचार किया था अत इन कविया की वैष्णवता अपने समय मे साम्राज्यवाद के विरोध म काम करती दिखाई पडती है। पुराने वैष्णवो और इन वैष्णव कविया म स्पष्ट अतर यह है कि वष्णव होने पर भी ये कवि सामाजिक दृष्टि से समाज का आमूलचूल परिवतन करना चाहत है। प० प्रतापनरायण मिश्र ने ब्राह्मणा की जडता पर जा लिखा है वह आखें खोल देन वाला है। मात्र आस्तिक वैष्णव कवि उदार होता है उग्र कम किन्तु भारतेदु युगीन वैष्णवता अपनी उग्रता व्यग्यकाव्य के रूप मे भली भांति प्रकट करती है। अत ये कवि मात्र सुधारक नही हैं।

सौन्दयशास्त्रीय दृष्टि से भारतेदु युगीन काव्य मनावेगात्मक और व्यग्यप्रधान है। व्यग्य और हास्य का इतना आवपक विकास पहले कभी नही हुआ। हिन्दी के लिए हास्य एक नवीन वस्तु थी। यो सूर के काव्य म हास्य मिलता है परतु वह हिन्दी की दीघकालीन अवधि को देखते हुए बहुत कम है। फिर उसका सम्बन्ध स्पष्टत दैनिक जीवन से

नही था। भारतेन्दु युग मे व्रजभाषा और खड़ी बोली—दोनो मे व्यग्य और हास्य का विकास एक नई रुचि और नए आकर्षण का प्रतीक है। हास्य का जन्म या तो समृद्ध और चिन्तारहित समाज मे होता है अथवा एक ऐसी परिस्थिति मे, जब हम कहना तो कुछ और चाहते हैं और कहना कुछ पड़ता है। परिस्थिति के इसी दबाव से आधुनिक युग का प्रारम्भ हास्य और व्यग्य को लेकर होता है। इसके अतिरिक्त शताब्दियो से बसे हुए रोगो को इन्जैक्शन के बिना दूर भी नही किया जा सकता। व्यग्य से मनुष्य अपने और समाज के विषय मे शीघ्र ही जागरूक हो जाता है अत कन्हैया की मोहिनी लीलाओ के ध्यान मे मग्न, इन भावुक कवियो ने एक ओर प्रेम का प्रवाह बहाया है तो दूसरी ओर तेज चाकू से समाज का आपरेशन भी किया है। अतएव हिन्दी काव्य के मूल मनोवेगात्मक स्वरूप की रक्षा के अतिरिक्त एक नई कला का जन्म भी इस युग मे हुआ है। इन कवियो ने सुन्दर और मोहक छवियो का, राधा-कृष्ण के प्रेम के रूप मे, अकन किया है तो दूसरी ओर हिन्दी पाठको की रुचि को उन विषयो की ओर भी मोड दिया है जो हमारे दैनिक जीवन से सम्बन्धित हैं। नए आन्दोलन की यह उपलब्धि है। नया आन्दोलन यदि नए मूल्यो और नई रुचियो का विस्तार नही करता तो वह व्यर्थ माना जाता है।

इस युग के काव्य को केवल उपयोगितावादी कहकर उसका महत्व कम नही किया जा सकता। उपयोगितावाद तब सौन्दर्य की सृष्टि के लिए अनुपयोगी बनता है जब वह कवि की चेतना का अभिन्न अग नही बन पाता। भारतेन्दु युगीन कवि यह सिद्धान्त नही मानते—"यद्यपि काव्य का उद्देश्य दैनिक समस्याओ का समाधान नही है, तथापि काव्य का उपयोग दैनिक जीवन के लिए करना चाहिए"। इस सिद्धान्त को मान लेने का अर्थ था कि काव्य जीवन के एक पक्ष का ही चित्रण कर सकता है। भारतेन्दुयुगीन कवि अनजान मे ही यह मानता है कि सौन्दर्य का आधार 'क्षोभ' है, चाहे वह 'क्षोभ' किसी प्रकार का क्यो न हो। सयोग और वियोग के चित्रणो मे भी क्षोभ व्यक्त होता है और उससे मधुर सौन्दर्य की सृष्टि होती है, उक्त युग मे ऐसी सृष्टि भी कम नही हुई है। किन्तु 'क्षोभ' विविध क्षेत्रो मे विविध रूप धारण करता है और इसलिए विविध सौन्दर्य की सृष्टि करने मे समर्थ है अत जिसे हम 'सुन्दर' कहते हैं, वह केवल मोहक नही होता, वह उत्तेजक और 'उद्वेग-जनक' भी होता है। राजनैतिक दृष्टि से ये कवि राजभक्ति के गुण गाकर भी, महान हैं। प्रबन्ध काव्य के अभाव मे सुन्दर के स्थान पर

किसी 'उदात्तचरित्र' की सृष्टि इस काव्य में नहीं मिलती किन्तु प्रबन्ध काव्य के किसी उदात्त चरित्र के स्थान पर पाठकों के सम्मुख स्वयं उक्त कवियों का उदात्त हृदय इस कमी की पूर्ति करता हुआ दिखाई पड़ता है। छोटी छोटी अनेक कविताओं में प्रकृति चित्रणों अथवा लोकगीतों में सामूहिक भावनाओं को व्यक्त करने वाले कभी प्रेम में मग्न होते हुए कभी दुर्दशा पर आँसू बहाते हुए कभी दुर्बलताओं पर दोषित हुए कभी रोगियों को उनकी लापरवाही पर डाँटते हुए कभी मदांधों और दम्भियों का परिहास करते हुए कभी अपने अतीत के स्वप्नों में डूबते हुए कभी विदेशी दस्युओं पर आक्रमण करते हुए और कभी अपने मन को समझाते हुए इन कवियों की चेतना छवि अपनी उदात्त गरिमा को लेकर जब पाठकों के सम्मुख अवतरित होती है तब रीति कालीन कवियों की सुन्दरता से सर्वथा भिन्न एक अभिनव उदात्तता का अभ्युदय होता हुआ प्रतीत होता है।

एक सीमित और शोषक वर्ग की रुचि-सन्तुष्टि के स्थान पर भक्तिकाल के बाद पुनः काव्यरथ को सामान्य जनसमूह की ओर उन्मुख कर देने का कार्य भारतेन्दु और उनके साथी कवियों की ऐतिहासिक उपलब्धि ही नहीं है सौन्दर्य के अतिरिक्त उदात्तता के विस्तार की दृष्टि से भी यह महान उपलब्धि है। नए युग का जन्म एक कष्टदायक क्रिया है। नवयुग रूपी शिशु के प्रसव के लिए जो मर्मान्तक पीड़ा भारतेन्दु युगीन कवियों में दिखाई पड़ती है उसकी उपेक्षा और अपमान वही विचारक कर सकता है जो द्विवेदीयुग छायावाद और प्रगतिवाद को आकस्मिक समझता है—अगली स्वाभाविक शृंखला न मानकर नए युग को अनायास अवतारणा मानता है। भारतेन्दु युग का पाठक यह बड़े आश्चर्य और सतोष के साथ अनुभव करता है कि नए युग की उपलब्धियों के प्रायः सभी बीज भारतेन्दु युग के काव्यों नाटकों और निबन्धों में पड़ चुके थे।

भारतेन्दु युग की सभी विधाओं में अखण्ड और अविभाज्य दृष्टि के दर्शन होते हैं। अंग्रेजों के योगदान के विषय में चाहे उनमें आपस में मतभेद हो किन्तु अंग्रेजों द्वारा होने वाली इस देश की हानि के विषय में भी उनमें मतभेद नहीं दिखाई पड़ता। इसके अतिरिक्त यह अद्भुत तथ्य है कि समाज के लिए आवश्यक तत्त्वों के विषय में भी उनमें मतभेद नहीं है। भारतेन्दु युगीन कवि एक ऐसा समाज चाहते थे जिसमें मनुष्य मनुष्य पर हावी न हो और जिसमें व्यक्तित्व के विकास की पूरी स्वतन्त्रता हो। वैयक्तिक गरिमा सामाजिक सुविधा और समानता भारतेन्दु युग के कवियों का सन्देश है। इसी महान लक्ष्य

को सम्मुख रखने के कारण उनकी सरस्वती का स्वर युगविधायक हो गया है। नाना आशकाओ, सन्देहो और अहापोहो से सर्वथा रहित यह काव्य भारतीय जनता के उज्ज्वल भविष्य के लिये प्रयत्नशील दिखाई पडता है। आज के कविवर्ग का एक अश व्यर्थ ही सन्देहो को वाणी दे रहा है। बाह्य परिस्थिति के यथार्थ परिचय का अभाव और मानवता की अन्तिम विजय मे आस्था का अभाव ही सन्देहवाद को जन्म देता है। *जब उस भीषण परिस्थिति मे, साधनो* के अभाव और जनमत की अपेक्षाकृत जागृति के अभाव मे भी भारतेन्दु युग उतना आशावान था, तब कोई कारण नही, आज का कवि प्रबल और जागरूक जनमत के रहते *व्यर्थ की शकाओ को हृदय मे स्थान दे। दुनियाँ की आधी से* अधिक जनता आज युद्ध, विषमता, परतन्त्रता और किसी भी प्रकार के दबाव की विरोधिनी है तब इस विराट जन-जागृति मे अविश्वास कर, सन्देहो और *व्यक्तिगत कुठाओ को वाणी देने से बर्बर वर्गों की ही हिमायत होने लगती* है अत जनमत को जाग्रत कर, उसमे मानवीय मूल्यो और उदात्तभावनाओ तथा मार्मिक छवियो के चित्रण द्वारा नूतन आत्मविश्वास भरने और जन-विरोधी वर्गों और व्यक्तियो के पर्दाफाश करने की शिक्षा हमे भारतेन्दु युगीन काव्य से मिलती है। अज्ञेय जैसे व्यक्तियो का कथन कि हिन्दी काव्य आन्दोलनो का काव्य है, वह व्यक्तियो की सृष्टि नही है, एक बेबुनियाद बात है। भारतेन्दु और उनके साथी कवि अपने प्रबल और आकर्षक व्यक्तित्व की रक्षा करते हुए जनगगा मे अवगाहन करने वाले कवि है—व्यक्ति समाज से तादात्म्य करके ही अपने वास्तविक व्यक्तित्व की रक्षा कर सकता है—यह सत्य भी भारतेन्दुयुगीन काव्य से स्पष्ट है।

हिन्दी काव्य का प्रथम प्रवाह प्रत्येक दृष्टि से आज भी हमारे लिए शिक्षाप्रद है। वह आज भी जीवित है, बराबर जीवित रहेगा। वह प्रचारको का स्वर नही है, वह *जागरण-वेला का मगलगीत है।*

द्वितीय प्रवाह

द्विवेदी-युग

हिन्दी काव्य के द्वितीय प्रवाह की प्रमुख विशेषता नवीन विषयो पर खडी बोली म काव्यारम्भ है। रामग्रत भारतेन्दु युग की काव्यभाषा व्रजभाषा ही रही इस द्वितीय प्रवाह म भी एक ही कवि खडी बोली और व्रजभाषा दोनो मे काव्य रचता हुआ दिखाई पडता है। फिर भी यह प्रवाह भविष्य की दृष्टि से खडी बोली का प्रवाह माना जाना चाहिए।

पडित श्रीधर पाठक ने दोना भाषाआ मे रचनाएँ की हैं और यह लक्ष्य करने की बात है और शुक्ल जी ने भी यह तथ्य स्वीकार किया है कि 'खडी बोली की अपेक्षा पाठक जी की व्रजभाषा की कविताएँ ही अधिक सरस हृदयग्राहिणी और उनकी मधुर स्मृति को चिरकाल तक बनाए रखने वाली हैं'[1] श्रीधर पाठक की तरह ही रायदेवीप्रसाद पूर्ण की व्रजभाषा की रचनाएँ अत्यधिक कवित्वपूर्ण होती थी।[2] उनकी "रसिक वाटिका" नामक पत्रिका मे म प्रकाशित रचनाआ की उन दिना धूम थी। व्रजभाषा की इस परम्परा मे नए और पुराने विषयो पर रचनाएँ लिखी जाती रही। रत्नाकर इस परम्परा के अनमोल रत्न थ किन्तु हम इस धारा को बाद म देखेंगे।

श्रीधर पाठक[3] की काव्यकला व्रजभाषा म अधिक श्रेष्ठ होने पर भी

---

१ हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ५८३।

२ १८६८ ई०—१९१५ ई०।

३ जन्म १८५८ ई०—मृत्यु १९२८ ई०। रचनाएं—एकान्तवासी योगी (१८८६ ई०) मनोविनोद (१८९२ ई० प्रथम सस्करण, प्रारम्भिक रचनाएं) जगत सचाई सार (१८८७ ई०, मायावाद का खण्डन) ऊजड ग्राम (१८८९ ई० व्रजभाषा मे लिखित) श्रान्तपथिक (१९०२ ई०)

उनकी अनूदित कृति "एकान्तवासी योगी" (१८८६ ई०) का खड़ी बोली काव्य के लिए ऐतिहासिक महत्व है। १८८६ ई० के आस-पास के कवि साम-यिक विषयों पर जब तब खड़ी बोली मे लिखते अवश्य थे तथापि उन्हे खड़ी बोली मे काव्य की सफलता के विषय मे सन्देह था। "एकान्तवासी योगी" ने इस सन्देह को दूर कर दिया। इस अनुवाद से एक यह भी लाभ हुआ कि खड़ी बोली मे मधुर भावो की अभिव्यक्ति सम्भव मानी जाने लगी। पंडित बालकृष्ण भट्ट ने इस काव्य को "रसीला" और "माधुर्यपूर्ण" कहा।[१] प्रथम बार 'स्वच्छ' खड़ी बोली का विकास की अमिट सम्भावना लिए हुए एक निश्चित रूप इस काव्य मे दिखाई पड़ता है।[२] यह सही है कि इस काव्य मे ब्रजभाषा के प्रयोग मिलते हैं किन्तु 'कहाँ जलै है, "गुण होय", "कौनी", इकान्त, होय ली"', कीजै, वारौं, बलिहारौं, सुघराई, ढूंढें हू जैसे प्रयोग होने पर भी यह मानना होगा कि खड़ी बोली के एक स्थिर रूप का निश्चय भी इस काव्य से हो जाता है।

खड़ी बोली के रूप की स्थिरता के अतिरिक्त गोल्डस्मिथ के काव्या-नुवादो से हमारे कवि परिचित हो गए। इससे द्विवेदीयुग के उपदेशवाद और स्थूल उपयोगितावाद के साथ-साथ प्रेम की मधुर और शिष्ट भावनाओ का

काश्मीर सुषमा (१६०४ ई०) आराध्यशोकाजलि (१६०६ ई०, पिता की मृत्यु पर) जार्ज-वन्दना (१६१२ ई०) भक्तिविभा (१६१३ ई० पिता के सम्बन्ध मे) गोखले प्रशस्ति (१६१५ ई०) गोखले गुणाष्टक (१६१५ ई०) देहरादून (१६१५ ई०) गोपिका गीत (१६१६ ई०) भारतगीत (१६२८ ई०)।

१ श्रीधर पाठक—रामचन्द्र मिश्र, पृष्ठ २४५।

२ दो घन्टे तक मुझे नित्य वह श्रम से आप पढ़ाता था।
विद्याविषयक विविध चातुरी नित्य नई सिखलाता था।
मै ही एक बालिका उसके सत्कुल मे जीवित थी शेष।
इससे स्वत्व बाप के धन का प्राप्य मुझी को था निःशेष।
साधारण अति रहन-सहन, मृदु बोल हृदय हरने वाला।
मधुर-मधुर मुस्यान मनोहर, मनुजवंश का उजियाला।
सभ्य-सुजन सत्कर्म परायण सौम्य सुशील सुजान।
शुद्ध चरित्र-उदार प्रकृति शुभ विद्या बुद्धि निदान।

स्रोत नहीं सूखा और जिस प्रकार इंग्लैंड मे रोमाटिक कवियो की पृष्ठभूमि की तैयारी म गाडस्मिथ और कूपर की रचनाओ का महत्व था उसी प्रकार हिन्दी म *स्वच्छन्दतावाद का प्रथमरूप* पाठक जी की रचनाओ द्वारा प्रस्तुत हुआ। इसके अतिरिक्त प्रकृति के तटस्थ चित्रण की भावी परम्परा का आधार भी पाठक जी की कृतियो से पुष्ट हुआ। प्रमधन के प्रयत्न की चर्चा हम प्रथम प्रवाह म कर चुके हैं।

रायदेवीप्रसाद पूर्ण ने खडी बोली मे भी रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। उसम भारतेन्दु की तरह राज्यभक्ति के भीतर देशभक्ति मिलती है। देश की दुर्दशा पर भारतेन्दुयुगीन दृष्टिकोण राय जी ने भी व्यक्त किया है।[1] श्री रामचन्द्र *मिश्र ने राय जी को स्वच्छन्दतावादी कवि माना है क्योकि द्विवेदी जी के लौह* अनुशासन से यह बाहर पडते थे। इस दृष्टि से ब्रजभाषा के कई कवियो को *स्वच्छन्दतावादी मानना होगा। श्री मिश्र जी ने रामचन्द्र शुक्ल रूपनारायण* पाडय बद्रीनाथ भट्ट को स्वच्छन्दतावादी कवियो मे ही स्वीकार किया है।

---

१ मारा है दरिद्रय का भारतखण्ड अधीन।
कारीगर बिन जीविका है दुखित अति दीन।
है दुखित अति दीन वस्त्र के बुनने वाले।
धीरे धीरे हुनर समय के हुआ हवाले।
भरा देश मे हाय निकम्मा कपडा सारा।
तुमने ही कोरियों जुलाहों को बस मारा।—

वही पृष्ठ ३३६।

प्रकृति वणन

देखिए अब और ही कुछ रग है।
एक केवल सत्व गुण का अङ्ग है।
जहाँ जाती दष्टि है बस वहाँ हिम की सष्टि है।
परम निमल शुद्ध उज्ज्वल शान्त रस की वृष्टि है।
धूल ही कपूर की भी श्वेतिमा।
पूणचन्द्र प्रकाश मे ही पातिमा।
क्षीर सागर की छटा हो लोल कर अवलोकना।
आप ही सम आप हैं बस अचल आभा शोभना।

—रतनगिरि कलाास

आचार्य शुक्ल[१] ने प्रकृति का तटस्थ चित्रण किया है। व्रजभाषा के कवियो मे शुक्ल जी मे रीतिकालीनता का पूर्ण अभाव मिलता है। उनकी स्फुट कविताओ म प्रकृति के उपेक्षित रूपो का वर्णन मिलता है। यद्यपि उनमे विवरणात्मकता की ही अधिकता है। बुद्धचरित के अतिरिक्त उनकी स्फुट कविताओ मे कुछ खडी बोली मे भी हैं।[२] खडी बोली मे लिखे हुए शुक्ल जी के कवित्तो का आगे चल कर अच्छा विकास हुआ।

रूपनारायण पाडेय (१८८४ ई० जन्म) भी द्विवेदी जी के प्रभाव क्षेत्र से बाहर पडते थे। पाडेय जी ने कई पत्रो का सम्पादन किया था[३] अत उन्हे विभिन्न प्रकार की रचनाओ को देखने का अवसर मिलता था। पाडेय जी ने उपदेशपरक काव्य भी लिखा है किन्तु उनकी वनविहगम रचना बहुत प्रसिद्ध हुई। वनविहगम और दलित कुसुम मे स्वच्छ और सरल खडीबोली का प्रयोग मिलता है और भारतेन्दुयुग का मनोवेगात्मक रूप पूर्णत इन रचनाओ मे सुरक्षित मिलता है।[४] पाडेय जी ने सिद्ध कर दिया कि खडी बोली म भी सवैया' सफलता के साथ लिखा जा सकता है।

बद्रीनाथ भट्ट[५] खडी बोली मे एक नई चेतना लाने वाले कवि थे। एक

---

१ (१८८४ ई०—१९४१ ई०)

२ सूखती तलैया के चारो ओर चिपकी हुई,
लाल लाल काइयों की भूमि पार करते।
गहरे पडे गोपद के चिन्हों से अकित जो,
श्वेत बक जहां हरी दूब मे विचरते।
बैठे कुछ बाल एक पास के मधूक तले,
मन मे सन्नाटे का निराला सुर भरते।
आए शरपत्र के किनारे जहां रूख खुले,
टीले ककरीले हैं हेमन्त मे निरखते।

३ नागरी प्रचारक पत्र,निगमागम चन्द्रिका, इन्दु, माधुरी, सुधा,

४ वन बीच बसे थे, फसे थे ममत्व मे एक कपोत कपोती कहीं।
दिन रात न छोडता एक को दूसरा, ऐसे हिले मिले दोनो वहीं।
बढने लगा नित्य नया नया मोह, नई नई कामना होती रही।
कहने का प्रयोजन है इतना, उनके सुख की रही सीमा नहीं।

५ (१८८६ ई०—१९३३ ई०)

ओर तो भट्ट जी सोए हुए देश को जगाते हैं,[1] और इस जागरण मे उपदेश नही है, दूसरी ओर उन्होंने 'प्रकृति' का 'तटस्थ चित्रण' किया है। सुमित्रानन्दन पन्त ने 'छाया' पर लिखा है तो भट्ट जी ने 'सूखी पत्ती पर'।[2]

किन्तु खडीबोली मे द्विवेदी जी के अनुशासन के बाहर के कवियो मे द्वितीय-प्रवाह के सबसे महत्त्वपूर्ण कवि रामनरेश त्रिपाठी हैं।[3] त्रिपाठी जी की 'मिलन', 'पथिक' और 'स्वप्न'—इन तीन रचनाओ मे स्वदेश, प्रकृति और प्रेम का बडा ही भव्य चित्रण मिलता है। त्रिपाठी जी ने देश की दीर्घ यात्रा के पश्चात् प्रकृति प्रेमी और देश पर बलिदान हो जाने वाले नायक-नायिकाओ का सृजन किया है। देश प्रेम और वैयक्तिक प्रेम मे द्वन्द्व उपस्थित कर अन्त मे देश प्रेम की विजय दिखाकर नवयुवको को प्रोत्साहित किया गया है। इस द्वन्द्व की स्थिति मे कोमल भावनाओ का वर्णन बडा ही मर्मस्पर्शी हुआ है।[4] पथिक मे प्रकृति प्रेम के सम्मुख प्रेमी प्रेमिका के प्रेम की भी उपेक्षा करता है। पन्त जी की "बाले तेरे बाल जाल मे कैसे उलझा दूं लोचन" का स्मरण हो आता है।[5]

---

१ अब तो आँखें खोलो प्यारे।
पूर्व दिशा अब तरुण हुई है, प्रकृति देवि पट बदल रही है।
यम ने तम की बाँह गही है, छिपकर भागे तारे।

२ पडी भूमि पर ठोकर खाती, पीला तेरा रग हुआ है।
सब रस रूप समय ने लूटा, चुरमुर सारा अङ्ग हुआ है।

३ जन्म—१८८९ ई०

४ शक्ति नहीं जो नाथ तुम्हारा सुन भी सकूं प्रयाण।
रहते प्राण न जाने दूंगी, मेरे जीवन-प्राण।
सुन प्रणयी के इन्दु वदन मे, मृदुल कौमुदी हास।
विकसित हुआ मुकाया उसने, शशि को शशि के पास।
—"मिलन"

५ (अ) यदि तुम मुझे प्यार करती हो, कोमल करुण हृदय से।
करो न मुझको देवि दयामयि, वचित प्रकृति-प्रणय से।
—"पथिक" से

(ब) प्रकृति का एक सुन्दर चित्र द्रष्टव्य है—
प्रतिक्षण नूतन वेश बनाकर रग बिरग निराला।
रवि के सम्मुख थिरक रही है नभ मे वारिदमाला।
नीचे नील समुद्र मनोहर ऊपर नील गगन है।
घन पर बैठ बीच में विचरूं, यही चाहता मन है।

'मिलन' १९१७ ई० की रचना है और 'पथिक' १९२० की अतः यह सम्भव है कि छायावादी प्रवृत्तियों का इन रचनाओं पर प्रभाव पड़ा हो किन्तु इन काव्यों में छायावादी शैली का बहुत कम प्रयोग होने से यही अधिक सम्भव लगता है कि त्रिपाठी जी का मार्ग अपना स्वतन्त्र मार्ग था और इसलिए उन्हें 'श्रीधर पाठक' की परम्परा का कवि मानना ही ठीक है। शुक्लजी ने त्रिपाठी जी के 'स्वच्छन्दतावाद' की भूरि भूरि प्रशंसा की है। द्वितीय प्रवाह में अपना स्वच्छन्द मार्ग बनाने वाले कवियों में त्रिपाठी जी का स्थान महत्त्वपूर्ण है। इनका मार्ग न शास्त्रीय था और न छायावादी और न द्विवेदी जी से ही वह अधिक प्रभावित थे।

द्विवेदी जी से प्रभावित कवि—एकान्तवासी योगी से खड़ी बोली की सफलता में सदेह नहीं रहा, यह हम लिख चुके हैं। पाठक जी ने एकान्तवासी योगी को लावनी छन्द में लिखा था। जनता में लावनी की ध्वनि प्रचलित थी। इसके साथ-साथ एकान्तवासी योगी की मधुर प्रमकल्पना भी जन हृदय के निकट ही थी। शास्त्रीय परम्परा से भिन्न पद्धति का काव्य होने के कारण शुक्ल जी ने इस "सच्चे स्वच्छन्दतावाद" का काव्य माना है। क्योंकि इसमें प्रेम का 'राधा-कृष्ण' वाला अलौकिक और भक्तिभावी रूप भी नहीं था, शुद्ध लौकिक प्रेम का मनोरमता का चित्रण था। शुक्ल जी ने इस 'शुद्ध और सच्ची' और स्वाभाविक भावना के सम्यक् विकास के अभाव पर खेद प्रकट किया है और द्विवेदी जी के विषय में लिखा है—

"बात यह है कि उसी समय पिछले सस्कृत काव्य के सस्कारों के साथ प० महावीर प्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य क्षेत्र में आए जिनका प्रभाव गद्य साहित्य और पद्य साहित्य दोनों पर बहुत ही व्यापक पड़ा। हिन्दी में परम्परा से व्यवहृत छन्दों के स्थान पर सस्कृत के वृत्तों का चलन हुआ। जिसके कारण सस्कृत पदावली का समावेश होने लगा। भक्तिकाल और रीतिकाल की परिपाटी के स्थान पर पिछले सस्कृत साहित्य की पद्धति की ओर लोगों का ध्यान बँटा। द्विवेदी जी सरस्वती पत्रिका द्वारा बराबर कविता में बोलचाल की सीधी सादी भाषा का आग्रह करते रहे जिससे इतिवृत्तात्मक (Matter of Fact) पद्यों का खड़ी बोली में ढेर लगने लगा।"[1]

इसका मतलब यह हुआ कि काव्य कला की दृष्टि से द्विवेदी जी का

---

१ हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ६०५

बीच मे कूद पडना हानिकर रहा। क्योकि इतिवृत्तात्मक काव्य का ढेर हिन्दी काव्य के लिए एक बोझ बन कर आया।

डा० रामप्रसाद त्रिपाठी का भी कथन है कि द्विवेदी युग मे काव्य का ह्रास हुआ। द्विवेदी जी प्रचारक काव्य के प्रोत्साहक थे। उन्होने नन्दलाल बोस के चित्रो के आधार पर भी कवियो को लिखने की प्रेरणा दी अत चित्रो के पद्यात्मक विवरण इस युग मे बहुत मिलते हैं। उपदेशो और घोषणाओ से खडी बोली का काव्य अपनी मनोरमता और रस खो बैठा। उपदेशवाद का परिणाम यह हुआ कि मथिलीशरण गुप्त जैसे कवियो ने उपदेशो को ही काव्य समझ लिया।[१]

डा० त्रिपाठी का ख्याल है कि द्विवेदी युग मे भी ब्रजभाषा म इस उपदेशवाद की मात्रा बहुत कम मिलती है अत द्विवेदी युग म ब्रजभाषा काव्य ही प्रभावित करता है।

उक्त विद्वानो क कथन मे सत्य अवश्य है। यह सही है कि द्विवेदी जी से प्रभावित कवियो म उपदेशवाद और जडता की सीमा तक पहुँचा हुआ नैतिकतावाद मिलता है। परन्तु यह हमारे वश की बात नही थी। द्विवेदी जी का आगमन ऐतिहासिक है। हम चाहते तो भी उसे रोक नही सकते थे। अत उनके आगमन को ऐतिहासिक तथ्य समझ कर यह देखना चाहिए कि द्विवेदी जी के उपदेशवाद और जडता की सीमा तक पहुचे हुए नैतिकतावाद का क्या कारण था और उन कारणो के सदभ म उनके उपदेशवाद और नतिकतावाद का क्या महत्व है ?

द्विवेदी जी न सरस्वती सम्पादन १९०३ ई० म सँम्हाला यद्यपि तीन वष पूव ही सरस्वती निकल चुकी थी। १९०३ ई० के पूव खडी बोली म एकान्तवासी योगी प्रकाशित और प्रसिद्ध हो चुका था। या १८७६ ई० म ही बाबू लक्ष्मीप्रसाद ने गोल्डस्मिथ के हरमिट' का अनुवाद खडी बोली म किया था किन्तु लगता है कि वह उतना प्रभाव नही डाल सका था। यह दुख का विषय अवश्य है कि एकान्तवासी योगी की सरल लोकध्वनिया वाले छन्दो म सरस प्रमभाव प्रकृति आदि से सम्बधित काव्य का विकास नहीं हो सका किन्तु यह स्मरणीय है कि द्विवेदी जी ने जितनी दृढ़ता के साथ रीतिकालीन प्रवृत्तियो का विरोध किया था उतना अन्य किसी लेखक ने

---

१ व्यक्तिगत चर्चा के आधार पर।

नही किया। कठोर नैतिकता के द्वारा ही रीतिकाल के विरोध मे वह सफल हो सके थे। भारतन्दुयुगीन काव्य मे गुणात्मक अन्तर उपस्थित होने पर भी रीतिकालीन काव्य का ही प्रभाव रहा। भिन्न काव्य प्रणाली का रूप स्थिर नही हो पाया। भारतेन्दु के बाद के कवि व्रजभाषा मे भी लिखते रहे और वही परम्परा अपनाए रहे, यह भी हम देख चुके है अत दृढता के साथ, एक ही आघात मे रीतिकाल से सम्बन्ध तोडने की आवश्यकता का अनुभव द्विवेदी जी को हुआ था। मैं समझता हूँ, ऐतिहासिक दृष्टि से यह कार्य आवश्यक था। यदि इसे द्विवेदी जी न करते तो इतिहास किसी अन्य व्यक्ति से यह काय अवश्य कराता।

२० वी शताब्दी हमारे देश मे देशी विदेशी पूँजीवादी व्यवस्था के आगमन की शताब्दी है। इस शताब्दी के प्रारम्भ तक भारतीय अँगरेजो की साम्राज्यवादी नीति से भली भाति परिचित हो चुके थे। इस राजनैतिक जागृति की पृष्ठ भूमि ब्रिटिश इण्डियन एसोसियेशन (१८५१ ई०) ईस्ट इण्डिया एसोसियेशन (१८७६ ई०) मद्रास महाजन सभा (१८८१ ई०) बाम्बे प्रेसीडेंसी एसोसियेशन (१८८५ ई०) तथा राष्ट्रीय काग्रेस (१८८५ ई०) की स्थापनाओ से स्पष्ट होती है। यह भी स्मरणीय है कि कपास पर यातायात-कर १८७७ ई० मे उठा लिया गया था। राय देवीप्रसाद पूण ने स्पष्ट लिखा था कि विदेशी कपडे की देश मे भरमार हो रही है और देशी वस्त्र-व्यवसाय चौपट हो गया है। विदेशी पू जीवाद का प्रभाव देश महसूस करने लगा था। १८९७ ई० मे महात्मा तिलक को जेल मे बन्द कर दिया गया था।

१८६६ ई० मे स्वेज नहर के खुल जाने के बाद इस देश के कच्चे माल से इङ्गलैण्ड का पू जीवाद फलने फूलने लगा था। देश के आर्थिक विकास न होने और खेती पर ही कारीगरो के भी निर्भर होते जाने से देश की दुर्दशा चरम सीमा पर पहुँच रही थी। १८६८–६९ ई० के अकाल मे २० लाख व्यक्ति तडप-तडप कर मर गए थे। १८७७ ई० मे दक्षिण मे पुन अकाल पडा था। १८९४–१९०० के वर्षो मे उत्तर भारत मे पुन अकाल पडा अत द्विवेदी जी के समय देश की चेतना रीतिकालीन काव्य के अनुकूल नही थी, यह उन्होंने स्पष्ट अनुभव किया होगा। यह भी स्मरणीय है कि १९०५ ई० और १९०९ ई० मे देश मे भीषण राजनैतिक उत्तेजना उत्पन्न हो चुकी थी।

राजनैतिक जाग्रति के अतिरिक्त विदेशी साम्राज्यवाद का धार्मिक मोर्चा प्रबल होता जा रहा था। १८१३ ई० म ही भारत मे ईसाई धर्म प्रचार की

आना मिल चुकी थी। १८०२ ई० म ही हिन्दी म न्यू टेस्टामेंट का अनुवाद हो चुका था। १८०६ तथा १८२६ ई० के मध्य हिन्दी की मुख्य मुख्य उप भाषाआ म ईसाई मत के ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके थे। १८५० मे बाइबिल का अनुवाद भी प्रस्तुत हो गया और हिन्दी प्रदेश मे ईसाई मत का प्रचार विधि पूवक होने लगा।

१८५८ ई० म इस खतरे से बचने के लिए ब्राह्म समाज की स्थापना हुई (१८५८ ई०)। हिन्दी प्रदेश म आय समाज की स्थापना १८७५ ई० म हुई। थियोसोफीकल सोसाइटी (१८७६ ई०) रामकृष्णमिशन हिन्दू धम महामण्डल आदि सस्थाआ की भी स्थापना हुई। दयानन्द सरस्वती के आदेश पर (१८२४ १८८३ ई०) १९वी शताब्दी के अन्त तक आय समाज गुरुकुल[1] गोरक्षिणी सभाआ तथा डी० ए० वी० कालेजो का ताता बँध गया। अगरेजी शिक्षा जो साम्राज्यवाद के रक्षण के लिए कमचारी और दलाल पैदा करने के लिए १८३५ ई० म शुरू की गई थी आय समाज के शिक्षण के सघष म आई। १८५७ ई० म कलकत्ता बम्बई और मद्रास के विश्वविद्यालया की स्थापना हुई। इन विश्वविद्यालया से निकले हुए छात्र एक ओर थे ता दूसरी ओर आय समाज स प्रभावित युवक थे।

इस सन्दभ म हिन्दी प्रचार और रीतिकाल का विरोध साम्राज्य वाद क विरोध और सामाजिक नव जागरण के प्रतीक रूप म हमारे सम्मुख प्रस्तुत होता है। सन १८८१ ई० म हिन्दी के लिए व्यापक आन्दोलन हुआ। १८८२ ई० म हटर कमीशन के सम्मुख हिन्दी के लिए स्मृतिपत्र भेज गए। १८९३ ई० म काशी नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना हुई। १९०० ई० म अर्थात् सरस्वती क शुभारम्भ के वष म ही एटानी मैकडानल की कृपा हिन्दी से अदालता क लिए देवनागरी लिपि म स्वीकार कर ली गई।

हिन्दी प्रदेश म शिक्षित वग पर रामकृष्णमिशन थियोसोफी और उनसे भी अधिक आय समाज का प्रभाव था। विदेशीधम क विरुद्ध स्वधम-श्रेष्ठता प्रतिपादन क लिए भारतीय युवका ने अतीत की टटोला पुनर्व्याख्या की। अतीत स कथानक लेकर महान पूवजा की यश गाथा गाई गई। मध्यकालीन राजपूती शौय भी काव्य का विषय बनाया गया। मैथिलीशरण गुप्त का प्रथम काव्य— रग म भग (१९०९ ई०) है जिसम राजपूती शौय का फडकता

---

१ हरिद्वार का गुरुकुल कांगडी विद्यालय १९०२ ई० म स्थापित हुआ।

हुआ वर्णन है। गुप्त जी का दूसरा काव्य 'जयद्रथ वध' (१९१० ई०) है जिसमे 'जयद्रथ वध के माध्यम से अँगरेजो के अन्तिम पतन की ओर संकेत है। कहना न होगा कि उक्त स्थिति मे अत्यधिक जागरूक कवि रीतिकालीन धारा मे अवगाहन करते रहने को पर्याप्त नही समझ सकता था।

इसके अलावा आर्य समाज के प्रचार के कारण विधवा विवाह बाल विवाहनिषेध विषयक रचनाओ की धूम मचने लगी थी। १९०६ ई० मे लगभग सम्पूर्ण उत्तरी भारत मे आर्य समाज द्वारा विधवाश्रमो की स्थापना हो चुकी थी। सुमित्रानन्दन पन्त के 'देवि, माँ, सहचरि प्राण' तक नारी के गौरव को पहुचने के लिए द्विवेदीयुगीन सोपान को अभी पार करना था। अत इस युग मे समाज के अर्धभाग की जागृति के लिए अनेक रचनाओ की सृष्टि हुई। द्विवेदी जी यदि इस ओर ध्यान न देते तो कोई और देता क्योकि ऐतिहासिक प्रवाह का दबाव सभी महसूस कर रहे थे। १९वी शताब्दी के अंतिम भाग से देश के प्रत्येक ग्राम मे इन नव सुधारो के गीत गाए जाने लगे थे। छायावादी ताजमहल की नीव के लिए यह सुधारवादी काव्य नीव के रूप मे समझा जाना चाहिए, इसके बिना हमारे ऐतिहासिक और साहित्यिक विकास का एक चरण अधूरा ही रहता।

द्विवेदी जी ने दृढता के साथ भारतीय चेतना को मध्यकालीन मानवीय सम्बन्धो के स्थान पर नए मानवीय सम्बन्धो की स्थापना के लिए तथा नवीन सुधारो को काव्य का विषय बनाने के लिए कवियो को प्रेरित किया। मध्यकालीन सामन्ती दृष्टिकोण दो क्षेत्रो मे विशेष रूप से देखा जा सकता है प्रथम स्त्री का अपमानित जीवन और दूसरा—शूद्रो की दुर्दशा। यह स्मरणीय है कि द्विवेदी युग इन दोनो क्षेत्रो मे, अत्यधिक सक्रिय रहा है। 'भारत भारती', 'प्रियप्रवास" आदि के अनुशीलन से स्पष्ट है कि द्विवेदी युग नारी और शूद्रो के प्रति नवीन दृष्टिकोण की माँग करता है। विधवा विवाह, बालविवाह निषेध, शूद्र उद्धार, नारी गौरव वृद्धि आदि की सफलता देश की स्वतन्त्रता और देश के औद्योगीकरण के साथ सम्बद्ध है किन्तु देश मे बीसवी शताब्दी मे शनैः‌शनै विकसित पूँजीवाद के साथ कवियो द्वारा नए मानवीय सम्बन्धो की माँग भी आवश्यक थी अत रीति कालीन 'पैटर्न' के चलाते रहने का अर्थ था—पुराने मानवीय-सम्बन्धो की नई व्यवस्था मे माँग करना और यह गलत था अत द्विवेदी जी एक ऐतिहासिक प्रक्रिया को, अनजान मे ही पूरा कर रहे थे।

विधवा की दुर्दशा पर निराला जी ने भी कविता लिखी थी और यह बहुत प्रसिद्ध हुई उसमे कवित्व कम नही है। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि

द्विवेदी जी द्वारा बताए गए विषयों पर भी महान काव्य लिखा जा सकता था। अत द्विवेदी जी से अधिक उस युग के कवि उपदेशवाद और इतिवृत्तात्मकता के लिए अधिक उत्तरदायी हैं। प्रतिभा और आत्मविश्वास के अभाव म ही कवि और लेखक किसी तानाशाह आलोचक का अनुसरण करते हैं।

और वास्तविकता तो यह है कि द्विवेदी जी कविता के क्षेत्र म सफलता *असम्भव मानते लगे थे। अपनी कविता को तुकबन्दी कहा करते थे और कहते* थे कि कविता करना आप लोग चाहे जैसा समझ हम तो एक तरह दु साध्य ही जान पडता है। अनता और अविवेक के कारण कुछ दिन हमने भी तुकबन्दी का अभ्यास किया था। पर कुछ समझ आते ही हमने अपने को इस काम का अनधिकारी समझा। अतएव उस मार्ग से जाना ही प्राय बन्द कर दिया।[1]

द्विवेदी जी के अनुशीलक डा० उदयभानसिंह का कथन है— द्विवेदी जी की उपयुक्त उक्ति म शालीनोचित कोरी नम्रता ही नही सत्यता भी है *श्रेष्ठ काव्य की प्रदर्शिनी म उनकी कविताओं का ऊँचा स्थान नहीं है।*

मैथिलीशरण गुप्त न द्विवेदी जी की कविताओं के संग्रह सुमन की भूमिका म *लिखा है कि द्विवेदी जी अपनी कविताओं के प्रकाशन के लिए* उत्सुक नहीं थे। गुप्त जी ने सुमन की रचनाओं के विषय म यह बताया है कि हिन्दी म बोलचाल की भाषा का स्रोत उमड रहा है और कवितागत भाव म परिवर्तन दिखाई दे रहा है उसका उद्गम और मार्ग निर्देश इन रचनाओं की उपेक्षा नहीं कर सकता। क्या यही एक कारण इनके प्रकाशित किए जाने के लिए पर्याप्त नहीं है।[2]

अर्थात् उस समय हिन्दी म बोलचाल की भाषा का स्रोत उमड रहा था और दूसरे कवितागत भावों म परिवर्तन हो रहा था। वह समय उद्गम का समय था अत सहसा श्रेष्ठ काव्य की माँग करना उन कवियों के प्रति अन्याय है जो यही निश्चय नहीं कर पा रहे थे कि खडीबोली म लिखें या ब्रजभाषा म या दोनों म? प्रसाद जी के सम्मुख भी यह प्रश्न रहा और प्रारम्भिक रचनाओं म प्रसाद की उच्चता भी नहीं दिखाई पडती अत यह मानना अधिक उचित होगा कि द्विवेदी युग खडी बोली की दृष्टि से नई भाषा

१ महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग—डा० उदयभानसिंह।
२ वही अध्याय—४

क्या द्विवेदी युग के काव्य मे इस स्तर तक कवि लोग उठ सके ? स्वय द्विवेदी जी अपने बनाए हुए स्तर की रक्षा नही कर सके। काव्य के क्षत्र को वह अपने लिए उपयुक्त समझते भी नही थ। द्विवेदी जी के अनुवादो को छोड कर उनकी मौलिक कृति बाल विधवा विलाप का स्तर देखिए—

उच्छिष्ट रूक्ष अरु नीरस अन्न खैहौं।
चाडालिनीव मुख बाहर मूँदि जैहौ।
गालिप्रदान निशिवासर नित्य पैहौं।
हा हन्त ! दु खमय जीवन यों वितैहौं।
रड ! तुही अवसि मत्सुत नौन खाई।
त्व मातु नाथ ! जब तजिहु यो रिसाई [१]

वस्तुत सस्कृत का दोष उतना नही था जितना द्विवेदीजी के मराठी सस्कारो का। यह उच्छिष्ट रूक्ष, चाडालिनीव गालिप्रदान' की पदावली का प्रयोग उन कवियो ने कभी नही किया जो सस्कृत काव्या से परिचित थे। गुप्त जी हरिऔध जी आदि किसी मे यह शैली नही मिलती। यो यह शैली प्रयोग मात्र थी।

द्विवेदी जी के अपने काव्य मे उनकी देशभक्ति [२] भाषाभक्ति जनताभक्ति आदि उच्च भावनाओ का प्रसार हमे प्रभावित करता है यद्यपि उनकी अभि व्यक्ति म कवि को सफलता नही मिली।

द्विवेदी जी की महानता वस्तुत अपने युग की चेतना के उन्नयन म है लक्ष्यनिर्धारण म और नूतन विचारा के प्रसारण म। उन्हे कलात्मक रूप कैसे दिया जाय यह काय कविया का था। प्रतापनारायण मिश्र की तरह द्विवेदी जी का यकुन्ज लीला गदभ काव्य बलीवद सरगौनरक ठिकाना नाहिं जम्बुकी न्याय टेसू की टाँग आदि हास्यकाव्या म अधिक सफल हुए हैं। भारतेन्दु युग अपनी पूरी सजीवता के साथ इन रचनाआ म बोलता हुआ दिखाई पडता है। विहार वाटिका', स्नेहमाला प्रभात वणनम् सूयग्रहणम् आदि रचनाआ म प्रकृति चित्रण की परम्परा का द्विवेदी जी ने पालन किया है। जो द्विवेदी जी को सौन्दय का शत्रु समझते हैं उन्हे यह समझना चाहिए कि प्रकृति चित्रण

---

१ वही, पृष्ठ ६४।

२ जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है।
वह नर नहीं है पशु निरा है और मृतक समान है।

शुद्ध सौन्दयवादी प्रणाली है जहाँ-जहाँ प्रकृति चित्रण है वहा-वहा सौन्दय चित्रण है यह नियम है।

द्विवेदीजी का उपदेशात्मक काव्य उनकी समग्र रचनाओ की सख्या देखते हुए अधिक नही है। विनय विनोद तथा विचार करने योग्य बातो मे कवि ने उपदेश दिए है यहा कोरे पद्य हैं काव्य का सौन्दय यहाँ नही है—

यौवन वन नव तन निरखि मूढ अचल अनुमानि।

हठि जग कारागार मुँह परत आपदा आनि।

द्विवेदी जी ने गीतो की भी सृष्टि की थी और इनमे उन्हे सफलता भी मिली है[1] किन्तु प्रतापनरायण मिश्र की तरह उन्हे आल्हा मे काफी सफलता मिली है।[2] डा० उन्यभानुसिह का कथन है कि द्विवेदी युग मे कवियो का ध्यान वतमान पर अधिक था। वतमान के जितने अधिक चित्र द्विवेदीयुग मे मिलते हैं भारतेन्दु मे नही मिलते अत द्विवेदीयुग एक पग आगे था।

भारतेन्दुयुग म यथाथ वाद की जो नीव पड चुकी थी द्विवेदीयुग मे विधवा विवाह देश की दुदशा आदि पर लिखी हुई कविताओ मे वह परम्परा आगे बढती हुई दिखाई पडती है। सबसे बडी बात यह थी कि कवि भारतेन्दु की ही तरह अपने समाज को बदलने के लिए ही काव्य की सृष्टि करता है उसे इस काय मे प्रभाव की दृष्टि से अदभुत सफलता मिली थी चूकि भाषा नई थी और रुचि भी अभी नई थी कवियो से बहुत ऊँची चीज की माग नही थी अत द्विवेदीयुग की खडीबोली का काव्य जनता मे प्रचलित होने लगा। पुरानी धारा के लोग यह महत्व नही समझ पाए। उन्होने भारत भारती के प्रचार की भी उपक्षा की।

---

१ इष्ट देव आधार हमारे, तुम्हीं गले के हार हमारे
मुक्ति मुक्ति के द्वार हमारे, ज ज ज देश—जै जै सुगम सुदेश।

२ होत बनिअई आई हमरें को अब तुमसे झूठ बताय।
हम हू घिउ बरसन ब्याचा है छोटी बडी बजारन जाय।
हियाँ की बातें हिय रहि गई, अब आग का सुनौ हवाल।
गाउँ छाडि हम सहर सिधायत, सोगन लिखें चुटकुला ख्याल।

—"महावीर प्रसाद द्विवेदी", पृ० १०६

रग मे भग जयद्रथ वध पद्य प्रबध (१९१२ ई०) भारतभारती (१९१२ ई०) शकुन्तला (१९१४ ई०) वैतालिक (१९१६ ई०) व किसान मैथिलीशरण गुप्त के ये काव्य द्विवेदीयुग मे प्रकाशित हुए। चूकि गुप्त जी को द्विवेदीजी का मानसपुत्र माना जाता है अत यहाँ देखना चाहिए कि इन काव्यो का क्या महत्त्व है।

प्रथम दो काव्य उपदेशात्मक नही हैं और न सस्कृत के छन्दो मे लिखे गए हैं। पद्यप्रबध मे सब प्रकार के प्रयोग हैं। शकुन्तला अनुवाद है परन्तु सरसता पर्याप्त है। वतालिक मे नूतन जागरण को और किसान म किसाना की दुदशा का वणन है। कुल मिला कर द्विवदी जी की प्ररणा का परम फल गुप्त जी को यह मिला कि उनकी वाणी प्रत्येक भारतीय के कठ से ध्वनित होने लगी।[1]

यह तो एक स्वीकृत तथ्य है कि गुप्त जी मे उपदेशवाद और इतिवृत्ता त्मकता मिलती है परन्तु मुक्तको म उपदेशवाद जितना खलता है उतना कथा के प्रसग म आया हुआ उपयुक्त उपदेश नही खलता। दूसरे गुप्त जी के इतिवृत्त उस समय के लिए अति आवश्यक थे यह हम कह चुके हैं। भारतेन्दु जिस प्रकार राज्यभक्ति के मध्य देशभक्ति का प्रचार करते थे उसी प्रकार गुप्त जी अतीत के आख्याना म मार्मिक प्रसगो और अपनी सफल सवाद शक्ति द्वारा अपने काल की जनता म प्राणवत्ता भरते थे। जयद्रथ वध जैसी कृतियाँ इतिवृत्तात्मक कह कर टाली नहा जा सकती। रस की जैसी निष्पत्ति गुप्त जी म मिलती है वह खडी बोली की प्रारम्भिक स्थिति मे उपेक्षणीय नही है। भारतीभारती मे सौन्दर्यबोध खोजने वालो को कवि के मन के सौन्दय को देखना चाहिए और यह भी कि खडी बोली के प्रचार मे इस एक कृति का महत्व बहुत अधिक है। आचाय शुक्ल ने इतवृत्तात्मक पद्या के ढर की जो शिकायत की है उसम य कृतियाँ हरगिज नही आती। आचाय शुक्ल ने द्विवेदी जी की कविता म ही इतिवृत्तात्मक पद्या की शिकायत अधिक की है किन्तु इसके साथ ही शुक्ल जी न द्विवदी जी की विधि विडम्बना जैसी कृतियो की प्रशसा भी की है। कुमार सम्भव सार का उल्लेख उत्तम कहा है।

भारतभारती म बीच-बीच म मार्मिक तथ्यो के समावश की प्रशसा शुक्ल जी न की है। खडी बोली की उपयुक्तता इसी पुस्तक स प्रमाणित हुई

---

१ भगवान भारतवष मे गूजे हमारी भारती।

यह भी स्वीकार किया गया है। भाषा के परिमार्जन के लिए गुप्तजी की रचनाओ का महत्त्व भी स्वीकार किया गया है। 'भारतभारती' और वैतालिक मे पदावली की सरसता और कोमलता का अस्तित्व भी शुक्ल को स्वीकार करना पडा।[१]

द्विवेदी जी के दूसरे शिष्य रामचरित उपाध्याय थे (जन्म १८७२ ई०)। 'राष्ट्र भारती', देवदूत, देवसभा, देवद्रौपदी, भारत भक्ति, विचित्र विवाह आदि रचनाएँ सरस्वती म प्रकाशित हुई थी। "रामचरितचितामणि' एक प्रबन्ध काय भी आपने लिखा था। इनके काव्य की विदग्धता' की प्रशसा शुक्ल जी ने भी की है। रामचरित उपाध्याय की तरह ही लोचन प्रसाद पाडेय की कविताएँ सरस्वती म प्रकाशित होती थी। गुप्तजी की तरह पाडय जी ने नन्ददास की 'रामपचाध्यायी' के ढग पर चित्तौड के भीमसिह की कथा लिखी और 'मृगीदु खमोचन" मे करुणरस का प्रवाह उत्पन्न किया है।[२]

द्विवेदीजी के प्रभाव-क्षेत्र म कार्य करने वाले उक्त तीन कविया का ही शुक्लजी ने प्रमुख कवि माना है। इनके अतिरिक्त द्विवेदीजी के प्रभाव मे कार्य करने वाले अन्य कवि नीरस पद्या का ढेर लगाते रहे। इनसे खडी बोली के परिमार्जन म सहायता मिली, साथ ही उच्चकोटि की काव्यकला के विकास की इच्छा नवयुवकों म बलवती होने लगी क्याकि नीरस उपदेशा और तुकबन्दिया से सताप नही होता था। उधर ब्रजभाषा के रससिद्ध कवि बराबर खडी बोली के इस प्रारम्भिक काव्य मे कला के अभाव का उपहास कर रहे थे।

द्विवेदी जी से प्रभावित किन्तु द्विवेदी जी की शिष्य परम्परा से बाहर पडने वाले कविया मे सर्वश्रेष्ठ कवि थे—अयोध्यासिह उपाध्याय। 'हरिऔध' बाबा सुमेरसिह के प्रोत्साहन पर ब्रजभाषा की बडी ही सरस कविता लिखते थे किन्तु खडी बोली मे भी लिखने लगे। खडी बोली के काव्य की उपयुक्तता अभी चुनौती का विषय ही थी और एकान्तवासी योगी, रग म भग, जयद्रथ वध, भारतभारती जैसी कतिपय कृतियाँ ही प्रचलित हो पाई थी कि हरिऔध जी ने

---

१ हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ६१६

२ चढ जाते पहाडो मे जाके कभी, कभी झाडी के नीचे फिरें विचरें।
कभी कोमल पत्तियाँ खाया करें, कभी मीठी हरी हरी घास चरें।
सरिता जल मे प्रतिबिम्ब लखें निज, शुद्ध कहीं जलपान करें।
कहीं मुग्ध हो झर्झर निर्झर से, तरपुज मे जा तपताप हरें।

प्रियप्रवास नामक विराट महाकाव्य की सृष्टि कर डाली। छदों की दृष्टि से हरिऔध द्विवेदी जी से प्रभावित थे किन्तु काव्य कला की दृष्टि से उनकी भावुकता सर्वथा मौलिक थी। उन्होंने सस्कृत के महाकाव्यों का धैर्यपूर्वक अनुशीलन किया था। हिन्दी के मध्यकालीन काव्य से भी वह सुपरिचित थे। वह अपने युग की नवीन विचारधारा से भी परिचित थे। द्विवेदीयुग की सर्वश्रेष्ठ कृति है— प्रियप्रवास जिसे इतिवृत्तात्मक कहकर उपेक्षित नहीं किया जा सका। कारण यह था कि प्रियप्रवास में कवि ने आख्यान पर कम और वात्सल्य और विप्रलम्भ शृगार के चित्रण पर अधिक ध्यान दिया। इसके सिवा चरित्रचित्रण की नूतन पद्धति का भी प्रयोग किया। प्राचीन भगवान कृष्ण को नए सन्दर्भ में महामानव और महाजननायक के रूप में चित्रित किया। विदेशियों द्वारा आक्षेप के विषय 'राधा-कृष्ण लीला' को पवित्र अनुराग और दीर्घविरह द्वारा शुद्ध किया। राधा के अनुपम त्याग और परहितैषिणा से सभी प्रभावित हुए। इसके सिवा प्रकृति चित्रण के अतर्गत नूतन सौन्दर्यबोध हम सर्वप्रथम अत्यधिक विस्तार के साथ प्रियप्रवास में ही दिखाई पड़ता है।

प्रियप्रवास द्विवेदीयुग की सीमाओं को तोड़ता हुआ छायावाद के लिए उपयुक्त भूमिका प्रस्तुत करता हुआ प्रतीत होता है। आगे छायावाद में जिस ब्रह्मवाद की झलक प्रकृति में देखने का चाव बढ़ा वह प्रवृत्ति भी प्रियप्रवास में दिखाई पड़ती है। भारतभारती में जो हिन्दू जागरण दिखाई पड़ता है उससे कहीं अधिक व्यापक दृष्टिकोण प्रियप्रवास में मिलता है— हिन्दूवाद के स्थान पर विश्वमानवतावाद की प्रतिध्वनि प्रियप्रवास में ही सुनाई पड़ी आगे छायावाद में इस भावना का द्रुततर विकास हुआ।

आर्य समाज और द्विवेदीयुग की स्वच्छन्दता पूर्वक प्रेम के वर्णन को अनुचित समझने की प्रवृत्ति ने जहाँ रीतिकाल को समाप्त किया वहाँ काव्य को शुष्क भी बनाया। द्विवेदी जी यह समझते थे कि प्रेम के विस्तृत वर्णन से रीतिकाल का पुनः अभ्युदय होगा और उससे जागृति की ओर उन्मुख राष्ट्र की हानि होगी। यह नहीं सोचा जा सका कि प्रेम के चित्रण के भिन्न तरीके हैं और प्रेम का वर्णन इस प्रकार भी हो सकता है जिसमें मानवीय जीवन के सारे सौन्दर्य का चित्रण होने पर भी मनुष्य नारी जाति के गौरव की रक्षा की ओर उन्मुख हो। यह सम्भव है कि 'प्रियप्रवास' में हरिऔध ने इसी डर से मयोग का वर्णन नहीं किया किन्तु जहाँ तक शारीरिक सौन्दर्य और उच्च मानसिक प्रेम के वर्णन का सम्बन्ध है प्रियप्रवास में कवि ने पर्याप्त मार्मिक छवियों का अकन किया है। फिर भी उस युग के नैतिक

बन्धन से राधा का आर्यसमाजी स्वय सेविका के आदश पर ढाला गया है जो अस्वाभाविक लगता है। किन्तु नन्द तथा यशोदा के वात्सल्यभावों का चित्रण सूरदास के बाद प्रियप्रवास मे ही अधिक सफल हुआ है। प्रियप्रवास का दशम सग द्विवेदी युग की श्रेष्ठ कृति है। यह दुख का विषय है कि छायावाद मे रसो का यह वैविध्य प्रचलित नहा रह सका।

यह सही है कि छन्दो के आग्रह से प्रियप्रवास की भाषा कही दुरुह कही ब्रजभाषामिश्रित और कहीं अटपटी हो गई है। किन्तु एक सुकवि की तरह हरिऔध ने सस्कृत के लम्बे छन्दो का प्रयोग कम किया है। छोटे छन्दो म उनकी भाषा प्रवाहमय है विशेषकर द्रुतविलम्बित छन्द मे। इसके सिवा विप्रलम्भ के चित्रण म उनके मन्दाक्रान्ता की भाषा भी स्वच्छ और प्रवाहमय है। अपनी विस्तारवादी शैली के कारण हरिऔध हमारी कल्पना को अधिक नही झकझोरते किन्तु प्रियप्रवास के पठन मे आज भी सुखद आनन्द आता है। उसके छन्दो का सगीत शब्दो म व्यक्त निश्छल हार्दिक भावनाओ को हमारे हृदय म प्रविष्ट करने के लिए बाण का काम करता है। आज भी प्रियप्रवास को पढकर पाठक प्रभावित न हो यह असम्भव है। बल्कि वास्तविकता तो यह है कि दुरुह काव्यो के बाद प्रियप्रवास' का पाठ और भी अधिक सुखद लगता है। कवि की सच्ची और सच्ची भावनाओ को देखकर पाठक मुग्ध हो जाता है बीच-बीच मे प्रकृति का आकषण अपनी ओर खींचता है।

प्रियप्रवास खडी बोली की प्रथम महान उपलब्धि थी।

रसकलस की भूमिका को पढ कर यह स्पष्ट हो जाता है कि हरिऔध जी द्विवेदी जी से एक सामा तक ही प्रभावित थ। वह स्वय अपना माग बनाने वाले कवि थे। वैदेही वनवास' जो नए युग की कृति है मे भी हरिऔध जी ने सस्कृत वृत्तो का प्रयोग किया है किन्तु भाषा सरल रखी है किन्तु वैदेही वनवास मे मनोवेग दम तोडता हुआ दिखाई पडता है। हृदय की जो ऊष्मा विभिन्न पात्रो की मानसिक स्थितियो की जो पकड प्रियप्रवास म दिखाई पडती है वह वैदेही वनवास मे नही मिलती। अत हरिऔध को केवल सफल भाषा प्रयोक्ता के ही रूप म देखना अपनी अज्ञता प्रकट करना है। हरिऔध खडी बोली के प्रथम रससिद्ध कवि थे। गुप्त जी का चमत्कार छायावाद युग मे लिखी हुई कृतियो मे प्रकट हुआ है और जहां तक रस निष्पत्ति का प्रश्न है 'साकेत प्रियप्रवास से अधिक प्रभावित नही करता।

भाषा के प्रयोगो की दृष्टि से भी हरिऔध की मौलिकता प्रशसनीय है। शुक्ल जी ने भी स्वीकार किया है कि "उपाध्याय जी का सस्कृत का पद-विन्यास अनेक उपसर्गों से लदा तथा मजु, मजुल, पेशल आदि से बीच-बीच मे जटित अर्थात् चुना हुआ होता है। द्विवेदी जी और उनके अनुयायी कविवर्ग की रचनाओ से उपाध्याय जी की रचना इस बात मे साफ अलग दिखाई पडती है।"

प्रियप्रवास ने प्रमाणित कर दिया कि खडी बोली मे 'कोमलकात पदावली' का प्रयोग सफल हो सकता है। उसमे केवल उपदेश और घोषणा ही नही है। अपितु 'मधुर' भावनाओ की अभिव्यक्ति ब्रजभाषा की ही तरह होसकती है। उन्होने यह भी सिद्ध कर दिया कि सस्कृत की कोमल और प्रचलित पदावली की सहायता के बिना केवल लावनीवादी परम्परा से काम नही चल सकता। गूढ और सूक्ष्म भावनाओं के लिए सशक्त पदावली के लिए सस्कृत का आश्रय लेना अनिष्टकर नही है।

भारतेन्दु-काव्य की ही तरह प्रियप्रवास मनोवेगात्मक काव्य है। उसकी शैली वर्णनात्मक हैं किन्तु "विरह वेदना से क्षुब्ध वचनावली मे प्रेम की अनेक अतर्दशाओ की व्यजना" मे वह पूर्णत. सफल हुई है। कवि की कल्पना का वैभव प्रकृति के सरल और सश्लिष्ट—दोनों प्रकार के चित्रणो मे पाया जाता है। प्रकृति के तटस्थ, अलकृत, भावारोपात्मक और कही-कही मानवी-करणात्मक चित्रण द्वारा हरिऔध ने खडी बोली मे एक नए सौन्दर्य की निधि का द्वार खोल दिया है। लोग उनके 'वस्तुपरिगणनात्मक' चित्रण की आलोचना करते हैं किन्तु यह नही देखते कि कौन सी ऐसी प्रकृति-चित्रण-पद्धति है जिसका प्रयोग प्रियप्रवास मे नही मिलता? मानवीकरण का प्रारम्भिक रूप भी प्रियप्रवास मे मिलता है। 'प्रियप्रवास' अपने अतीत और अपने युग की सम्पूर्ण सौन्दर्य और भावप्रणालियों का प्रयोग करता है और प्रत्येक प्रणाली म सफलता प्राप्त करता है। स्थायित्व की दृष्टि से जब द्विवेदीयुग के अन्य कवियो की रचनाएँ आज केवल ऐतिहासिक महत्त्व रखती हैं, तब 'प्रियप्रवास' की मार्मिकता आज भी सुरक्षित है।[1] जो यह समझते हैं कि हिन्दी-काव्य आन्दोलनो का काव्य है, उन्हें 'प्रियप्रवास' का स्वस्थ मानसिक स्थिति मे अनुशीलन करना चाहिए।

---

१. 'प्रियप्रवास' के विस्तृत विश्लेषण और मूल्यांकन के लिए द्रष्टव्य—"महाकवि हरिऔध और प्रियप्रवास।" —विश्वम्भरनाथ उपाध्याय

हरिऔध जी विभिन्न प्रयोगो के कवि थे। एक मौलाना के यह कह देने पर कि हिन्दी मे सरल मुहावरेयुक्त चलती भाषा मे कविता नही है, अपने "चौपदो" का ढेर लगा दिया। कई वर्षों के बाद पुन 'वैदेही वनवास' लिखा। 'चौपदो' की परम्परा हिन्दी मे नही चल सकी और एक बात स्पष्ट हो गई कि जान बूझ कर कहावतो और मुहावरो को भर कर काव्य के गौरव की रक्षा नही की जा सकती, विशेषकर उच्च कोटि के चिन्तन और गूढ मानसिक स्थितियो के वर्णन के लिए सर्वथा चलती हुई भाषा का प्रयोग कवियो ने नही किया, कामायनी से यह तथ्य प्रमाणित होता है। किन्तु यह भी स्मरणीय है कि जिस प्रकार उर्दू मे सरल और मुहावरायुक्त भाषा मे बडी से बडी और गूढ से गूढ बात कही जा सकती है, वह बात खडी बोली मे नही आ सकी और जब आती है, तब जब हिन्दी उर्दू ये दोनो शैलियाँ अलग-अलग न रह कर एक होती हुई दिखाई पडती हैं जिनमे वे अपना-अपना सौन्दर्य खो बैठती है। इधर जो 'रुबाइयाँ' लिखी जा रही हैं, उनमे उर्दू की रुबाइयो का आनन्द नही आता। शायद यह प्रवृत्ति ही हिन्दी काव्य के लिए उपयुक्त नही है।

'हरिऔध ने स्फुटकाव्य के रूप मे उपदेश भी बहुत किया है। किन्तु अपेक्षाकृत उसमे दूसरो से काव्य का अंश अधिक है। सबसे अधिक उपदेश देने वालो मे नाथूराम शकर शर्मा का नाम उल्लेखनीय है। द्विवेदी जी ने जिस व्यावहारिक भाषा मे लिखने को कहा था, उसका प्रयोग 'शकर सर्वस्व" की रचनाओ मे बहुत अधिक मात्रा मे मिलता है। शकर जी भारतेन्दुयुग की समस्या पूर्ति परम्परा के एक दिग्गज कवि थे किन्तु साथ ही उनकी समस्यापूर्ति मे काव्य का विषय बदल गया था। आर्य समाज से बुरी तरह प्रभावित होने होने के कारण उनकी समस्यापूर्तियो पर उपदेशवाद की मात्रा बहुत अधिक मिलती है। किन्तु 'शकर' जी सुकवि थे अतः जब वह 'सरस' लिखते थे तो उसमे भी सफलता प्राप्त करते थे यद्यपि उसमे कोई नए प्रयोग की ओर उनकी रुचि नही थी। 'सरस्वती' मे "काव्य शुष्कता" की शिकायत जार्ज ग्रियर्सन महोदय ने भी की थी तब द्विवेदी जी ने 'शकर' जी को लिखा था—

'देखिए खडी बोली की कविताओ के सम्बन्ध मे एक विदेशी विद्वान क्या कहता है, अब 'सरस्वती' की लाज आपके हाथ मे है" ('शकरसर्वस्व')

उक्त उद्धरण से पता चलता है कि द्विवेदी जी 'शकर' जी को कितना मानते थे। यही नही, शकर जी ने अपनी कतिपय रचनाओ से भी ग्रियर्सन को हिन्दी कविता के विषय मे अपनी राय बदलने के लिए विवश कर दिया

था। इन रचनाओ मे "हमारा अध पतन", सम्मुखोद्गार, वसन्त सेना, केरल की तारा, अविद्यानन्द का व्याख्यान, पञ्चपुकार आदि रचनाओ का उल्लेख किया गया है। *यह स्मरणीय है कि वसन्त सेना और "केरल की तारा"* १९०६ ई० मे प्रकाशित हुई थी और दोनो रविवर्मा के चित्रो के आधार पर लिखी गई थी। द्विवेदी जी के नीरस और भद्दे काव्य के आलोचको मे श्यामसुन्दरदास, रत्नाकर और सुधाकर द्विवेदी आदि थे। उन्हे "कडा जवाब"[1] देते हुए *'शकर' जी ने खडी बोली मे, कवित्तो मे वसन्त सेना का* वर्णन किया है। ये कवित्त बडे ही प्रचलित हुए। शुक्ल जी ने 'शकर' जी के काव्य की 'उद्दण्डता' की शिकायत की है और वह शकर जी मे है किन्तु उस काल को ध्यान मे रखने पर यह स्पष्ट है कि जनता मे खडीबोली के प्रचार मे 'शकर' के कवित्तो और भजनो आदि का बहुत बडा हाथ था। शकर ब्रजभाषा की कला का प्रयोग खडी बोली मे बडी सफलता के साथ करते थे।[2]

'केरल की तारा' मे कवि शकर ने वर्णनात्मक छन्द अपनाया है और "केरल की तारा' के 'नखशिख' का खडी बोली मे विवरण दिया है। बीच-बीच

---

१ 'पूरण' 'सुधाकर' के अंक मे कलक बसे
खारी जल कोष 'रतनाकर' मे पाया है।
'भानु' भगवान काले धब्बो से धबीले रहे—
स्वामी 'श्यामसुन्दर' के सग योगमाया है।
सुन्दरी वसन्तसेना बाई का विशुद्ध मन।
पालक महीपति के साले का सताया है।
शकर की रचना मे ठीक इसी भाँति हाय—
भद्दापन दूषण ' बनारसी समाया है।

२. *उन्नत उरोज यदि युगल उमेश है तो,*
काम ने भी देखो वो कमानें ताक तानी है।
शकर कि भारती के भावने भवन पर—
मोह महाराज की पताका फहरानी है।
किंवा लट नागिनी की साँवली सपेलिनो ने,
आधे विधु बिम्ब पै विलास विधि ठानी है।
काटती है कामियों को काटती रहेंगी सदा—
भृकुटी कटारियों का कैसा कड़ा पानी है।

मे आकर्षक उपमान भी आगए हैं। ग्रियर्सन ने इन रचनाओ की प्रशसा की थी—

पूल अम्बर के न कानो को बताकर चुप रहा।
रूप सागर के सजीले सीप हैं यो भी कहा।
गोल गुदकारे कपोला को कडी उपमा न दी।
पुष्प पाटल से समक्ष सौन्दय सुपमा चूम ली।

शकर जी भारतेन्दु की ही तरह कही व्यग्य काव्य को जन्म देते हैं[1] तो कही समस्यापूर्त्तियो म मग्न दिखाई पडत हैं। किन्तु समग्रत शकर जी की कविता का प्राण शिक्षा देना है। अभिधा शक्ति का पूरा चमत्कार इनके काव्य मे मिलता है। सीधी और खरी खरी सुनाने की सतो की प्रवृत्ति शकर जी की विशेषता है। शकर जी के 'क्रन्दन' म भी रुदन का अप्रत्यक्ष रूप नही मिलता। उद्गारो का सीधा विवरण देना ही उनकी विशेषता है। इनम 'कला' नही, कवि की 'सात्विक चित्र दशा' हमें अधिक प्रभावित करती है। 'गोखले' की मृत्यु पर लिखी गई कविता पढिए, कवि की देशभक्ति स्वत स्पष्ट हो जाती है।

'शकर' को जाति और देश के उत्थान की अधिक चिन्ता थी, नवीन सौन्दर्य-सृष्टि की ओर उन्होंने कम ध्यान दिया है "पावस प्रसाद" कविता मे कवि बार-बार पावस सौन्दर्य को छोडकर उपदेश की ओर मुड जाते हैं— 'जागरण' ही इन कवियो का ध्येय था, यदि काव्य को अपना स्वरूप भी खोना पडे तो इन्हें अधिक चिन्ता नही थी।[2] अत काव्य इनके लिए साधन था,

---

१ (अ) सबके पिजडे देखे भाले, मैंने भी दो उल्लू पाले।
बने राजहसो के साले, देखो इनके ढग निराले।
मायामय मराल के मोती, चुगें कांच के झूंठे मोती।
जब ये आंख न्याय की फोडें, पानी पियें, दूध को छोडें—
—"अनोखे उल्लू" से

(ब) इस प्रकार की रचनाओं मे टेसूराम, दिवालो नहीं दिवाला है, अधेर खाता, सलोने को आल्हा, तागड दिन्ना नागर बेल, अविद्यानन्द का व्याख्यान, वायसविजय उल्लेखनीय हैं।

२ अब गिजाइयां देख पौध इनकी बढती है।
पकड एक को एक बना वाहन चढती है।
आरोहण इस भांति कई ढब का जब दीखा।
तब तो चढ़ना अश्व आदि पर हमने सीखा।

ऐसा प्रतीत होता है। इस दृष्टिकोण के अपनाने से इनकी रचनाएँ सामान्य जनता मे अधिक प्रचलित हुइ। रकरोदन से पता चलता है कि कवि का मन देश का दारिद्रय देख देख कर कितना दु खी रहता था[1] किन्तु पद्धति यहाँ भी डायरेक्ट है। सन १९०६ ई० के आय समाज से प्रभावित काव्य के आलोचक के विषय मे भी शकर जी ने लिखा है और कवि के द्वारा निश्चित मापदण्डो का यदि प्रयोग किया जाय तो शकर का काव्य अपने समय मे एक उपलब्धि मानी जाएगी—

अब तो मुख परकीया से सत्वर मोडो।
इनके शठ धृष्ट सेवका के सिर तोडो।
सुखमूल स्वकीया का शुभ सग न छोडो।
समयानुसार रसपति का सार निचोडो।
जो यो कविनायक जी को समझाता है।
वह वीर समालोचक पदवी पाता है।

शकर जी के इस वीर समालोचक की उस समय आवश्यकता थी यह स्पष्ट है क्योंकि मध्यकालीन नायिकाभेदी काव्य से हिन्दी नाता तोड रही थी। परकीया के स्थान पर स्वकीया के प्रम और पातिव्रत की प्रशसा हो रही थी अत शकर का उपदेशवाद काव्यकला की दृष्टि से महत्त्वपूण न होकर भी हिन्दी काव्य के इतिहास के विकास ही नहीं भारतीय साहित्य के विकास म भी अपना महत्त्वपूण योगदान देता हुआ दिखाई पडता है। उस काल की प्रवृत्ति उक्त काव्य मे पूणत प्रतिबिम्बित हुई है।

अन्य कविया की तरह शकर जी के काव्य म राजनीति समाज और साहित्य एक होकर चलते दिखाई पडते हैं। कवि का ध्यान जितना सामाजिक अध पतन पर है उतना ही राजनतिक जागरण पर भी है साहित्य म वह अपनी सीमाओ के भीतर भी कहन के प्रचलित तरीके ही अपनाता है ताकि उसकी बात सामान्य व्यक्ति समझ ले। पाप पर वह फबतिया कसते हैं

---

१ क्या शकर प्रतिकूल काल का अन्त न होगा।
क्या शुभ गति से मेल मृत्यु पर्यन्त न होगा।
क्या अब दुख दरिद्र हमारा दूर न होगा।
क्या अनुचित दुर्दम्भरोग चकचूर न होगा।

—'रकरोदन'

फटकारते हैं, दु ख मे सिसक उठते हैं अतीत के गौरव का स्मरण कर 'गर्व' करते हुए दिखाई पडते हैं, किसानो और मजदूरो तथा अन्य निम्न वर्गों की दुर्दशा पर बार-बार आसू बहाते हैं, विदेशियो पर वाग्बाणो का प्रहार करते हैं और कभी-कभी उमग मे शृगार के रसरग मे भी मस्त हो जाते हैं किन्तु शृगार और सौन्दय उनका क्षत्र नही है। उनकी अपनी निजी कोई ऐसी मानसिक स्थितिया नही है जो जरा भी अनौखा माग अपना कर चलती हो। सामान्य व्यक्ति के प्रति तादात्म्य इन कवियो की विशेषता है। विचारक यह भूल जाता है कि हिन्दी प्रदेश म इन कवियो की व्यावहारिक और निश्चित खडी बोली की पदावली का प्रचार न होता तो आगे का काव्यमहल कहाँ खडा होता। इसके अतिरिक्त द्विवेदी युग भी सुधार' के प्रति असीम आस्था से आगे के 'सौन्दय' का रूप भी असामाजिक नही हो सका। द्विवेदी युग का कवि रीतिकाल और आधुनिक युग के बीच खाई खोद चुका था, उसे लाँघकर छायावादी कवि उधर जा नही सकते थे अत सौन्दर्य की सृष्टि के लिए नए विषय और नई भाव भगिमा, नए सम्बन्धो और नए स्पर्शों के लिए प्रयत्न करना पडा। सुधारवादी काव्य ने का य और जनमगल का सम्बन्ध, जरा भौंडेपन के साथ ही सही, दृढ अवश्य कर दिया। क्या द्विवेदीयुग का यह ऐतिहासिक कृतित्व उपहासास्पद है ?

शङ्कर' जी की प्रबल पौरुष से भरी रचनाओ की तरह ही, उनसे अधिक कलापूण रचनाएँ लाला भगवानदीन 'दीन' के वीर-काव्या मे मिलती हैं। यह आश्चर्य का विषय है कि आचार्य केशव के काव्य का अवगाहन करने वाले इस अलङ्कृत काव्य के प्रशसक कवि और आचाय के हृदय मे इतनी सरल अभिव्यक्ति के प्रति अनुराग कैसे बना रहा ? ब्रजभाषा के कवियो की शब्द क्रीडा की ओर न जाकर 'दीन' जी ने "वीर क्षत्राणी", 'वीर बालक' और 'वीर पचरत्न' नामक काव्या मे 'बोलचाल ही की फडकती भाषा मे जोशीली रचना' की है। उर्दू के छन्द को अपनाकर उसम भूषण की आत्मा का प्रवेश करने मे कवि को पर्याप्त सफलता मिली है। दीन जी ने प्राचीन और मध्यकालीन इतिहास से वीरगाथाएँ चुनकर बालको और युवको के सम्मुख कल्पना और प्रेरणा के अभिनव स्रोत खोल दिए थे। मुझे स्मरण है कि सन् ४० के आसपास 'दीन' जी की कविता को छात्र किस प्रकार झूम-झूम कर पढते थे। छायावाद तो जनता के सामान्य स्तरो का भेदन कर नहीं सका, उसने 'मध्यवर्ग को कल्पना को अधिक प्रभावित किया, विशेषकर शिक्षित वर्ग का किन्तु सर्व साधारण मे सौन्दर्य काव्य की पहुँच न होने से शङ्कर और दीन जैसे कवि ही रिक्तता को भर रहे थे। दीन जी का आदर्श था—

वीरो की सुमाताओ का यश जो नही गाता।
वह व्यर्थ सुकवि होने का अभिमान दिखाता।
जो वीर सुयश गाने मे ढील दिखाता।
वह देश के वीरत्व का है मान घटाता।
सब वीर किया करते हैं सम्मान कलम का।
वीरो का सुयश गान है अभिमान कलम का।

मथिलीशरण गुप्त के रोला और गीतिका हरगीतिका की तरह दीन जी की उपयुक्त बहर भी बहुत अधिक प्रचलित हुई थी।

सन १९०१ ई० म द्विवेदी जी ने कवि कर्तव्य शीर्षक लेख म काय का नूतन सस्कार किया था। द्विवेदी जी ने कहा था कि छन्द विधान मे नूतनता लानी चाहिए।[1] उक्त कवियो के विवरण से स्पष्ट है कि कवियो ने विविध छन्दो का प्रयोग किया था और पुराने छन्दो मे भी खडी बोली मे नए विषयो पर लिखा था। कवित्तो और सवयो मे भी खडी बोली परिष्कृत हो रही थी। द्विवेदी जी ने उर्दू का प्रयोग भी वाञ्छनीय बताया था।[2] भगवानदीन और हरिऔध ने उर्दू के छन्दो मे अपनी कुशलता प्रमाणित की है। प्रियप्रवास मे हरिऔध जी ने द्विवेदी जी की सस्कृतवृत्तो की इच्छा को पूर्ण किया था।

द्विवेदी जी के अतिरिक्त शङ्कर जैसे कवियो ने भारतेन्दु युग के लोक काव्य का भी अनादर नही किया। शङ्कर सर्वस्व म भजनो बारहमासा कजली आदि का प्रयोग भी बराबर दिखाई पडता है।

द्विवेदी जी का भाषा के विषय म मत था कि काव्य की भाषा सरल और सुबोध' होनी चाहिए। द्विवेदी युग का कोई भी कवि इतनी दुरूह भाषा नही लिखता जो समझ मे न आसके। भारतभारती जयद्रथवध रग म भग वीरपञ्चरत्न' तथा स्फुट रचनाओ की भाषा सुबोध है। केवल प्रियप्रवास की भाषा म कही-कही दुरूहता है किन्तु अभिधा शली के प्रयोग के कारण शब्द का

---

१ दोहा चौपाई सोरठा घनाक्षरी छप्पय और सवया आदि का प्रयोग हिन्दी मे बहुत हो चुका। कवियो को चाहिए कि यदि वे लिख सकते हैं तो इनके अतिरिक्त और-और छन्द भी वे लिखा करें।

२ 'आजकल की बोलचाल की हिन्दी की कविता उर्दू के से एक विशेष प्रकार के छन्दों मे अधिक खुलती हैं। अत ऐसी कविता लिखने मे तदनुकूल छन्द प्रयुक्त होने चाहिए।

अर्थ समझ लेने पर प्रियप्रवास के दुरूह अश भी सरल हो जाते हैं। हम कह चुके है कि प्रियप्रवास मे लघु छन्दो मे भाषा सरल ही रखी गई है।

द्वितीय युग मे भाषा मे लाक्षणिकता और ध्वनि उत्पन्न करने का कार्य बहुत कम हुआ। द्विवेदी जी का आग्रह नूतन भगिमाओ पर उतना नही था। जितना भाषा की सुबोधता और शुद्धता पर। द्विवेदीयुग की प्रतिनिधि कृतियो जयद्रथबध और प्रियप्रवास मे भाषा की शुद्धता पर बराबर ध्यान दिया गया है। छन्द के आग्रह के कारण कही प्रयोग सस्कृत या उर्दू के आधार पर भले ही किए गए हो किन्तु कुल मिलाकर द्विवेदी युग की भाषा "शुद्ध, कही जा सकती हैं। उसकी "स्थिरता" और "निश्चितता" मे कही-कही गडबडी दिखाई पडती है, ब्रजभाषा के प्रयोग बीच-बीच मे चलते हैं किन्तु भाषा की शुद्धता मे कमी नही दिखाई पडती। द्विवेदी जी रीतिकाल की भाषा की "तोडफोड" खडीबोली मे न लाना चाहते थे,[1] उन्होंने मुहावरायुक्त भाषा पर भी बल दिया है।

द्विवेदी जी ने स्पष्ट लिखा है कि "शब्दप्रयोग रसानुरूप" होना चाहिए।[2] द्विवेदीयुग के आख्यान-प्रधान काव्यो मे यह प्रवृत्ति विशेष रूप से दिखाई पडती है। गुप्त बन्धुओ और हरिऔध जी ने रसानुकूल खडी बोली का ही प्रयोग किया है। द्विवेदी युग के कवि पुराने काव्य के भी मर्मज्ञ कवि थे अत वे रसानुकूल भाषा के प्रयोग की कला का प्रदर्शन खडी मे करना चाहते थे। इस प्रवृत्ति से खडी बोली विभिन्न भावनाओ के अनुकूल पदावली की प्राप्ति मे सफल हुई। द्विवेदी युग के प्रमुख कवियो ने इस ओर बहुत ध्यान दिया है किन्तु हमारी प्राचीन काव्य कला के इस विशेष गुण की खोज द्विवेदी युग मे न करके विचारक "इतिवृत्तात्मक" कह कर द्विवेदी युग की समाप्त कर देते हैं।[3]

---

१. "शब्दो का रूप (ब्रजभाषा की भांति) बिगाडने की 'निरकुशता' न होनी चाहिए।"

२ किसी-किसी स्थल विशेष पर रक्षाक्षर शब्द अच्छे लगते हैं परन्तु और सर्वत्र ललित और मधुर शब्दो का प्रयोग मे लाना उचित है। शब्दो के चुनने मे अक्षत्र मैत्री का विशेष विस्तार रखना चाहिए।"

३ चित्र—तम ढके तरु थे दिखला रहे, तमस पादप से जनवन्द को।
सकल गोकुल गेह समूह भी, तिमिर निर्मित सा इस काल था।

उद्गार—छीना जावे लकुट न कभी वृद्धता मे किसी का।
ऊधो कोई न कल छल से लाल ले ले किसी का।

यह सही है कि उसमे सूक्ष्मता, प्रतीकात्मकता और अभिनव भंगिमा नही है। किन्तु ब्रजभाषा के काव्य के समानान्तर द्विवेदी युग का कवि खडी बोली मे सीमित सफलता प्राप्त करने पर भी महान आदर का पात्र बन जाता था क्योकि लोग व्यवहार मे जिस भाषा का प्रयोग करते थे, उसी भाषा मे काव्य चाहते थे। इसके सिवा ब्रजभाषा के कवि द्विवेदी युग मे नए नए विषयो को उतने परिमाण मे ब्रजभाषा मे नही अपना सके। द्विवेदी युग मे नाथूराम शङ्कर ने द्विवेदी जी की सरस्वती की कविताओ के विरोधियो मे 'रत्नाकर' का नाम भी लिखा है—और उन्हे 'खारी जल' से भरा हुआ कहा है। राय देवीप्रसाद पूर्ण, रत्नाकर तथा सनेही जी नई चेतना को उस मात्रा मे वाणी नही दे सके, ब्रजभाषा को इस लिए भी नई पीढी उपेक्षा की दृष्टि से देखती थी अत खडी बोली म रसयुक्त शब्दावली का प्रयोग देखकर कवि की सफलता को एक उपलब्धि माना जाता था।

द्विवेदी जी का कथन था कि "अर्थसौरस्य ही कविता का जीव है।" अर्थात् द्विवेदी जी अर्थ पूर्ण पदावली को ही काव्य मानते थे। उनका कथन था

पूंजी कोई जनम भर की गांठ से खो न देवे।
सोने का भी सदन न बिना दीप के हो किसी का।

—प्रियप्रवास

हा कृतघ्न सुग्रीव! न होगा मुझसे कोई।
तुझे सहायक भी न मिलेगा मुझ सा कोई।

—रामचरित चिंतामणि

व्येप—कृपण कामिर्णे का इस जग मे कहना करना ठीक नहीं।
वृद्धि बिगडती है वृद्धों की यह बात अलीक नहीं।
माता और पिता दोनों को इससे मारूंगा तत्काल।
आज्ञा मिले देखिए सज्जित है मेरे कर में करवाल।

—"रामचरित चिंतामणि"

शृङ्गार—ललित लज्जा-भार से ग्रीवा रुचिर नीची किए।
मन्द गति से वह गई वह अवलम्ब उन सबका लिये।

—रंग मे भंग

करुण—फिर पीट कर सिर और छाती अश्रु बरसाती हुई।
कुररी सदृश सकरुण गिरा से, धैर्य्य बरसाती हुई।

—जयद्रथवध

कि अलकारा को बलात लाने का प्रयत्न नही करना चाहिए बलात् किसी अर्थ को लाने की अपेक्षा प्रकृत भाव से जो कुछ आजाव उसे ही पद्य बद्ध कर देना अधिक सरस और आह्लादकारक होता है।

द्विवेदी युग के काव्य मे प्रकृत भाव अतिशयता की सीमा तक पहुचा हुआ दिखाई पडता हैं। इस युग म कविया ने कुशलता का परिचय न देकर अभिव्यक्ति को अधिक ध्वन्यात्मक या लक्षणात्मक अथवा प्रतीकात्मक न बनाकर सीधे साधे उद्गारा का कथन करना अधिक पसन्द किया है अत काव्य मे अनकहा' कुछ भी नही रह जाता सब कुछ कह लेने की प्रवृत्ति के कारण पाठक की कल्पना के प्रयोग के लिए कुछ भी शेष नही बचता। प्रियप्रवास रामचरित चिन्तामणि (रामचरित उपाध्याय) तथा जयद्रथ वध आदि म यह कमी अवश्य खटकती है। द्विवेदी युग म शब्दावली का अत्यधिक अपव्यय मिलता है। कम से कम शब्दा म अधिक से अधिक अर्थ व्यजित करने की प्रवृत्ति बहुत कम मिलती है। वणनात्मक और विवरणात्मक शैली के आधिक्य का ही यह कारण है। व्यास शैली' म लिखे हुए इस युग के काव्य आज काव्यकला की दृष्टि से उतने आकर्षक नही रह गए हैं। फिर भी यह मानना होगा कि द्विवेदी युग म व्यास शैली' के प्रयोग म कवियो को अच्छी सफलता मिली है।

विषय की दृष्टि से द्विवेदी युग नवीन युग है। कविया को द्विवेदी जी का आदेश था कि नायिका भेद और अलकार निरूपण छोड कर चीटी से लेकर पवत पर्यन्त प्रत्येक विषय पर छोटी छोटी कविताएँ लिखनी चाहिए। द्विवेदी युग म विषय वविध्य अवश्य मिलता है। ब्रजभाषा म भारतेन्दु युग से ही नए प्रकृति दृश्या पर रचनाएँ मिलती हैं। जगमोहनसिंह और प्रेमघन ने गाव की छविया का यथार्थ्य चित्रण किया है। आगे कविरत्न सत्यनारायण ने ब्रजभाषा म ग्रामछवि को ओर मुग्ध दृष्टि से देखा था। यह परम्परा अधिक वैविध्य के साथ खडी बोली म प्रचलित हुई। ऋतु वणन एक नए रूप म खडी बोली म प्रचलित हुआ। शकर का निदाघ वणन[1] रीतिकालीन निदाघवणन

---

१ बीते दिन वसन्त ऋतु भागी, गरमी उग्र कोप कर जागी।
ऊपर भानु प्रचण्ड प्रतापी भू पर भभके पावक पापी।
आवत वात मिले रस रूख झावर, झील सरोवर सूख।
दीपक ज्योति जहा जगती है, चमक चचला सी लगती है।

से भिन्न है क्योकि इसमे कवि को केवल जलते हुए दीपक ही बिजली से नहीं लगते किन्तु यह भी बुरा लगता है कि प्रजा का धन उडा कर राज महाराजे गर्मी बरदाश्त न कर पहाड पर भाग जात हैं।[1] गुप्त जी और लोचनप्रसाद पाडय[1] के निदाघ वणन अथवा प्रकृति के अय रूपो को देखें तो द्विवदी युग का योगदान स्पष्ट हो जाता है। रीतिकालीन नायिकाओ के सन्दभ मे ही प्रकृति को न देख कर प्रकृति का स्वतन्त्र रूप द्विवदीयुग म वण्यविषय के रूप मे निश्चित हो जाता है। गिरिधर शर्मा का शरद वणन रामनरेश त्रिपाठी की मनोहर चित्रावली मुरारिवाजपेयी की शरद-सरिता[2] सत्याशरण की सरिता-छवि चन्द्रकिरण गोपालशरणसिंह के मनमोहक दृश्य वणन[3] प्रियप्रवास के भव्य प्रकृति-दृश्य पाठक के मन मे यह स्पष्ट बोध कराते हैं कि काव्य मे परिवतन हो गया है पुरानी रुचि जो केवल उद्दीपन रूप मे प्रकृति के निश्चित कुछ रूपो का ही चित्रण करती थी अब एक अभिनव रूप मे अधिक वैविध्य के साथ प्रस्तुत हो रही है।

अकुला कर राजे महाराजे, गिरिशृगो पर जाय विराजे।
धूलि उडाय प्रजा के धन की, रक्षा करते हैं तन मन की।
खलिहानो पर दाय चलाना, फिर अनाज भूसा बरसाना।
पूरा तप किसान करते हैं, तो भी उदर नहीं भरते हैं।
हलवाई, भुरजी, भटियारे, सौनी भगत, लुहार विचारे।
नेक न गरमी से डरते हैं, अपने तन फूका करते हैं—

—'शकरसवस्व' से

१ प्यासे हैं खग खोले चंचुपुट तज के गीत से मौन धारे।
बठ हैं कोटरों म, मृगगण तरु के ताप सन्ताप मारे।
हो के हा! शुष्क कण्ठ व्यथित विपिन के जन्तु दग्धा मही मे।
छाया मे हाँफते जा तज, तृण चरना, शाति पाके न जी में।

२ धीरे धीरे वेग हटाती नदियाँ येग दिखाती हैं।
ज्यो नवसगम मे लज्जित हो ललना जघन दिखाती हैं।
(द्रष्टव्य—हिन्दी काव्यों में युगान्तर) डा० सुधीन्द्र

३ फूलों के मिस लतिकायें, सब मन्द-मन्द मुस्काती हैं।
पल्लवरूपी पाणि हिलाकर, मन के भाव बताती हैं।

(वही)

यह सही है कि द्विवेदीयुग के कवियो ने आख्यान-काव्यो की तरह प्रकृति वर्णन मे कल्पना-वैभव कम प्रदर्शित किया है। किन्तु श्रेष्ठ कवियो यथा रामनरेश त्रिपाठी, गोपालशरण सिंह तथा हरिऔध जी के प्रकृति चित्रण अपनी मोटी उभरी हुई रेखाओ के बावजूद अपनी सरलता के कारण आज भी प्रिय लगते हैं। कारण यह है कि ये कवि एक तो अपनी मानसिक गुत्थियो को प्रकृतिचित्रणो मे नही भरते, दूसरे प्रकृति चित्रण मे उनके हृदय की प्रसन्नता और आवेश भी प्रकृति-चित्रणो को अकर्षक कर देता है। रामनरेश त्रिपाठी के काव्य मे तो नायक प्रकृति के सौन्दर्य मे इतना मुग्ध होता है कि उसे अपने 'प्रेम' और 'देश' की भी चिन्ता नहीं रहती। "प्रकृतिप्रेम" देश प्रेम के रूप मे भी चित्रित हुआ है,[1] भारतवर्ष की छवि का वर्णन एक 'परम्परा' ही बन गई है।

प्रकृति-वर्णन मे हेमन्त, वसन्त ग्रीष्म, पावस, शरद, शिशिर आदि पर अनेक रचनाएँ मिलती हैं परन्तु चित्रणो मे सूक्ष्मता न होने पर भी ताज़गी है।

इसके अतिरिक्त राजा रवि वर्मा के चित्रो पर बहुत सी कविताएँ लिखी गईं, वस्तुत चित्रण करने के लिए इनसे कई कवियो ने प्रेरणा ली। रम्भा, महाश्वेता, कुमुदसुन्दरी, इन्दिरा, कादम्बरी, धनुर्विद्या-शिक्षण, वसन्त सेना, मोहिनी, मालती, प्रार्थना, पचदशी आदि कविताएँ चित्रो पर ही लिखी गई थी। इन रचनाओ से द्विवेदी युग की "रक्षता" मे कमी हुई और दूसरी ओर ऐसे चित्रण व्यापक देशभक्ति के अग के रूप मे भी प्रचलित हुए क्योकि अपने अतीत के दृश्यो और पात्रो की भगिमाओ का चित्रण इनमे हुआ करता था।

आख्यानकाव्यो, यथा रग मे भग, जयद्रथवध, शकुतला, किसान, मौर्यविजय, प्रियप्रवास, रामचरितचितामणि, वीरपचरत्न, प्रेम पथिक, महाराणा का महत्त्व, पथिक और मिलन आदि मे यत्र तत्र कवियो ने अपनी चित्रण-

---

१ (अ) गिरिवर भ्रूभग धारि, गगधार कण्ठहार।
सुरपुर अनुहार, विश्व वाटिका विहारी।
उपवन वन वीथि-जाल सुन्दर सोइ पट दुसाल।
कालिमाल विभ्रमालि, मालिकालिकाली।
"भारत प्रशसा से" श्रीधर पाठक

(ब) धौत तेरा चरण-तल है, नील नीरधि नीर से।
जय अनिल-कम्पित मनोरम श्याम अंचल धारिणी।
व्योम चुम्बी भाल हिमगिरि है तुषार किरीट है।
—"सियारामशरण"

क्षमता का भली भाति प्रदर्शन किया है। प्रसाद जी के प्रेमपथिक और महाराणा का महत्व मे यह चित्रण-क्षमता एक अभिनव रूप मे दिखाई पडती है जिसे हम यथास्थान देखेंगे।

इसके अतिरिक्त द्विवेदीयुग मे भारतेन्दुयुग की ईश्वरप्रेमप्रवृत्तिप्रधान रचनाएं भी मिलती है। यदि द्विवेदीयुग की प्रार्थनापरक कविताओं को हम ध्यान मे रखे तो आगे की रहस्यपरक रचनाएँ उनका स्वाभाविक विकास दिखाई पडती है भले ही रहस्यवादियों ने बाहर से प्रेरणा लेकर अपनी रचनाओं मे नूतन भावभंगिमा की उत्पत्ति की हो। भारतेन्दुयुग मे प्रताप नारायण मिश्र की एक रचना है जो आजकल मूर्खों का मजाक बनाने के लिए प्रयुक्त होने लगी है— हे प्रभो आनन्ददाता ज्ञान हमको दीजिए। द्विवेदी युगीन काव्य के विवेचक डा० सुधीन्द्र ने भी स्वीकार किया है कि इस प्रार्थना की परम्परा मे ही हरिऔध की प्रभुप्रताप लोचनप्रसाद पाडेय की ईश गुणगान तथा कामताप्रसाद गुरु की दीननिहोरा आदि रचनाएँ लिखी गई थी जो हो यह स्पष्ट है कि ईश्वर प्रेम विषयक रचनाएँ द्विवेदीयुग मे पुरानी कविता से हमारा विषयगत सम्बन्ध बनाए हुए दिखाई पडती है। यो द्विवेदी युग मे पूँजीवाद का विकास हो रहा था किन्तु विज्ञान का प्रचार इस युग मे उतना नही हो पाया था अतएव विज्ञान के अभाव मे यह स्वाभाविक था कि पराधीन कवि आधुनिक युग मे भी ईश्वर का सहारा खोजता। यह भी स्मरणीय है कि हरिऔध गुप्त जी आदि अधिकतर कवि वैज्ञानिक दृष्टिकोण से अपरिचित थे फिर भी आर्यसमाज के प्रभाव वश अन्धविश्वासो के विरुद्ध द्विवेदी युग ने बहुत अधिक लिखा है।

द्विवेदीयुग मे आख्यान प्रकृति और प्रार्थनाओ के अतिरिक्त विषय वैविध्य की दृष्टि से सुन्दर नीतिकाव्य या उपदेशात्मक काव्य की सृष्टि की है इस शीर्षक मे नाना सामयिक विषयो पर रचनाएँ प्रस्तुत की गई हैं। यह आश्चर्य का विषय है कि संस्कृत-साहित्य मे उपदेशपरक काव्य की तो इतनी प्रशंसा होती है सूक्तिकाव्य का भी वहाँ बडा आदर है परन्तु खडी बोली के प्रारम्भ मे भोलानाथ तिवारी के शोधग्रन्थ के पूर्व हिन्दी के विचारक द्विवेदीयुग के नीतिकाव्य को अत्यधिक उपेक्षा की दृष्टि से देखते थे।

असलियत यह है कि नीतिकाव्य का अपना एक अलग क्षेत्र ही बन गया है और उसके प्रभाव का विश्लेषण जब किया जाएगा तब कोरे सौंदय

वादियो को यह जानकर निराशा होगी कि जनमन और जनकण्ठ पर नीति-काव्य का प्रभाव बहुत अधिक है। काव्य का जनता की दृष्टि से अध्ययन करने वाले विचारक नीतिकाव्य' की अवहेलना नही कर सकते। जनमनपरिवर्त्तन के लिए नीतिकाव्य एक अचूक अस्त्र है। अतएव विषय-वैविध्य और काव्यरूप दोनो दृष्टियो से द्विवेदीयुग के नीति या उपदेशपरक काव्य का अपना अलग महत्त्व है। गुप्त जी ने कविता कामिनी का उद्देश्य ही "शिक्षा" को माना है[1] इस शिक्षाप्रधान काव्य का जितना और जैसा प्रभाव द्विवेदीयुग मे हुआ, उतना प्रभाव छायावाद मे अत्यधिक सुन्दर रचनाओ का नही हुआ, विशेषत सर्वसाधारण पर। गुप्त जी, हरिऔध, शकर आदि की रचनाएँ आज भी जन-कण्ठ का हार बनी हुई मिलती हैं, यह गौरव अत्यधिक ऊँचे गगनचुम्बी कवियो को भी नही मिला।

इस उपदेशपरक काव्य मे कवियो की मानव प्रेम और देशप्रेम के प्रति इतनी कातरता और करुणा व्यक्त हुई है कि इन कवियो की रचनाओ मे बिना किसी उच्च काव्यकला के स्वय ही मार्मिकता आ गई है। यह भी नही कहा जा सकता कि सर्वत्र उपदेश मात्र उपदेश के रूप मे ही स्वीकृत होना चाहिए। भावना की वास्तविकता काव्य का मर्म है, वह उपदेशो के बीच-बीच अपनी ओर ध्यान ही नही खीचती हमे, क्षण भर के लिए अश्रु पूर्ण कर देने की भी क्षमता रखती है। जब बालमुकुन्द गुप्त कहते हैं कि हम मे हाथ की रोटी रखने की शक्ति नही रह गई तब आँखो मे आँसू भर आते हैं।[2]

---

१. आनन्दमयी शिक्षिका है सिद्ध कविताकामिनी।
केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए।
उसमे उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए।
—(भारतभारती)

२ अपने बल हम हाथ की, रोटी सकत न राख।
नाथ बहुरि कैसे मरैं, मिथ्या बल करि साख।
कहाँ राज कहँ पाट प्रभु, कहाँ मान सम्मान।
पेट हेत पायन परत, हरि तुम्हरी सन्तान।
जिनके कर सों मरन लौं छुट्यो न कठिन कृपान।
तिनके सुत प्रभु पेट हित, भये दास दरबान।
—(बालमुकुन्द ग्रन्थावली)

नीतिकाव्य मे एक गुण यह होता है कि पाठक से प्रत्यक्ष अपील करता है अत जो प्रभाव इस काव्य का होता है उसमे पाठक या श्रोता को किसी ओर सोचन के लिए नही जाना पडता। हमारे यहा काव्य को जो कान्ता सम्मति कहा गया है उसका कारण यह है कि काव्य कहने का मधुर ढग अपनाता है और इस तरह से पाठक या श्रोता के मन का परिवर्त्तन कर देता है कि उसका ध्यान इस तथ्य की ओर जा ही नही पाता कि उसे बदलने की कोशिश की जा रही है। किन्तु यह स्मरणीय है कि अत्यधिक जागरण के युग मे पाठक और श्रोताओ के सम्मुख कान्ता की तरह मधुरमार्ग अपनाने का अवकाश नही था। ऐसा लगता है जैसे कवि किसी बडी दुर्घटना के घटित होने पर सबको जोर जोर स बुला-बुला कर घटनास्थल पर खडा हुआ कह रहा हो भाई ! देखो यह देश यह समाज कितना पतित और अवनत हो गया है और उधर देखो इसकी दुर्दशा के कारण वे विदेशी लोग हैं। यह डायरेक्टनेस ही द्विवेदी युग के काव्य की विशेषता है। यह भी स्मरणीय है कि इस काव्य के लिए कवियो ने ब्रजभाषा और खडी बोली दोनो म बहुत लिखा है। बालमुकुन्द गुप्त की कविताओ को पढने से स्पष्ट प्रमाणित होता है कि जब द्विवेदी जी खडी बोली का सस्कार कर रहे थे उनम नूतन भावनाए भर रहे थे तब बालमकुन्द गुप्त ब्रजभाषा म ऐसे काव्य को जन्म दे रहे थ जो ऊपर स देखने म तो पारम्परिक लगता है किन्तु ध्यान स देखने पर ब्रजभाषा की आत्मा ही सर्वथा परिवर्तित रूप म प्रस्तुत हो रही थी।

भारतेन्दुयुग म भक्ति और शृगार की सांकेतिक सामायिकता की ओर हमने पाठको का ध्यान आकर्षित किया है किन्तु द्विवेदीयुग म ब्रजभाषा के काव्य म बहुत अधिक गुणात्मक परिवर्त्तन दिखाई पडता है परन्तु दुख यह है कि महान कलाकारो म यह गुणात्मक परिवर्तन कम हुआ है उदाहरणत रत्नाकर और कविरत्न म राजनतिक दृष्टि से जागरूकता का अभाव ही शायद इसका कारण है। जो हो द्विवेदी युग म बालमकुन्द गुप्त और वियोगीहरि एसे कवि थे जिनम सर्वाधिक रूप स गुणात्मक परिवर्तन दिखाई पडता है। यह भी स्मरणीय है कि इनम खडीबोली के इतिवृत्तात्मक और उपदेशपरक काव्य से बहुत अधिक मार्मिकता है। इसका कारण यह है कि खडी बोली का माध्यम तब पिछडा हुआ था जब कि ब्रज भाषा म कवियो को कोई कठिनाई नही होती थी।

उपदेश म एक आतक होता है जब कि काव्य म अचेतन रूप से अहिंसक रूप से अर्थात् अधिक मानवीय रूप स हृदय परिवर्तन की शक्ति होती

है। द्विवदीयुग म जो उपदेश मिलता है उसमे वहुत सा ऐसा भी है कि उसमे आतक नही मिलता। इसका कारण यह है कि कवि प्रदशनप्रिय नही थे वे मार्मिक अपील के रूप मे लिखते थे। गोस्वामी तुलसीदास जिस तरह राम के दरवार मे विनय पत्रिका भेजत है उसीप्रकार द्विवेदी युग के कवि जनता के दरवार म अपनी विनय भेजत है जो दीनता कातरता आत्तता अहकारहीनता और अपनत्व तुलसीदास की विनय पत्रिका मे मिलता है एक दूसरे मोड पर वैसा ही चित्त इन द्विवेदीयुग के कवियो का था अत यह नए युग का उपदेशपरक काव्य मध्ययुग के नीतिकाव्य से भी गुणात्मक परिवतन' प्रकट करता है। यह तथ्य न समझने के कारण अभी तक यह प्रयत्न ही नही हुआ कि सुविधाजनक फामू ला को छोड कर विचारक धैय से उन अशों को अलग करें जिनमे नए ढग के प्ररणात्मक काव्याशो को चुन कर अलग कर लिया जाय। यहा कतिपय उदाहरण दिए जा रहे हैं इस पद्धति पर अलग से शोध काय होना चाहिए। आत्तता ओज और आलोचना से युक्त काव्य के कतिपय उदाहरण ही पर्याप्त हैं —

बालमुकुन्द गुप्त—हमरी जाति न धन है नही अथ नहि काम।
कहा दुरावैं आप से हमरी जाति गुलाम।
बहु दिन बीते राम प्रभु खोये अपने देस।
खोवत हैं अब बैठके भाखा भोजन भेस।
नही गाव मे झूपडो नहि जगल मे खेत।
घर ही बैठे हम कियो अपनो कचन रेत।
सबै कहैं तुम हीन हो हमहूँ कहैं हम हीन।
धक्का देत दिनान कों मन मलीन तन छीन।

× × × ×

हाय समय ने एक साथ सब बात मिटाई।
एक चिन्ह भी उसका देता नहिं दिखलाई।
धरती के जी मे छाई ऐसी निठुराई।
उपजीविका किसानो की सब भाँति घटाई।
हे हे दुखियो डूबी हो किस दुखसागर मे।
अब उन बूदो भेंट कहा है भारत भर मे।

वियोगी हरि— जा जग की रोटीन तें सूपतु अलख अनत।
मिथ्या ताको कहत ए निलज निठल्ले सत।

रामचन्द्र शुक्ल—पर अजब इस लोक का व्यवहार है
न्याय है ससार से जाता रहा।
श्वान छूना भी जिन्हे स्वीकार है
है उन्हे हम अभागो से घृणा[1]

नाथूराम शर्मा शकर—जाति पाति के भ्रम जाल मे उलझे पडे गँवार।
मैं इन सबको मुलया दूँगा करके एकाकार[2]

मैथिलीशरण गुप्त—जो स्वामिसम रक्षक रहे थे आप भक्षक बन रहे।
जो हार थे मदार के वे आज तक्षक बन रहे।

दुलारेलाल भार्गव—कवि कोविद पालत हुते, जे नरपाल सुजान।
पालत आज खुशामदी, मोटर गनिका स्वान।

महेशचन्द्र प्रसाद—सरकारी सेवक औ स्नेह स्वदेश।
कफन ढक्यो मृतक जनु लख नभभेस।
धिक चाकर जहँ जननी चरखा पाप।
देवदास दुर बादक जहँ नित जाप।

× × ×

पुलिस पाप पै ही इक ठहरो राज
पुलिस आड पर ही अवलम्बित साज।
चुटकी भर सेन्दुर की नारि निबाहु।
भर माथा को तुम्हरो। करहु न काहु[3]

अर्थात् नारी तो अपने स्वामी के चुटकी भर सिन्दूर का इतना निभाती है तो पुलिस के सिर पर तो स्वामी द्वारा दी गई माथे की लाल पगडी है फिर भला वे क्या न निभावें ?

वियोगी हरि—भीख सरिस स्वाधीनता बन बन जाचत सोधि।
अरे मसक की पाँखुरिन पाऱ्यो कौन पयोधि।

---

१ अछूतों की आह।
२ हिन्दी में नीतिकाव्य, पृ० ६५
३ वही।

एक ही व्यक्तित्व के तीन पक्षो की तरह एक और अभिन्न रूप मे द्विवेदी-युगीन काव्य मे मिलते हैं। नाना प्रकार की अन्योक्तियो, मुकरियो और दूसरे काव्य रूपो के द्वारा द्विवेदी युगीन कवि अनपेक्षित तत्वो की असगतियाँ प्रदर्शित करता है, असगतियो के उद्घाटन मे इस "परिहास काव्य" का अत्यधिक महत्वपूर्ण योग है—द्विवेदीयुग के बाद कवियो ने कुछ ऐसी उच्च चिन्तनमुद्रा धारण की कि प्रारम्भिक युग की सजीवता गद्य और पद्य दोनो मे लुप्त होती गई। यह सोचने की चीज है कि सन् १९२० के बाद देश को कुछ सुविधाएँ मिलनी ही गई, आन्दोलन भी उग्र होता गया, मुक्ति का आगमन भी स्पष्ट होता गया किन्तु प्रारम्भिक अनिश्चितता, आशका और सगठनहीन स्थिति मे भी उक्त कवियो ने जो महाप्राणता दिखाई, वह अद्भुत है, निराशावादियो के लिए द्विवेदीयुग इस बात मे भी आदर्श है।

द्विवेदीयुग के द्वारा वही "मानवमूल्य" स्वीकृत हुए थे जो हमारे भारतीय जीवन के आधार रहे हैं। मूल्यो की स्पष्टता के विषय मे द्विवेदीयुग अब भी आदर्श हो सकता है। द्विवेदी युग यह मानकर चला था कि अतीत की तरह प्रयत्न द्वारा अधिकाधिक समाज के अधिकाधिक आनन्द को प्राप्त किया जा सकता है। "उपयोगितावादी" विचारधारा से स्वय द्विवेदी जी प्रभावित थे। "उपयोगितावाद" के दार्शनिक पक्ष मे चाहे जितने दोष हो किन्तु इस विचारधारा ने तात्कालिक कवियो और विचारको को जान या अनजान मे बहुत प्रभावित किया था। अत. आधार मजबूत होने के कारण एक निर्भ्रान्त मानसिक स्थिति और सजग निष्ठा का उदय हुआ, विनोदवृत्ति और कही-कही हलकी "चुहलबाजी" को देखकर जो प्रारम्भिक कवियो को "हलका" कहना, चाहते हैं वे यह भूल जाते हैं, कि यह हलकापन अपने नीचे कितनी गम्भीरता, निष्ठा और लक्ष्य के प्रति आवेश को छिपाए हुए हैं। बच्चो की तरह किलकने वाले किसी तत्वज्ञानी को देखकर क्या यह कहा जा सकता है कि वह "हलका" है ? अत द्विवेदीयुग की विनोदवृत्ति एक ओर तो क्षण-क्षण चिन्तादाह से बचने का उपाय है और दूसरी ओर वह समाज की असगतियो के उद्घाटन का प्रयत्न है। कवि जिन लोगो की आलोचना करना चाहते थे, उनमे विदेशियो को छोड़कर सब "अपने" ही थे अत "भर्त्सनावाद" सदैव सफल नहीं हो सकता था। उद्बोधनात्मकता अपने मे नीरस होती है, यह भी ये कवि समझते थे अत हृदयपरिवर्तन के लिए वे तरह-तरह के विनोद-युक्त प्रयोग करते थे, द्विवेदी युग का यह पक्ष उसके 'उपदेशवाद' के दोष को कम करता है किन्तु इधर

लखको का उतना ध्यान नही गया। भ्रम यह है कि द्विवेदीयुगीन कवि स्वप्न मे भी उपदेश ही देता होगा।

नाथूराम शकर की तोते एरण्ड वन बिडाल व्याघ्र पचपुकार तागड दिन्नानागर बेल टेसूराम भारत का भाट पित्तरपचीसी रामरुपैया रेलवे देवी अफीमी की आफत खिलाडी खटमल अनोखे उल्लू आलसी नोट पोट मुनव्वर मुशी आदि रचनाओ को पढिए भारतेन्दु युग पूरी सजीवता से सुरक्षित मिलेगा। प० प्रतापनारायण मिश्र जैसे पुन उपस्थित हो गए हो।[1]

रायदेवी प्रसाद पूर्ण की मृत्युजय कन्हैयालाल पोद्दार की अन्योक्ति दशक अन्योक्ति पचक मैथिलीशरण गुप्त गिरिधर शर्मा लक्ष्मीधर वाजपेयी, महेन्द्रलाल गग आदि कवियो ने सस्कृत और हिन्दी की परम्परा के अनुसार

---

१ (अ) नौकरशाही—

ओ नौकरशाही, ऊल, ऊल उर छील।
बैठी वासुकि के मस्तक पै, ठोक अकड की कील।
डाले पोच प्रजा के मुह मे पर न प्यार की खील।
'जा हुजूर यादो'' जय बोलें होकर गौरवहीन।
जाल अदालत का पूरा है, इतना तूल-तवील।
जिसमे झाडालू झूठो का, उलझा मुण्ड भ्रडील।

(ब) तागडदिन्ना—

शकर स्वामी काट दे, मोह जाल भ्रम फद।
टेसू से कर दे मुझे सेट ढकफुलानद।

(स) पचपुकार—

सुन सुन मेरे शब्द, बोलियाँ, चौंक पडें चण्डूल।
पर, जो हिन्दू कथन करेगा, हिन्दी के प्रतिकूल।
उसे धमका धिक्कारूँगा
किसी से कभी न हारूँगा

इग्लिश डाग नागरी गैंडा, उरदू दुम्बा तीन।
निकलें पेपर, पत्र, रिसाले, मेरें रहें अधीन।
केसरी सा धधकारूँगा।
किसी से कभी न हारूँगा

अनेक अन्योक्तियाँ कही हैं। गुप्त जी की अन्योक्ति पुष्पावली मे मनोरजक अन्योक्तियाँ हैं। गिरिधर शर्मा ने पश्चिम बुद्धि कलकी पर[1] तथा गुप्त जी की खजूर [2] शीर्षक अन्योक्तियो से यह तो स्पष्ट ही है कि ये कवि मजाक करते समय सुरुचि और सदेश का बराबर ध्यान रखते थे।

सूय ग्रहण (शकर) उल्लू रेन की सिग्नल दावात (गौरचरण गोस्वामी) मना तोता दिल्ली बगला अलि (सैयद अमीर अली मीर) आदि अन्योक्तिया उस युग म बहुत जनप्रिय हुइ।

डा० सुधीन्द्र के अनुसार अन्योक्तिधारा सूक्तियो मे विलीन हो गई द्विवेदीयुग की विनोद वृत्ति सूक्तियो मे भी झलकती है। उन्होने कुछ मनोरजक उदाहरण भी दिए हैं।[3] बाबू बालमुकुन्द गुप्त तो भारतेन्दु की विनोद-ज्योति के उत्तराधिकारी थे ही। उन्होंने भस का मरसिया व्याकरणाचाय गुरु के पिट्ठू गुरु जी का हाल गुरुघटाल का स्वप्न मिण्टो मार्ली टेसू पोलिटिकल होली हसी दिल्लगी कजनाना ताऊ और हाऊ मल्लयुद्ध उदू को उत्तर

---

१ रे दोषाकर पश्चिम बुद्धि, कसे होगी तेरी शुद्धि।
द्विजगरण को कोने बठाया, जड दिवान्ध को पास बुलाया—

२ हुए ऊँचे तो क्या यदि सुमन छायादिक नहीं।
कहो कसे फले फिर यत्न तुम्हारा सब कहीं।
सुनो हे खजूर! स्फुट मत नहीं है यह नया—
'गुणा पूजास्थान गुणिषु न च लिङ्ग न च वय।'

३ कहा बाण ने—काम दूर तक नहीं करूगा।
बोला चाप, परन्तु सहायक म जब हूगा।
प्रत्यचा ने कहा—कहो सब अपनी-अपनी।
कर बोला है मुझ मौन माला ही जपनी।
—गुप्त जो

तथा

मन! रमा रमणी रमणीयता
मिल गई यदि ये विधियोग में।
पर जिसे न मिली कवितासुधा—
रसिकता सिकता सम है उसे—
रामचरित उपा०

आजकल का सुख, जोगीडा, जोरूदास, पादरी वचनम्, कलियुग के हनुमान, तकरीर मुंह जवानी, सभ्य बीबी की चिट्ठी,[1] भैस का स्वर्ग खल और साधु रेलगाडी, पजाब मे लायल्टी आदि अनेक रचनाएँ प्रस्तुत की हैं।

वालमुकन्द गुप्त जी की हास्यपरक रचनाओ मे 'उर्दू को उत्तर' शीर्षक रचना बडी जोरदार है।[2] काश। बालमुकुन्द गुप्त की यह परम्परा आगे बराबर चलती रहती। जो राजनैतिक और सामाजिक जागरूकता इन रचनाओ मे है वह आगे की 'गगन-उड्डीयमानता' के उन्माद मे लुप्त होती हुई प्रतीत होती है, हाँ सौभाग्यवश प्रगतिवादी कवियो और हास्य रस के कवियो मे यह परम्परा पुन मुखरित हुई है।

---

१ कहाँ है टेनिस घर दिखलाव, कहाँ मछली का बना तलाव।
बात वह अगली सब सटकी, बहू मैं जब थी घूंघट की।
मजा अब सुख का पाया है, स्वाद शिक्षा का आया है।
सदा सुन्दर तितली बनकर, उडूं फूलो-फूलो पर।
सभा मे परीजान बनकर, डटूंगी कुरसी के ऊपर।

२ न बीबी बहुत जी मे घबराइए, सम्हलिए जरा होश मे आइए।
करो और कलियो का पाजामा चुस्त, वह धानी दुपट्टा औ नकसक दुरुस्त।
वह दाँतो मे मिस्सी घडी पर घडी, रहे आँख आईने ही से लडी।
मगर इतना जी मे रखो अपना ध्यान, यह बाजारी पोशाक है मेरी जान।
जना था तुम्हें मा ने बाजार मे, पली शाहआलम के दरबार मे।
मिली तुमको बाजारी पोशाक भी, वह थी दोगने काट की फारसी।
मेरी गुफ्तगू और हिन्दी के हर्फ, वह शोला फिशानी यह दरयाम बर्फ।
इस अन्दाज पे दिल हुआ लोट पोट, दुलाई मे अतलस के गाढे की गोट।
तुम आई हो अगरेजी दरबार मे, तो अब छोडिए शोक बाजार का।
यहाँ आई हो, आँख नीची करो, लटकने चटकने पे अब मत मरो।
न कलियो की अब यो दिखाओ बहार, कमो या पे चलिये न सीना उभार।
यह अब काम कोठे पे अपने करो, यहाँ तो अदब ही को सिर पर धरो।
यह सरकार ने दी हैं जो नागरी, इसे तुम न समझो निरी घाघरी।
समझ लो यह अदब की यह पोशाक है, दया और इज्जत की यह नाक है।
बुराई न इसकी करो दूबदू, बढायेगी हरदम यही आबरू।
करो शुक्रिया जी से सरकार का, कि उसने सिखाई है तुमको हया।
—बालमुकुन्द ग्रन्थावली

उर्दू—बालमुकुन्द गुप्त ने हिन्दी भाषा को शिष्टता प्रतिष्ठा और भारतीय परम्परा और नूतन जागरण का माध्यम माना है और उर्दू की 'बाजारी इश्क' वाली परम्परा का मजाक बनाया है किन्तु यह मानना होगा कि कतिपय मुस्लिम नेताओ और उर्दू ए मुअल्ला के हामियो तथा अपने को जन्मजात हुक्मरॉ मानने वाले मुसलमानो और दरबारवाजो ने उर्दू मे नूतन जागरण को रोका परन्तु उर्दू मे भी बहुत से देशभक्त कवियो ने भारतेन्दु और द्विवेदीयुग के कवियो की ही तरह नूतन भावनाओ को व्यक्त किया। शुरू के लोग (१६वी शताब्दी के कवि) सुधार करना चाहते थे क्रान्ति नही वे अतीत से पूरी तरह कटे हुए नहीं थे बल्कि उन्होने अपने उच्चकोटि के साहित्यकारो को नए ढग से प्रस्तुत किया उनमे नए अर्थ खोजे। उनका वास्तविक उद्देश्य उर्दू म हार्दिकता और उत्साह का भाव पैदा करना था जिससे कि वह जीवन के सत्य के अधिकाधिक निकट आ सके। वे पश्चिम के अतिरजित अनुकरण से बचते रहे तथा नकली अप्रमाणिकता लम्बे चौड कल्पनाचित्र और शब्द-बाहुल्य की निन्दा करते रहे।[1]

१८७४ ई० म उर्दू मे नए ढग के मुशायरे शुरू हुए उनम नए ढग की नज्मे पढ़ी जाती थी। हाली ने सर सैयद अहमन्खाँ की प्ररणा पर मुसद्दस लिखा। हाली और आज़ाद ने उर्दू का पुराना रग बदल दिया। कहना न होगा कि मुसद्दस से प्ररणा लेकर गुप्त जी ने भारतभारती की रचना की थी। हाली और इकबाल की रचनाओ ने उर्दू म सुधारा की आकाक्षा जगाई। फारूकी साहब का यह कहना दुरुस्त है कि उर्दू म इस नए जागरण के बीज कुतुबशाह (मृत्यु १६११) मीर (मृत्यु १८१०) सौदा (मृत्यु १७८० ई०) मीर हसन (मृत्यु १७८६ ई०) अनीस (मृत्यु १८७४) और नजीर अकबराबादी (मृत्यु १८३० ई०) की रचनाओ म मिलत हैं। गालिब के विषय म कहा गया है कि यदि वह न होते तो शायद हाली (मृत्यु १९१४ ई०) और इकबाल (मृत्यु १९३८) न होते।

उर्दू म नए युग के काव्य म हाली इस्मायल (१९१७) सरूर (मृत्यु १९१० ई०) क अतिरिक्त हास्यरसाचाय अकबर की रचनाएँ द्विवेदीयुग म ही आती हैं। अकबर (मृत्यु १९२१) द्विवेदीयुग के सर्वश्रेष्ठ हास्यरस के कवि है। भारतेन्दु के उर्दू का स्यापा प्रमघन का उर्दू का स्यापा तथा बाबू बालमुकुन्द गुप्त क 'उर्दू' को उत्तर म उर्दू के इस जाग्रन

1 आज का भारतीय साहित्य—फारूकी का लेख

स्वर का अनादर नही था। यह तो मानना ही होगा कि हाली और अकबर जैसे कतिपय कवियो के अतिरिक्त उर्दू का परम्परागत आशिक मिजाजी वाला रूप बराबर चल रहा था। इसके सिवा उर्दू के आन्दोलनकर्त्ता भारतीय परम्पराओ की उर्दू मे चर्चा करना पाप समझते आरहे थ अत हिन्दी भाषी जनता उन्हे विदेशी रूप मे देखती थी। यह देखने की बात है कि हिन्दी और उर्दू के सरल रूपो मे कोई अन्तर नही है क्योकि भाषा एक ही है किन्तु 'परिष्कृत या अलकृत रूप सवथा भिन्न है। आत्मा की दृष्टि से भी अलकृत रूप भिन्न हो जाते हैं और व्याकरण की दृष्टि से भी। अत समझदार लोग हिन्दी उर्दू को एक ही भाषा की दो शैलियाँ मानते थे और दोनो मे लिखते पढते थे। किन्तु सरसैयद अहमदखाँ के साम्प्रदायिक प्रयत्नो से उसकी प्रतिक्रियास्वरूप हिंदी वालो की भी साम्प्रदायिकता जगी। सरसैयद ने अगरेजी राज्य के साथ तादात्म्य कर लिया। उधर हिंदी मे एक भी ऐसा लेखक नही मिलता जिसने अँगरेजो के साथ तादात्म्य किया हो। अत जनता उर्दू को और भी घृणा की दृष्टि से देखने लगी। हाली के मुसद्दस और बाद मे इकबाल की नीत्शे से प्रभावित फासिस्ट रचनाओ से सम्प्रदायवाद उर्दू मे बढता ही गया, इन कवियो की साम्प्रदायिक व्याख्याओ ने भी अग्नि म घृत का काम किया।

इस साम्प्रदायिकता के विरुद्ध एक जनवादी धारा भी उर्दू मे प्रारम्भ से ही दिखाई पडती है। हाली' कवल यह चाहते थे कि मुस्लिम समाज उन्नतिशील हो, यह बात अपने मे हरगिज साम्प्रदायिक नही थी, उसी तरह, जिस तरह भारतेन्दु प्रतापनारायण मिश्र, प्रमधन, बालमुकुन्दगुप्त तथा द्विवेदी जी हिन्दी, हिन्दू की उन्नति चाहते थे। हाली और इकबाल मे बहुत कुछ ऐसा है जो मानवीय है असाम्प्रदायिक है और सभी सहृदयो की मानसिक उन्नति के लिए प्ररक है। जनवादी तत्त्वो ने इन्ही प्रवृत्तिया को सामने रखा। कविता से भी अधिक महत्त्वपूण यह हो जाता है कि उसे हम किस रूप मे ग्रहण करते हैं उसकी व्याख्या कैसे करत है, प्राय देखा गया है कि व्याख्याओ द्वारा कवि का मूल स्वर दब जाता है उसके वास्तविक मतव्य के स्थान पर व्याख्याकार और आलोचक अपने दृष्टिकोण को आरोपित कर देते हैं और इसी कारण हाली और इकबाल जन विरोधी साम्प्रदायिक रूप मे प्रस्तुत कर दिए जाते हैं अत जनवादी और एकतासमथक राष्ट्रीय तत्त्वो ने उर्दू मे नए काव्य के उस रूप को सम्मुख रखा, जिससे उर्दू केवल मुसलमानो की आशा आकाक्षाओ की भाषा न बन कर सभी के मानस की प्रतिच्छवि बन जाय।

यह सौभाग्य का विषय है कि हाली और उनसे भी अधिक इक्बाल से साम्प्रदायिका ने साम्प्रदायिकता का हलाहल अधिक निचोडा है किन्तु अकबर पर उनकी अधिक क्रूर दृष्टि नही पडी। अकबर अपने नाम की सार्थकता पूर्णत प्रकट करते है हिन्दी वालो के हाली और अकबर परमप्रिय कवि रहे हैं बल्कि अकबर को हाली से भी अधिक प्यार मिला है क्योकि उनमे सर्वसाधारण के लिए भारतवासीमात्र के लिए सबसे अधिक प्रेरणाए मिलती हैं। अपने पुराने दृष्टिकोण के कारण वह भारतवासियो को और भी प्रिय लगे क्योकि नई शिक्षा के जोश म जो हानियाँ हो रही थी अकबर ने उस ओर भी ध्यान आकर्पित किया था।

यह एक भयकर अपराध है कि हिन्दी के छात्रो को हाली और अकबर जसे कवियो की रचनाओ से वचित किया जाता है। पाठयपुस्तको मे मुसलमानो की राष्टभक्ति और नूतन जागरण से परिचय के बिना ही जो देशभक्ति का उपदेश देते हैं वे पाखण्डी लोग हैं और मुसलमानो से भी अधिक साम्प्रदायिक हैं। भारतेन्दु व द्विवेदी युग म उर्दू भाषा म भारतीयता की एक शानदार परम्परा कायम होती हुई दिखाई पडती है।

अकबर द्विवेदी युग तक के हिन्दी उर्दू कवियो मे हास्यरस के सबसे बड कवि है

उर्दू और राष्ट्रीयता—हमारा राष्ट्रीय आन्दोलन द्विवेदी युग म तीव्रता पकडता है। १८५७ ई० म क्रान्ति के डक की चोट से जो हमारा काव्य और साहित्य जगा वह द्विवेदी युग म आकर अपनी जागृति के स्वर से आकाश को प्रतिध्वनित करने लगता है। उर्दू मे हाली इस जागृति के प्रथम और प्रमुख कवि थे।[1] क्रान्ति क पूर्व आप पुरानी रौ म बहते थे किन्तु क्रान्ति के बाद वतन की मुहब्बत के गीत गाने लगे। हाली गालिब के शागिर्द रह चुके थे अत उनम दर्द बहुत है यह दर्द 'राष्ट्रीय करुणा' है।[2] हाली ने लिखा है

---

१ हाली—जन्म १८३८ ई०। रचनाएँ—'मुसद्दस' 'मुनजाते बेवा' 'बरखास्त' आदि।

२ दिलाती है सबा जिसको चमन याद
न म बुलबुल न घर मेरा चमन है
रहे लाहौर मे आकर सो जाने
यही दुनियाँ है जो दारलमेहन हैं।
— 'वतन के गीत' – शाह नसीर फरीदी

कि उनका वतन से इतना प्रम है कि वह उन्हे जन्नत म भी आराम नही मिलने देगा।[1]

जिस तरह द्विवेदीयुग के कवियो की सबसे बडी विशेषता देश के प्रति उनकी करुणा है उसी प्रकार हाली ने अपनी वाणी मे इस मुल्क को बडी ही ममता और करुणापूर्ण दृष्टि से देखा है। गालिब की ही तरह वह इस देश की बरबादी का चित्रण करते हैं गुल बुलबुल व चोचला को छोडकर वह इस देश को बनाने के लिए उत्साह भी दिखलाते हैं।[2]

जिस तरह भारतेन्दु प्रतापनारायण मिश्र मैथिलीशरण गुप्त और द्विवेदी जी व्यथ के वितडावाद से घृणा करते थे और इसे देशव्यापी फूट का ही एक रूप मानते थे, उसी तरह भारतेन्दु द्विवेदीयुग मे हाली ने आपसी फूट का विरोध किया है। राष्ट्रीयता की रचना मे मुख्य बाधा आपसी फूट ही रही है। हाली ने स्पष्ट कहा है कि यदि हिन्द म इत्तफाक होता तो हम विदेशिया से ठोकरें क्या खाते।[3]

यह आश्चय का विषय है कि हाली जैसे शायर की भी साम्प्रदायिक व्याख्या की जाती है। हाली को इस वतन से मुहब्बत थी, वह हिन्दू मुसलमानो मे एकता चाहते थे इसके अगणित प्रमाण हैं। मुसद्दस म यदि मुसलमानो को और भारतभारती म हिन्दुओ का उन्नति के लिए जगाया गया है तो उसका अथ साम्प्रदायिकता नही लेना चाहिए अतत अपनी अपनी कम्युनिटी को जगाने का अथ है एक-एक इकाई को दृढ करना एक-एक श्रखला को मजबूत करना और साथ ही उन इकाइया म सगठन और एकता स्थापित करना

---

१ न मिलने देगा जन्नत मे भी आराम
यह गर जज़बय मेहरे वतन है।

२ ग़फलत की छा रही है कुछ कौम पर घटा सी।
बेफिक्रो बेखबर हैं, बूढ हैं या जवां हैं।
फज्लो-कमाल उनके कुछ तुम मे हों तो जानें।
गर य नहीं तो बाबा वो सब कहानियां हैं।
खेतों को दे लो पानी अब बह रही है गगा।
कुछ कर लो नौजवानों चढती जवानियां हैं।

३ फाजिलो को हैं फाजिलो से एनाद—पडिनों मे पडे हुए हैं फसाद।
हिन्द इत्तेफाक़ होता अगर, खाते ग़ैरों की ठोकरें क्यो कर।

हाली और मैथिलीशरण गुप्त ने यही किया था, किन्तु साम्प्रदायिकों ने इन इकाइयों की तैयारी को, परस्पर शत्रुता की बुनियाद समझा और दो राष्ट्रों के सिद्धान्त का प्रचार किया। दोनों ओर ग़लती है, दोनों ओर साम्प्रदायिकता है। यह कहना मूर्खता है कि उर्दू के इन कवियों में राष्ट्रीयता नहीं है। या यह कि इनमें मध्ययुग की तरह फ़ारसी संस्कृति का प्रचार मिलता है या यह कि इनमें भारतीय उपमान नहीं मिलते। इक़बाल का 'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा' और बिस्मिल की ग़ज़लों के बिना राष्ट्रीय आन्दोलन की कल्पना ही नहीं की जा सकती—गाँव गाँव में उर्दू के कवियों की वाणी ने हमें प्रेरित किया है इन्हें हिन्दी से कैसे बाहर कर दिया जायगा? अवधी, ब्रजभाषा की कविताएँ जो आज तक हो रही हैं उन्हें हिन्दी के खड़ीबोली के इतिहास से भले ही निकाल दिया जाय (यह भी भीषण अपराध होगा मैं केवल तर्क की रक्षा के लिए कह रहा हूँ) किन्तु उर्दू की कविताओं को हिन्दी के इतिहास से नहीं निकाला जा सकता क्योंकि दोनों शैलियों का आधार एक है अपने सरल रूप में एक ही प्रदेश की सारी जनता उन्हें समझ लेती है और यह सबसे बड़ा तर्क है। हिन्दी उर्दू के अपने अपने वकील हैं, बहुत से 'स्वयं नियुक्त' न्यायाधीश हैं किन्तु सवाल जनता का है। जनता जब मुशायरा और कविसम्मेलन दोनों का आनन्द लेती है, तब दोनों प्रकार की कविताओं को जनता तो 'अपना' मानती है अब आप यदि जनद्रोही नहीं हैं, तो जनता द्वारा स्वीकृत रचनाओं को उस प्रदेश की भाषा के इतिहास के अंतर्गत क्यों नहीं रखते? यदि आधुनिक पाठ्यक्रम में रत्नाकर की ब्रजभाषा पढ़ाई जा सकती है तब हाली, आज़ाद की रचनाओं से प्रत्येक छात्र को परिचित करा देने से क्या हानि होगी? छायावाद के साथ-साथ यदि चकबस्त और इक़बाल की चुनी हुई कविताएँ हमारे छात्र पढ़ लेंगे तो राष्ट्रीयता के किस पक्ष पर चोट पड़ जाएगी? देवनागरी लिपि में जब हिन्दी को अन्य विभाषाओं का काव्य पढ़ाया जाता है तब उर्दू का तो हिन्दी की ही एक शैली के रूप में आप भी मानते हैं। यदि वह हिन्दी की ही एक शैली है, तब उससे हमारे छात्र अपरिचित रहें, ऐसा आप क्या चाहते हैं? गिरेबाँ में मुँह डालिए, क्या वहाँ मुसलमानों के प्रति नफ़रत नहीं है? और क्या यह उचित है? बेचारे हाली कह गए कि वह इस देश की मिट्टी—एक मुट्ठीभर मिट्टी को बहिश्त से भी अधिक तरजीह देते हैं, द्विवेदी युग के देशप्रेम से तुलना कीजिए—

ए वतन! ए मेरे बहिश्ते बरीं।
क्या हुए तेरे आस्मानो ज़मीं।

जो कि रहते हैं तुझसे दूर सदा।
उनको क्या होगा जिन्दगी का मज़ा।
जिन्नो इन्सान की हयात है तू
मुर्गों माही की कायनात है तू
है नबातात की नमू तुझसे
रुख भी तुझ बिन हरे नहीं होते।
सबको होता है तुझसे नशवोनुमा।
सबको भाती है तेरी आबोहवा।
तेरी इक मुश्त खाक के बदले।
लूँ न हरगिज अगर बहिश्त मिले।
जान जब तक न हो बदन से जुदा।
कोई दुश्मन न हो वतन से जुदा।

× × ×

यह जो भारत भूमि हमारी।
जन्मभूमि हम सबकी प्यारी।
एक गेह सम विस्तृत सारी।
प्रजा कुटुम्ब तुल्य है सारी।
जन्मभूमि की बलिहारी है।
यह सुरपुर से भी प्यारी है।

—द्विवेदी जी

दोनो रचनाओं की 'आत्मा' एक है, यहाँ तक कि शब्दावली भी मिलती जुलती है—"तेरी इक मुश्त खाक के बदले, लूँ न हरगिज अगर बहिश्त मिले" और "यह सुरपुर से भी प्यारी है" में क्या अन्तर है? किन्तु हिन्दी के किसी इतिहास में उर्दू की इन रचनाओं को स्थान नहीं मिला। उर्दू के इतिहासों का भी यही हाल है। नागरीप्रचारिणी सभा से जो विराट इतिहास निकल रहे हैं, उनके लेखक ही यह कार्य कर दें तो साम्प्रदायिकता के कलंक से हम तो मुक्त हो जायें। हाली ने दुनियाँ की एकता की ओर प्रगति को लक्ष्य किया था और साफ़-साफ़ कहा था कि आज मजहबों के झगड़े नहीं चल सकते। जिस धार्मिक पक्षपात ने बाप बेटों को जुदा कर दिया, वह सब एकता में परिवर्तित होगा किन्तु हाली की इस दृष्टि के विरोधी सुनते कहाँ हैं?

इख्तिलाफ़े दीनो मजहब धुल रहा जिसमें जहर।
जिसने मुल्कों में दिए ये खून के दरिया बहा।

दम बदम वह इख्तिलाफ आज बन रहा है इत्तफाक।
जहर मे होने को है ऐसा असर तिरयाक का।
कर रहा है जोगे हमदर्दी की सूरत मे जहूर।
वह तअस्सुब जिसने बापो से किये बेटे जुदा।

उर्दू को ब्रजभाषा की बेटी मानने वाले मुहम्मद हुसैन आजाद हाली की तरह प्रसिद्ध राष्ट्रीय लेखक और कवि थे।[1] यद्यपि आजाद कवि रूप में उतने प्रसिद्ध नही किन्तु उन्होने कविताए लिखी है उनमे द्विवेदी युग की पूरी झलक मिलती है। आजाद ने एक कविता मे अगरेजो की देशभक्ति का नमूना पेश किया है कि जब फररुख सियर बादशाह बीमार पड तो उनके अँगरेज डाक्टर ने अपने लिए कुछ न माँग कर अँगरेज व्यापारियो के जहाजो के उतरने लिए बन्दरगाह मागा और इस तरह इस मुल्क मे अपने इङ्गलैंड के राज्य की बुनियाद डाल दी।

दामन मे एक अताए खुदादाद पड गई।
और सल्तनत की हिन्द मे बुनियाद पड गई।[2]

भारतेन्दु की ही तरह आजाद देश के आर्थिक शोषण की नीति से वाकिफ थे इसीलिए बादशाह फररुखसियर के इलाज के बहाने इस देश पर पर जमाने की नीति पर उन्होने हमला किया है। यह देश मुहम्मद हुसन आजाद और अबुल कलाम आजाद—इन दो आजादो को कभी नही भूल सकता।

---

१ जन्म—१८३१ ई०, प्रथम 'उर्दू अखबार' के सम्पादक, "आजाद", 'अताली के पजाब के सम्पादक। १९१० ई० मे मृत्यु।

२ दरयादिली तबीब की देखो मगर जरा।
डाली न उसने लालो गोहर पर नजर जरा।
हुब्बे वतन के जोश से बेताब होगया।
कुछ ऐसा मेरे वास्ते इनआमे आम हो।
जिस से तमाम मेरा वतन शादेकाम हो।
तो इस तरफ जो मेरे वतन के जहाज आए।
और उनमे ताजिराने जिल इमतेआजआयें।
कुछ इनपे होवे राह न बीमो जवाल को।
आराम से उतारें यहाँ अपने माल को।

मौलवी वहीउद्दीन सलीम हाली के शागिर्द थे सलीम ने आर्यों के भारत मे आगमन पर लिखी हुई कविता मे गगोत्तरी की शोभा हिमालय की शान बरगद के जगल काली घटाएँ देशी पुष्प पक्षी इन्द्र की अप्सराएँ आर्यों के यज्ञ आदि का बहुत ही दिलकश विवरण दिया है। सोरुर [1] ने सलीम की ही तरह इस देश की सुन्दरता का वर्णन किया है और रामनरेश त्रिपाठी की कविताओ की तरह प्रत्येक पक्ति मे देशभक्ति प्रतिध्वनित होरही है। सोरुर हुब्बे वतन के पौध लगाने के लिए लिखते थे इन पौधो को खूनेजिगर से सीचकर अश्को से बेल बूटो की आबरू बढाना चाहते थे। रिमझिम बरसते बादरा मे शाखो पर बैठकर तरह-तरह की रागिनिया मे उन्होने मुहब्बत के गीत गाने के लिए कहा है। [2]

अकबर ने लिखा है कि यह चमन यद्यपि मिटने लगा है लेकिन हम इसके आशिक होगए हैं। उन्होने इस चमन मे बेकसा की फर्यादो की गूँज सुनी थी मुर्दे भी कफ़न के मुहताज हैं यह भी उन्होंने देखा था। [3] जिस तरह सनातनधर्मावलम्वी तथा उनसे अधिक प्रगतिशील बुद्धिमान देशवासी पश्चिम के अनुकरण—अधानुकरण को देशहित के विरुद्ध समझते थे उसी तरह अकबर न अधानुकृति पर मजेदार व्यग्य किए हैं। हिन्दी का प्रारम्भिक आन्दोलन अधानुकरण का विरोधी था यह प्रत्येक कवि की रचनाओ से स्पष्ट है। देश म एक ऐसा शिक्षित वर्ग उत्पन्न हो रहा था जो प्रत्येक भारतीय वस्तु और तौर तरीक का मज़ाक बनाता था इस प्रवृत्ति का हिन्दी-उर्दू कवियो ने खूब पर्दाफाश किया है और कवित्व भी उसमे मिलता है। इस नए शिक्षित वर्ग की स्वार्थपूर्ण देशविरोधी नीति पर अकबर ने लिखा है कि इस वर्ग को सिवा अपनी शान और स्वार्थ के अलावा किसी की चिन्ता नहीं है—

---

१ जन्म १८८३ ई०, मृत्यु १९१० ई०।

२ लिहजा जुदा-जुदा हो मुर्ग़ाने नग़मासजों का
एक-एक लफ़्ज मे हो, तासीरे बूये उल्फत।

३ *मफ्तून होगए हम इस बेवफ़ा चमन के।*
आंखो मे खाक डालो मिट्टी ने फूल बन के।
गूजी बहुत हैं इसमे फर्याद बेकसों की।
इस शहर मे भी मुर्दे मुहताज हैं कफन के।

पैदा हुए है हिन्द मे इस अहद मे जो आप।
खालिक का शुक्र कीजिए आराम कीजिए।
ये सामान जमा कीजिए, कोठी बनाइए।
मजहब का नाम लीजिए आमिल न हूजिए।
कौमी तरक्कियो के मशागिल भी है, जरूर।
इस मद मे भी जरूर कोई काम कीजिए।

यानी नवीन शिक्षित वर्ग सेवा भी करता था तो उसमे एक क्षणिक मानसिक आवेशमात्र था, वह किसी गम्भीर निष्ठा का अंश नहीं था, यह 'बीमारी' देशसेवा और जनसेवा मे आज भी दिखाई पडती है। अकबर ने देश की नाडी को भलीभाँति परखा था, उनके विचार पुराने थे परन्तु वे अंधानुकरणकर्ताओ मे सतुलन लाने के लिए आवश्यक थे। देश की उन्नति ही उनका लक्ष्य था। *हिन्दी मे इतना सुखद और सुधारक हास्यररस अन्यत्र नही* मिलता।

उपसहार--हिन्दी-उर्दू के उक्त कवियो के प्रयत्नो से यह स्पष्ट है कि द्विवेदी युग का कवि अपने चारो ओर आँखे खोलकर देखता था। वह अपने अन्तरग मे सिमिट कर सर्वथा व्यक्तिगत मानसिक स्थितियो की व्यजना को वाणी का धर्म नहीं समझता था। 'जीवन की आलोचना' ही इस काव्य का मुख्य लक्षण है, अत इतिवृत्तात्मकता, नैतिकता का कठोर आतक, नीरसता, उपदेशवाद आदि शब्द उस परिस्थिति से असम्बद्ध करके ही प्रयुक्त किए जाते रहे हैं। *जब अग्रचेता कवि को यह विश्वास हो कि उसकी वाणी समाज को* दिशा विशेष की ओर प्रेरित और प्रभावित कर सकती है तब वह स्पष्टता के साथ बोलता है, यह निष्ठा और आत्मविश्वास अपने मे 'इतिवृत्तात्मक' नहीं कहा जा सकता। 'इतिवृत्तात्मकता' कवियो के लक्ष्य की पूर्ति की एक आंशिक पद्धति थी किन्तु जैसा हमने देखा है कि इस युग के काव्य मे वैविध्य कम नही है। *चारो ओर दृष्टि फैली रहने के कारण विभिन्न पात्रो पर विभिन्न प्रकार की रचनाएँ इस युग मे मिलती हैं।* एक ओर हृदय की ऊष्मा का सहज विस्फोट है जो अपनी अकृत्रिमता के कारण कम रुचिकर नही लगता तो दूसरी ओर अतीत के गौरवमय पात्रों का पुनर्मृजन है। इन पात्रों की सहजता और पुरुषार्थ अनुपम है। भारतीय मानस को इन द्विवेदी युग के काव्यपात्रो ने बहुत अधिक प्रभावित किया है। तीसरी ओर पुराने देवी-देवताओं के स्थान पर स्वदेश देवता' की भक्ति की प्रतिष्ठा है। देश की मार्मिक *छवियो का विवरण*

प्रस्तुत कर द्विवेदीयुग के कवियो ने हमारे हृदय की भक्ति के लिए एक नया 'आराध्य' प्रस्तुत किया। पहली बार द्विवेदी युग के काव्य को पढकर ही—हम आश्वस्त होते हैं कि 'देवी-देवता' वस्तुत: मानवीय कल्पनाएँ हैं।

युगो-युगो से मनुष्य ईश्वर को अनेक रूप देता आरहा है, अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति के साथ, उसके हृदय की आवश्यकताओ मे भी परिवर्त्तन हुआ है। बाह्य जगत् और समाज को अपनी इच्छा और सबकी सुविधा के अनुसार बदलने के लिए ईश्वर मे भी परिवर्त्तन करना पडा है अत नए-नए देवी-देवताओ, उनके नए-नए रूप और व्यक्तियो का सृजन हमारे यहाँ "कला" का लक्ष्य माना जाता रहा है। द्विवेदी युग मे कवियो ने पुराने आराध्यो को इस रूप मे प्रस्तुत किया कि वह नए मानस मे उतर सकें, इसके सिवा उन्होंने 'देश' को नए आराध्य के रूप मे प्रस्तुत करके विदेशियो की देशभक्ति के सम्मुख अपनी देशभक्ति का स्वरूप खडा किया और इस प्रकार ईसाई और अँगरेजी साहित्य के प्रचार से उन्होंने अपने वास्तविक स्वरूप को समझने की चेष्टा की।

द्विवेदीयुग का कवि चारो ओर एक सर्वव्यापी षडयन्त्र का अनुभव करता है, वह जगह जगह रुक कर इस देश की जनता को इस विदेशी खतरे के प्रति सावधान करता है। अपने-अपने समाजो के मध्य कुत्साओ और कुरीतियो के विरुद्ध हिन्दी-उर्दू दोनो के कवियो ने इस युग मे सबसे अधिक लिखा है। प्रगतिवादी काव्य को छोडकर द्विवेदीयुग के बाद काव्य के क्षेत्र मे इस सर्वक्षेत्र-व्यापिका दृष्टि का ह्रास होता हुआ दिखाई पडता है। सौभाग्य का विषय यह रहा कि 'कथासाहित्य' ने इस दृष्टि को अपनाए रखा है और कथासाहित्य का यह महान योगदान है। द्विवेदीयुग के बाद होना तो यह चाहिए था कि दृष्टि-विस्तार को कायम रखते हुए, गहराई के लिए प्रयत्न किया जाता किन्तु ऐसा नही हो सका। हमारी दृष्टि का विस्तार द्विवेदीयुग के बाद सकुचित होता हुआ दिखाई पडता है। कला की दृष्टि से और क्षेत्रविशेष मे गहराई की दृष्टि से प्रशसनीय कार्य हुआ किन्तु दृष्टि सकुचित होते होते "मैं" मे सिमिटती गई। इस "मैं वाद" के बहुत से कारण थे, इन कारणो को समझ लेने पर "मैं वाद" के अनिवार्य आगमन को भी हम समझ सकते हैं किन्तु आलोचको से यह शिकायत करने का हक भी शायद रहेगा कि द्विवेदीयुग की वास्तविक कामना—सर्वतोमुखीविकास के लिए सर्वतोमुखी कुत्साओ पर आक्रमण की आवश्यकता है—इस वास्तविक कामना को न समझ कर केवल कलागत दृष्टि से ही द्विवेदी युग को देखा गया। हमारे देश की जनता 'कला' का एक महान स्तर प्रस्तुत

कर चुकी थी और उसे भूल भी रही थी, द्विवेदीयुग ने कला की बारीकियो मे न पडकर भारतीय मानस मे उन अभीप्साओ को जगाया जो सर्वतोमुखी सृजन के लिए सक्षम होती हैं। कला और काव्य का सृजन, समाज के सर्वाङ्गि-मुख विकास की उपेक्षा करके नही हो सकता, यह बात हमसे अधिक द्विवेदी-युगीन कवि समझते थे। काव्य कोई ऐसी कला नही है जिसमे सामान्य जीवन को एक ओर रख कर सौन्दर्य की सृष्टि की जासके, तभी वे काव्य मे उपयोगितावाद के समर्थक थे। उपयोगितावाद अपने सामान्यरूप मे उपदेशवाद बनता है और उच्चतम रूप मे वह ऐसे सौन्दर्य की सृष्टि मे सक्षम होता है जिसमे सम्पूर्ण समाज की वास्तविक अभीप्साओ की उपेक्षा नही की जाती। काव्य मे उपयोगितावाद कला का ह्रास नही करता, वह कवि से चाहता यह है कि वह अपने उपकरणो द्वारा, अपनी पद्धति द्वारा, वही कार्य करे जो एक इतिहासज्ञ, राजनीतिविशारद अथवा एक "समाज-वैज्ञानिक" करता है, अन्तर लक्ष्य मे नही होता, अतर पद्धति मे होता है। तभी काव्यकर्त्ता के लिए सम्पूर्ण ज्ञान और सम्पूर्ण समस्याओ से परिचित होना पडता है। द्विवेदीयुग के कवि और तत्कालीन "समाज विज्ञान" के जानकारो मे वह दूरी नही दिखाई पडती जो बाद मे दिखाई पडती है। द्विवेदीयुग की कमी 'पद्धति' के पूर्ण निर्वाह न कर सकने मे है। 'लक्ष्य' और लक्ष्य के प्रति हृदय की उष्मा का जहाँ तक सम्बन्ध है, यह युग आज भी हमे शिक्षा दे सकता है। और 'पद्धति' का दोष इसलिए है कि द्विवेदीयुग मे एक ऐसी भाषा को माध्यम बनाया गया, जिसमे काव्य-परम्पराओ का अभाव था—और जब कवि ब्रजभाषा काव्य-परम्परा का अनुकरण करता था, तब वह खडी बोली की रक्षा नही कर पाता था। इस उलझन के कारण खडी बोली में प्रवचन और उपदेशों मे ही तब वह आनन्द आता था जो आज व्यजनात्मक अथवा लक्षणात्मक पदावली मे आता है। तात्कालिक खडी बोली कविता के प्रशसक हमसे अधिक विवेकशील थे क्योंकि उनकी प्रशसा मे यह भाव भी रहता था कि खडी बोली मे 'इतनी' सफलता भी प्रशसनीय है।

प्रश्न होगा कि यह सब स्वीकार करने पर भी आज तो उस काव्य का ऐतिहासिक मूल्य ही स्वीकार करना होगा। इस प्रश्न का उत्तर कई तरह से दिया जा सकता है। सर्वप्रथम यह है कि जब हम अपने युग के साहित्य के बाद उस साहित्य की ओर मुख करते हैं तब उसमे स्वय एक "ऐतिहासिक रस" आता है, किसी काव्य का ऐतिहासिक दृष्टि से ही महत्त्व रह जाने का अर्थ यह नहीं है कि इतिहास-प्रिय पाठक को उसमे आनन्द ही न मिले।

सङ्कुलता से पीडित युग सरलता' को पसन्द करने लगता है। सरलता से पीडित युग सङ्कुलता का पसन्द करने लगता है। आज के युग मे एक ही प्रकार की रचनाएं एक ही प्रकार की मानसिक स्थितियो का जब बार-बार पिष्टपेषण करती हैं और जब इस स्थिति मे द्विवेदीयुग की स्पष्ट निमल दृष्टि से हम 'पुन परिचय पाते हैं तब उन कवियो की सरलता को एक रोमानी दृष्टि से देखने के कारण उसमे आनन्द प्राप्त होने लगता है साकेत और कामायनी पढ़िए किन्तु सिद्धराज म भी आनन्द आता है। छायावाद के बाद वीरगाथा काल की वीर रस से फडकती कविता आज भी वक्षस्थल स्फीत कर देने की शक्ति रखती है। इसके अलावा यह ज्ञान भी हमारी साहित्यिक सवेदना मे मिला रहता है कि इससे अधिक उन कवियो से आशा करना अयाय है। हम यह भी अनुभव करते चलते हैं कि हमारे मन मे जो कमियां हैं उनमे बहुत सी कमियां पुराने कवियो मे नही हैं। हमारी उपलब्धियां पुराने काव्य मे तो मिल नही सकती किन्तु प्रत्येक युग अपनी महान उपलब्धियो के साथ कुछ नई बीमारियो को भी पाल लेता है। ये नई बीमारियाँ पुराने काव्य मे जब नही मिलती तब हमे हप होता है। प्रयोगवादी कविता के अदभुत व्यक्तिवाद और सिद्धान्तहीनता को देखकर द्विवेदीयुगीन हरिऔध—काव्य का जब पाठ करते हैं तब लगता है कि काश' हरिऔध आज जीवित होते। द्विवेदीयुग की एक उपलब्धि यह भी है कि कविमानस सदेह रहित है—मानवात्मा और मानवसमाज के सम्बद्ध विकास और उन्नति मे उसे अखड विश्वास है।

द्विवेदी युग की कला वणनात्मक, विवरणात्मक और मनोवेगात्मक है। वणनात्मक और विवरणात्मक कला के दशन पुराने आख्यानो को पद्यबद्ध करने मे दिखाई पडती है मनोवेगो से विवरणा और वणनो की तौलियो को सग्रथित किया गया है। उदगारो के कारण यह कला सूक्ष्मता के अभाव और अग की जटिलता के अभाव म भी कवियो के चित्त की पवित्रता को व्यक्त करती है। हिन्दी काव्य मे वणनात्मक (Escriptive Poetry) काव्य की दृष्टि से केवल द्विवेदीयुग ही श्रेष्ठ है। तत्पश्चात् इस प्रकार के काव्य का परिहास होने लगा यह सौभाग्य का विषय रहा कि द्विवेदीयुग के काव्यकारो की परम्परा सर्वथा क्षीण नही हुई और छायावादी काव्य के समानान्तर वणनात्मक काव्य भी थोडा बहुत चलता रहा कई प्रसिद्ध द्विवेदीयुग के कवि बराबर लिखते रहे। इससे अतिशय साकेतिक और प्रतीकात्मक काव्य को न समझने वाले द्विवेदी युगीन काव्य से अपना मनोरजन करते रहे। यह स्मरणीय है कि द्विवेदीयुगीन स्पष्टताप्रिय कवि कभी भी 'छायावाद' के साथ तादात्म्य स्थापित नहीं कर

सके । इसका कारण उनकी इतिवृत्तात्मकता नही थी क्योकि हम देख चुके हैं कि द्विवेदीयुग म अय प्रकार की मुक्तक रचनाओ का भी अभाव नहा है इसका कारण यह है कि द्विवेदीयुग स्पष्टतावादी आदोलन था। स्पष्टता प्रिय युग म चित्रा की रेखाओ म भी स्थूलता रहती है किन्तु रेखाओ म पूणता और चित्र को पूणत उभार कर रखने की भी शक्ति होती है। वह कल्पना' को अधिक उत्तजित नहा करता तथा सश्लिष्टता पूणता और विन्यास म नवीनता न हाने पर भी उसकी सवजन सवेद्यता हम आज भी प्रभावित करती है। जयद्रथवध की उत्तरा' प्रियप्रवास की राधा और कृष्ण तथा पथिक के पथिक को देखिए, द्विवेदीयुग की कला का मम मिल जाएगा।

इसके अतिरिक्त रविवर्मा के चित्रा के आधार पर बनी कविताओ म सौदय क उस पक्ष की ओर कवि बढता दिखाई पडता है जो केवल सौन्दय पर ही अपना ध्यान केद्रित करता है। यहा भी कविया की विवरणात्मक कला ही दिखाई पडती है। सूक्ष्म आत्म अभिव्यक्तिया के लिए यहाँ स्थान कम है अत कवि सौन्दय के प्रभाव का वणन उतना नही करता जितना वह चित्रगत सौन्दय की पुनउत्पत्ति क लिए प्रयत्न करता है। रीतिकाल के सौदय चित्रण की सीमा यहा विस्तृत होती हुई दिखाई पडती है क्याकि प्रकृति के नए दृश्या का विवरण भी प्रस्तुत करन की ओर कवि बढते हुए दिखाई पडते हैं। विविध वस्तुओ और दृश्या को इस युग का कवि इस आशा स देखन चलता है कि उसम सौन्दय अवश्य है उसके सूक्ष्मतर सौदय और उसके माध्यम से अपनी अनुभूतिया को व्यक्त करने की प्रवृत्ति न मिलने पर भी इस युग का कवि वस्तुगत सौदय को महत्त्वपूण मानने लगता है और इस प्रकार के चित्रण मे अनेक सम्भावनाओ की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करता है। प्रियप्रवास' के प्रकृति चित्रण से ही यह स्पष्ट हो जाता है—विनोदितावर्जित विल्व, सुसौमि इमली विटानुकारी वट चचलचित्ता की उतावली स पूण आँवला आदि दृश्य स्पष्टत प्रत्यक्ष वस्तु म सौन्दयशोध की ओर कवि की उत्सुकता प्रकट करत हैं।

द्विवेदीयुग की मानसिक स्थिति मंथन और केन्द्रीकरण की ओर उतनी नहीं जितनी सामाय अवलोकन' की ओर है जैसे कवि समाज और प्रकृति का 'सर्वे' कर रहा हो अथवा भ्रमण करते समय जिस तरह वस्तुओं को देखते हैं और अधिक समय तक किसी एक वस्तु को न देखते रहकर आगे बढ जाते हैं उसी प्रकार द्विवेदीयुगीन कवि का चित्रण 'सामाय

अवलोकन" से सम्बन्धित है। भावनाओ अथवा मनोवेगो के चित्रण मे भी वह अनेक लहरो मे सबसे अधिक प्रबल 'लहर' को देखता है, उसका लेखा-जोखा प्रस्तुत करता है किन्तु वह लघु-लघु लहरो की गति, विराटतम लहर से उनका सम्बन्ध, लघु लहरो का आपस मे टकराव और आस्फालन और विराटतम लहर मे उनका अप्रत्याशित अवसान, दीर्घतम लहर की अपने मे शतश भग्नता और पुन लघु लहरो का लास्य—आदि का सूक्ष्म चित्रण नही करता किन्तु यह कौन कहेगा कि प्रमुखतम लहर के उदय, अस्त, उत्थान-पतन और उसके प्रभाव के वर्णन मे द्विवेदीयुगीन कवि असफल हुए हैं ? प्रियप्रवास के दशमसर्ग, रग म भग के ओजपूर्ण चित्र और 'पथिक' के देशभक्ति के उद्गारो को देखिए। उद्गारात्मक काव्य मे भाव-सरिता के मध्य मुख्य-धारा को ही कवि देखता है। क्या काव्य मे मुख्यधारा का चित्रण इतना महत्त्वहीन है कि द्विवेदीयुग को मात्र 'तुकबन्द' कवि घोषित कर दिया जाय ? प्रत्येक युग की तरह द्विवेदी-युग मे नीरस तुकबन्दियाँ हैं, इधर "नीरस तुकहीनता" बहुत बढ रही है, परन्तु उस युग के श्रेष्ठ अशो को बाद के श्रेष्ठ अशो के साथ रखकर तौलिए, आपको आश्चर्य होगा कि द्विवेदीयुगीन काव्य इतना 'हलका' नही लगेगा जितना हम समझते हैं।

द्विवेदीयुग मे जितना ध्यान 'सत्य' को सीधे कहने पर दिया गया है, उतना ध्यान अभिव्यक्ति की अनुपमता पर नही दिया गया है। इस युग का विश्वास था कि बात सच हो और आवश्यक हो तो उसे कह देना भी काव्य का एक उद्देश्य है। अत सच्चाई के राजपथ पर निश्चित होकर कवि चलते हुए दिखाई पडते हैं, प्रेम की सकीर्ण वीथियो को छोडकर ये कवि उस मार्ग पर चलते हैं जहाँ सारा जनसमूह थका माँदा आगे बढता हुआ दिखाई पडता है, भीड मे मिलकर लोगो से उनका दुख दर्द पूछते हुए, उनसे सीधा सम्बन्ध स्थापित करते हुए, उनके साथ हँसते खेलते, उनके दुख पर आँसू बहाते, उनकी कमजोरियो और लापरवाही का परिहास करते हुए और रास्ते की खराबियो और मौसम की कठोरताओ के बारे में सावधान करते हुए ये कवि बढते हुए दिखाई पडते हैं। ये कवि इस प्रकार विराट जनसमूह के पथप्रदर्शक और हमराही के रूप मे हमारे सम्मुख आते हैं। कही-कही थकी हुई, विश्रान्त और विभ्रान्त भीड को रोककर ये कवि 'भाषण' भी देने लगते हैं, तब ये 'नेता' के रूप मे भी दिखाई पडते हैं परन्तु ऐसे नेता जो वोट माँगने वाले नही, सच्ची सहानुभूति वाले साथी के रूप मे प्रतीत होते हैं।

ऐसा भी अनुभव होता है कि जैसे इन्हे विराट जनसमूह के साथ गतव्य पर पहुचने की बहुत जल्दी है अत देर तक एक ही वस्तु के अवलोकन का इनके पास समय नही है इन्हे तो आगे चलना है रास्ता लम्बा है अत जल्दी आगे बढते हुए जनसमूह को भरोसा दिलाने के लिए ये कवि कथा भी सुनाने लगते हैं। इनकी कथाओ मे इतना रस तो अवश्य ही है कि इनके श्रोता इनके साथ ही हँसते रोते उत्साहित होते दिखाई पडते हैं। महिलाओ के सम्मुख ये कवि नया आदर्श रखते हैं ग्रन भीड के बीच आँखें चार करन वाली आखो ही आखो मे अभिसार का स्थान और समय तै करने वाली छैलछबीली नायिकाएँ उत्तरा राधा सीता आदि की कथा सुनकर आत्मशोधन करने लगती है। छबीले छलिया युवक घर और गलियो मे आखमिचौनी न खेलने की प्रतिज्ञा करने लगते हैं जैसे किसी महान सकट के समय इन्हे निजी प्रम के स्वाद की चर्चा अनावश्यक और अनिष्टकर लगने लगी हो। इस भीड मे कुछ पुराने कविराज भी हैं जिनका स्वर मीठा है रास्ता काटने के लिए वह पुराने प्रम के गीत गाते हैं किन्तु भीड मुस्कराकर चुप हो जाती है उनकी न तो प्रशसा करती है और न उन्हें पारितोषिक देने के लिए उत्सुक होती है। यह भीड कृतसकल्प है कि हम उनकी ओर देखेंगे जिन्ह हमारी सहानुभूतिमय दृष्टि की आवश्यकता है हम उधर चलेंगे जिधर चलने से हम सबकी उन्नति होगी हम वही सोचेंगे जिससे कुछ लाभ हो हम वही गीत गाएँगे जो माग का श्रम परिहार तो करें ही साथ ही यात्रा का लक्ष्य भी बताते चल हम उसी को मन मे प्रविष्ट होने देंगे जो औरो का भी ध्यान रख हम उन्हे भी पहचानेंगे जो हमारे सहायक और स्वामी बनने क लिए तरह तरह के सब्ज बाग दिखात आए हैं हम यह भी विचार करेंगे कि पहले हम क्या थे और अब क्या हो गय हैं गरज यह कि द्विवेदीयुग के कवि को इस हमराही रूप म स्मरण रखने से उनके कृतित्व का महत्त्व और उनकी कृति का रूप हमारे सम्मुख स्पष्ट हो जाता है—भला भीड के साथ क़दम से क़दम मिलाकर चलने वाला कवि क्या ऐसी भाषा म बोल सकता है जिसे उसके साथी न समझ सकें ? क्या वह ऐसा गीत गा सकता है जो क्षितिज के उस पार' का सदेश देता हो ? क्या वह यह कह सकता है कि चलना बन्द कर अभिसार शुरू करो ? क्या वह गति का उपदेश न देकर 'कीतन और करताल म ही भीड का समय नष्ट करो ? क्या वह भीड पर आक्रमणकारी दस्युओ और जबरो पर क्रोध न दिखाएगा ? क्या वह कुछ अपनी बीती और कुछ जगबीती कहकर पडाव पर रात म जनता का मन न बहलाएगा ? जो इस रूप म द्विवेदीयुग का न समझ कर कलाकार' के रूप में

उसे समझना चाहते हैं, वे भूल करते हैं। द्विवेदीयुग के कवि के 'भाव' को उस युग की "भीड" को समझ कर ही समझा जा सकता है। गतिमान् व्यक्ति के पास इतना समय कहाँ है कि वह वर्षों पडाव पर रुक कर अपने गीत के स्वरो को सहलाता रहे।

हिन्दी काव्य मे द्विवेदीयुग अपने उक्त जनवाद के लिए सदा स्मरणीय रहेगा, पढा जाता रहेगा। अपनी ईमानदारी और हृदय से कल्याण-कामना चाहने वालो की युक्तियो मे स्वत कुछ ऐसा आकर्षण उत्पन्न हो जाता है जो बातें बनाने वालो की आकर्षक चतुरता मे नही मिल सकता।

तृतीय प्रवाह

छायावाद-रहस्यवाद

जिस प्रकार अनन्त समुद्र मे एक लहर से दूसरी लहर उत्पन्न होती है उसी प्रकार द्विवेदीयुग के गर्भ से ही छायावाद का विकास हुआ था। मैंने पुष्प से फल का सादृश्य जानबूझ कर नही लिया—कभी-कभी लहर से लहर उत्पन्न नही भी होती। एक लहर शात हो जाती है तो दूसरी उत्पन्न हो जाती है अथवा एक लहर उठती है और वह आगे बढती चलती है तब तक एक और उच्चतर लहर उसी के साथ चल पडती है। हिन्दी काव्य मे यह वीचिविलास यथावत मिलता है। द्विवेदीयुग की लहर चलती रही और जिस भारतीय चेतना-अम्बुधि से उसका जन्म हुआ था उसीस एक नवीन लहर उत्पन्न हो गई उसने अपने सौन्दर्य से सहसा बहुतो का ध्यान आकर्षित कर लिया वह क्षीण होने पर भी ऊँचाई की दृष्टि से गगन का चुम्बन करने लगी। वह बहुत देर तक आकाश को स्पर्शती रही अत उसकी गहराई की ओर भी लोगो का ध्यान आकर्षित हुआ। द्विवेदीयुगीन लहर इस नवीन लहर स कही टकराई और नाराज भी हुई तू कहाँ स आ गई ? मानो यह कहकर उसने उपेक्षा भी दिखाई परन्तु एक हलकी टकराहट के बाद द्विवेद युगीन लहर अपने निश्चित गतव्य की ओर बढती गई उसम कुछ नवीन लहर क मोती और अन्य रत्न आपड इह समटती हुई और धन्यवाद देती हुई बढती गई उधर नवीन छायावादी लहर का लास्य इतना अद्भुत और अप्रत्याशित हुआ कि दशक पुरानी लहर की ओर न देखकर इस नए सौन्दय म ही रमने लगे खासकर नवयुवको को उसम अधिक आनन्द मिला।

इस उपमान को सम्मुख रखने पर यह विवाद सुलझ जाता है कि छायावाद रहस्यवाद एक आधी की तरह हिन्दी म आया। वर्षों हमारी चेतना को मुग्ध करने वाली कविता सवथा विदेशी होती यदि विदेशी होने पर भी

यह हमारी चेतना से साम्य न रखती। छायावाद रहस्यवाद मे कुछ भी ऐसा नही मिलता जिससे भारतवर्ष सर्वथा अपरिचित रहा हो अत यह लहर भी हमारे हृदय-सागर से ही उठी। रही बात प्रेरणा की सो प्रेरणा के लिए सागर चन्द्रमा को भी देखता है और भीतर की आग को भी जिसे वह बराबर पीता रहता है वह उस ज्वार का भी जवाब देता है जो उसकी अपनी अनन्तता और शक्ति की अपरिमितता के कारण उत्पन्न हो जाता है। इसके सिवा इस सारी धरती को तीन चौथाई समुद्र घेरे हुए है जो एक और अखड है। हिन्दमहासागर हमारा है तो अतलातिक किसका है ? जब समुद्र आपस मे भेद नही करते किसी ओर से भी धारा आए उसमे अपना गुण मिलाकर—वे उसे अपनी धारा बना लेते हैं। इसी प्रकार चेतना का महासागर भी अखड है—जो धारा दुनिया के किसी भी कोने मे रहने वाले किसी भी व्यक्ति के मन म उत्पन्न हुई है यदि उसमे लहर बनने की शक्ति है तो वह सम्पूर्ण चेतना-अम्बुधि को अवश्य हिल्लोलित करेगी। इसमे समय लग सकता है बहुत बार लहर सर्वत्र नही पहुच पाती बहुत सी धाराएँ एक ही भाग मे शात हो जाती हैं किन्तु जल की अखडता के कारण बाद म उस लहर का परिचय होने पर उसी तरह की लहर बनने लगती हैं। छायावाद के पूर्व भी कवि अगरेजी पढते थे बँगला कविताओ का अध्ययन करते थे किन्तु अपनी वर्तमान धारा मे ही वे कवि मग्न रहे बहुत चले कतिपय अधिक जागरूक कवियो का ध्यान उस लहर' की ओर आकर्षित हुआ जो उन्नीसवी शताब्दी के अँगरेज कवियो के काव्य मे बह चुकी थी। रवीन्द्र ने इस योरोपीय लहर म भारतीय दर्शन और प्राचीन निष्ठा से बहुत भिन्नता नही पाई थी भी नही इसके सिवा शैली की नवीनता उसमे अवश्य थी। जिस प्रकार हम विदेशियो की सस्थाओ और शासन के विरुद्ध थे उसी प्रकार उन्नीसवी शताब्दी क कवियो की स्वच्छन्द भावना हमारे अग्रचेता कवियो को प्रिय भी लगी। हम बाहरवालो से परेशान थ और योरोपीय कवि अपने शासन की निष्ठुरता और अमानवीयता से परेशान थे। स्वतत्रता के लिए किसी भी प्रकार के शासन और राज्य' को स्वीकार नही किया जा रहा था। हमारा ध्यान इस तथ्य की ओर आकर्षित होना ही था आश्चर्य यह है कि भारतेन्दु और द्विवेदीयुग के प्रारम्भ मे कवियो ने रोमानी कवियो से क्या प्रेरणा नही ली ? बहुत से अँगरेजी जानते थे किन्तु जो हुआ उस पर दृष्टि रखनी चाहिए।

अत छायावाद आधी की तरह नही आया लहर की तरह आया और लहर के लिए हमारी चेतना म पर्याप्त जल था। बहाने के लिए पर्याप्त

आँसू थे जिस स्वच्छन्दता को शेली बायरन वगैरह चाहते थे और जहाँ-जहाँ वे चाहते थे वहाँ वहीं हम भी वह आवश्यक थी। भारतेन्दु की मृत्यु के बाद से प्रियप्रवास तक युवक कविवर्ग यह अनुभव करने लगा था कि प्रकृति-वर्णनों में जहाँ अधिक सश्लिष्टता की आवश्यकता है वहीं प्रेम के क्षेत्र में अतिशय मर्यादावाद अपनी अति पर पहुँच कर अमर्यादावाद होता जा रहा है। एक व्यक्ति पर केन्द्रित प्रेमभाव असामाजिक नहीं है समाज की धुरी है। अन्य मानवीय सम्बन्ध इस एक व्यक्ति पर केन्द्रित प्रेम के ही उपग्रह हैं जो उसी के चारों ओर घूम रहे हैं। सर्वदा इस प्रेम का गायन पुण्य माना गया है अत नैतिकता के आवरण के भीतर इस प्रेम की अवहेलना नैतिकता को भीतर से पुष्ट नहीं करती। वासना को वश में लाने का उपाय उसे कहीं एक जगह केन्द्रित करना है अन्यथा वह विस्फोट के रूप में फूट कर समाज का नाश कर देगी। अत आन्तरिक नैतिकता की रक्षा के लिये प्रेम का गायन चल पड़ा। इसके लिये बाहर से प्रेरणा ली गई तो इसमें अनुचित क्या था? द्विवेदीयुग की वेदना को घनीभूत किया गया और उन दुर्दिनों में उसकी वर्षा की जाने लगी। द्विवेदीयुग की देशभक्ति को यथावत स्वीकार किया गया। भारत की छवि के एक से एक सुघर चित्रण हुए।

द्विवेदीयुग के उपदेशवाद को प्रेरणावाद के रूप में अपनाया गया। पहले कवि सीधी पद्धति अपनाता था अब अधिक कलापूर्ण मार्ग अपनाया गया एक नई रीति चल पड़ी। द्विवेदीयुग के अन्त में समाज की दृष्टि में साम्प्रदायिकता बढ़ रही थी गाधी जी के मैदान में उतरने के बाद एकता का स्वर प्रबलतर होने लगा था अत हिन्दूवाद के स्थान पर विश्वमानवतावाद को अपनाया गया। भारत भारती और प्रियप्रवास में देश के साथ-साथ जाति पर भी बहुत बल दिया गया है वह जाति निराला के शिवाजी का पत्र आदि रचनाओं में एक अधिक उच्च स्तर पर व्यक्त होने लगी किन्तु समग्रत 'जाति के स्थान पर मानव जाति का अथ छायावाद में अधिक स्वीकृत हुआ। रोमानी कवियों में भी मानव मात्र के लिए सन्देश था अत छायावाद रहस्यवाद में उसी विश्वमानववाद की प्रतिष्ठा हुई।

द्विवेदीयुग के अन्त तक देशी विदेशी पूँजीवाद दृढ़ हुआ अत सामाजिक व्यवस्था की दृष्टि से देश उस व्यक्तिवाद के लिए प्रस्तुत था—जो रोमानी कवियों में व्यक्त हो रहा था अत अब कवि अपनी बात कहने लगे। केवल कवि को ही देखने पर वह अपने में ही मग्न एकान्त प्रेमी सपना में डूबा हुआ पलायनवादी सा लगता है। किन्तु युग और इतिहास को ध्यान में रखने

पर छायावाद—रहस्यवाद युगचेतना का माध्यम मात्र प्रतीत होता है। नए युग के सपनो मे नए मानवीय सम्बन्धो की स्थापना का प्रयत्न था, अनजाने ही छायावाद रहस्यवाद मध्ययुग के मूल्यो के स्थान पर नए मूल्यो और मानवीय सम्बन्धो की प्रतिष्ठा कर रहा था। उसने द्विवेदी युग की तरह धर्म के बहाने व्यभिचार का समर्थन नही किया किन्तु द्विवेदीयुग की ऊपरी नैतिकता का विरोध कर 'विवाह' को आरोपित क्रिया न मानकर उसे "प्रेम' के आधार पर प्रतिष्ठित किया अत उस युग मे निराला, पन्त और महादेवी 'प्रम' के लिए स्वच्छन्दता चाहते हैं और समाज के जड बन्धनो मे 'प्रम' की उपेक्षा की शिकायत करते है। महादेवी विवाह के प्रचलित रूप के विरुद्ध 'स्वयस्वीकृत" 'परित्यक्ता' का व्रत धारण पर बैठी क्योकि द्विवेदीयुग मे "विवाह" पिता द्वारा 'कन्यादान' पर ही आधारित रहा। हरिऔध' मे 'प्रेम' की प्रशसा है किन्तु वह भी स्वच्छन्दता देते हुए डर गए। शिथिल युवको-युवतियो की "बुद्धि" और 'उत्तरदायित्व की भावना' मे अविश्वास का दूसरा नाम है—"कन्यादान"। द्विवेदी युग ने बाल विवाह का विरोध किया, विधवा विवाह का समर्थन किया किन्तु विवाह के लिए 'प्रेम' करने की स्वच्छन्दता को स्वीकार नही किया अत छायावाद ने रीतिकालीन दुराचार के विरोध के साथ इस 'जडता' का भी विरोध किया और एक नए मानव मूल्य की सृष्टि की कि 'प्रेम' स्वय अपने मे सामाजिक है, उसके लिए समाज के रूप को नष्ट भ्रष्ट किए बिना ही स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए चूंकि गाडविन और रूसो की विचारधारा का आधार मनुष्य की स्वाभाविक 'सदिच्छा' (Natural goodness) थी अत प्रेम की स्वतन्त्रता की वकालत करने वाले कवि बिना घोषणा करके ही यह मानते थे कि मनुष्य मूलत 'भद्र' और 'नैतिक' होता है, बाह्य बन्धनो से जकड कर जो नैतिकता बनती है, वह दृढ नही होती। हिन्दू समाज मे बाह्य नैतिकता के कारण भीतर जो दुराचार चलता है, उसकी मात्रा इतनी कम नही है कि उस पर गर्व किया जा सके। छायावादी समझता था कि सच्चा प्रेमी अनैतिक प्रेम नही कर सकता, उसने प्रेम को "क्लीवत्व" से सर्वदा भिन्न समझा अत यह समझना कि छायावाद रीतिकाल का पुनरुत्थान था, ग़लत है। छायावाद को स्थूल के विरुद्ध सूक्ष्म की प्रतिक्रिया कहने वाले कुछ भी स्पष्ट नहीं करते—छायावाद को राजनैतिक, सामाजिक और दार्शनिक दृष्टि पूर्णत स्पष्ट है, यह अवचेतन का विस्फोट नही था, शुद्ध चेतन का विस्फोट था। द्विवेदीयुग के कवियो और आचारवादियो (Puritans) के विरुद्ध खुलकर छायावादियो ने लिखा। जहाँ निर्भीकता है वहाँ "अचेतन का स्वप्न जाल" नही, "सचेतन स्वप्न जाल" होता

है अत फायडवाली अचेतन का विस्फोट वाली जिस आलोचना को जन्म दे रहे हैं द चुके हैं वह स्वय अपने म पराजित प्रयत्न है।

जहा तक भारतीयता का प्रश्न है, छायावाद शद्ध भारतीय आदोलन था। भारतीय दशन का सववाद ही नई शली मे व्यक्त होकर ही छायावाद रहस्यवाद वन गया है। व० सवथ शेनी आदि मे जो सववाद मिलता है वह उन्हे यूनानी विचारको से मिला था। सब जगत म एक ही ब्रह्म की ज्योति का दशन यूनानियो को भारत से मिला था यह तथ्य ही गर्वीले भारतीयतावादियो के लिए काफी सतोषदायक होना चाहिये। सवप्रथम यह भारतीय-दशन शव दशन स प्ररित होकर प्रसाद की कविताओ म व्यक्त हुआ। जीव ब्रह्म के प्रमालापो के रूप म यह भारतीय वाङ्मय म बहुत पहल ही आ चुका था। स्वय रवीन्द्र ने कवीर से प्ररणा ली थी। प्रसाद पर सूफी प्रभाव स्पष्ट दिखाई पडता है। सूफी सववाद स्पष्टत भारतीय ही है और असलियत तो यह है कि सववाद अपनी मानवीयता के कारण अधिक आकषक प्रतीत हुआ। अतत जीव ब्रह्म के रूप म मानवीय प्रम का ही वणन हुआ। रहस्यवाद का आधार है— मानवीय प्रम उसे दिव्य कह देने भर से वह दिव्य हो नही जाता। मध्यकालीन सन्त-सूफी तथा आधुनिक रहस्यवादियो ने वस्तुत मानवीय प्रम का ही वणन किया है। मानवात्मा म प्रम की भूख जब तक रहगी तब तक वह रुचिकर लगेगा क्योकि उसका हमारे हृदय से सम्बन्ध है और चूंकि प्रमपात्र कुछ अधिक सूक्ष्म था अत अस्पष्टता और कृत्रिमता (अपूण कवियो म) भी आई। क्योकि दष्टिकोण के वाद रहस्यवाद समाप्त होने लगा परन्तु रहस्यवादी वाङ्मय आज भी प्रिय लगता है क्या ? क्योकि रहस्यवाद का माध्यम ही मानवीय नही था वणित प्रम भी मानवीय ही था। प्रम चाहे ब्रह्म से हो या 'अब्रह्म' से अपनी सवव्यापकता और जिजीविषा तथा सृजन के लिए मनुष्य की उन्मुक्तता और विवशता क कारण सवथा प्रिय रहगा।

अत छायावाद रहस्यवाद को पुराने लोग इसलिए नही समझ सके कि वे रीतिकाल के अलावा और कुछ न पढते थे जिन्ह बाहर का भी ज्ञान था उन्ह यह वाक्य पसन्द आया। अग्रजी की नकल है वह दन से सम्पूण आधुनिक साहित्य का निषध करना होगा और कुछ पुराचीन लोग ऐसा करते भी हैं किन्तु युग स वे पिछड चुके हैं। अत उनका मत विचारणीय नही है। देखना यह चाहिए कि प्ररणा चाहे कही से ली गई हो उसका भारतीय हृदय म कवि प्रविष्ट करा सका है या नहा अथवा उसकी रचना मात्र आरोपित या अनुकृत तो नहीं है।

तृतीय प्रवाह का जन्म—नवीन छायावादी रहस्यवादी चेतना का उदय द्विवेदीयुग म ही हुआ। यह चेतना सव प्रथम प्रसाद जी की रचनाओ मे दिखाई पडती है। गुप्त जी तथा मुकुटधर पाडेय की कतिपय रचनाओ को उद्घृत करत हुए शुक्ल जी ने अपने इतिहास मे लिखा है कि मैथिलीशरण गुप्त मुकुटधर पाडेय आदि कई कवि खडी बोली काव्य को अधिक कल्पनामय चित्रमय और अन्तर्भावव्यजक रूप रग देने म प्रवृत्त हुए। शुक्ल जी ने यह भी बताया है कि यह बँगला का प्रभाव था। क्योकि पारसनार्थसिंह के किए हुए बँगला कविताओ के हिन्दी-अनुवाद सरस्वती आदि पत्रिकाओ मे १६१० ई० से ही निकलने लगे थे। जीतनसिंह ने वडसवथ और प्र की रचनाओ के भी अनुवाद प्रकाशित किए थे। 'अत खडी बोली की कविता जिस रूप म चल रही थी उससे सतुष्ट न रह कर द्वितीय उत्थान के समाप्त होने के कुछ पहले ही कई कवि खडी बोली काव्य को कल्पना का नया रूप रग देने और उसे अधिक अतर्भावव्यजक बनाने म प्रवृत्त हुए जिनम प्रधान थ सव श्री मैथिली शरल गुप्त मुकुटधर पाडेय और बदरीनाथ भट्ट। गुप्त जी की नक्षत्र निपात (सन १६१४ ई०) अनुरोध (सन् १६१५) पुष्पाजलि (१६१७) स्वय आगत (१६१८) बदरीनाथ भट्ट की कुछ रचनाओ (१६१३) को शुक्ल जी ने उद्धृत भी किया है। अत शुक्ल जी के अनुसार गुप्त जी तथा मुकुटधर पाडेय ही नई धारा के प्रवतक माने जाने चाहिए।

गुप्त जी और मुकुटधर पाडेय आदि के द्वारा यह स्वच्छन्द नूतनधारा चली ही आ रही थी कि श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर की उन कविताओ की धूम हुई जो अधिकतर पाश्चात्य ढाचे का आध्यात्मिक रहस्यवाद लेकर चली थी। पुराने ईसाई सन्तो के छायाभास (Phantasmata) तथा योरोपीय काव्य-क्षेत्र म प्रवर्तित आध्यात्मिक प्रतीकवाद (Symbolism) के अनुकरण पर रची जाने के कारण बगाल म ऐसी कविताएँ छायावाद कही जाने लगी थी। यह वाद क्या प्रकट हुआ एक बने बनाए रास्त का दरवाजा सा खुल पडा और हिन्दी के कुछ कवि उधर एक बारगी झुक पड। यह अपना क्रमश बनाया हुआ रास्ता नहीं था' (पृष्ठ ५५१)।

काश ! शुक्ल जी के इतिहास म उन कवियो का भी उल्लेख होता जो 'एकबारगी' छायावाद की ओर झुक पड। छायावादियो मे काल की दृष्टि से सवप्रथम प्रसाद जी आते हैं और शुक्ल जी ने प्रसाद जी पर सबसे अधिक व्यग्य भी किये हैं किन्तु प्रसाद जी की रचनाओ मे विकास मिलता है। वह

एकबारगी छायावाद रहस्यवार की ओर नही झुक पडे यह चित्राधार की ब्रज भापा की कविताओ मे सौंदय और रहस्य को व्यक्त करते हुए दिखाई पडते हैं। उनकी प्रथम कविता १६१० ई० म प्रकाशित हुई और काननकुसम का प्रथम सस्करण १६१२ ई० मे प्रकाशित हुआ। प्रमपथिक का प्रथम सस्करण १६१४ ई० म प्रकाशित हो चुका था और चित्राधार का प्रथम सस्करण १६१८ मे प्रकाशित हुआ था जिसम पूव की अनेक रचनाएँ शामिल कर ली गई थी। सन् १६१६ ई० म निराला की जुही की कली प्रकाशित हुई थी। उसके पूव काननकुसुम और प्रमपथिक मे स्पष्टत नवीन शैली नवीन चेतना को व्यजित कर चुकी थी। सन १६१२ म प्रकाशित काननकुसुम की रचनाएँ कम से कम १६१२ के पूव से ही लिखी जाती रही होगी। गुप्त जी की नक्षत्र निपात सन् १६१४ ई० मे प्रकाशित हुई थी, प्रसाद के कानन कुसुम के दो वप बाद। पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी की नई रचनाएँ १६१५ १६ ई० की हैं।

प्रसाद जी की रचनाओ मे स्पष्ट विकास मिलता है। इदु की प्रथम कला सन १६०६ ई० (श्रावण सवत १६६६ वि०) म प्रकाशित हुई थी सन १६०६ ई० से इदु की रचनाओ मे बराबर विकास मिलता है। छायावादी नवीन प्रयोग सव प्रथम ब्रजभापा म मिलते हैं पुन प्रसाद जी ने उन्हे खडी बोली म भी प्रस्तुत किया। अत वस्तुत छायावाद प्रथम ब्रजभाषा मे आया और तत्पश्चात् खडी बोली मे। ब्रजभापा के कवियो न पुरातन प्रेम के कारण नवीन शैली का अनुकरण नही किया। ब्रजभापा के प्रति उपेक्षा देख कर और नवीन भापा के प्रति उत्साह देख कर तथा यह समझ कर कि खडी बोली काव्य भाषा बन चुकी है प्रसाद जी ने अपनी ब्रजभाषा की रचनाओ का खडी बोली म अनुवाद किया। चित्राधार म प्रकाशकीय वक्तव्य से भी स्पष्ट है कि प्रसाद जी ही सवप्रथम नई भावनाओ और नई शैली के प्रयोक्ता थे।[1]

---

१ बीस वय की अवस्था के पहले ही आपने इस ढग की कविताओं का प्रारम्भ किया था और वे यथा समय इन्दु की प्रारम्भिक कलाओं (सवत १६६६ ६७) मे निकल भी चुकी थीं। इस सग्रह मे जो कविताएँ दी गई हैं, उन्हें देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि ब्रजभाषा मे नवीन भावनाओं को आपने प्रथम प्रथम किस प्रकार व्यक्त किया और वे ही भावनायें खडी बोली मे उसके प्रचार पाने मे किस रूप में आयीं। सच तो यह है कि नवीन कविता शैली के आप सजीव इतिहास हैं •

उनकी प्रारम्भिक रचनाओ मे एक नया तत्वदशन सौदय के प्रति अदभुत अनुराग तथा प्रम के क्षत्र मे एक स्वच्छन्दता के दशन होते है। प्रकृति म जो सौदय है वह प्रकृति की पृष्ठभूमि मे स्थित अलक्षित सत्ता की झलक है यह दृष्टि भी प्रारम्भिक कविताओ म मिलती है। द्विवेदीयुग की अत की सीमा तक पहुचा हुआ कठोर मर्यादावाद प्रसाद की प्रारम्भिक कावताओ मे कही भी नही मिलता। द्विवेदीयुग मे रीतिकाल के विरोध मे कठोर नतिकतावाद के कारण कवियो की दृष्टि पाप पुण्य श्रृगार और सयम दानव देव आदि द्वद्वो को परस्पर विरोधी मान कर चली जब कि प्रसाद जी इन दोनो को एक ही सत्ता की अभिव्यक्ति के दो रूप मान कर चले। जगत जब शिव की अभिव्यक्ति है तब उसमे प्रत्यक अभिव्यक्ति शिव शक्ति की ही प्रतिच्छवि है यह दष्टिकोण प्रारम्भिक रचनाआ मे ही मिल जाता है। गुप्त जी मुकुटधर पाडय आदि की रचनाओ म नवीनता है परन्तु इन कवियो मे इस प्रकार की रचनाओ का क्रमवद्ध और निरन्तर विकास नही मिलता। गुप्त जी ने द्विवेदीयुग की विवरणात्मक प्रवृत्ति आगे भी नही छोडी साकेत द्वापर आदि यत्र-तत्र नवीन शैली के प्रयोगो के वावजूद छायावादी रचनाएँ नही है। मुकुटधर पाडेय आगे कविरूप म साहित्य को प्रभावित नही कर सके। यदि प्रसाद जी इकबारगी छायावाद की ओर झुक पडने वाल कवि होते तो उनके सम्पूण काव्य मे बीज-वृक्ष की तरह क्रमश विकास क्या मिलता है? छायावाद म जिस सौदय की खोज हुई उसकी ओर प्रसाद जी प्रारम्भ से ही आकर्षित थे और बाह्य उपदेशपरकता को काव्य नही मानते थे—

नील नीरव देख कर आकाश मे
क्या खडा चातक रहा किस आश म।
क्या चकोरो को हुआ उल्लास है
क्या कलानिधि का अपूव विकास है।
है यही सौन्दय म सुषमा बडी
लौह प्रिय को आँच इसकी ही कडी।
देखने के साथ ही सुन्दर वदन
दीख पडता है सजा सुखमय सदन।

इस सग्रह को अपने पास रख कर आप हिन्दी साहित्य के अभिनव युग के प्रारम्भिक युग का प्रारम्भिक इतिहास सहज ही प्राप्त कर सकग।

—'प्रसाद जी की कवितायें''—सुधाकर पाडय

लोग प्रियदर्शन बताते इन्दु को,
देख कर सौन्दर्य के इक बिन्दु को।
किन्तु प्रियदर्शन स्वय सौन्दर्य है,
सब जगह इसकी प्रभा ही वर्य है।
मानवी या प्राकृतिक सुषुमा सभी,
दिव्य शिल्पी के कलाकौशल सभी।[1]

यह रचना 'काननकुसुम' मे सकलित है, शीर्षक 'सौन्दर्य' है। प्रसाद जी ने इसके अन्त मे कहा है कि सौन्दर्य को देखकर लेखनी द्वारा उसे चित्त पर अकित करना चाहिए और अकित करते करते स्वय सौन्दर्य चित्र बन जाएगा और इससे 'सत्य और सुन्दर' की व्यजना हो जाएगी—

देख लो जी भर इसे देखा करो।
इस कलम से चित्र पर रेखा करो।
लिखते लिखते चित्र वह बन आएगा।
सत्य-सुन्दर तब प्रकट हो जाएगा।

यह दृष्टि 'गीताजलि' के प्रकाशन के पूर्व ही प्रसाद मे विकसित हो चुकी थी और उसका कारण यह था कि शैवागमो के 'आनन्दवाद' मे वह अपने को लीन कर चुके थे जिसके अनुसार यह सब सृष्टि आनन्द और 'सुन्दर की अभिव्यक्ति है। अत प्रकृति मे सौन्दर्य और सत्य की झलक देखने की छायावादी प्रवृत्ति सर्वप्रथम सैद्धान्तिक आधार के साथ प्रसाद जी मे ही दिखाई पडती है।

१९१४-१५ ई० मे प्रकाशित 'प्रेम पथिक' मे 'छायावाद' का यह दृष्टिकोण मिलता है कि समाज मे 'प्रेम' की स्वच्छन्दता नही है अत उसका विरोध आवश्यक है। 'प्रेम' और 'नारी' का गौरवगायन, प्रेम की पीडा की महत्ता-स्थापना—प्रेम पथिक मे स्पष्टत व्यक्त हुई हैं। प० सुधाकर पाडेय ने ठीक ही कहा है कि "उस समय द्विवेदी जी की आदर्शवादी प्रभा आभा से दीप्त थी। सामाजिक आदर्श की बात बाह्य दृष्टि से कहना ही काव्य की अभिव्यक्ति की जीवन-सीमा थी। सामाजिक सत्यो को अन्तरदृष्टि से देखकर जनमन पर उसे प्रतिष्ठित करना काव्य की अन्तर-आत्मा नही मानी जाती थी, ऐसी परिस्थिति

---

१. सुधाकर पांडेय, पृ० ६१ से उद्धृत।

मे अडिग होकर स्वच्छ दतापूवक प्रमसाम्राज्य को बात मानवीयभित्ति पर करना वहुत वड पौरुष का काय था ।

पन्त जी की कृति ग्रन्थि की पूवआभा प्रमपथिक मे सुरक्षित है। प्रम की स्वच्छ दता वेदना और सूक्ष्म उपमानो के अतिरिक्त इस काव्य मे छायावाद रहस्यवादी युग की दाशनिकता भी मिलती है—छायावादी रहस्य वादी कवि प्रम और सौ दय का कवि था और ब्रह्म और सौदय को एक मानकर चला। प्रम और सौ दय की सवव्यापकता उसे रीतिकालीन प्रम से भिन्न कर देती है—

इसका परिमित रूप नही है जो व्यक्ति मात्र मे बना रहे।
क्योकि यही प्रभु का स्वरूप है जहा कि सबको समता है।
इस पथ का उद्देश्य नही है श्रान्त भवन मे टिक रहना।
कि तु पहुँचना उस सीमा पर जिसके आगे राह नही।
अथवा उस आन द भूमि मे जिसकी सीमा कही नही।

अत रहस्यमय आनन्द भूमि जो कामायनी मे मिलती है वह १९१४ १५ मे ही सकेतित हो चुका थी यह स्पष्ट है। प्रसाद जी ने प्रम को एक महान कल्याणकारी भावना के रूप मे अपनाया था जिसमे मनुष्य को उदार और अन त बनाने की शक्ति है जिसमे सौ दय और सयोग वियोग सबका आन द निहित है—द्विवेदीयुग के विषधवाद को सवप्रथम प्रसाद जी ने ही अस्वीकृत किया था।

काव्य हमारी चि तना मक और भावना मक शक्ति को आ दोलित करता है। द्विवेदीयुग मे मगल का भाव घोषित अधिक हुआ। हम कह चुके हैं कि रीतिकालीन मानसिकता से सहसा सम्ब ध विच्छद करने के लिए यह आवश्यक था। किन्तु द्विवेदी युगीन काव्य मे काव्य प्रक्रिया की विशिष्टता का सवत्र निर्वाह नही किया जा सका। हरिऔध सधियुग के कवि थे अत उनमे कही काव्य प्रक्रिया स्वाभाविक रूप मे और कही घोषणा रूप म मिलती है। पर तु समग्रत द्विवेदीयुग काव्यप्रक्रिया की विशिष्टिता का निर्वाह नही कर सका। यदि काव्य-पद्धति आन दमय नही हो पाती तब वह अनुकूल प्रभाव उत्पन्न नही कर पाती। द्विवेदीयुग मे काव्य जीवन से सम्पृक्त होकर चला वह समाज म शुभ परिवत्तन के लिए उत्सुक था यह उसकी महानता है किन्तु व्यक्ति हितकर और उपयोगी विचारो और भावो को भी तटस्थ होकर काव्य

मे भोगना चाहता है। काव्य की सफलता इस बात मे है कि वह पाठक या श्रोता मे इस चेतना को न जगने दे कि उसे कोई 'लाभप्रद' वस्तु दी जा रही है। मरीज़ को बिना यह बताए हुए कि यह ओषधि है, काव्यकार अच्छे वैश्य की तरह यह भावना जगाता है कि श्रोता के आनन्द के लिए ही वह प्रयत्न कर रहा है। आनन्द की भावना की तृप्ति के लिए ही पाठक पढता है श्रोता सुनता है और छविमान मूर्त्तियो (Images) की सृष्टि द्वारा कवि श्रोता के अनजान मे ही उसके हृदय मे उपयोगी विचार और भाव जाग्रत कर देता है। काव्य और अन्य कलाएँ इसीलिए अपने मे 'स्वतन्त्र और पूर्ण" प्रतीत होती है। वह निरुद्देश नही होती, अपितु वे उद्देश्य को छिपाकर, पाठक और श्रोता के अनजान मे ही, उसके हृदय मे प्रविष्ट कर देती हैं। अत जिस काव्य मे पाठक या श्रोता की उपयोगिता के प्रति जागरूकता बनी रहेगी, वह काव्य श्रेष्ठ नही होगा। द्विवेदीयुग मे 'उपयोगिता' को घोषित किया गया है यही उसकी कमी है। प्लेखानव ने काव्यानन्द की परिभाषा इस प्रकार की है—

Enjoyment of astistic production is the enjoyment of that which is benificial to the race, irrespective of any conscious consideration of benifit [1]

अर्थात् समाज के लिए कल्याणकारी (तत्व) का आनन्द ही काव्यानन्द है किन्तु काव्यानन्द के समय किसी 'लाभ' की भावना नही रहती।

द्विवेदीयुग का ध्यान सर्वदा 'लाभ' (Benifit) पर रहता है अत उसके काव्यानन्द की प्रक्रिया सदोख है। कवि काव्य को अपने मे 'पूर्ण' मान कर नही चलता वह सृष्टि के समय भी उपयोगिता को नही भूलता, इस कमी को पूरा करने का सर्वप्रथम प्रयत्न प्रसाद जी की रचनाओ मे मिलता है, प्रारम्भ से ही उन्होने उपयोगितावाद के प्रति अनावश्यक जागरूकता की मात्रा को कम करना चाहा है।

चूँकि इस प्रस प्रयत्न मे निरन्तरता और क्रमश सफलता मिलती है अत तृतीय प्रवाह के अभ्युदय का श्रेय प्रसाद जी को ही दिया जा सकता है। वास्तविक स्वच्छन्दतावाद का उन्नतिशील रूप भी सर्वप्रथम प्रसाद जी म ही दिखाई पडता है। जगमोहनसिंह, श्रीधर पाठक आदि का स्वच्छन्दता 'प्रारम्भिक' और अस्फुट रूप मे प्रस्तुत हो पाया था।

---

1. Unaddressed Letters—Moscow 1957, Page 111.

मैंने हिन्दी के प्रमुखवाद नामक पुस्तक मे इसीलिए लिखा था नूतन युग का प्रवतन प्रसाद व निराला से होता है। प्रसाद' द्विवेदी मण्डल के सदैव बाहर रहे अपनी सहानुभूति के बल पर तथा प्राचीन अद्वैतवादी दशन के आधार पर उन्होंने अपने वेदनापरक काव्य का ताना बाना बुना जो द्विवेदीयुग को १६१८ ई० के पहले की प्रचलित धारा से उन्हें अलग कर देता है।[1]

प्रसाद की तरह निराला भी एकबारगी छायवाद रहस्यवाद की ओर नही चक पड। निराला जी तो वगभूमि मे रह रहे थे। उन्होंने बँगला मे ही नवीन काव्य का अनुशीलन किया था। वह रवीन्द्र की कला से परिचित थे और यह भी जानते थे कि योरोप के रोमानी कवियो से प्ररणा लेकर भी रवीन्द्र रोमानी और रहस्यवादी काव्य के भारतीयकरण मे पूण सफल हुए थे। रवीन्द्र' पर सन्त कवियो का भी प्रभाव था इस तथ्य का उल्लेख स्वय रवीन्द्र ने किया है किन्तु शुक्ल जी ने नही किया। रवीन्द्र के काव्य की आत्मा स्वदेशी थी उसमे सौन्दय को एकत्र करने का चाव था ऐसा सौन्दय जो मूलत ब्रह्म से भिन्न नही है मगल से भिन्न नही है। हृदय के अतराल के अनुसधान की उसमे चेष्टा है स्वानुभूति की प्रधानता है तथ्यवणन की नही अत तथ्यो को पद्यमय रूप देने वाले कवि गुप्त जी तथा मुकुटधर पाडय भी इस काव्य से प्रभावित हुए थे किन्तु वह इस काव्य के साथ तादात्म्य नही कर सके अत कुछ पद्यो की रचना के बाद वह अपनी प्रकृतभूमि पर ही चले जब कि प्रसाद निराला आदि ने अपना स्वतन्त्र माग बनाया।

निराला पर विवेकानन्द का प्रभाव अधिक था अत भारतीय वेदान्त ने उन्हे सववाद की ओर उन्मुख कर दिया। अनेकता मे एकता अर्थात् नाना सम्प्रदायो जातियो प्राणिया और पदार्थों मे एक ही तत्त्व का दशन होने लगा। प्रकृति का प्रत्येक पदाथ अपनी आत्मा का अश प्रतीत होने लगा उसमे प्राणपुलक का सचार होने लगा। प्रकृति परमात्मा के अनुराग मे रगी दिखाई पडने लगी। द्विवेदीयुग के लघु और असश्लिष्ट चित्रो के स्थान पर विराट' के साथ सम्पक के कारण विराट और सश्लिष्ट चित्रो की सृष्टि होने लगी। निराला की प्रसिद्ध जुही की कली १६१६ मे लिखी गई। इस एक कविता ने सभी का ध्यान आकर्षित किया। तुकान्तहीनता प्रम की

---

१ हिन्दी के प्रमुखवाद और प्रवतक—पृष्ठ ३६।

स्वच्छन्दता व नवीन अप्रस्तुतविधान ही नही लघु की परिसमाप्ति विराट' मे होने के कारण भी यह कविता द्विवेदीयुग की रचनाओ से सवथा भिन्न आग्रह लेकर आई द्विवेदी जी ने सरस्वती मे इस कविता को प्रकाशित ही नही किया।

निराला जी के पक्ष मे यह कहना आवश्यक है कि उन्होंने नई रचनाओ का हिन्दी मे प्रवेश बड़े ही नाटकीय ढङ्ग से किया उनके व्यक्तित्व और रचनाओ की स्वच्छन्दता की ओर पाठक द्रुतगति से आकर्षित हुए अन्य किसी कवि की ओर नही हुए अत तृतीय प्रवाह के अवतरण मे यदि एक भगीरथ की जगह यदि दो भगीरथ स्वीकार किए जाएँ तो भी अनुचित न होगा।

जिस प्रकार प्रसाद जी ने नवीन शैली की कान्ति या छाया और मोती जैसी तरलता का सम्बन्ध 'कुन्तक से जोडा था और अभिनव रहस्यवाद का सम्बन्ध शैवागमो और उपनिषदो से स्थापित किया था उसी प्रकार निराला जी ने भी अभिनव सौदय और रहस्य का सम्बन्ध प्राचीन अद्वैतवाद या वेदान्त से स्थापित किया था। वेदान्त से निराला जी ने आत्मा की मुक्ति और काव्य की मुक्ति का सन्देश एक साथ ग्रहण किया था। उनकी आत्मा की मुक्ति मे देश और जाति की मुक्ति का भी सिद्धान्त निहित था अत एक ओर सौदय-सग्रह और उद्दाम यौवन का प्रवाह तथा दूसरी ओर क्रान्ति का विकट घोष भी उनमे साथ ही साथ मिलता है—

साहित्य की मुक्ति उसके काव्य मे देख पडती है इस तरह जाति के मुक्ति के प्रयास का पता चलता है चित्रो की सृष्टि होती है पर वहाँ उन तमाम चित्रो को अनादि और अनन्त सौदय मे मिलाने की चेष्टा रहती है— साहित्य में इस समय यही प्रयत्न जोर पकडता जारहा है और यही मुक्ति-प्रयास के चिह्न भी हैं अब लीलाम्बरी ज्योतिर्मूर्ति की सृष्टि कर चतुर साहित्यिक फिर उसे अनन्त नीलनभ मण्डल म विलीन कर देते हैं पल्लवो के हिलने म किसी अनात चिरन्तन अनादि सर्वज्ञ को हाथ के इशारे अपने पास बुलाने का इङ्गित करते हैं इस तरह चित्रो की सृष्टि असीम सौन्दय म पयवसित हो जाती है और यही जाति के मस्तिष्क मे विराट दशा के समावेश के साथ ही साथ स्वतन्त्रता की प्यास को प्रखर तर करते जारहे हैं।

इस प्रकार छायावादी कविता की सौन्दय साधना और रहस्य साधना दोनो एक और अभिन्न होकर चली हैं उनम प्रेरणा चाहे बाहर से ली गई हो परन्तु उनका रूप निर्माण भारतीय दशन के आधार पर ही हुआ है और अपनी

अन्तिम व्याख्या मे इस सौन्दय साधना को व्यक्ति और देश के साथ एक कर दिया गया है।

यही नहा छायावाद पर जो रीतिकालीनता का दोष लगाया जाता है वह निराधार है। छायावाद मे 'नारी के सौंदय को उसी विराट सौंदय के साथ एक किया गया है वह जीवन की प्ररणादायिनी ज्योतिस्वरूपा शक्ति के रूप मे प्रतिष्ठित हुई है। जैसे रीतिकाल मे छीनी गई उसकी महिमा और गरिमा उसे पुन वापस मिल गई हो और उससे भी सतुष्ट न होकर जैसे नारी को ब्रह्म का पद दे दिया गया हो—

साहित्य के एक एक पृष्ठ मे एक विकच नारी की मूर्त्ति तम के अतल प्रदेश मे मृणालदण्ड की तरह अपने शत शत दलो को सकुचित सपुटित लेकर बाहर आलोक के देश मे अपनी परिपूर्णता के साथ खिल पडती है जडो म प्राण सचरित हो जाते हैं—अरूप मे भुवनमोहिनी ज्योति स्वरूपा नारी।[1]

इस प्रकार छायावाद ने 'नारी को सौन्दय और प्ररणाशक्ति के रूप मे स्वीकार किया यह स्पष्ट है। नारी और प्रकृति के सौन्दय का एकीकरण एक उच्च चिन्तन भूमि पर होने के कारण छायावादी सौन्दय वह कुत्सित प्रभाव नही उत्पन्न करता जो रीतिकालीन काव्य उत्पन्न करता है। द्विवेदीयुग मे प्रमभाव के मुक्त आदान प्रदान को असयम माना जाता था, इस सहमी हुई चित्तवृत्ति तथा हृदय क निषध और जीवन के मधुरतम पक्ष की अवमानना क विरुद्ध छायावाद मे जो प्रतिक्रिया हुई वह न केवल साहित्य के लिए आवश्यक थी अपितु भारतीय सस्कृति के व्यापक दृष्टिकोण के प्रसार के लिए भी आवश्यक थी। उसमे द्विवेदीयुगीन आयसमाजी साम्प्रदायिकता की छाया भी नही है। छायावाद गाधीयुग की सृष्टि है, सम्पूण भारतीय जाति की अखडता और एकता के लिए विश्वात्मवाद से प्ररित होकर नए कवियो ने मानवमात्र के लिए लिखा—द्विवेदीयुग का हिन्दूवाद उसमे नही है अत छायावाद की आधारभूमि अधिक विस्तृत है।

छायावाद की प्रमुख प्रवृत्ति कण-कण मे बिखरे हुए सौन्दय का दशन और उसकी व्यजना है। साथ ही साथ कवि अज्ञय सत्ता के प्रति प्रम सम्बन्ध भी स्थापित करता है और तब उसकी सज्ञा 'रहस्यवाद हो जाती है। यह 'रहस्यवाद भी साधनापरक न होने के कारण अत्यधिक गूढ न होकर

---

१ प्रबन्ध पद्म, पृष्ठ १५६।

सरल और मानवीय है। शुक्ल जी का यह कथन सही है कि छायावाद मे "वर्ण्य" का क्षेत्र सकुचित हुआ, अनगढ और अनुकरणकर्त्ता कवियो ने कुछ निश्चित शब्दावली की पुनरावृत्ति शुरू करदी, कृत्रिमता आने लगी, अस्पष्ट पदावली का प्रयोग बढा परन्तु छायावाद के श्रेष्ठ कवियो मे ये दोष बहुत कम मात्रा मे मिलते हैं। 'वर्ण्यविषय' सीमित और सूक्ष्म होने पर भी अपने क्षेत्र के भीतर कवियो ने प्रत्येक पदार्थ से सौन्दर्य का दोहन किया है। छायावाद मे जिन पदार्थों का वर्णन हुआ है, वह मोहक बन पडा है, जिन भावनाओ का वर्णन हुआ है, उनमे उन्हे पूर्ण सफलता मिली है, यह अपने मे एक महान उपलब्धि है।

प्रसादजी और निराला के बाद सुमित्रानन्दन पन्त की रचनाओ ने पाठको को आकर्षित किया। वीणा मे १९१८-१९ की रचनाएँ है। ग्रन्थि १९२० मे लिखी गई थी और पल्लव मे १९१८ से १९०५ तक की रचनाएँ थी। *पन्तजी की रचनाओ मे एक अभूतपूर्व कोमलता और प्रकृति के पदार्थों को* विस्मित हो हो कर देखने की भावना ने पाठको को मुग्ध कर दिया। खडी बोली के लिए यह कोमलता एक वरदान थी। प्रसाद और निराला मे भाव की मधुरिमा और चित्रो का सौन्दर्य तो था, किन्तु कोमलता उतनी नही थी। पन्तजी मे चित्रो की सुघरता, लक्षणात्मक शैली और पदावली की कोमलता भी थी अत पन्त जी की रचनाओ ने तृतीयप्रवाह के निर्माण मे गगा-यमुना के बाद 'सरस्वती' का कार्य किया। प्रसाद-निराला और पन्त की वाणी से जो त्रिवेणी प्रस्तुत हुई, *खडी बोली काव्य के पूर्वकाव्य को पीछे छोडकर नवशिक्षित वर्ग* के हृदय सिहान पर अभिषिक्त होगई, सन् १९२० के बाद तृतीयधारा प्रतिष्ठित होगई।

छायावादी कविता प्रकृति और प्रेम के क्षेत्रो मे ही सिमिट कर चली। पन्तजी ने रोमानी कवियो से प्रत्यक्षत भावो और विचारो को ग्रहण किया। टेनीसन की शब्दकला और वर्डसवर्थ तथा शेली (Shelley) से प्रकृति-वर्णन की प्रेरणा ली। विवेकानन्द तथा प्राचीन भारतीय दर्शन से भी अपने सर्ववाद के लिए भी वह प्रेरित हुए किन्तु *पल्लव काल तक की रचनाओ मे शिशुओ* जैसी जिज्ञासा, कोमलता और प्रकृति के सौन्दर्य के प्रति अपरिमित लालसा ही अधिक व्यक्त हुई, उनके चित्र अपेक्षाकृत सरल, स्फुट और अनुप्रास और सगीतमयी भाषा के कारण अधिक प्रचलित हुए। इस प्रकार प्रसाद, निराला और पन्त अपनी विशिष्टिताओं के साथ-साथ एक ही भावभूमि पर स्थित दिखाई पड़ते हैं।

यह कहा जा चुका है कि द्विवेदीयुग मे श्रीधर पाठक गोल्डस्मिथ से प्रेरित हुए थे। द्विवेदीयुग मे वर्डसवर्थ की "सामान्यजन की भाषा" मे काव्य लिखने के सिद्धान्त से द्विवेदी जी ने प्रेरणा ली थी, किन्तु वर्डसवर्थ का सहज जिज्ञासामूलक प्रकृति-चित्रण द्विवेदीयुग मे नही आपाया था। छायावाद मे वर्डसवर्थ, कीट्स और बायरन और सबसे अधिक शेली से प्रेरणा ली गई। पन्त जी पर इन इन रोमाँटिक कवियो का सीधा प्रभाव दिखाई पड़ता है। कई जगह पन्तजी ने उनकी शब्दावली का भी अनुकरण किया है किन्तु पन्तजी को अनुकरणकर्त्ता कहना काव्य-प्रक्रिया से अनभिज्ञता प्रकट करना है। प्रेरणा ग्रहण करना एक बात है और उधार लेकर यथावत् रूप मे दूसरो के भावो और शब्दो को प्रस्तुत करना दूसरी बात है। पन्तजी ने प्रेरणा ग्रहण की है, उसे भारतीय वातावरण मे अपनी चेतना के माध्यम से पन्तजी ने प्रस्तुत किया है, मधुमक्खी विभिन्न पुष्पो से रसग्रहण करती है किन्तु उसे आत्मसात करके जब वह 'मधु' के रूप मे एकत्र करती है तब मूल पुष्परस और मधु मे स्पष्ट अतर दिखाई पडता है। सम्पूर्ण सत्कवियो मे यह गुण मिलता है। पन्तजी मे भी यही प्रवृत्ति दिखाई पडती है। कई स्थानो पर केवल 'अनुकृति' भी मिल सकती है परन्तु समग्रत पन्तजी अवश्य मौलिक कवि हैं।

समग्रत उक्त तीनो कवियो का काव्य स्वच्छन्दतावादी काव्य कहा जा सकता है और योरोप के स्वच्छन्दतावादी काव्य से उसकी तुलना भी की जा सकती है, उसी तरह जिस तरह द्विवेदीयुगीन प्रवृत्तियो की तुलना, एक सीमा तक, डा० जान्सन के युग के साथ की जा सकती है किन्तु उस तुलना मे भिन्न भारतीय परिस्थितियो पर भी पर्याप्त बल देने की आवश्यकता है।

भारतेन्दु के उत्तरकाल मे पोप, गोल्डस्मिथ, टामसन, ग्रे, कूपर, वर्डसवर्थ स्काट, बायरन, आदि की कविताओ के अनुवाद हुए थे। "भारतेन्दुयुग मे विश्वविद्यालयो मे हर्मिट डेजर्टेडविलेज तथा ट्रैवलर पढाए जाते थे"। श्रीधर पाठक ने इन रचनाओ के अनुवादो मे भारतीय वातावरण प्रस्तुत किया था और "प्रकृति-वर्णन" को स्वतन्त्र रूप से काव्य मे स्थान देने के लिए कवियो को प्रेरित किया था। पाठक जी ने ग्रे के "शेफर्ड एण्ड फिलासफर" नामक रचना का अनुवाद भी "गडरिया और आलिम" के नाम से किया था।

हम कह चुके हैं कि 'प्रेमघन' के "जीर्ण जनपद" मे भी प्रकृति-सुषुमा का स्वतन्त्र चित्रण मिलता है। श्रीधर पाठक और प्रेमघन आदि के प्रयत्न से खडीबोली और ब्रजभाषा दोनो मे पुरानी रीति-परम्परा कमजोर हुई।

१६०६ ई० मे लल्लीप्रसाद पाडेय का कविता का दरबार शीर्षक लेख सरस्वती मे प्रकाशित हुआ था। इसमे होमर वर्जिन दाते चासर स्पेन्सर शेक्सपियर मिल्टन ड्राइडन कूपर लौगफलो बर्न्स कालरिज मूर साउदे शेली और टनीसन की चर्चा की गई है।[1] अगरेजी कवियो के अपनी भाषा *के प्रति प्रेम विद्रोह और विप्लव की प्रवृत्ति तथा स्वतन्त्रता के प्रति प्रिय भाव* द्विवेदीयुग मे पाठको के सम्मुख लाए गए। स्वय द्विवेदीजी ने वायरन जेम्स टलर, शक्सपियर, ग्र आदि की रचनाओ के अनुवाद सरस्वती मे प्रकाशित कराए। द्विवदीयुग पर वथम और मिल के अतिरिक्त रूसो का भी प्रभाव पडा था।[2]

इस प्रकार हिन्दी मे पूण स्वच्छ दतावादी आदोलन (छायावाद) की एक पृष्ठभूमि द्विवेदीयुग म ही प्रस्तुत हो रही थी किन्तु व-सवय की काव्य परिभाषा और काव्य स प्रभावित होने पर भी द्विवेदीयुग म शुद्ध स्वच्छन्दता वाद सरस्वती द्वारा प्रस्तुत न होकर प्रसाद जी के इदु द्वारा हुआ जो धीरे धीरे अपनी कलाएँ विकसित कर रहा था। रवीन्द्रसहाय वर्मा का कथन है कि उस समय पोप के मारल एसेज एसे ऑन मैन तथा एसे आन *क्रिटिसिज्म' का प्रभाव नवशिक्षितो पर बहुत अधिक था।* द्विवेदी जी से प्रभावित कवियो पर पोप का विशेष प्रभाव था। जगनाथ दास रत्नाकर न व्रजभाषा म पोप के एस आन क्रिटिसिज्म का अनुवाद किया था।

अत द्विवेदीयुग म स्वच्छ दतावाद का पूण विकास नही हो सका परन्तु उसी के गभ म स्वच्छन्दतावाद का विकास हो रहा था यह प्रसाद तथा निराला की रचनाओ से स्पष्ट है। काव्य की शुद्ध पद्धति का श्री आविष्कार हो रहा था और द्विवेदी जी के प्रभावशन्य के बाहर के कवि उपदेशवाद की उपेक्षा कर रहे थे। स्वय द्विवेदीजी स प्रभावित कवियो म उद्गारो को सरल भाषा म व्यक्त करने की प्रवृत्ति थी। यद्यपि उसम वैयक्तिक भावना का *अपेक्षाकृत अभाव था यह कमी छायावाद म पूरी हुई।*

द्विवेदीयुग और पोप जान्सनयुग म कुछ समताएँ और कुछ भिन्नताएँ भी मिलती हैं। नियमबद्धता के प्रति पोप-जान्सन की अत्यधिक आसक्ति थी। द्विवेदीयुग म सस्कृत छन्दो क प्रति आसक्ति म यह प्रवृत्ति दखी जा सकती है।

---

१ हिन्दी पर अंग्रेज प्रभाव—रवीन्द्र सहाय वर्मा पृष्ठ ८६।
२ वही ६२

जान्सन की कठोर नैतिकतावादिता भी द्विवेदीयुग मे अपना सादृश्य प्रस्तुत करती है। डा० जान्सन जैसा कठोर अनुशासन द्विवेदीजी भी लेखको पर प्रदर्शित करते रहे परन्तु द्विवेदीयुग मे 'उद्‌गारात्मक' काव्य जान्सनयुग से अपनी भिन्नता भी प्रदर्शित करता है। जान्सनयुग मे 'नागरिक कविता' ही अधिक हुई, प्रकृति के प्रति उसमे आसक्ति नही मिलती किन्तु द्विवेदीयुग म 'प्रकृति' का वणन भी हुआ और चित्रण भी यद्यपि उसमे कवि अपनी अतर्भावना नही भर सके फिर भी प्रकृतिसौन्दय स्वय अपने मे एक स्वतन्त्र विषय बन गया। 'प्रियप्रवास' के कवि ने कथा की चिन्ता न करके बीच-बीच मे प्रकृति-वर्णन भरे हैं। पोप-जान्सनयुग मे 'पार्टी-साहित्य' प्रचलित हुआ था। ह्विग और टोरी दलो के राजनीतिज्ञ लेखको को साथ लेकर चले अत एक दूसरे पर आक्षेपो का तत्कालीन साहित्य म प्रादुर्भाव हुआ। द्विवेदीयुग मे 'आक्षेप' को अधिक महत्व नही मिला किन्तु अंगरेजो के विरुद्ध आक्षेपो, व्यग्यो और परिहासात्मक पद्यो का अभाव नही है। अत पोप-जान्सनयुग और द्विवेदीयुग मे समताओ के साथ भिन्नताएँ भी हैं, इसमे सदेह नही।[१] द्विवेदीयुग

---

१ जोन्सन-पोपयुग की नियम-प्रियता चासर, शेक्सपियर तथा स्पेन्सर जैसे महान कलाकारो से भिन्न अ व सामान्य कोटि के कवियो द्वारा कला के अनुशासन से रहित केवल भ्रध-उद्‌गारों को अभिव्यक्ति की प्रतिक्रिया स्वरुप उत्पन्न हुई थी—

But, when the art of poetry is making, the second rate poets, inspired only their feelings, will write in a "natural" style unrestrained by rules, that is, they will put their feelings into verse without caring much for the form in which they do it, this is the general history of the style of the second-class poets of the middle period of Elizabeth's reign and even shakespeare affords examples of this want of art.

English literature—S A Brooke and G Sampsun p. 114

द्विवेदीयुग के पूर्व यह परिस्थिति नहीं थी। भारतेन्दुयुग के खडीबोली के काव्य का ही अगला पग द्विवेदीयुग का काव्य था। व्रजभाषा काव्य के 'वर्ण्यविषयों' और 'विलासिता' के विरुद्ध द्विवेदीयुग ने अवश्य विद्रोह किया। इसके अलावा जान्सन-पोप युग के 'पार्टी-

पोप-जान्सन और गोल्डस्मिथ ग्रे, कूपर, बर्न्स आदि पूर्वस्वच्छन्दतावादी कवियो को एक साथ अपना कर चला था।

फिर भी छायावादी या स्वच्छन्दतावादी काव्य मे द्विवेदी जी की कठोर नैतिकतावादी, उपदेशवादी तथा बहिर्मुखी प्रवृत्तियो के विरुद्ध उग्र प्रतिक्रिया हुई और छायावादी कवि विवरणात्मक, आख्यानात्मक, काव्य को छोडकर प्रकृति प्रेम और समाज के सम्बन्ध मे अपनी प्रतिक्रियाओ को अत्यधिक आभ्यन्तरिक पद्धति पर व्यक्त करने लगे। सीधे बुद्धि या नैतिक भावना की अपील करने के स्थान पर धूप-छाँह-प्रधान सुन्दर चित्रो को बुनने लगे, जिसने हमारे सौन्दर्य बोध को सर्वथा परिवर्त्तित कर दिया।

योरोप के स्वच्छन्दतावादी कवियो मे मुख्य स्वर इस प्रकार थे—

सौन्दर्यवाद—पोप-जान्सन युग के बाद स्वच्छन्दतावादी कवियो मे "प्रकृति और नारी" के सौन्दर्य से कवि प्रेरणा लेने लगे। सूफियो की तरह कण-कण मे इन्हे 'सौन्दर्य' के दर्शन होते थे।[२] 'सौन्दर्य' को सिद्धान्त और जीवन तथा काव्य के उद्देश्य के रूप मे ये कवि स्वीकार करके चलते दिखाई पडते हैं। सामान्य से सामान्य वस्तु मे सौन्दर्य की झलक देखकर ये कवि शिशुओ के समान किलक उठते हैं। जीवन की कुरूपता, और कर्दम के विरोध मे ये कवि इस सौन्दर्य को प्रस्तुत करते हैं। नागरिक जीवन की कृत्रिमता और कष्ट के विरुद्ध ये कवि प्रकृत जीवन, प्रकृत भाषा और अनागरिक चित्रो की प्रकृति के सौन्दर्य को प्रस्तुत करते हैं। 'सौन्दर्य' शास्त्रीय काव्य मे कम नही है किन्तु अपने समय के गलितकुष्ठ सामाजिक क्रम से असतुष्ट प्राकृतिक सुषमा और प्राकृतिक जीवन को ये कवि जिस उत्सुकता और कौतूहल से देखते

काव्य' की भूमि भी यहाँ नहीं बनी थी—किन्तु जान्सन-पोप युग के प्यूरिटन कवियों और लेखकों के द्वारा राज्यदरबार के भोगवाद के विरुद्ध प्रवर्तित कठोर नैतिकतावाद द्विवेदीयुग मे अवश्य मिलता है। इस दृष्टि से Andrew Marvell के व्यंगों (Satires) के साथ द्विवेदी जी के 'उपदेशवादी' रचनाओं की आत्मा में एकता दिखाई देगी।

2. *I have loved the principle of Beauty in all things and if, I had time, I would have made myself remembered.*

—Keats

है वह कौतूहल पुरातीन काव्य मे नही मिलता । स्वच्छन्दतावादी सौन्दय बाह्य नियमो—सावयवता सामञ्जस्य आदि पर आधारित न होकर आतरिक अनुभूति पर आधारित है ।

सौन्दय एक सिद्धात एक आतरिक विश्वास के रूप मे द्विवेदीयुग मे स्वीकृत नही था । वहा सौदय-साधना अवान्तर रूप मे हुई है । छायावाद मे इसे 'सवस्व मानकर कवि चल पड अत बाह्य दृष्टि से साहित्य को देखने वाले विचारको ने घोषित किया कि छायावादी को न देश की चिन्ता है और न समाज की उसे केवल अपने अह और स्व की चिन्ता है । इस आक्षप को बल तब और मिलता गया जब छायावादी कवियो ने अपनी जनभीरुता' का परिचय दिया । छायावादी सभी कवि एकान्तसाधक रहे जबकि द्विवेदी युग का एक भी कवि एकान्तसाधक न था । अत छायावाद के सौन्दयवाद के भी दो पक्ष हैं एक उसे द्विवेदीयुग के उपदेशवाद से अलग कर काव्य मे स्वतत्र' स्थान देता है और उसके प्रभाव से काव्य बुद्धि और नैतिकभावना के अतिरिक्त हमारे सौन्दय-बोध को अपील करने लगता है यह उसका उज्ज्वल पक्ष है दूसरा पक्ष उसे जनसघष से दूर करता है । इस पक्ष की स्वय छायावादियो ने आलोचना की किन्तु आगे चल कर यह भुला दिया गया कि छायावाद सौन्दय के प्रथम पक्ष की दृष्टि से सवदा अनुकरणीय रहेगा । काव्य का एक प्रमुख कत्तव्य विभिन्न पदार्थों मे अवस्थित सौन्दय का सचय भी है । नई कविता की सौदय-सग्रही प्रवृत्ति स्पष्टत छायावादी प्रवृत्ति है और प्रशसनीय है । काव्य जिस प्रकार कम और हृदय के सौन्दय या भावना के सौन्दय का चित्रण करता है उसी प्रकार पदार्थों से सौन्दय का दोहन भी करता है ।

छायावाद मे हृदय का सौन्दय कवियो की सहज विस्मयभावना मानवमात्र के प्रति अनुराग समता का उदघोष स्वतन्त्रता के प्रति अमिट प्यास, नारी के प्रति सम्मान उसकी महिमा और सुषमा के गायन और देश तथा समाज के लिए अदभुत अपूव स्वग के निर्माण के लिए अटूट विश्वास के रूप म व्यक्त हुआ है अत योरोप के रोमानी कवियो की 'सौन्दयवादी प्रवृत्ति अपने सभी रूपो म छायावाद म मिलती है । निश्चितरूप से कवियो ने योरोप से नया दृष्टिकोण अपनाया है, परन्तु उसे आत्मसात करके भारतीय प्रकृति और भारतीय परिस्थितियो के सन्दभ मे प्रस्तुत किया है ।

भावातिरेक—योरोप के रोमानी काव्य की द्वितीय विशेषता भावातिरेक है (expense of enthusiasm) है। हरिऔध और गुप्त जी की कृतियों

म जो उद्गार मिलते हैं उन्होंने छायावादी भावातिरेक का मार्ग स्वच्छ किया था किन्तु द्विवेदीयुग और छायावादी भावातिरेक म अन्तर है—छायावादी भावातिरेक वयक्तिक है वयक्तिक का अथ यह नहीं है कि उसका साधारणीकरण नहीं होता किन्तु भारतीय काव्यशास्त्र मे कवि के वयक्तिक अग का सम्मान होने पर भी छायावाद वसा वयक्तिकतावाद नहीं मिलता। मैं के माध्यम से छायावादी कवि प्रकृति और समाज के प्रति निजी प्रतिक्रियाओ को मुक्त रूप से वाणी का विषय बनाता है। जयद्रथवध और प्रियप्रवास म कवि विभिन्न पात्रा के भावा के साथ तादात्म्य करके उनके उद्गारा को व्यक्त करता है किन्तु छायावादी काव्य म कवि हृदय को टटोलता है वह अपनी अनुभूति को समाज के सम्मुख रखता है। और चूंकि कवि की निजी भावनाआ म हम अपनी भावनाआ का भी प्रतिबिम्ब देखते हैं—अत उन व्यक्तिगत अनुभूतियों का साधारणीकरण अवश्य होता है विशेषकर प्रेम और प्रकृति के क्षेत्र मे छायावादी कवियो के उद्गार हमारे हृदय के निकट प्रतीत होते हैं। द्विवेदीयुग म निजी भावनाआ को व्यक्त करने म अभिव्यक्ति का भय रहता था। छायावाद म कवि कही निर्भय होकर और कही सकोच के साथ अपनी प्रेम की भावनाआ का निवेदन करता है कहीं प्रकृति के माध्यम से वह अपने सुख-दुख और आशा-आकाक्षाओ का वणन करता है और कहीं सीधे समाज पर प्रहार करता है। यह मानना होगा कि कवियो का विरोध और उत्ताप सदव समाज हृदय का प्रतिनिधित्व नहीं करता और छायावादी काव्य म एक अवश्य ऐसा अश है जो अतिशय व्यक्तिगत है किन्तु बहुत सा अश ऐसा भी है जहाँ कवियो का भावातिरेक हम विचित्र नहीं लगता। उसका साधारणीकरण हो जाता है। प्रश्न यह है कि क्या इस साधारणीकरण और प्राचीन काव्य के साधारणीकरण म अन्तर नहीं है? उत्तर यह है कि आँसू (पन्त) आँसू (प्रसाद) उच्छ्वास (पन्त) आदि कविताआ म इन कवियो के उद्गार पुराने काव्यो के उद्गारो से प्रकृत्या अधिक भिन्न नहीं है। भविष्य के सम्बन्ध म इन कवियो की आशा आकाक्षाएँ भी हम विचित्र नहीं लगतीं किन्तु कवि जिस प्रकार अपने को सवथा गुप्त रखकर निश्चित-पैटन पर कल्पित पात्रो की सामान्य या स्थायी भावो को वाणी देकर रस विधान की सृष्टि करता था उसम छायावादी कवियो के उद्गारो म यह अतर अवश्य है कि सदव उनके व्यक्तित्व का स्पश हम अनुभूत होता चलता है—अत छायावादी उद्गार न तो प्राचीनकाव्य से इतने भिन्न हैं कि उनका साधारणीकरण ही न हो सके और न वे उद्गार इतने सामान्य हैं कि उनम कवि के व्यक्तित्व का स्पर्श ही न हो।

दूसरा अन्तर छायावादी भावातिरेक मे यह है कि उसे जिस लक्षणात्मक शैली म और नए अप्रस्तु विधान द्वारा व्यक्त किया है उससे प्रारम्भ म पुराने पाठका को बडी उलझन होती थी परन्तु धीरे धीरे नई शैली स परिचित हो जाने पर नए काव्य म हार्दिकता विचित्र प्रतीत नही हुई।

छायावादी भावातिरेक इसलिए भी कुछ विचित्र लगा कि वह प्रकृति के माध्यम से भी व्यक्त हुआ है। प्राचीन काव्य म प्रकृति अप्रधान और मानवीय भावनाएँ प्रधान रही है अत प्रकृति या तो पृष्ठभूमि के रूप मे अथवा भावनाओ को उद्दीप्त करने के माध्यम के रूप मे प्रयुक्त हुई है। छायावाद मे कवि अपने उद्गारो को प्रकृति वर्णन करते समय अप्रत्यक्ष रूप से और कही प्रत्यक्ष रूप से व्यक्त करता था अत परम्परागत पाठक को उलझन होती थी। द्विवेदीयुग म इस पद्धति की प्रथम झलक प्रियप्रवास और रामनरेश त्रिपाठी के काव्यो म मिलती है किन्तु यत्र-तत्र ही।

अँगरेजी के रोमानी काव्य म वर्डसवर्थ ने काव्य की परिभाषा ही यही की कि काव्य प्रबल भावनाओ को व्यक्त करता है। उसकी परिभाषा के दूसरे अश—(Recollectend in tranquility) पर द्विवेदीयुग ने ध्यान नही दिया था। छायावाद म कही मैं के माध्यम स प्रबल उदगार भी हैं और शान्त मानसिक अवस्था मे प्रबल उदगारो का स्मरण करती हुए चित्तवृत्ति द्वारा चित्रण भी हैं। वर्डसवर्थ शेली कीट्स बायरन आदि ने अपने हृदय की भावनाओ का जिस प्रकार नई शैली म नि सकोच व्यक्त किया था उसी प्रकार प्रसाद निराला पन्त और महादेवी तथा परवर्ती छायावादी कवियो अचल नरेन्द्र और बच्चन ने भी अपनी भावनाओ के लिए काव्य म कोई कृपणता नही बरती। बच्चन नरेन्द्र आदि म अधिक वैयक्तिक अश उनके भावातिरेक की विशेषता है।

कृत्रिमता के विरुद्ध सादगी का विद्रोह (Instinct for elemental Simplicity)—पोप-जान्सन युग की भाषा म कृत्रिमता थी। उस युग का लेखक सामान्य प्रात काल को अरारा , सामान्य व्यक्ति को कान्यन्ट्स तथा चद्रमा को निशा का देदीप्यमान दीपक कह कर ही पुकार सकता था। रोमाटिक काव्य म—विशेषकर वर्डसवर्थ के काव्य म सादी भाषा मे जन साधारण के जीवन क सौन्दर्य का चित्रण किया गया। यद्यपि सादी भाषा का सिद्धान्त पूर्णत नही चल सका परन्तु सामान्य पदार्थो और सामान्य व्यक्तियो के जीवन के सौन्दर्य की ओर नए कवियो न बडी लालसा से देखा। स्रो

के प्रभाव से कवि नागरिक जीवन को सभ्यता की व्याधि मानने लगे थे और प्रकृति और प्राकृतिक जीवन के प्रति पुन प्यास उत्पन्न होगई थी। हमारे यहाँ द्विवेदीयुग मे यह कृत्रिमता नही थी क्योकि यहाँ देश को मुक्त करने का प्रयत्न सर्वोपरि था। चूँकि द्विवेदी युग मे वर्डसवर्थ की "व्यावहारिक भाषा" का सिद्धान्त भाषा मे सौन्दर्य नहीं ला पाया था अत छायावादियो ने प्रारम्भ से ही 'अलङ्कृत भाषा' का प्रयोग किया क्योकि अन्तत नए कवियो के सम्मुख अपने साहित्य की समस्याएँ भी प्रमुख थी। इस 'अलङ्कृत भाषा' और अलङ्कृत वर्णनो के कारण छायावाद सामान्य जनता मे प्रचलित नही हो सका किन्तु काव्य की दृष्टि से वह उच्चतर काव्य की सृष्टि मे सफल हुआ। सामान्य व्यक्ति की 'बुभुक्षा' और 'अभावो' का वर्णन छायावाद मे बहुत कम मिलता है यद्यपि सहानुभूति वहाँ अवश्य विद्यमान है अत 'प्रकृति' के क्षेत्र मे ही रूसो का प्रभाव छायावाद पर अधिक दिखाई पडता है। रूसो और रोमांटिक कवियो की प्रेरणा से छायावाद 'प्रकृति' के अचल मे शरण अवश्य लेने लगा—जीवन की कुरूपता और समाज की शृखलाओ से मुक्ति के लिए कवियो ने प्रकृति की ओर देखा। प्राकृतिक पदार्थो की ताजगी, सजीवता, स्वच्छन्दता और सुषुमा छायावादी कवि ने 'आत्मतोष' के रूप मे अपना ली, यहाँ तक कि कभी कभी तो नारी के 'बाल जाल' मे लोचन 'उलझाने' से भी उसने दृढतापूर्वक मना कर दिया।

मानवतावाद—'सामान्य' मे असामान्य सौन्दर्य की शोध के अतिरिक्त योरोप के रोमांटिक कवियो पर 'रूसो' के मानवतावाद तथा गाडविन के अराजकतावाद का भी प्रभाव पडा। १८वी शताब्दी के अन्तिम दशको तथा १९वी शताब्दी मे राजनैतिक तथा सामाजिक विचारको का यह विश्वास था कि मनुष्य स्वभावतः 'भद्र' होता है। सभ्यता उसे जघन्य और कृत्रिम बनाती है, विभिन्न बन्धनो की सृष्टि करती है, उसमे धन, पद और विषमता के प्रति लोभ उत्पन्न करती है। इन विचारको के अनुसार भविष्य मे समाज समानता, भ्रातृत्व और स्वतन्त्रता पर आधारित होगा। १८वी शताब्दी मे ही यह विचार मार्क्विस (Marquis De condorcet) के दर्शन मे मिलता है कि सभ्यता उच्चतर व्यवस्था की ओर गतिमान है और भविष्य मे मनुष्य-स्वभाव सर्वथा दोषरहित और समाज समानता पर आधारित होगा। यह मान लिया गया कि पूर्व युगों के जड नियमों द्वारा आगे के समाज को बाँधना 'अनैतिहासिक' और 'अबौद्धिक' कार्य है। भविष्य के ऐसे सुखद स्वप्न 'युटोपियन समाजवादियों' के ग्रन्थों मे भी मिलते हैं—वर्डसवर्थ,

कालरिज, साउदे तथा शेली की कविताओ मे मानवता के भविष्य के सुखद स्वप्न सुरक्षित हैं।[1]

रूसो के 'सोशल कट्राक्ट' और 'एमली' तथा यूटोपियन समाजवादियो की विचारधारा सारे योरोप मे फैल गई थी। 'रूसो' का विचार था कि मनुष्य जन्मत भद्र उत्पन्न होता है, सभ्यता ने उसमे बुराइयां उत्पन्न की हैं। "एमिली" मे कहा गया है कि "ईश्वर ने सभी वस्तुएँ अच्छी उत्पन्न की हैं। समय ने उन्हें कुरूप और वीभत्स बना दिया है," अत कवियो मे मानवता के स्वर्गीय भविष्य की कल्पाएँ स्वभावत ही वाणी का विषय बनने लगी। इस व्यापक मानवतावाद मे, जिसमे प्रत्येक व्यक्ति के सुख, समृद्धि, समान अवसर और स्वतन्त्रता का प्रचार किया गया था, देश जाति और धर्म की सीमाएँ नहीं थी अत 'विश्वमानवतावाद' के रूप मे यह सर्वत्र सम्मानित हुआ। प्रसाद, निराला, पन्त आदि ने भी 'भारतीय विश्वबन्धुत्व' से प्रेरणा लेकर उसे हिन्दी मे व्यक्त किया—'शेली' ने जिस तरह तात्कालिक सामाजिक रूढियो और कुत्साओ के विरुद्ध तूफानी कविताएँ लिखी हैं, उसी तरह पन्त ने परम्परा-वाद का खडन और निराला ने क्रान्ति का शखनाद किया है किन्तु भारत मे परिस्थिति दूसरी थी— विदेशी आधिपत्य के विरुद्ध स्वतन्त्रता का स्वर तथा जड परम्पराओ और रूढियो के विरोध के बावजूद छायावाद म अपने भारतीय अतीत के प्रति 'भक्ति' अवश्य मिलती है, बल्कि भारतीय अतीत से प्रेरणा लेकर ही छायावादियो ने अपने "विश्व बन्धुत्ववाद", सब क्षेत्रो मे 'स्वतन्त्रता' और "समानता" पर आधारित मानवीय सम्बन्धो की घोषणा की है और ऐसी कविताओ म छायावादी कवि 'पैगम्बरी मुद्रा' मे बोलता है—द्विवेदी युग की सकीर्णता का यहाँ स्पर्श भी नही है।

अत छायावादी मानवतावाद रोमानी प्रवृत्तियो मे एक प्रमुख प्रवृत्ति के रूप मे आया था यद्यपि उसका भारतीयकरण भी किया गया है।

व्यक्तिवाद—गोर्की ने व्यक्तिवाद के विषय मे लिखा है कि व्यक्तिवाद बाहरी दवाव से उत्पन्न होता है, वर्गवादी समाज मे 'दवाव' स्वाभावत रहता है। व्यक्तिवाद अत्याचार से अपनी रक्षा करने का एक असफल प्रयत्न होता है।[1]

1. Recent Political thought—F. W. Coker, Page 28.
1. Individualism results from pressure on man from without from class society, individualism is the futile attempt of the individual to protect himself from tyranny.
(Articles and Pamphlets—p 255)

यूरोप के रोमानी कवियों में यह व्यक्तिवाद स्पष्ट मिलता है। शेली, बायरन आदि वर्गवादी समाज के दबाव से मुक्ति चाहते हैं किन्तु १९वीं शताब्दी के ये कवि यह स्पष्ट नहीं समझ सके कि अन्ततः वर्गवादी समाज के स्थान पर वर्गहीन समाज की स्थापना का व्यावहारिक उपाय क्या है ? शोषित वर्गों के संगठन के स्थान पर ये कवि मानव की सदिच्छाओं को जाग्रत करते हैं या भविष्य के स्वप्नजाल बुनते हैं। इसके अतिरिक्त वे बाह्य दबाव से आत्मरक्षा के लिए अपने 'स्व' में निमग्न होने लगते हैं।

यह प्रवृत्ति छायावादी कवियों में भी दिखाई पड़ती है, 'प्रसाद' में 'स्व' में निमग्न होने की प्रवृत्ति प्रारम्भ से ही मिलती है। एक मनोराज्य में मग्न होने की प्रवृत्ति पन्त और महादेवी में भी है। निराला में यह प्रवृत्ति उनके 'रहस्यवाद' में दिखाई पड़ती है। पन्त तो 'स्वप्नद्रष्टा' हैं ही, अपनी निजी भावनाओं और निजी स्वप्नों को वाणी देने की प्रवृत्ति छायावाद में प्रारम्भ से ही दिखाई पड़ती है। व्यक्तिवादी कवि अपने अहम् के अन्तराल में मग्न रहता है। वह समष्टि के ऊपर अपना ध्यान केन्द्रित नहीं कर पाता। १९२० ई० के आसपास छायावाद का रूप निश्चित होने लगता है किन्तु यह समय राष्ट्र और समाज के लिए संघर्ष का समय था। इसके सिवा कोटि-कोटि जनता का दैन्य अशिक्षा असंगठन आदि युगद्रष्टाओं के लिए एक चुनौती के रूप में सम्मुख उपस्थित था किन्तु उस समय में छायावाद का 'मैंवाद' उसके व्यक्तिवाद को स्पष्ट करता है। समाज विज्ञान का छायावाद के प्रारम्भ में एक प्रकार से अस्तित्व ही नहीं था अतः छायावादी कवि यह नहीं समझ सके कि भारत की मुक्ति मजदूर-वर्ग तथा कृषकों के संगठन में है अतः छायावादी कविता का कुछ अंश ऐसा भी है जो व्यावहारिक समाधान के अभाव में अन्तर्मुख हो गया है—आत्मताप, आत्मग्लानि, आत्मगौरव, आत्मरोदन आदि तत्त्व जो छायावाद में मिलते हैं, ये व्यक्तिवाद के ही विभिन्न रूप हैं। छायावादियों का 'अहं' जो असीमित और चिरन्तन के द्वार छूता हुआ दिखाई पड़ता है, वह भी व्यक्तिवाद का ही एक रूप है। व्यक्तिवादी 'सामान्य' में असामान्य सौंदर्य की शोध भले ही करे न किन्तु वह सामान्य व्यक्ति से अपने को 'दूर' समझता है। वह 'दूरस्थित' दर्शक या 'द्रष्टा' की तरह बाह्य सत्य और वास्तविक घटनाओं को मानसिक घटनाओं के रूप में ही देखता है। वह कुरूपता, कुत्सा और दारिद्र्य से घृणा करता है किन्तु स्वयं 'शालीन' और 'सुखी जीवन' व्यतीत करता है। अपने को 'समष्टि' में मिला देने का नैतिक साहस व्यक्तिवादी में नहीं होता। वह कल्पना से यथार्थ जगत की कटुता और कमी को दूर करके 'स्वर्गिक

स्पर्शों" के सुख मे मग्न रहता है और इस प्रकार बाह्य अत्याचार यथावत् बना रहता है क्योंकि उसके नाश के लिए वास्तविक प्रयत्न मे वह योग नही देता। पन्तजी ने इसी व्यक्तिवाद से चिढकर कहा था कि छायावाद 'अलकृत सगीत' बन कर रह गया, उसके स्वप्न खाद्य, मधु और पानी नही बन सके थे।[1]

बीसवी शताब्दी के प्रथम तथा द्वितीय दशक मे, हमारे देश मे परम्परागत उत्पादन के साधनों मे परिवर्तन 'अनुभव' होने लगा था। मध्य-कालीन समाज मे 'वैयक्तिक स्वतन्त्रता' का सिद्धान्त पनप ही नही सकता था। औद्योगिक विकास ने व्यक्ति को 'स्वच्छन्दता' और 'आत्मगौरव' दिया यद्यपि वह वास्तविक न होकर भ्रमपूर्ण था। 'वैयक्तिक स्वच्छन्दता' के नारे से लाभ उस वर्ग को हुआ जो औद्योगिक विकास मे अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए तल्लीन था। फ्रान्स और इगलैंड मे 'स्वच्छन्दता, भ्रातृत्व और समानता' के नारे मध्य-कालीन सामती व्यवस्था को अपदस्थ करने मे सफल हुए थे और पूँजीपतिवर्ग की निरकुश स्वच्छन्दता की स्थापना मे सहायक हुए थे। 'निरकुशलाभ' ही इसका फल था किन्तु इससे 'श्रम' मध्यकालीन बन्धनों और सीमाओं से स्वतन्त्र हो गया। भारतवर्ष मे पूँजीवाद का विकास बहुत धीरे-धीरे हुआ किन्तु सन् २० तक उसकी बुनियाद काफी मजबूत हो चुकी थी अत. योरोप के पूँजीवाद के अभ्युदय के समय के नारो को यहाँ भी अपनाया गया और मानवमात्र की स्वतन्त्रता, सम्मान और समानता के सदेश ने 'व्यक्ति' को एक अभूतपूर्व 'गौरव' दिया। यह 'गौरव' कुछ व्यावहारिक रूप मे भी बदल रहा था। नवीन शिक्षा-सस्थानों—विश्वविद्यालयो, कालेजो और स्कूलो मे मध्यकालीन भेदभाव लुप्त होने लगा था—जाति, सैक्स और दूसरे आधारो पर आधारित ऊँच नीच की भावना की समाप्ति का श्रीगणेश हो चुका था। जाति और धर्म के आचार और बन्धनो के प्रति इसीलिए कठोर प्रतिक्रिया हुई और व्यक्ति के गौरव के गीत गाए जाने लगे। यद्यपि समाज का अधिकाश और निर्णायक वर्ग वास्तविक अधिकारों से वचित था तथापि छायावादी काव्य के व्यक्तिवाद ने उसमे 'आत्मगौरव' उत्पन्न करना प्रारम्भ कर दिया। द्विवेदीयुग मे ही यह प्रवृत्ति प्रारम्भ हो चुकी थी परन्तु 'व्यक्तिवाद' का स्पष्ट रूप छायावाद मे ही मिला। चूंकि पूँजीवाद सामान्तवाद से आगे की विकास-शृखला है अत यह 'व्यक्तिवाद' इस दृष्टि से एक "प्रगतिशील" कदम था। 'व्यक्तिवाद' व्यावहारिक रूप मे 'मध्यवर्ग' की रक्षा और विकास के लिए भी आवश्यक था जिसमे विभिन्न जातियो और वर्गों से लोग आ रहे थे।

वेदनावाद या दुखवाद—रोमान्टिक काव्य की एक धारा दुखवादी भी है। प्रसाद म वदना की विवृत्ति प्रारम्भ से ही मिलती है। कीट्स शेली आदि की रचनाओं म वदना का स्वर स्पष्ट सुनाई पडता है। जो कवि एक बार सौन्दय क साधक हैं व ही दूसरी बार यह कहत सुनाई पडत हैं कि मधुरतम गीत वही होत हैं जिनम अधिकतम दुख की व्यजना होती है। यह दुख कुछ तो नारी क प्रति करुणा क भाव क कारण था और कुछ मानवीय प्रयत्नों की असफलता देखकर भी उत्पन्न हुआ था। १६वी शताब्दी म प्राकृतिक विज्ञान तथा समाजविज्ञान की धाराओं म अद्भुत उन्नति हुई किन्तु इसके साथ-साथ एक प्रकार का निराशावाद भी दिखाई पडता है। बायरन के 'चाइल्ड हैरल्ड' म यह निराशावाद दिखाई पडता है। बुद्धि (Reason) की असफलता निराशावाद को पोषित करती है। शापेनहावर तथा हृटमन जैसे जर्मन दार्शनिक निराशावाद का प्रचार कर रहे थ। इसका थोडा बहुत प्रभाव काव्य पर भी पडा। शेली की कविताओं म कहीं-कहीं निगूढ वदना मिलती है यद्यपि रोमानी कवि प्राय अन्त म आशा क स्वर क साथ अपनी अपनी रचनाएँ समाप्त करत हैं परन्तु उनम दुख और निराशा क स्वर पर्याप्त हैं।

छायावादी कवियों म वदना प्रसाद महादेवी और पन्त म एक प्रेरणा या जीवन-दर्शन क रूप म दिखाई पडती है। प्रसाद जी बौद्धों क दुखवाद से प्रभावित थ यद्यपि कामायनी म वह शैवागमों क आनन्दवाद स उस दुखवाद पर विजय प्राप्त कर लेते हैं। महादेवी म दुख और निराशा स इतना प्रेम है कि उसे साधना ही मान लिया गया है। पन्त जी ने प्रथम गान को आह स निकला हुआ बताया है यद्यपि पन्त जी म वदना का रूप अधिक साम्प्रदायिक नहीं है। निराला म भी वदना स्वाभाविक करुणा क रूप म अधिक व्यक्त हुई है, साम्प्रदायिक रूप निराला म बहुत कम है।

दुख का अनुभव दुखवाद नहीं है किन्तु दुख या निराशा को प्रेरणा या जीवन दर्शन क रूप म अपना लेना दुखवाद या निराशावाद अवश्य है। अत्यधिक स्वप्नदर्शी व्यक्ति एक बार तो आशावादी होता है तो दूसरी बार कल्पनाराज्य क सौन्दर्य स नीचे उतरने पर वास्तविक परिस्थिति म कोई परिवर्तन न देखकर वह अवश्य दुखी और निराश होता है यह स्वाभाविक है। निराशावाद का नाश उचित प्रयत्न द्वारा ही सम्भव है प्रयत्न क बिना स्वप्नदर्शिता निराशा की ओर अवश्य उन्मुख कर देती है अत छायावादी काव्य और रोमान्टिक काव्य दोनों म यह प्रवृत्ति सामान्य है।

दुख के प्रति सहज करुणा स्वाभाविक है किन्तु वाल्मीकि मे राम लक्ष्मण के उचित प्रयत्न का वर्णन होने के कारण निराशा के लिए वहा स्थान ही नही रहा। परवर्ती सस्कृत काव्य और नाटको मे प्रयत्न के कारण निराशा नही आ पाई यद्यपि पुराने कवि हमसे कम सवेदनशील नही थे। मध्यकाल मे निराशा के स्वर है फिर भी भगवान की कृपा और कष्ट हरण मे अटूट विश्वास है। छायावाद म वैसी आस्तिकता का अभाव है अत स्वप्नो मे मग्न रहने वाले कवियो म निराशा के स्वर भी जब तब सुनाई पडते है।

अलौकिक से प्रम (Love of Supernatural)—रोमाटिक काव्य म अलौकिक से प्रम की भी एक प्रवृत्ति है। वस्तुत व्यक्तिवाद का ही यह एक रूप है। यह सवथा विचित्र लगता है कि स्वातन्त्र्य सग्राम के समय छायावाद रहस्यवाद अज्ञय से प्रमालाप करता रहा। द्विवेदी युग के बाद के काव्य म केवल रहस्यवाद ही नही है किन्तु रहस्यवाद एक प्रमुख प्रवृत्ति अवश्य है। अँगरेजी साहित्य मे ब्लेक और वडसवथ की रचनाओ मे यह रहस्यवाद दिखाई पडता है। विशेषकर ब्लेक के काव्य मे रहस्यवाद मिलता है। रहस्य से प्रम एक ओर तो वैज्ञानिक दृष्टि के अभाव को घोषित करता है (पूँजीवादी देशो के वैज्ञानिक भी रहस्यवाद की ओर उन्मुख होने के लिए प्रेरित करते हैं) और दूसरी ओर रहस्य एक माध्यम बनता है। यह रहस्य साम्प्रदायिकता के स्थान पर विश्व प्रम के प्रचार का माध्यम बना है रवीन्द्र और हिन्दी के छायावादी कवियो म यह प्रवृत्ति स्पष्ट है। इसके सिवा रहस्य अपनी निजी आशा-आकाक्षाओ को भी व्यक्त करने का माध्यम बना है द्विवेदीयुग म जो प्रमभाव स्पष्टत व्यक्त नही किया जा सका था उसे रहस्य के माध्यम से अधिक कलापूण ढग से व्यक्त किया जा सका।

तीसरे यह मानना होगा कि कला मे एक रहस्य—एक गोपन के स्पश की आवश्यकता का कवि अनुभव कर रहे थे अत रहस्य कला को अधिक आकषक बनाने के लिए भी सहायक प्रतीत हुआ था—प्रसाद की काव्य कला म यह रहस्य एक महत्वपूण काय करता हुआ दिखाइ पडता है।

चौथे रहस्यवाद अपूण जगत् को कम से कम कल्पना म पूण करने के प्रयत्न के रूप म तथा अतीत के प्रति आकषण के कारण भी आया। भारतवष म विदेशी सस्कृति के विरुद्ध यह रहस्यवाद राष्ट्रीय सस्कृति की माग को भी पूरा करता था।

सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण तथ्य यह था कि रहस्यवाद प्रेम सौंदर्य और स्वप्न —तीनों की माँग एक साथ पूर्ण करता था। रवीन्द्रनाथ के सुन्दर और रहस्यमय सौन्दर्य चित्रण ने सबका मन मोह लिया था अतः अनगढ़ और अभिधावादी द्विवेदी युग के काव्य की तुलना में यह रहस्यवादी काव्य मनोहर प्रतीत हुआ। रवीन्द्र के अतिरिक्त योरोपीय कवियों की रहस्यवादी रचनाओं के सौन्दर्य से छायावादी कवि परिचित थे अतः उनसे भी प्रेरणा मिली। अतः रहस्यवाद आँधी की तरह हिन्दी में नहीं आया उसके पीछे अनेक शक्तियाँ कार्य कर रही थीं। अलौकिक से प्रेम तब वेग से उमड़ता है जब कवि को लोक से प्रेम तो होता है किन्तु लोक की मुक्ति के लिए कोई स्पष्ट योजना सम्मुख नहीं होती। इसके अतिरिक्त जिस योजना पर समाज चल रहा होता है यदि उसमें असफलता मिलती है तो रहस्यप्रियता और बढ़ती है। भारतीय राजनैतिक आन्दोलनों की बार-बार असफलता भी रहस्यवाद को अप्रत्यक्ष रूप से प्रेरित कर रही थी। इसके अतिरिक्त सर्वोच्च राजनैतिक नेता—महात्मा गाँधी जी स्वयं प्रकाश ज्ञान (Intuition) से अधिक प्रेरणा लेते थे।

गीत्यात्मकता—रोमांटिक कवियों की उपयुक्त विशेषताओं और प्रवृत्तियों के अतिरिक्त साहित्यिक विधा और अभिव्यक्ति भी भिन्न थी। पोप-तानाशाह युग में काव्य और कविताएँ अधिक लिखी गई किन्तु नवस्वच्छन्दतावादी काव्य में गीतियों (Lyrics) का अधिक प्रयोग हुआ। व्यक्तिगत रुचियाँ आशा-आकांक्षाएँ भावोद्गार आदि को गेय गीतों में व्यक्त किया जाने लगा। इस प्रकार एक नवीन विधा का प्रयोग व्यापक रूप में होने लगा। गीति का अधिकाधिक प्रयोग आख्यान काव्य के अनुकूल नहीं पड़ता। किसी एक मानसिक स्थिति के लिए गीति अधिक उपयुक्त होती है। पुराने गीतों में सामूहिक भावनाओं की प्रधानता रहती थी—सूर मीरा आदि के गीतों की यही विशेषता है। किन्तु छायावादी गीतियों में कवियों की निजी मानसिक स्थितियों का आनन्द है अतः गीत से गीति भिन्न प्रतीत होती है इसका अर्थ यह नहीं है कि सूर तुलसी मीरा आदि में किंचित् भी वैयक्तिकता नहीं थी अथवा छायावादी गीतियों में सामूहिक भावना कहीं भी नहीं मिलती किन्तु वैयक्तिकता छायावादी गीतियों का भेदक लक्षण अवश्य है।

गीतियों के लिए व्यावहारिक पदावली अपर्याप्त और असफल हो जाती है अतः अंगरेजी और बंगला से प्रेरित होकर कवियों ने कोमलकान्त पदावली का प्रयोग किया। हरिऔध जी इस दिशा में पहले ही प्रयत्न कर चुके थे।

किन्तु छायावादियो को इस क्षेत्र म अधिक सफलता मिली। पन्त और महादेवी न बडी ही सुघर और सचिक्कण भाषा का प्रयोग किया है। नए कोमल भावो के लिए सवाक और सचित्र वाक्यो के आविष्कार म पन्त जी सवश्रेष्ठ कवि हैं उन्ह शब्दशिल्पी' ठीक ही कहा गया है। निराला जी की भाषा म बहुविध प्रयोग मिलत हैं उन्होन कामन के साथ-साथ काव्य की पुरुषत्व' शक्ति पर भी अधिक ध्यान दिया तभी निराला के अधभक्त पन्त जी को जनानी भाषा' का प्रयोक्ता कहत हैं। किन्तु वीणा और पल्लव की भाषा जनानी भाषा नही है वह सौन्दय चित्रण म—विशेषकर कोमल दृश्या के चित्रण म अधिक सक्षम भाषा है। छायावाद अधिकतर कोमल और मधुर भावो तथा कोमल और मधुर दृश्या को ही लेखनी का विषय बनाकर चला अत इस काय के लिए जिस कोमल भाषा की आवश्यकता थी उसका सबसे अधिक श्रय पत जी को है। प्रसाद और निराला म भाषा के लक्षणात्मक रूप की जगह ध्वन्यात्मक रूप अधिक विकसित हुआ। फिर प्रसाद और निराला ने कोमल और परुष सभी भावनाओ और दृश्या को चित्रित किया अत उनम कामलता उतनी नही आ पाई। हमारे यहा कविता को कामिनी ही कहा गया है और काव्य के कथन को कान्तासम्मत कहा गया है अत पन्त और महादेवी की कामल और चिकनी भाषा को कामिनी की भाषा' कहना उनकी भाषा की उपयुक्तता ही सिद्ध करता है। मैंने निराला क अधभक्ता स यह भी सुना है कि काश ! पन्त जी वीणा और पल्लव का माग न छोडत !

प० रामचद्र शुक्ल ने यह बहुत ठीक कहा है कि छायावाद केवल 'मुक्तक काव्या के ही अनुकूल पडा उसम जीवन की विविध दशाओ की व्यजना के लिए कम अवकाश था। छायावादी गीतिया म प्रबधकाव्य नही लिखा जा सकता क्याकि उत्साह अमष आदि उग्र भावनाआ का भार कोमल गीतिया का सगीत बरदाश्त नहा कर सकता। कामायनी म प्रलय के भयकर रूपा के चित्रण के लिए प्रसाद जी का वणनात्मक छन्द अपनाने पड हैं। छायावादी काव्य क क्षत्र की यह कमी है परन्तु अपन क्षत्र म उसे पूरी सफलता मिली है। वीरगाथाकाल की वीरता भक्तिकाल रीतिकाल की करुणा और शृगार तथा भारतेन्दु द्विवेदी युग क जागरण प्रधान बहिमु खी काव्य क स्थान पर आतरिकता और सगीतयुक्त नवीनशैली म अभिव्यक्त छायावादी काव्य की आवश्यकता थी न कवल खडीबोली क लिए अपितु हमारे दश की चेतना के विकास के लिए भी छायावादी मूल्या' की ऐतिहासिक आवश्यकता थी अत नए मूल्या के विकास के लिए गीतिया का अपना यागदान प्रशसनाय है। हाँ

जो केवल प्रबन्ध काव्य को ही काव्य मानते है उन्हे गीतिया म अवश्य काव्य का पतन दृष्टिगोचर होगा अथवा जो सगीत क शत्रु है छदा क रकीब हैं उन्हे भी छायावादी गीतिया पसन्द नही हैं अथवा जो कोरे बुद्धिवादी हैं और काव्य म भाव या कल्पना की जगह कवल विचारा और विचित्र स्थितिया को ही स्थापित करना चाहते हैं वे भी छायावादी गीतिया को पसन्द नही कर पाते। इसके अतिरिक्त एक नया कविवग छायावादी गीतिया को इसीलिए पसन्द नही करता क्याकि उनम कुण्ठा नही है उलझन नही है शली की अस्पष्टता यत्र-तत्र भल ही हो परन्तु छायावादी कवि का मानस सुदर का आराधक है। अशोभन अशालीन उपमाना से उसे चिढ है परन्तु इस सुन्दर शोभन और शालीन के आतिशय्य को देखकर नए कवि केवल नवीनता के लिए असुन्दर का ही सृजन करने के कारण छायावादी गीतिया का पसन्द नही करते। जिस प्रकार ग्रीक कलाकार असौन्दय का विरोधी था उसी प्रकार छायावाद कुरूपता और कुत्सा का विरोधी है। छायावादी गीतिया म कुरूप समझी जाने वाली वस्तुआ म भी सौन्दय खोजकर उनक चित्रण का प्रयत्न मिलता है। यथाथ क नाम पर अशोभन को जीवन का आदश नही माना जा सकता।

जब तक मनुष्य म सुन्दर वस्तुआ को देखकर मुग्ध होन की प्रवृत्ति है (और यह प्रवृत्ति पशुआ पक्षियो म ही नही कीट पतगा म भी है डार्विन न इस तथ्य को सिद्ध कर दिया है) तब तक छायावाद का सौन्दय चित्रण मुग्धकारी बना रहेगा। जब तक मनुष्य म सगीत क प्रति प्रम है (पशुआ पक्षिया म ही नही पौधा म भी यह प्रवृत्ति पाई जाती है यह वनस्पति शास्त्रिया न सिद्ध कर दिया है) तब तक सगीतात्मक गीतिया का महत्त्व अखण्ड है। आप नए प्रकार का सौन्दय और सगीत चित्रित कीजिए किन्तु उसकी श्रष्ठता के लिए स्वयसिद्ध छायावादी गीतिया की श्रष्ठता को असिद्ध करन का तात्पय क्या है?

कल्पना और नूतन शैली—रोमान्टिक काव्य का एक अन्य लक्षण उसकी कल्पनात्मक, मानवीकरणात्मक और विशेषण विपर्ययात्मक उपचारपरक नूतन शैली भी है। ऐसे शब्दा का प्रयोग जिनसे मन म वण्य वस्तु क चित्र उभरने लगें छायावाद और योरोप के रोमान्टिक काव्य की विशेषता है। भावनाओ और प्राकृतिक पदार्थों का मानवीकरण यत्र-तत्र प्राचीन काव्य म भी मिलता है। मुकुन्धर पाडेय और गुप्त जी की कतिपय रचनाओ म भी नए

प्रयोग मिलते है किन्तु प्रसाद पत निराला और महादेवी के काव्य मे ही यह नवीन शैली अपनी चरम सीमा पर पहुँचती है।

यह नवीन शैली रोमाटिक कवियो के इस सिद्धान्त का फल है कि काव्य मुख्यत कल्पना की अभिव्यक्ति है। छायावादी कवि भी कल्पना को अधिक महत्त्व देते ह अत किसी भाव को चित्रित करने का प्रयत्न उनम अधिक है, केवल भाव को व्यजित करने तक ये कवि सतुष्ट नही हुए। चित्रण के लिए रूप विधान की आवश्यकता होती है और प्रकृति से भावना के अनुरूप पदार्थों का चयन मुख्य कवि-कम हो जाता है। यही कारण है कि छायावादी कवि-कल्पना प्रकृति के अचल से चारु चित्रो का चयन करने की ओर अधिक उत्सुक रही है। प्रकृति को आलम्बन रूप मे चित्रित करने के लिए उन्होने अय पदार्थों की सहायता ली है यथा लहरो के लिए 'चाँदी के सपों' की। कविप्रौढोक्ति अथवा विभिन्न पदार्थों से नए चित्र बनाने पर छायावादियो का बल अधिक रहा है। केवल उपमानो के द्वारा वण्य विषय का वणन करने म उन्हे अधिक दिलचस्पी रही है अत कल्पनाविलास ने उनकी शैली को अलकृत बनाया है। विशेषणविपयय और मानवीयकरण से अमूत भावनाओ के मूर्ति करण और मूत पदार्थों को अमूत्त और सजीव मानसिक स्थितियो म परिवर्तित करने म उनकी प्रवीणता प्रमाणित होती है। जड प्रकृति का आत्मा का अश मानकर जड चेतन के मध्य रागात्मक सम्बध दृढ करने म छायावादी कवि अत्यन्त कलाकार है।

प्राय लोग समझते हैं कि छायावादी काव्य इतना अद्भुत और विचित्र है कि उसके लिए हम अपनी काव्य विषयक धारणा और मूल्याकन-पद्धति म एकदम हेरफेर करना होगा। हम आगे देखेगे कि यह धारणा सही नही है। छायावाद की शैली और अप्रस्तुतविधान म प्राचीन को छोडा नही गया है। केवल मानवीकरण विशेषणविपयय ही छायावाद म नही है। अनेक सादृश्य मूलक अलकारो म और अय कथन-पद्धतियो का प्रयोग भी छायावादियो ने किया है अत यह काव्य द्विवेदीयुग म भले ही सवथा अप्रत्याशित विचित्र और परम्पराविरोधी लगता हो अब वैसा प्रतीत नही होता क्योकि किसी ने छायावादी काव्य म परम्परागत पद्धतियो के प्रयोग का अध्ययन नहा किया था। साहित्य म वास्तविक स्थायी सौन्दय और रस की सृष्टि परम्परा के नाश के द्वारा नहीं उसके उचित समीकरण' द्वारा होती है।

इस प्रकार योरोप के रोमाटिक आदोलन से छायावादी-काव्य अवश्य सादृश्य रखता है। हिन्दी छायावाद की मुख्य प्रवृत्तियाँ अँग्रेजी रोमाटिक

साहित्य की प्रवृत्तियो से इतनी अधिक अनुरूप हैं कि वे उनकी छायामात्र प्रतीत होती है।" पन्त जी ने स्पष्ट कहा है कि "पल्लवकाल मे मैं उन्नीसवी शती के अगरेजी कवियो-मुख्यत शेली, वर्डसवर्थ, कीट्स और टेनीसन से विशेष रूप से प्रभावित रहा हूँ क्योंकि इन कवियो ने मुझे मशीन युग का सौन्दर्य-बोध और मध्यवर्गीय संस्कृति का "जीवन स्वप्न" दिया है।"

यह बडा विचित्र लग सकता है कि दोनो महायुद्धो के बीच की हिन्दी कविता ने १९ वीं शताब्दी के रोमाटिक काव्य से प्रेरणा ली। समसामयिक अँगरेजी काव्य से प्रेरणा क्यो नही ली ? इधर टी० एस० इलियट, एजरा पौंड, बोदलेयर आदि से बहुत प्रेरणा ली जा रही है किन्तु इलियट तथा दूसरे कवियो से प्रेरणा छायावादियो ने क्यो नही ली ?

इस प्रश्न का एक जवाब यह है कि रोमाटिक काव्य योरोप मे सामतवादी मान्यताओ के विरुद्ध पूँजीवादी व्यवस्था का विजयघोष है। चूँकि हमारे यहाँ भी पूँजीवाद की प्रक्रिया प्रारम्भ हो चुकी थी और एक सीमा तक उसका विकास भी हो चुका था अत एव ऐतिहासिक क्रम के अनुसार ही पहले कवि रोमानी काव्य से प्रभावित हुए और बाद मे पूर्ण सत्यता और स्वच्छन्दता के स्वप्नो का पतन देखकर निराशावादियो और प्रतीकवादियो की ओर आकर्षित हुए। इसके अतिरिक्त रीतिकाल की मान्यताओ के विरोध मे रोमानी स्वच्छन्दतावाद ही अधिक उपयोगी हो सकता था। दूसरे द्विवेदी युग मे सौन्दर्य और शैली के अभाव को भी दूर करने के लिए छायावादी कवि स्वच्छन्दतावाद की ओर ही अधिक आकर्षित हुए। तीसरे "आजादी और समता" की भावनाएँ मुक्त आवेग के साथ रोमानी काव्य मे ही मिलती हैं और इन भावनाओ की हमे आवश्यकता थी। अवान्तर कारणो मे रवीन्द्रनाथ की कविताओ का योरोप मे आदर भी एक कारण था। कवि देख रहे थे कि इस प्रकार के काव्य को बाहर भी महत्त्व मिलता है। चूँकि इस रहस्यवाद के लिए हमारा 'दर्शन' और मध्यकालीन काव्य प्रबल प्रेरणा स्रोत थे, अत कवि 'रहस्यवाद' की ओर आकर्षित हुए, यह स्वाभाविक था। वह कोई "आँधी और तूफान" नही था अपने 'कवि' को "विश्वकवि" के रूप मे प्रतिष्ठित और स्वीकृत देखकर उस काव्यधारा के प्रति प्रवृत्ति "राष्ट्रीय प्रवृत्ति" के रूप मे मानी जानी चाहिए किन्तु रवीन्द्र के काव्य से छायावाद का उत्साह द्विगुणित ही हुआ था, उसके प्रति उन्मुखता हमे प्रसाद के काव्य मे 'गीताजलि' के प्रकाशन से बहुत पूर्व ही मिलने लगती है।

अब यहाँ यह देखना चाहिए कि यह धारणा कहाँ तक सही है, कि

छायावाद पूँजीवाद का प्रतिनिधित्व करता है मशीनयुग का सौंदर्य बोध तो उसमें है परन्तु मशीन युग का रूप हमारे यहाँ कैसा था ? क्या छायावाद के लिए व्यवस्था की दृष्टि से पृष्ठभूमि का निर्माण हो चुका था ?

औद्योगिक विकास और छायावाद—१ वीं शताब्दी में यातायात के साधनों के विकास से सारा विश्व एक बाजार बन गया और जिस तरह पुराने बाजारों और उत्पादन के साधनों में परिवर्तन हो गया उसी तरह साहित्य में वर्ण्यविषयों और काव्यविधाओं में भी तेजी से परिवर्तन हुआ। १९ वीं शताब्दी ही एक ऐसी शताब्दी है जब एक देश के निर्णायक परिवर्तन और भावनाओं का प्रभाव अन्य सभी देशों पर पड़ता दिखाई पड़ता है। १९ वीं शताब्दी के साहित्य में पुरानी मान्यताओं के विरुद्ध जो आन्दोलन उठ खड़े होते हैं उसका कारण था—उत्पादन के साधनों में परिवर्तन।

मध्य युग की मान्यताएँ आधुनिक युग में तभी चल सकती थी जब मध्य युग के उत्पादन के साधनों में कोई परिवर्तन न होता। १९ वीं शताब्दी के प्रारम्भिक भाग में यातायात के साधनों में परिवर्तन प्रारम्भ हुआ। उसके पूर्व सामन्ती दरबार और अदालतें जिन शहरों में रहती थी उनमें शिल्प की उन्नति हो जाती थी अथवा व्यापारिक मार्गों पर पड़ने वाले नगर और उपनगर उन्नति शील होते थे। इनके अलावा देश के विभिन्न भागों में स्वतन्त्र ग्राम की 'इकाई आत्म निर्भर रूप में चला करती थी। ग्रामीण शिल्पकार ग्राम के सेवक थे, जो कम लगान पर गाँव की ओर से खेती का एक टुकड़ा अथवा प्रत्येक किसान की फसल का एक निश्चित भाग पाते थे। शिल्प का यह कार्य परम्परागत था, अतः उसमें बाहर की प्रतियोगिता का भय न होने के कारण उन्नति न हो पाई थी। नगरों के शिल्पी, कीमती और कलापूर्ण वस्त्र बर्तन आभूषण आदि बनाते थे जो राजा महाराजाओं नवाबों और सामन्तों के द्वारा ही रक्षित और पोषित हो पाते थे। ग्राम अपना भोजन, अपने औजार, घरेलू वस्तुएँ (औषधि, बर्तन आदि) आदि सभी बातों में आत्म निर्भर थे। नमक और दूसरी चीजों के लिए ग्रामीण हाट जाया करते थे।'

इस व्यवस्था में बाह्य आक्रमण झेलने की शक्ति थी, इसमें सन्देह नहीं किन्तु आत्मनिर्भर और बाह्य प्रतियोगिता से रहित ग्रामीण शिल्प की उन्नति असम्भव थी।[1] (बाह्य आक्रमणों के बीच भी यह देश अपनी आत्म निर्भर

---

1 The artisan who did all the miscellaneous duties connected with his occupation in the village, did no specialize, and

ग्रामीण आर्थिक व्यवस्था के कारण जीवित रहा भारतीय संस्कृति के कारण नहीं इस तथ्य की ओर ध्यान देने की आवश्यकता है।) ग्रामसमाज ही १६ वीं शता ी के पूर्व महत्त्वपूर्ण था शहर नहीं। ग्रामसमाज बाह्य जगत् से ही विच्छिन्न नहीं थे आपस में भी उनका सम्बन्ध अधिक नहीं था।

यद्यपि कई शताब्दियां पूर्व से विदेशी यहाँ आगए थे परन्तु १६ वीं शताब्दी से पूर्व भारतवर्ष अधिक प्रभावित नहीं हुआ था। विदेशी प्रतियोगिता से केवल ढाका का मुस्लिम वस्त्र निर्माण ही प्रभावित हुआ था। बम्बई के जहाजी व्यापार पर भी बुरा असर पड़ा था।

कृषि की दृष्टि से बंगाल में जूट और देश के कतिपय भागों में कपास की खेती अवश्य बनी—इससे आत्मनिर्भर सामन्तवादी कृषि में परिवर्तन हुआ कपास का उत्पादन निर्यात के लिए भी किया जाने लगा।

१६ वीं शताब्दी के मध्य भाग में देश सीधा इङ्गलैण्ड की रानी के हाथ में आया और साथ ही यातायात के क्षेत्र में कार्य द्रुतगति से चला। गृहयुद्ध के कारण अमेरिका से जब कपास की आमद इङ्गलैंड के कारखानों के लिए कम हो गई तो भारत से कपास का विराट निर्यात होने लगा। श्री गाडगिल ने कपास के बढ़ते हुए मूल्य और कपास के निर्यात की मात्रा का नक्शा दिया है। उनके अनुसार १८५६ में कपास की लगभग पांच लाख गांठ (Bales) १८६० ई० में साढ़े पाँच लाख १८६१ ई० से लगभग पौने दस लाख १८६२ ई० में १० लाख १८६३ में सवा बारह लाख और १८६४ में लगभग चौदह लाख गांठों का निर्यात हुआ[1]। १८५६ ई० से कपास का मूल्य १८६५ ई० सन १८६६ में तिगुने से अधिक हो गया था। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि कृषि की आत्मनिर्भरता में प्रथम बार बहुत बड़ा परिवर्तन दिखाई पड़ा। कपास का निर्यात करके देश बदले में जो कपड़ा लेता था वह विकसित यातायात के साधनों द्वारा देश के आंतरिक भागों में भी पहुंचने लगा फलतः देश के भीतर के शिल्पियों मुख्यतः बुनकरों को सीधे बाहर की प्रतियोगिता में आना पड़ा। देश तबाह होने लगा किन्तु मुख्य बात यहां यह है कि १६वीं शताब्दी

---

the division of labour was extremely limited The Proficiency therefore of the artisan in his craft could not be expected to be great—

The Industrial evolution of India—Page (11) D R Godgil

मे आत्मनिर्भर ग्रामीण व्यवस्था मे प्रथम बार परिवर्तन होने लगे। मध्यदेश म १८६१ ६२ म ३७१६२३ एकड म कपास की खेती होती थी वह बढ़कर १८६८ ६८ म ७१०८७५ एकड तक ना पहुची। गार्गिल ने लिखा है कि कपास की बढ़ी हुई कीमत और क्षेत्र की वृद्धि महत्वपूर्ण नही है कृषकों की इस समय के लिए यह परिवर्तन अधिक महत्त्वपूर्ण है कि स्थानीय आवश्यकताओ के अतिरिक्त बाह्य दबावो का महत्त्व अधिक है जिनका प्रभाव फसल के स्वरूप और मात्रा पर पडता है।[1]

१६वी शताब्दी के मध्यभाग म ही डलहौजी ने पब्लिक वर्क्स डिपार्टमेंट की स्थापना की। क्रान्ति के बाद रेलवे लाइनो और सडको का और भी वेग से निर्माण हुआ। १८६६ ई० म ५०१५ मील लम्बी रलवें लाइना पर गाडिया दौडने लगा। इससे कपास के निर्यात म साम्राज्यवादियो को सुविधा हुई परन्तु साथ ही रेल सडका आदि के कारण श्रमिकवग की सृष्टि हुई। मध्य युग म नहरा तालाबा आदि के निर्माण म सब जनता का सहयोग लिया जाता था और दुर्गो महला मन्दिरा मस्जिदा आदि के निर्माण म फोर्स्ड लेबर का प्रयोग होता था।[2] डलहौजी के समय अकुशल श्रमिक वग अस्तित्व म आया।

गरीब किसान खेतिहर मजदूर इस नए श्रमिक वग की सृष्टि मे सहायक हुए। तबाह बुनकरा की एक अच्छी सख्या भी इन श्रमिका म शामिल हुई (वही पृष्ठ १६)

इसके अतिरिक्त यातायात के साधनो की वृद्धि से प्रथम बार अन्न की कीमत स्थानीय न होकर सार्वदेशिक रूप लेने लगी। अत कृषि मे स्थानीय आत्मनिर्भरता कम होने लगी। अकालो के कारण कृषक तबाह हुआ किन्तु एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त म आवागमन भी बढा।

साम्राज्यवादियो के वस्त्र व्यापार की प्रतियोगिता के कारण शिल्प का पतन होने लगा। इनम वस्त्र उत्पादन को सबसे अधिक हानि हुई। ढाका

---

1 But the real importance, in the economic sphere to India lay not so much in raising the price of cotton and thus bringing about a temporary period of prosperity but rather in bringing home to the cultivator the fact that causes other than local needs were begining to govern the nature and extent of the crops, he showed

2 वही

का तो विनाश ही हो गया। लखनऊ नागपुर उमरेर आदि नगरो का वस्त्र व्यवसाय भी चौपट हो गया। रेशमी कपडा के स्थान पर अब मनचेस्टर और लिवरपूल के सस्ते कपड लोग अधिक पसन्द करने लगे। कीमती रेशमी माल को सामन्त वग प्रोत्साहित करता था उसके अभाव मे रेशमी वस्त्र व्यवसाय बरबाद हो गया। काश्मीर अमृतसर और लुधियाना का ऊनी वस्त्र-उत्पादन १८६५ तक केवल स्मृति के रूप मे ही रह गया[1]

इन उद्योगो के नाश के कारणो म गाडगिल के अनुसार भारतीय दरबारो का लोप विदेशी राज्य तथा विकसित विदेशी प्रतियोगिता—ये तीन कारण मुख्य ह। दरबार केवल कीमती और उच्च कोटि की कला से पूण वस्तुओ के उत्पादन की माग ही नही करते थे अपितु योग्य और प्रसिद्ध शिल्पियो को मासिक वेतन देकर उन्ह निश्चिन्तता देकर अच्छ से अच्छा माल तैयार कराया करते थे। मुगल सामन्त और बादशाह घराने के लोग इस प्रकार वस्त्र व्यवसाय म प्रत्यक्ष भाग लते थे।[1]

गाडगिल के अनुसार केवल दरबारो के लोप के कारण ही देशी वस्त्र व्यवसाय नष्ट नही हुआ क्योकि जहाँ दरबारो की सत्ता कायम रही वहा भी वस्त्र-व्यवसाय नष्ट हुआ। श्री गाडगिल के अनुसार पुरान सामन्तो का स्थान योरोपियन अफसरो कायकर्त्ताओ तथा नवीन हिन्दुस्तानी शिक्षित वग ने लिया। योरोपियन अफसर नई रुचि की पूर्ति के लिए परम्परागत कला मे परिवत्तन चाहते थे अत यहा के कारीगरो ने पाश्चात्य पटन अपनाना शुरू किया फलत प्राचीन उच्चकोटि क शिल्प का पतन हुआ—(Indiscrim inate European patronage was lowering the Standard all round) इसके सिवा विदेशी घुमक्कड तथा योरोपीय अफसर आदि सस्ता माल चाहते थ। नवाबो और राजाओ की तरह वह कला प्रमी नही थ इसलिए भी कला का पतन हुआ।

इसके अलावा नवशिक्षित वग जिसन पुराने सामन्तो अफसरो कमचारियो का स्थान ग्रहण किया था हर बात म अगरेजो की नकल करता था। यदि यह वग देशभक्त होता तो वह प्राचीन शिल्पकला को प्रोत्साहित करता किन्तु नवशिक्षित कमचारी और नए पेशो म लग्न वग अँगरेजो का हर बात म हिमा

---

1 State Industries in Mughal Empire—Prof J Sarkar in Modern Review (November 1922) quoted by Gadgil Page 37

रही था। श्री गाडगिल ने इस नए वर्ग की तुलना पाश्चात्य "बूर्ज्वा" वर्ग से ठीक ही की है—

The next class which was the natural successor to the position of the nobles, was the newly created "educated" class. This was mostly an Urban and professional class, somewhat corresponding to the professional section of the "brourgeoisie" of the west.[1]

श्री गाडगिल ने खेद प्रकट किया है कि "यह नव शिक्षित 'बूर्ज्वा वर्ग' देशी कला और शिल्प स पराङ्मुख था। विदेशी राज्य का सबसे घातक प्रभाव विजित राष्ट्र के आदर्शों और रुचियों पर पड़ता है और इस नवीन 'बूर्ज्वा वर्ग' ने योरोपियन आदर्शों और रुचियों का अंधानुकरण और भारतीयता का उपहास किया" (वही, पृष्ठ ३९)।

१८५० के बाद का हिन्दी काव्य और साहित्य न केवल विदेशी साम्राज्यवाद के विरुद्ध लड़ा अपितु उसने इस नवशिक्षित बाबू वर्ग तथा नवीन उद्योगों में लग्न बूर्ज्वा' वर्ग के विरुद्ध भी संघर्ष छेड़ा, यह हम देख चुके है। भारतेन्दु और द्विवेदी युग ने इस मोर्चे पर अभिनन्दनीय कार्य किया है। हर बात में "स्वदेशी" भावना का प्रचार किस प्रकार देशी शिल्पकला का समर्थन करता था, यह स्पष्ट है।

इस प्रकार जो मध्यवर्ग तैयार हुआ, उसके दो पक्ष हैं। एक अँगरेजों का हिमायती था, अंधानुकर्त्ता था और दूसरा विद्रोही था, सौभाग्य से हिन्दी भाषा इन देशभक्त विद्रोहियों के हाथ में ही रही।

इस विकास से यह भी स्पष्ट है कि मध्यकालीन आर्थिकव्यवस्था पूरी तरह हिल रही थी। नए उद्योगों ने इसे और आघात पहुँचाया।

योरोप के अधीन देशों में उद्योगों के दो रूप दिखाई पड़ते हैं, एक बागान-उद्योग (Plantation) और दूसरा मशीनी कारखाने। बागान-उद्योग में देशी-विदेशी दोनों वर्गों ने भाग लिया। नील, चाय, कहवा के बागों से एक 'नए वर्ग' का उदय हुआ और दूसरी ओर श्रमिकों का दल तैयार हुआ। १९वीं शताब्दी के मध्य तक बागान उद्योग यहाँ पनप चुका था। १८७१ ई० में ३१,३०३ एकड़ में चाय के बाग लग चुके थे। योरोप की पूँजी उद्योगों में

---

1. Ibid (बूर्ज्वा वर्ग के अभ्युदय के लिए द्रष्टव्य)—Indian in Transition, M. N Roy)

लगने से योरोपियनो का ध्यान व्यापार (Commerce) के अतिरिक्त उद्योगा पर केंद्रित हुआ। बागान और जूट उद्योग के बाद पूँजीवाद का प्रारम्भिक रूप सम्मुख आया।

१८५० के बाद १८५१ मे बम्बई म कताई-बुनाई का कारखाना खुल गया। १८६०-७० तक कारखानो की प्रगति शनै शनै हुई। १८५६ ई० म कपड के कारखाना मे केवल ४३००० आदमी काम करते थे। बगाल मे जूट के उद्योग मे अधिक तेजी से उन्नति हुई।

कपड और जूट के अतिरिक्त १९वी शताब्दी के प्रारम्भिक और मध्य भाग म खानउद्योग की उन्नति हुई। १८२० म ही कोयला निकालने का काय शुरू हुआ था। १८५४ म रेल से इन खाना का सम्बध जुड जाने पर अनेक खाना म काम शुरू हुआ। १८८० ई० म ५६ खाना म काम हो रहा था।

स्पष्ट है कि १८८० ई० तक उक्त तीन—रुई जूट और कोयला—यही तीन उद्योग प्रमुख थे। मद्रास का चम उद्योग भी एक महत्त्वपूर्ण उद्योग था।

१८८० के ५८ कारखाने १८९५ म १४४ तक जा पहुँचे। श्रमिको की सख्या लगभग चालीस हजार से एक लाख उनतालीस हजार तक जा पहुँची। जूट मिला की सख्या २२ से २९ होगई और कोयले के उद्योग म २२७४५ से सन १८९४ म श्रमिका की सख्या ४३१९७ होगई।

द्विवेदीयुग मे पूँजीवाद का विकास—कृषि का क्षत्र १८९४ से १९१३ तक लगभग दुना होगया। नील की अलावा बिक्री के योग्य फसला म बहुत अधिक वृद्धि हुई अर्थात छायावाद के पूव कृषि का आत्म निभर रूप नही रहा। बन गन्ना कपास तल पदाथ आदि विक्री योग्य वस्तुआ की उत्पत्ति अधिक होने के कारण यह स्पष्ट है कि कृषि के सामतवादी रूप म परिवतन हुआ। अँगरेजा ने स्वय खेती को बेचने खरीदने का हक दे दिया अत गरीब किसाना के हाथ से इस अवधि म बहुत सी जमीन निकल गई। बड किसाना शहर से भागे हुए सामन्त नवाबा और दूसरे धनी लोगा ने जमीनें खरीदी और बिक्री योग्य फसला को तैयार किया अत कृषि के क्षत्र म भी सामतवादी व्यवस्था कमजोर हुई।

उद्योग धधो म भी यही प्रवृत्ति दिखाई पडी। कपडा के कारखाने १८९६ मे १५० थे और १९१३-१४ म २६४ होगए। १४६५५२ मजदूरा से बढकर उनकी सख्या २६०४४७ होगई। जूट उद्योग क २८ कारखाना से

(१८९५) १९१४ मे उनकी सख्या ६४ होगई। ७८११४ श्रमिको से २१.२८८ तक उनकी सख्या जा पहुँची। धातु उद्योग का मूल्य ६½ करोड से बढ कर १९१३ म १२½ करोड (लगभग) तक जा पहुचा। कोयले के उद्योग म १८३० से १९१३ तक उपादन लगभग दूना हो गया। ६६१३८ मजदूरा की जगह १५१३६७ मजदूर काम करने लगे। पेटोलियम उद्योग १८७६ म १५०४६२८६ गैलन से बन्कर २५६२४२७१० गैलन तक १९१४ मे जा पहुँचा। रेलवे ववशाप म १९११ मे लगभग १ लाख श्रमिक काय कर रहे थे। Census commission के अनुसार प्रथम विश्व युद्ध के पूव भारत म १७१७२०० श्रमिक काम कर रहे थे। नगरो की सख्या और उनके आकार मे भी वद्धि हुई १८७२ ३० मे ८ ७२ प्रतिशत आबादी नगरो मे रहती थी १९२१ मे यह १० २ प्रतिशतहोगई। इसमे भी ५०००० से ऊपर आबादी वाले नगरो के आकार मे अधिक वृद्धि हुई।

प्रयम विश्वयद्ध देश म पूँजीवाद की स्थापना म बहुत अधिक सहायक हुआ। इसके विपरीत १९०० से १९१३ १४ की अवधि मे अपेक्षाकृत कृषि की सुधरी हुई दशा और भी बिगडी।[1] युद्ध की अवधि मे सरकार ने अन्न की कामत को नहीं बढने दिया किन्तु मिट्टी का तेल वस्त्र नमक आदि की कीमतें असाधारण रूप से बढ गई। पूँजीपतियो को अनाप-शनाप लाभ हुआ किन्तु किसान बरबाद हुआ। १९१७ म बहुत से बाजारो को उग्र किसानो ने लूटा। उधर बम्बई करांची जैसे शहर लदन से भी अधिक भीड भडक्क से भर उठे। श्रमिको की दशा अत्यधिक शोचनीय थी और सगठन के अभाव म उनका विकट शोषण हो रहा था। युद्धकाल म सरकार की मूल्यनिर्धारण नीति के कारण किसान भी तबाह हुए जब कि उद्योगपतियो को फायदा हुआ। १९२० २१ म २४७ कपड के कारखानो के स्थान पर १९३० ३१ मे ३३९ कारखाने होगए। जूट मिलो की सख्या ७० से सन १९२८ ३० म ९८ होगई। कोयला का खच १९१० से १९२५ मे दूना होगया। कोयले की स्थिति मे कमी

---

१ देश मे १९१३ १४ से १९२९ ३० तक के आयात निर्यात के आँकडो से स्पष्ट है कि कृषि की स्थिति दुरावह हो गई। १९१३ १४ मे आयात १९१९ २० मे दुगना १९२६ २७ मे ड्योढा तथा १९२९ ३० मे अट्ठाइस से ततीस प्रतिशत बढा किन्तु निर्यात मे १९१३ १४ से १९२९ ३० तक केवल १८ प्रतिशत की ही वृद्धि हुई।

हुई क्योंकि देश मे मशीनीकरण से उसका खर्चा बढ गया था। खानो की सख्या मे वृद्धि हुइ। १९११ म खाना की सख्या लगभग ५५४ थी तो १९२० मे ७०० होगई और १९२२ मे ९५३ तक यह सख्या जा पहुची। पट्रोलियम की मात्रा मे लाखो गलन की वृद्धि हुई। चाय कपडा जूट रेलवे वक्स धातु इञ्जीनियरिग वक्स ईट आटा प्रस काफी लोहा ईस्पात पत्थर तथा सगमरमर नमक स्वण आदि उद्योगो की वृद्धि युद्ध के बाद देश म पूँजीवाद क विकास को पुष्ट करती है

यद्यपि १९११ से १९२१ के बीच शहरी आबादी की वृद्धि म केवल ½ प्रतिशत से कुछ अधिक की ही वृद्धि होती है परन्तु बड शहरा की आबादी बहुत अधिक बढी। सास्कृतिक आदोलन कुछ शहरा मे ही पहले पनपे फिर उनका बाहर प्रचार हुआ। बम्बई[1] कलकत्ता दिल्ली लाहौर कराची और अहमदाबाद शोलापुर जमशेदपुर आदि की बहुत वृद्धि हुई। युद्ध के पूव देशी उद्योगो को सरक्षण देने की नीति नहो अपनाई गई किन्तु युद्ध के बाद उन्हे सरक्षण मिला। १९१८ ई० मे औद्योगिक-कमीशन की रिपोट देशी पूँजी के बहुत पक्ष म थी। आयात पर भारी ड्यूटी लगा दी गई और कपड के निर्यात को सुविधा दी गई। १९२१ के फिस्कल कमीशन ने स्वीकार किया कि भारत का औद्योगिक विकास इस देश के हित मे है। यदि औद्योगिक विकास को प्रातीय सरकारा पर न छोड दिया जाता तो और भी अधिक इस क्षत्र मे काय होता फिर भी लोहा-और ईस्पात उद्योग को सरक्षण मिल गया। वस्त्र (Cotton piece goods) रासायनिक पदाथ शक्कर दियासलाई तथा स्वण का भी सरक्षण मिला १९२७ ई० म कागज उद्योग को भी सरक्षण मिला। जिंक सल्फर मशीनरी आदि उद्योगो को भी सुविधा दी गई।

भारतीय पूजी छायावादी युग (प्रथम युद्ध के बाद से—द्वितीय युद्ध के पूव तक) मे द्विवेदी युग से अधिक वीरता के साथ अवतरित हुई। चाय उद्योग म स्पष्टत भारतीय पूजीपतियो की पूजी की वृद्धि हुई। जूट मिलो म भारतीय पूँजीपतियो क शेयरो की सख्या बढी। किन्तु योरोपीय पूँजी ही

---

1 Bombay is very much more crowded than London and Karachi a good deal worse than Bombay The condition of factory workers in general was as bad as could be expected Godgil, Page 193

छायावाद-युग मे प्रगुप्त थी अत देशी पूजीपति 'देशभक्त' बनकर कांग्रेस मे काम करता था और उधर सरकार पूँजीपतियो और भूमि सुधार न करके जमीदारो को अपने पक्ष मे करने का प्रयत्न कर रही थी। मध्यवर्ग स्वतन्त्रता के स्वप्न बुन रहा था यद्यपि उसे यह स्पष्ट नही था कि वह स्वतन्त्रता कैसी होगी। पूँजी पर अधिकार किसका होगा ? इस पर विवाद थे राष्ट्रीय काग्रस मे समाजवादी साम्यवादी धाराएँ जन्म ले रही थी किन्तु हमारे छायावादी शुरू मे इन नई धाराओ से बेखबर थे। स्वप्नदर्शन' द्वारा तथा मध्यकालीन विधि निषेधो विचारधाराओ नैतिक मान्यताओ कन्वारूपा आदि के विरुद्ध एक नए रूमानी आवेश द्वारा वे इसी विकासोन्मुख पूँजीवाद की स्थापना म सहायक हो रहे थे। एक भी छायावादी ने प्रेमचन्द के पूर्व समाज वाद का स्वर नही अपनाया। राष्ट्रीय काग्रस मध्यवर्ग की ही सस्था नही थी, उसम पूँजीपति और भूमिपति भी भरे हुए थे अत मध्यवर्ग के नेतृत्व मे किसानो द्वारा समर्थित केवल क्रान्तिकारी मजदूरो की पार्टी के रूप मे राष्ट्रीय काग्रस का विकास नही हुआ था। यदि ऐसा होता तो इस मध्यवर्ग के, जो साहित्य म भी काम कर रहा था सम्मुख यह स्पष्ट रहता कि 'आज़ादी' का मतलब क्या है ! अँगरेज़ो के जाने के बाद सम्पत्ति पूँजी और भूमि पर कृषको और मज़दूरो का राज्य होगा जो ६०% से भी अधिक थे अथवा मध्यवर्ग का नेतृत्व देश मे भूमिपतियो और पूँजीपतियो के हितो के लिए भी साथ-साथ काम करेगा ? प्रथम स्थिति समाजवादियो और उनसे भी अधिक साम्यवादियो की थी और दूसरी स्थिति गान्धीवादी काग्रसियो की। गान्धी जी 'एकता' के मसीहा और हृदय परिवर्तनवाद के पैगम्बर थे अत वे अँगरेजो के जाने के पूर्व सभी को साथ लेकर चलना चाहते थे अत मेरे स्वराज्य मे शेर भी रहेगा और बकरी भी'—यह सिद्धान्त वह मानते थे। आर्थिक क्षेत्र मे लक्ष्य स्पष्ट न होने के कारण देश के २० लाख से भी ऊपर मजदूरो को स्वतन्त्रता-सग्राम तथा आगे के समाज मे आवश्यक परिवर्तन के लिए तैयार नही किया गया। गान्धी जी वर्ग-सघर्ष के स्थान पर वर्ग-सामञ्जस्य का सिद्धान्त मानते थे। सपूर्ण विश्व के लिए स्वर्ग की कामना करने वाले—सुमित्रानन्दन पन्त, महादेवी प्रसाद, निराला आदि कोई छायावादी कवि अपने चिन्तन को समाज वाद के अध्ययन और प्रचार के बावजूद वैज्ञानिक रूप नही दे सके—ये कवि "आदर्शवादी ही रहे। अन्याय के प्रति क्रोध और न्याय के प्रति अमिट श्रद्धा होने पर भी अन्याय को मिटाने के लिए अन्याय के 'स्वरूप" को समझना

पड़ता है। न्याय की रक्षा के लिए और न्यायमय परिस्थिति की सृष्टि करने के लिए अन्याय का नाश आवश्यक है चाहे वह नाश धीरे या वेग से वैधानिक विधि से हो या अवैधानिक विधि से पर है आवश्यक। परन्तु छायावाद युग मे प्रेमचन्द को छोड़कर वर्ग सघर्ष की उपेक्षा साहित्य मे भी हुई फलत समाज मे वर्ग सघर्ष की चेतना तीव्र होते ही छायावाद की अस्पष्ट भ्रांति जनक स्वतत्रता का पर्दाफाश हो गया। स्वय छायावादियो को छायावाद अलकृत सगीत लगने लगा। जब बीस पच्चीस लाख मजदूरो और कृषको की दुरावस्था को तथा छायावाद के अस्पष्ट स्वप्नो और केवल कलापूर्ण शुभकामनाओ को सम्मुख रखा गया तो छायावाद के नारे खोखले लगने लगे। छायावाद की स्वतन्त्रता का स्वरूप अस्पष्ट था। फिर भी उसकी स्वतन्त्रता की पुकार से सामतवाद कमजोर होता था यह पूँजीवाद के हित मे था उसके स्वतत्रता के नारे से विदेशी पूँजीपति कमजोर होता था यह भी देशी पूँजीवाद के हित मे था। उसकी स्वतत्रता के नारे से निम्नमध्यवर्ग तथा मध्यवर्ग भारतीयता के लिए लड़ता था इस भारतीयवाद से देशी पूँजीवाद का स्पष्ट फायदा था क्योंकि सरक्षण की माँग मे उसे इस प्रचार से सहायता मिलती थी। छायावादियो की स्वतन्त्रता अस्पष्ट थी अर्थात वे यह न समझ सके कि आजादी का अर्थ किसान मजदूरो का शासन है या पूजीपतियो—और भूमिपतियो का भी हित साधन करने वाले मध्यवर्ग के नेताओ का। मध्यवर्ग किस प्रकार की आजादी की माँग करे—ऐसी आजादी का कि जिसकी प्राप्ति के लिए केवल किसान मजदूरो और उनके समर्थको पर ही भरोसा किया जाय या ऐसी आजादी का जिसकी प्राप्ति के लिए भेड़ियो और बकरियो सबको साथ लिया जाय ? भेड़िया बिगड़े तो कहा जाय कि तुम बकरियो को खा सकोगे खा रहे हो तो खाते रहो परन्तु आजादी की माँग करो साथ रहो। बकरियाँ बिगड़े तो कहा जाय कि तुम निश्चित रहो भला किसकी मजाल जो तुम्हारा बाल बाँका कर सके—कांग्रेस ने स्पष्टत आजादी की परिभाषा नहीं की और छायावाद ने भी कभी आजादी की स्पष्ट परिभाषा नहीं की। जो व्यक्ति यह कहे कि सब सुखी रहें सबका हित एक साथ हो वह यह नहीं समझता कि समाज मे आर्थिक क्षेत्रो मे परस्पर विरोधी वर्गों की स्थिति एक दूसरे के द्वन्द्वात्मक होती है और ऊपर के औद्योगिक विकास की कहानी से स्पष्ट है कि पूँजीपति वर्ग का हित किस प्रकार मजदूर वर्ग के विरोध मे स्थित हो गया था अत सब सुखी हों यह शुभ कामना तभी पूरी हो सकती है जब विश्व भर मे सम्पूर्ण पूँजी

सम्पत्ति और भूमि पर सबके समान अधिकार की भी घोषणा की जाय और उसके लिए सगठित प्रयत्न किया जाय यही समाजवाद है।

छायावाद शिक्षित मध्यवर्ग की सृष्टि है द्विवेदी युग के कवियो म रोमाटिक चेतना का पूर्वाभास अवश्य मिलता है परन्तु छायावादी कवि प्रसाद निराला ही नए स्वप्नो को सम्मुख रखने मे समर्थ हुए है। इन नए स्वप्नो मे नए मानवीय सम्बन्धो से सम्बन्धित स्वप्न थे। द्विवेदी युग के कवियो मे प्रमुख तम कवि हैं—हरिऔध और गुप्त जी दोनो मे सामन्तवादी सस्कार अविनष्ट हैं। दोना सारी उदारता और सहिष्णुता के बावजूद वर्ण व्यवस्था के हामी है। इनमे भी गुप्त जी मे सामन्ती सस्कार और भी अधिक हैं। नारी की गरिमा और प्रतिष्ठा का गायन होने पर भी इन कवियो मे नारी को समानता नही दी गई। छायावाद युग की कृतिया—यशोधरा आदि मे भी पुराना पातिव्रत प्रम और पुरुषप्रताप प्रबल सब भाती की ध्वनि स्पष्ट है। प्रियप्रवास की राधा देवी होकर भी कृष्ण की भक्तिन पत्नी के रूप मे ही चित्रित है समान अधिकार और सम्मान रखने वाली नारी के रूप मे नहीं। समाज और धर्म के अन्य सस्कारो के प्रति भी द्विवेदी युग का दृष्टिकोण विद्रोह से युक्त नही है जो रोमाटिक काव्य की विशेषता है।

छायावादी काव्य अँगरेजी पढ लिखे यानी तत्कालीन विश्वविद्यालयो कालजो म पढने पढाने वाले तथा इन सस्थाओ के निकट सम्पर्क मे रहने वाले लोगो म अधिक प्रचलित हुआ। रत्नाकर और सत्यनारायण कविरत्न भी अँगरेजी काव्य से परिचित थे पर वे अपने सस्कारो के कारण परम्परागत काव्य का ही पथ प्रशस्त करते रहे। यह स्मरणीय है कि छायावाद युग मे कई विश्वविद्यालय कायम हुए। १९२० मे अलीगढ १९२१ ई० मे लखनऊ तथा १९२१ म प्रयाग विश्वविद्यालय कायम हुआ। इनके अतिरिक्त बम्बई कलकत्ता मद्रास म पहले स ही विश्वविद्यालय बन चुके थे और कनिंग कालेज (१८६४ ई०) अलीगढ कालेज (१८७५ ई०) म्योर सेंट्रल कालेज प्रयाग (१८७२ ई०) तथा आगरा कालेज (१८२३ ई०) जैसे बड बड कालेज अँगरेजी काव्य से नवशिक्षिता को परिचित करा रहे थे। सुमित्रानन्दन पन्त के काव्य के प्रथम प्रासका मे अँगरेजी के अध्यापक तथा निन्दका म रीतिकालीन काव्य के उपासक थे।

कालिज शिक्षा का वातावरण सामन्तकालीन ऊँच-नीच की भावना शूद्रो को शिक्षा से बहिष्कृत करने की नीति नारियो को हीन और पर्दे म रखने की

भावना जाति और उपजातियो के परस्पर अलगाव की भावना आदि वातो के लिए अनुकूल नही या किन्तु उच्चकोटि के मानवतावाद और सब प्रकार के बन्धनो के विरुद्ध विद्रोही साहित्य को पढाने वाले अध्यापको की जहनियत भी पूँजीवादी चेतना से भरी हुई थी। जो यह समझते हैं कि उच्च शिक्षा देने वाले शिक्षको को केवल गाली देने से हमारा काम चल जाएगा यह भ्रम है। वस्तुत 'दृष्टिकोण के निर्माण मे इस वग का महत्त्वपूण हाथ रहता है। चूंकि छायावाद युग के प्रोफसरो मे अधिकतर समाज के भावी रूप के विषय मे अस्पष्ट थे और समाजवाद के विषय मे उनकी धारणाएँ भ्रान्त थी अथवा उनम से अधिक तर अपरिचित थे। अत १९ वीं शताब्दी के अन्त मे तथा बीसवी शताब्दी के प्रथम चरण मे हमारे शिक्षा सस्थानो मे समाजवाद की विशेष चर्चा नही हुई। १९०५ की असफल क्रान्ति और प्रथम विश्वयुद्ध के समय रूस की महान क्रान्ति के शीघ्र बाद भी समाजवादी विचारधारा का प्रभाव नही दिखाई पडता। कई वष बाद यहां काग्रस के बाहर और भीतर समाजवादी चेतना तीव्र हुई अन्यथा यह सम्भव था कि अगरेज जिस स्वतन्त्रता पर गव करते थ उस स्वतन्त्रता का वास्तविक रूप इग्लैंड मे क्या था इससे परिचित होकर हमारे कवि स्पष्टत गोर्की और मायकोवस्की की तरह सवहारा वग का सीधा साथ देते और उन भ्रमो का सृजन न करते जिन्हे पन्त जी अरविन्दवाद के नाम पर और महादेवी प्राचीन भारतीय सस्कृति के नाम पर कर रही हैं। जिस प्रकार बिना पूँजीवाद का पूण विकास हुए रूस मे समाजवादी चेतना फैलने मे बाधा नही हुई उसी तरह रूस की सफल क्रान्ति के बाद हमारे देश म भी समाजवादी चेतना द्रुतवेग से फैल सकती थी किन्तु इस देश के कालिजो और विश्वविद्यालयो के प्रोफसर अँगरेजी भ्रम से बाहर नही निकल सके और आज भी नही निकल पा रहे हैं। छायावाद को महत्ता इस नवीन अँगरेजी साहित्य से बनी हुई रुचि के कारण ही मिली और चूंकि उसमे युगानुरूप सदश या नवीन कल्पनाएँ और नवीन शैली थी अत वह प्रतिभाशाली कवियो द्वारा शिक्षितो का कण्ठहार बन गया।

बगाल मे यह चेतना हिन्दी प्रदेश से पहले जन्मी। माइकेलि मधुसूदन दत्त शेक्सपियर और रोमांटिक कवियो से अधिक प्रभावित हुए। रवीन्द्रनाथ टैगोर पर शेली और कीट्स का प्रभाव अधिक पडा। शली के Nature's naked loveliness तथा Hymn to Intellectual Beauty का रवीन्द्र पर अमिट प्रभाव पडा। टगौर ने सौन्दर्य का सम्बन्ध जो अनन्त" से

स्थापित किया था, उस पर कीट्स का प्रभाव था, भारतीय दर्शन के भी यह अनुकूल पडता था।

रवीन्द्र पर फ्रान्सीसी प्रतीकवादियो का भी प्रभाव पडा जो "सौन्दर्य के एक आदर्श जगत् का निर्माण करना चाहते थे, जहाँ मनुष्य की विकल आत्मा को शाति एव विश्राम प्राप्त हो सके।" आयरलैंड के प्रतीकवादी-रहस्यवादी कवि यीट्स का भी रवीन्द्र पर अत्यधिक प्रभाव था। इस काव्य मे रहस्य स्पर्शो, बुद्धिवाद के स्थान पर स्वयप्रकाश्यज्ञान से प्राप्त अनुभूतियो तथा दिव्य-प्रेम का वर्णन मिलता है। हिन्दी की कविता जो द्विवेदी युग की बहिर्मुखी प्रवृत्तियो से मुक्त होना चाहती थी, इस नए काव्य से काफी प्रभावित हुई।

सुमित्रानन्दन पन्त शेक्सपियर के "मिड समरस् नाइट ड्रीम" तथा 'टेम्पेस्ट' मे चित्रित परियो के जगत् से प्रभावित हुए। निराला तो शेक्सपियर के सानेटो के प्रसिद्ध भक्त हैं। निराला शेली की 'अलास्टर' नामक कविता के पारखी माने जाते हैं। राजकुमार वर्मा ने "गोल्डेन ट्रेजरी" को बार-बार पारायण किया था। उनकी 'रूपराशि' की रचना पर बायरन और कीट्स का प्रभाव है। एन्द्रिकता और भोगवादिता उनके प्रिय विषय रहे। बच्चन ब्लेक, वर्डसवर्थ, शेली और स्विनबर्न के प्रेमी थे।[1]

प्रसाद जी प्रारम्भ से व्यक्तिवाद को मुखरित करते आ रहे थे। उन पर बँगला कविताओ ने अवश्य प्रभाव डाला होगा और उन दिनो रोमाटिक कवियो के काव्य के अनुवादो की धूम थी अत प्रसाद जी रोमाटिक चेतना से परिचित थे। रहस्यवादी प्रवृत्तियो ने उन्हे विशेष आकर्षित किया था।

'पल्लव' की भूमिका मे पन्त जी ने मध्यकालीन कला और मान्यताओ के विरुद्ध बडे ही सशक्त स्वरो मे रोमाटिक काव्य का जयघोष किया है। 'पल्लव' को रोमाटिक काव्य का 'घोषणा पत्र' कहा जाता है। पन्त जी ने कवियो के सम्मुख नूतन काव्य के विषय, सौन्दर्य बोध, भाषा, छन्द, अभिव्यक्ति आदि की नूतनता की वकालत की। इसके अतिरिक्त निराला ने मुक्त छन्द और नूतन सौन्दर्य-बोध के लिए बहुत लिखा, सघर्ष भी किया, उधर 'प्रसाद' जी आर्य समाजी स्थूल नैतिकता और उपदेशवाद के विरुद्ध साकेतिक, रहस्यमयी, नूतनभगिमायुक्त शैली मे लिखते जारहे थे, फलत इन कवियो की प्रारम्भिक रचनाओ द्वारा ही स्वच्छन्दतावादी काव्य का एक निश्चित स्वरूप हिन्दी मे

---

१. रवीद्र सहाय वर्मा, पृ० १४५।

प्रतिष्ठित हो सका। महादेवी ने भी इसी स्वर मे स्वर मिलाया उन्होंने स्पष्ट लिखा है—

स्थूल सौन्दय की निर्जीव आकृतियो से थके और कविता की परम्परा गत नियम शृखला से ऊबे हुए व्यक्तियो को फिर उन्ही रेखाओ म बँध स्थूल का न तो यथाथ चित्रण ही रुचिकर हुआ और न उसका रुढिगत भावा आदश। उन्हे नवीन रूप रेखाओ की आवश्यक्ता थी जो छायावाद मे पूण हुई।

छायावाद और रहस्यवाद—अब तक हमने छायावाद शब्द का व्यापक अर्थो मे प्रयोग किया है और सामान्यत उसे स्वच्छन्दतावाद कहा है जिसमे रहस्यवाद भी शामिल है। छायावादी कवियो मे छायावाद रहस्यवाद ताने-बाने की तरह बुना हुआ है। फिर भी इन्हे अलग अलग किया जा सकता है। क्योकि वण्य विषय की दृष्टि से दोनो मे अन्तर दिखाई पड़ता है। छायावाद का शुक्ल जी ने शैलीविशेष के अथ मे प्रयोग किया है और साथ ही उन्होने रहस्यवाद के अथ म भी छायावाद का प्रयोग किया है। उक्त विश्लेपण से इतना तो स्पष्ट ही है कि छायावाद शैलीविशेष का नाम नही है क्योकि नूतन दृष्टिकाण के आने पर ही नई शैली का जन्म हुआ था अत वण्य विपय और दृष्टिकोण मुख्य वस्तुए हैं शैली गौण। दूसरे छायावाद और रहस्यवाद मे अन्तर यह है कि छायावाद मे चिरन्तन सत्ता की विभिन्न पदार्थो मे झलक ही देखी जाती है और कवि उस झलक का मुग्धता और विस्मय के साथ वणन करता है किन्तु रहस्यवाद मे दिव्यसत्ता के साथ प्रम सम्बन्ध स्थापित किया जाता है और सयोग वियोग का वणन किया जाता है। छायावाद मे जिज्ञासा की प्रधानता है तो रहस्यवाद मे आत्मा के निश्छल समपण की। छायावाद प्रकृति मे बिखरे सौन्दय को एकत्र करता है और उस सौन्दय मे किसी पारलौकिक सौन्दय की झलक मात्र से सतुष्ट हो जाता है रहस्यवाद मे उस सत्ता को प्राप्त करने के लिए उस सत्ता की साक्षात अनुभूति के लिए प्रयत्न किया जाता है। रहस्यवाद म प्रम साधनात्मक रूप धारण कर लेता है जबकि छायावाद मे साधना का प्रारम्भिक सोपान—जिज्ञासा मूलक दृष्टिकाण रहता है छायावाद केवल जानने की इच्छा व्यक्त करता है रहस्यवाद उसे प्राप्त करने की। यह अन्तर मानसिक स्थिति की दृष्टि से है और इसे स्पष्ट देखा जा सकता है। शैली की दृष्टि से छायावाद और रहस्यवाद म कोई अन्तर नही है, तभी शुक्लजी ने एक नई शैली की प्रधानता देखकर उसे छायावाद नाम दिया था और उसम और रहस्यवाद म

अन्तर नही किया था। इससे इस भ्रम की सृष्टि हुई कि मानसिक स्थिति की दृष्टि से भी छायावाद और रहस्यावाद एक है।

छायावाद और रहस्यवाद के उक्त अतर ,को उद्धरणो से प्रमाणित करने के पूव अन्य परिभाषाओ पर भी विचार लेना यहा उचित होगा।

गगाप्रसाद पाडय ने लिखा है कि किसी वस्तु मे एक अनात सप्राण छाया की भाकी पाना अथवा आरोप करना छायावाद है।

छायावादी कवि प्रकृति को कभी जड मानकर चित्रित नही करता अत प्रकृति को सप्राण मान कर चलता है और प्रकृतिस्थित सौदय को देखकर वह यह पूछता है कि प्रकृति म यह सौदय कहा से आता है—जिज्ञासा विस्मय और प्रकृति को सप्राण मान कर चलना—य प्रवृत्तिया अनेक कवियो मे मिलती हैं। अत पाडय जी की परिभाषा अनुचित नही है रहस्यवाद से छायावाद को अलग करने म भी यह परिभाषा हमारी सहायता करती है। पाडय जी ने यह लिखा भी है कि छायावाद वस्तुवाद और रहस्यवाद के बीच की कडी है *अर्थात् वस्तुवाद पदाथ के जड रूप को ही स्वीकार करता है* जब कि रहस्यवाद ब्रह्म और जीव के मध्य प्रकृति को एक माध्यम मात्र मानता है।

शान्तिप्रिय द्विवेदी ने छायावाद को एक दार्शनिक अनुभूति माना है पर यह परिभाषा अस्पष्ट है क्योकि इसम अतिव्याप्ति दोष है।

प० नन्ददुलारे वाजपेयी के अनुसार मानव तथा प्रकृति के सूक्ष्म किन्तु व्यक्त सौन्दय म आध्यात्मिक छाया का भान ही छायावाद है। इस परिभाषा और पाडय जी की परिभाषा मे कोई अतर नही है। आगे वाजपेयी जी ने छायावाद और रहस्यवाद म अतर भी दिखाया है— रहस्यवाद और छायावाद म अतर है। छायावाद व्यक्त सौदय सृष्टि से सम्बन्ध रखता है और रहस्यवाद समष्टि सौदय-सृष्टि है।

इस अन्तर म अस्पष्टता है परन्तु शायद इसका अथ यह है कि छायावाद प्रकृति के सौन्दय से ही सम्बन्ध रखता है, यद्यपि वह सौन्दय सूक्ष्म रहता है रहस्यवाद मे किसी चिरन्तन सत्ता के सन्दभ म ही प्रकृति का सौंदय देखा जाता है। यदि उक्त अथ ग्रहण किया जाय तब अन्तर स्पष्ट अवश्य होता है।

रामकृष्ण शुक्ल ने लिखा है कि प्रकृति म व्यक्ति का (अर्थात्) मानव जीवन का प्रतिबिम्ब देखने की पद्धति छायावाद है। यहा लेखक

केवल प्रकृति के मानवीकरण पर ही बल दे रहा है—मानवीकरण के समय छायावादी कवि म जो एक जिज्ञासा और विस्मय की स्थिति रहती है उसके लिए इस परिभाषा म स्थान नही है। अत इस परिभाषा म अव्याप्ति दोष है।

डा० रामकुमार रहस्यवाद और छायावाद मे मानसिक स्थिति की दृष्टि से भी अतर नही मानते उनके अनुसार आत्मा परमात्मा का गुप्त वाग्विलास रहस्यवाद है और यही छायावाद किन्तु हम देखेंगे कि छायावाद मे आत्मा परमात्मा का गुप्त वाग्विलास नही मिलता जहाँ वह मिलता है वहा वह रहस्यवाद ही कहलायेगा। अयथा मध्यकालीन कबीर मीरा के रहस्यवादी काव्य और आधुनिक काय म कोइ अतर नही रह जाएगा।

डा० देवराज छायावाद को गीतिकाव्य प्रकृतिकाव्य और प्रमकाव्य कहते है किन्तु यह परिभाषा अस्पष्ट है इसमे कवि की मानसिक स्थिति की विशिष्टता पर ध्यान नही दिया गया।

प्रगतिवादी लेखको ने प्रारम्भ म पूजीवादी व्यवस्था के साथ रखकर छायावाद की व्याख्या की थी। छायावाद क भौतिक आधार की ओर उन्होने स्पष्ट सकेत किया था। उनके अनुसार छायावाद समाज और प्रकृति पर व्यक्तिवादी प्रतिक्रिया है—जिसके मूल स्वर है स्वप्न अतीत प्रम निराशा विषाद पलायन आदि किन्तु प्रगतिवादियो वे छायावादी काव्य की सौदर्यानुभूति की प्रशसा भी कम नही की है अत परिभाषा देने का प्रयत्न न कर छायावादी आदोलन की पृष्ठभूमि उक्त कथन से अधिक स्पष्ट की गई है। यह एक तथ्य है कि छायावाद व्यक्तिवादी प्रतिक्रिया है। किन्तु प्रतिक्रिया का स्वरूप निर्देश प्रारम्भिक प्रगतिवादियो की परिभाषाओ से नही होता।

प्रसाद जी छायावाद' को एक भगिमा मानते थे। किन्तु उसस यह तथ्य निकालना गलत होगा कि वह छायावाद को केवल शैली मानते थे उन्होने लिखा है— कविता के क्षेत्र मे जब वदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति होने लगी तब हिन्दी मे उसे छायावाद से अभिहित किया गया। आतरिक स्पश की पुलक नवीन शैली स्वतत्र लावण्य आदि तत्त्व इसमे थे। मोती के भीतर छाया जैसी तरलता होती है वैसी कान्ति की तरलता अङ्ग म लावण्य कही जाती है। इस लावण्य को सस्कृत म छाया और विच्छित्ति को कुछ लोगो द्वारा निरूपित किया गया था, यह बाह्यालकार मात्र नही, यह थी की वहिन ही है, आन्तरअथवचिय्य को प्रकट करने म इसका प्रयोग हुआ था।

यहाँ नूतन भगिमा के साथ-साथ छायावाद के वर्ण्य विषय— 'वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी' आतर स्पश-पुलक' आन्तर-अथ वैचित्र्य आदि की भी चचा है। प्रसाद जी के अनुसार द्विवेदीयेग की स्वानुभूतिविहीन रचनाओ से छायावाद इसलिए भिन्न है क्योंकि उसम 'स्वानुभूति, वदना और आन्तर-स्पशपुलक' की प्रधानता है। भगिमा की दृष्टि से प्रसादजी ने छायावाद की शैली को कुतक की 'विच्छित्ति' या छाया या तरलता से जोड दिया है प्रसाद जी हर नई चीज को पुराने के साथ जोड दने म अति कुशल थ। किन्तु प्रसाद जीने छायावाद और रहस्यवाद का अतर स्पष्ट नहीं किया। उनकी 'वेदनामूलक सहानुभूति' म इस दृष्टि से जिज्ञासामूलक छायावाद और दिव्यप्रेम प्रधान रहस्यवाद—दोनो शामिल हैं। प्रसाद जी क अनुसार नया काव्य अनस्चतना प्रधान है जिस द्विवेदीयुग स अलग किया जा सकता है। यह एक तथ्य है कि कुतक ने भी नूतन भगिमा का आधार अनुभूति को ही माना था[1] प्रसाद जी ने इसीलिए कुतक से छायावाद की व्याख्या के लिए सहायता ली थी। स्वानुभूति की गभीरता और अनुपमता से अभिव्यक्ति या कथन भगिमा भी अनुपम हो जाती है, द्विवदी युग म स्वानुभूति का अभाव था अत शैली म विच्छित्ति नहीं आ सकी।

रहस्यवाद म कवि की अपनी अनुभूति की नहीं अपितु एक सामान्य अनुभूति जो कि रहस्यवादियो की विशेषता रही है, मिलती है। उदाहरण के लिए अनय सत्ता के सयोग, वियोग के चित्रण सभी रहस्यवादियो की विशषता रही है।

महादेवी ने अपन 'विवेचनात्मक गद्य' म छायावाद को स्थूल क विरुद्ध प्रतिक्रिया कहा है—"सृष्टि के बाह्याकार पर इतना लिखा जा चुका था कि मनुष्य का हृदय अभिव्यक्ति के लिए रो उठा। स्वच्छन्द छद म चित्रित उन मानव अनुभूतियो का नाम छाया उपयुक्त ही था और मुझ तो आज भी प्रिय

---

[1] Poetic quality and aesthetic quality change a piece of composition with an excellence and emotion, a life and a thrill, that is far beyond the words and meanings This we call aesthetic quality which arises out of that unique character of the constitution of proper words and their meanings—
—Dr S. N Das Gupta·
History of Alamkaras

लगता है। अयत्र उहोने कहा है कि छायावाद तत्वत प्रकृति के बीच जीवन का उदगीथ है अत कल्पनाएँ बहुरगी और विविध रूपी है।

इससे यह स्पष्ट हुआ कि छायावाद व्यक्तिगत अनुभूतियो का प्रकृति के माध्यम से प्रकाशन है जो इससे पहले की कविता मे नही मिलता किन्तु छायावाद और रहस्यवाद के अतर के विषय मे भी महादेवी ने लिखा है— इस युग की (छायावाद) सब प्रतिनिधि रचनाओ मे किसी न किसी अश तक प्रकृति के सूक्ष्म सौदय मे व्यक्त किसी परोक्ष सत्ता का आभास रहता है और प्रकृति के व्यक्तिगत सौन्दय पर चेतना का आरोप भी। परन्तु अभिव्यक्ति की विशेष शैली के कारण कही सौदर्यानुभूति की व्यापकता कही सवेदन की गहराई कल्पना के सूक्ष्म रग और कही भावना की ममस्पर्शिता लेकर अनेक वादो को जन्म दिया है।

अर्थात सामान्यत छायावाद मे प्रकृति का सूक्ष्म सौदय और उसम परोक्ष सत्ता का आभास रहना है किन्तु महादेवी ने रहस्यवाद से इस काव्य का *अतर स्पष्ट नही किया। यह निश्चित है कि प्रकृति म परोक्ष सत्ता का आभास* रहस्यवाद का प्रथम सोपान भले ही कह लिया जाय किन्तु जब तक रहस्यमय सत्ता के साथ प्रम सम्बन्धो की अभिव्यक्ति नहा होती तब तक उसे रहस्यवाद नही कहा जा सकता। किन्तु लगता है कि प्रकृति म परोक्ष सत्ता के आभास के साथ-साथ कवि के प्रम भाव को भी महादेवी ने आवश्यक माना है— स्वय छायावाद तो करुण की छाया मे सौदय के माध्यम से व्यक्त होने वाला भावात्मक रहस्यवाद ही रहा है। बात स्पष्ट नही हुई परन्तु कवल प्रकृति म परोक्ष सत्ता के आभास को रहस्यवाद नही कह सकते यह महादेवी के कथन की भी ध्वनि है।

छायावाद और रहस्यवाद को इस प्रकार मानसिक स्थितिया की दृष्टि से अलग करना उचित है। छायावाद म रोमाटिक काव्य की सभी विशेषताएँ मिलती हैं उसमे रहस्य के प्रति प्रम निवेदन भी शामिल कर लिया गया है परन्तु वह स्पष्ट दिखाई पडता है। योरोप के रोमाटिक कवियो मे भी वडसवथ शेली कीटस एक ओर हैं तो ब्लेक जैसे शुद्ध रहस्य वादी दूसरी ओर हैं। पतजी की कविताओ मे शुद्ध रोमाटिक कविया की प्रवृत्तियाँ मिलती हैं उनमे ब्लेक जैसा रहस्यवाद बहुत कम मिलता है। प्रसाद म रहस्यानुभूति कहा *कहा बहुत गहरी है कही-कही निराला म भी और महादेवी म सबसे अधिक* किन्तु ये सभी कवि वस्तुत शुद्ध रहस्यवादी नही हैं। जहाँ-जहाँ इनम रहस्य

वाद' मिलता है, उसे स्पष्टत अलग किया जा सकता है। ये कवि 'रहस्य' को सौन्दर्यतम अनुभूति के रूप म अधिक अपनाते हैं। महादेवी मे रहस्य के प्रति आत्म निवेदन अधिक मिलता है। 'कामायनी' के कुछ सर्गों म रहस्यदर्शन की प्रवृत्ति अधिक हो गई है, ऐसा काव्य छायावाद से भिन्न समझना चाहिए।

अब उदाहरणो से छायावादी मानसिक स्थिति और रहस्यवादी मानसिक स्थिति को अलग-अलग देखना चाहिए—

प्रकृति मे परोक्ष सत्ता का आभास—विश्व के पलको पर सुकुमार।
विचरते हैं जब स्वप्न अजान।
न जाने नक्षत्रो से कौन।
सदेशा मुझे भेजता मौन!

—पन्त

रहस्यवाद—कभी उडते पत्तो के साथ, मुझे मिलते मेरे सुकुमार।
बढा कर लहरो से निज हाथ, बुलाते, फिर मुझको उस पार।
नही रखती जग का मैं ज्ञान, और हँस पडती हूँ अनजान।
रोकने पर भी सखि! हाय, नही रुकती तब यह मुस्कान।

—पन्त

अथवा

गगन के भी उर म है घाव, देखती ताराएँ भी राह।
बँधा विद्युत छवि म जलवाह, चन्द्र की चितवनि म चाह।
दिखाते जड भी तो अपनाव, अनिल भी ठण्डी भरती आह।

—पन्त

परोक्ष सत्ता का आभास—शशिमुख पर घूँघट डाले, अचल म दीप छिपाए।
जीवन की गोधूली मे, कौतूहल स तुम आए।

—प्रसाद

अथवा

रूपसि तेरा घन केशपाश!
नभ गगा की रजत धार मे, धो आई क्या इन्हे रात।
कम्पित हैं तेरे सजल अग, सिहरा सा तन है सद्यस्नात।
रूपसि तेरा घन केश पाश। —महादेवी

अथवा

शून्य नभ पर उमड जब दुख भार सी।
नैश तम मे सघन छा जाती घटा।
बिखर जाती जुगुनुओ की पाति भी।
जब सुनहले आँसुओ के हार सी।
तब चमक जो लोचनो को मूँदता।
तडित की मुस्कान मे वह कौन है ? —महादेवी

रहस्यवाद— सिंधु को क्या परिचय दें देव।
बिगडते बनते बीचि विलास।
छुद्र हैं मेरे बुद्बुद प्राण।
तुम्ही मे सृष्टि तुम्ही मे नाश। —महादेवी

वल्लिरियाँ नित्य निरत थी, बिखरी सुगन्ध की लहरें।
फिर वेणु रन्ध्र से उठकर, मूर्च्छना कहाँ अब ठहरे।
क्षण भर मे सब परिवर्त्तित, अणु अणु थे विश्व कमल के।
पिंगल पराग से मचले, अनन्द सुधारस छलके।
समरस थे जड या चेतन, सुदर साकार बना था।
चेतनता एक विलसती, आनन्द अखण्ड घना था।—कामायनी

छायावाद—घूंघट उठा देख मुस्क्याती, किसे ठिठकती सी आती।
विजन गगन मे किसी भूल सी, किसको स्मृति पथ मे लाती।
पगली! हाँ सँम्हाल ले कैसे, छूट पडा तेरा अचल।
देख विखरती है मणि राजी, अरी उठा वेसुध चचल।
—कामायनी

रहस्यवाद—स्पर्श से लाज लगी!
नयनो का नयनो से बन्धन
काँपे थर थर, थर, तन।
—निराला

छायावाद—किस अनत का नीला अचल हिला हिलाकर—
आती हो तुम सजी मण्डलाकार!

अथवा

मुग्धा की लज्जित पलकों पर
तू यौवन की छवि अज्ञात ।
आँख मिचौनी खेल रही है
किस अतीत शिशुता के साथ ।

रहस्यवाद—लाज लगे तो जाओ, तुम जाओ ।
फेर ले नयन चलो मजु गुजर धर ।
नूपुर शिंजित–चरण ।
करूँ वरण, प्राणों मे आ छवि पाओ ।
लाज लगे तो जाओ ।

—निराला

यहाँ प्रश्न हो सकता है कि 'जिज्ञासा' को जब 'रहस्यवाद' का प्रथम सोपान माना जाता है तब जिज्ञासा या परोक्षसत्ता के आभास से युक्त प्रकृति के वर्णन भी क्या 'रहस्यवाद' मे नही आ जाते ? इसका उत्तर यह है कि मानसिक स्थिति के दृष्टि से छायावादी काव्य मे जिज्ञासा और परोक्षसत्ता के आभास से युक्त वर्णन अधिक होने से छायावाद को रहस्यवाद का प्रथम सोपान माना जा सकता है किन्तु 'रहस्यवाद' की वास्तविक स्थिति दिव्यसत्ता के प्रति सयोगसुख अथवा विरह-दु ख की अभिव्यक्ति मे ही मानी जानी चाहिए और इस दृष्टि से अपने निश्चित अर्थ मे आभास दर्शनात्मक या जिज्ञासामूलक रचनाएँ 'रहस्यवाद' मे नही आ सकती किन्तु यदि 'रहस्यवाद' शब्द का व्यापक अर्थ लिया जाय तब सभी छायावादी रचनाएँ 'रहस्यवाद' मे रखनी पडेंगी और मध्यकालीन रहस्यवाद और आधुनिक काव्य मे अन्तर करना कठिन हो जाएगा अत इस विवेचन से स्पष्ट है कि 'रहस्यवाद' के निश्चित अर्थ मे 'छायावाद' को 'रहस्यवाद' से भिन्न मानना होगा, उसी प्रकार, जिस प्रकार 'रोमांटिक काव्य' के निश्चित अर्थ मे वर्डसवर्थ, शेली आदि की कविताएँ 'रोमांटिक' कहलाएँगी और ब्लेक और यीट्स की कविताएँ 'रहस्यवादी'। छायावादी काव्य मे 'रहस्य भावना' रहती है किन्तु 'रहस्यवाद' और सामान्य रहस्य भावना मे अन्तर मानना चाहिए।

छायावादी काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ—हम रोमांटिक काव्य और छायावादी काव्य के सादृश्य का विवेचन कर चुके हैं अब 'छायावाद' की प्रमुख प्रवृत्तियो का विभिन्न कवियो मे क्या स्वरूप रहा है, यह देखना चाहिए ।

प्रेम—स्वच्छन्दतावाद का सर्वप्रथम रूप सामन्ती समाज के मर्यादावाद के विरुद्ध प्रेमभावनाओ के स्वच्छन्द उद्‌गारो के रूप मे मिलता है। यह प्रेम कही अत्यधिक स्वच्छन्द, कही विचित्र, कही अलौकिक और कही अयथार्थ भी लगता है। परन्तु प्रत्येक छायावादी कवि प्रेम के सम्बन्ध मे अपनी स्वतंत्र भावनाओ को एक विद्रोह के रूप मे व्यक्त करता है—

राग से अरुण घुला मकरद।
मिला परिमल से जो सानन्द।
वही परिचय था, वह सम्बन्ध
प्रेम का मेरा तेरा छन्द। (झरना)

प्रेम की घोषणा—जिसे चाह तू उसे न कर आँखो से कुछ भी दूर।
मिला रहे मन मन से, छाती छाती से भरपूर।

प्रेम का शारीरिक रूप—तुम्हारा शीतल सुख परिरम्भ
मिलेगा और न मुझे कही।
विश्व भर का भी हो व्यवधान
आज वह बाल बराबर नही।

"इन्दु" मे प्रकाशित प्रसाद जी की प्रेम के सम्बन्ध मे एक "गजल" से स्पष्ट है कि प्रसाद जी द्विवेदी युग मे ही अपनी प्रेम-भावना को स्वच्छन्दता के साथ वाणी देने लगे थे। प्रसाद के प्रेमभाव की व्यजना मे एक 'करुणा' या वेदना बराबर मिली रहती है—

उत्तेजित कर मन दौडाओ, करुणा का यह थका चरण है।

छायावाद को "वह वेदना की विवृति कहते थे। आँसू मे उनके प्रेम मे सयोग और वियोग के मधुरतम चित्र मिलते हैं। आँसू मे प्रेमपात्र के रूप, उसके साथ अनुभूत सयोग सुख और वियोग की दग्धआहो का चित्रण द्विवेदीयुग के आचारो के बोझ से लदे हुए प्रेम के विरुद्ध 'स्वच्छन्द' प्रेम का रूप प्रतिष्ठित करता है।

काली आँखो मे कितनी, यौवन के मद की लाली।
मानिक मदिरा से भर दी, किसने नीलम की प्याली।
तिर रही अतृप्ति जलधि मे, नीलम की नाव निराली।
काली पानी वेला सी, है अजन रेखा काली।
है किस अनग के धनु की, यह शिथिल शिजिनी दुहरी।
अलबेली बाहु लता या नवतन छविसर की लहरी।

बाँधा था विधु को किसने, उन काली जजीरो से।
मणि वाले फणियो का मुख, क्यो भरा हुआ हीरो से।

हरिऔध की 'स्पोद्यान प्रफुल्ल प्राय कलिका राकेन्दु बिम्बानना" अथवा "नाना हावभाव विभाव कुशला' राधा के तथ्यकथनात्मक तथा मर्यादावादी रूप वणन से आँसू का रूप--वर्णन स्पष्टत "स्वच्छन्द" दिखाई पडता है। 'मादकता' द्विवेदीयुग मे कहो मिलती ही नही, छायावाद के स्वच्छन्द काव्य मे 'मादक' चित्र अनेक हैं।[1]

भोग-वादिता की झलक भी प्रसाद के प्रेम-वर्णन मे सर्वत्र मिलती है यद्यपि अन्त मे प्रेमी उस पर विजय प्राप्त कर लेता है। आँसू म "परिरम्भ

---

१ द्विवेदीयुग के कवियो मे रामनरेश त्रिपाठी ने प्रेम की 'मादकता' और वेदना का महात्म्य अवश्य गाया है। माखनलाल चतुर्वेदी की रचनाओ मे तो राष्ट्रभक्ति के साथ-साथ ही 'मादन' भाव की मधुर अभिव्यजना मिलती है—कुछ उर्दू से मिलती जुलती।

जिस पर दया दृष्टि करते हैं, मगलमय भगवान।
पूर्णप्रेम-पीडा से पीडित होता है वह प्राण
फूल पखुरी मे पल्लव मे, प्रियतम रूप विलोक।
भर जाता है, महामोद से, प्रेमी का उर-ओक

किन्तु 'प्रेम' का 'राष्ट्र' से सम्बन्ध यहां भी स्थापित किया गया है—

दूषित जाति के उन्नति पथ से—
कटक चुन कर दूर।
प्रेमी परम तृप्त होता है—
आह्लादित भरपूर।

माखनलाल चतुर्वेदी मे 'प्रणयोन्माद' नहीं हैं, राष्ट्रभाव के नीचे दबा हुआ, सिसक सिसक कर ऊपर आता हुआ सा प्रेम है जो वस्तुत देश प्रेमरस के सचारी के रूप मे अनुभव होता है—

रूठूं, मेरी प्रेम कथा मे
रानी इतना स्वाद नहीं है
और मनूं, ऐसा भी मुझमें
कोई प्रणयोन्माद नहीं है।

—मील का पत्थर।

कुम्भ की मदिरा, निश्वास मलय के झोंके" जैसी पक्तियों मे निर्बाध भोग की भावना अवश्य मिलती है किन्तु उसमे 'रहस्य भावना' का भी स्पर्श रहने से तथा अभिव्यक्ति साकेतिक होने से वह रीतिकाल से सर्वथा भिन्न दिखाई पडती है। कामायनी मे 'प्रेम' एक सिद्धान्त के रूप मे प्रतिपादित हुआ है। कामायनी मे काम भावना को मगल से मडित माना गया है और कवि के अनुसार ब्रह्माण्ड मे व्याप्त मूलसत्ता 'काम' के रूप मे ही प्रकट होती है, अत. नारी और पुरुष का मिलन कामेश्वर (शिव) और कामेश्वरी (शक्ति) के मिलन का ही भौतिक रूप माना गया है। व्यर्थ की मर्यादाओ और स्थूल नैतिकता के उपदेशो से इस 'काम' भाव को दमित नही किया जा सकता, किन्तु इस 'काम' का स्वरूप समझ लेने से, यह समझ लेने से कि काम "सर्ग इच्छा" अर्थात् सतान-उत्पत्ति की इच्छा का परिणाम है, पीडक न होकर शात-प्राप्ति और मानसिक विकास मे सहायक होता है, क्योकि 'काम' रमणीयता, आशा, उल्लास, ऊष्मा, सृष्टि इच्छा, प्रयत्न और साहस जैसे महान गुणो की भी सृष्टि करता है अत इस प्रेम के आधार, 'कामभाव' की कमनीयता के चित्रण के लिए कवि ने लज्जाशीला श्रद्धा की लज्जा, वासना तथा काम भावो के मनोरमतम चित्र अकित किए हैं जो हिन्दी काव्य मे आज तक अन्यतम हैं, कोई अन्य कवि उन्हे अपदस्थ नहीं कर सका। कामायनी के उक्त सर्ग बाह्य मर्यादावाद की व्यर्थता को सर्वदा के लिए समाप्त कर, विवेक द्वारा, आतरिक अनुशासन द्वारा तथा नारी को अपनी 'प्रकृति' की पूरक के रूप मे स्वीकृति द्वारा वास्तविक मर्यादावाद की प्रतिष्ठा करते हैं अत छायावाद की उच्छृखलता जो आँसू मे कही-कही लोगो को "आशिक-माशूकाना" जैसी लगने लगती है, कामायनी मे आकर एक महान जीवन-सिद्धान्त की प्रतिष्ठा करती है। नारी पुरुष के बीच 'काम', सौन्दर्य और-प्रेम आनन्द दायक तत्त्व हैं, उनकी उपेक्षा से दमित वासना बाह्य नैतिकता को भ्रष्ट करके रख देगी अत काव्य और जीवन दोनो मे काम, सौन्दर्य और प्रेम का चित्रण वाछनीय है किन्तु इस प्रकारकि व्यक्ति का मन भोगवादी न होकर श्रद्धा-विवेकयुक्त हो जाय। नारी की कोमल भावनाओ के साथ 'समरस' होकर पुरुष और पुरुष के सहयोग से नारी के व्यक्तित्व का विकास हो, प्रेम की यह अतिम परिणति छायावाद की महानतम उपलब्धि है।

मानव जीवन का सुन्दरतम अश उसका यौवन होता है। प्रसाद जी सूक्ष्म प्रेम के पूर्व इस यौवन और यौवन के सौन्दर्य का पूरी उमग से चित्रण कर गये हैं, किसी भी प्रकार की "कुण्ठा' कोई दमित वासना प्रसाद जी के

सौंदय चित्रण म नही मिलती क्योकि वह सौंदय को चेतना का उज्ज्वल वरदान मानते थे—

> मगल कुकुम की श्री जिसमे निखरी हो ऊषा की लाली ।
> भोला सुहाग इठलाता हो ऐसी हो जिसमे हरियाली ।
> हो नयना का कल्याण बना आनन्द सुमन सा विकसा हो ।
> वासन्ती के वन वभव मे जिसका पचम स्वर पिक सा हो ।
> हिल्लोल भरा हो ऋतुपति का गोधूली की सी ममता हो ।
> जागरण प्रात सा हसता हो जिसम मध्याह्न निखरता हो ।
> फूला की कोमल पखडियाँ बिखर जिसके अभिनन्दन म ।
> मकरन्द मिलाती हो अपना स्वागत के कुमकुम चन्दन मे ।
> उज्ज्वल वरदान चेतना का सौन्दय जिसे सब कहते हैं ।
> जिसमे अनन्त अभिलाषा के सपने सब जगते रहते है ।

द्विवेदीयुग म निषधवाद' बहुत था अत जीवन के मधुर पक्षो की उसमे अवहेलना हुइ यह मान लिया गया कि मधुर और आकषक का वणन पतनकारक होता है । छायावाद म इसकी घोर प्रतिक्रिया हुई । इसके अतिरिक्त रीतिकालीन भोगवाद के विरुद्ध भी उसमे प्रतिक्रिया मिलती है क्योकि मूलत छायावाद सामतवाद के विरुद्ध पूँजीवादी व्यवस्था की सृष्टि है । किन्तु प्रसाद जी सामतवाद और पूजीवाद दोनो के दोषा से परिचित हो चुके थे । अत प्रसाद जी का व्यक्तिवाद कामायनी म नैतिकता के दुराग्रह और भोगवाद दोनो पर विजय पाता है प्रसाद जी वस्तुत पूँजीवादी देशा मे प्रम के स्थान पर भोगवाद की वृद्धि देखकर पूण सावधान थे अत उनका व्यक्तिवाद कम से कम कामायनी म समष्टिवाद मे लय होता हुआ दिखाई पडता है किस प्रकार काम' को मगलमय बनाया जाय इसके लिए मनोवैज्ञानिक उपाय कामायनी मे सुझाया गया है । काम की बबरता मनु के माध्यम से और काम के मगलमय रूप को कामायनी के माध्यम से दिखाकर कवि प्रसाद ने काम वासना के रूपान्तरण की शिक्षा दी है लोकमगल के कार्यों म आसक्त चित्त ही अपने काम को रूपान्तरित कर सकता है यह तथ्य भी कामायनी से व्यजित होता है । केवल अपने स्वाथ और सुख की खोज के लिए कठिन से कठिन परिश्रमकर्त्ता व्यक्ति भी अपने काम भाव को वास्तविक रूप मे रूपान्तरित नही कर सकता ।

प्रसाद के प्रम' मे प्रारम्भ मे जो व्यक्तिवाद मिलता है उसम दुखवाद और भोगवाद भी साथ साथ चलता है। भोग के प्रति एक सकोच एक लज्जा के साथ सूक्ष्म आसक्ति प्रारम्भ मे सवत्र मिलती है परन्तु कामायनी म उनका व्यक्तिवाद स्वच्छन्दतावादी कविया से भिन्न सिद्धो के आध्यात्मिक आनन्दवाद की ओर उन्मुख हो जाता है जिसमे प्रत्यक मनुष्य के मानसिक विकास के लिए भी पग पग पर सुझाव भरे पड हैं।

प्राय यह कहा गया है कि प्रसाद जी के प्रम मे मधुप वृत्ति' अधिक है। शुक्ल जी का यही विचार था। मधुपवृत्ति का अथ यह है कि उसम रूप के प्रति लोभ का भाव अधिक है। प्रसाद प्रम और सौन्दय के कवि हैं अत मधुपवृत्ति प्रम के प्रारम्भिक सोपान मे वाछनीय है। शारीरिक सौदय के प्रति आकपण स्वाभाविक है द्विवेदी युग के कवि उसका वणन नहीं करते थे किन्तु प्रसाद जी ने सव प्रथम उसका वणन किया यद्यपि उस मधुप-वृत्ति' का भी एक छोर अनन्त से यत्रतत्र जोड दिया गया। आसू मे भी यही प्रवृत्ति दिखाई पडती है। लौकिक प्रमपात्र को विश्वव्यापी सत्ता के रूप मे यत्र तत्र परिवर्तित कर देने के कारण मधुपवृत्ति का एक पक्ष रहस्यभाव से सम्पृक्त होता हुआ चलता है अत वह सम्मोहक होने पर भी उतना उत्तजक नही हो पाया। तुम कनक किरण के अन्तराल मे लुक छुप कर चलते हो क्या जैसे गीता मे जो सूक्ष्म सौदय-सत्ता का भव्य वणन मिलता है उसे केवल मधुप वृत्ति कहकर नही टाला जा सकता। मानव जीवन के सौदय को इतनी सूक्ष्म दृष्टि से प्रसाद के पहले हिन्दी कवि नही देख सके थे फिर कवि ने इस सौन्दय के दशन से अपने मन मे उठने वाली भावसम्पदा का साकेतिक वणन भी किया है अत मधुपवृत्ति शब्द उपयुक्त नहीं है सौदयवृत्ति शब्द अधिक उपयुक्त है। जहा जो आकपण हैं उसका कण कण एकत्र करना कवि का काय है इसस मानव जीवन सम्पन्न होना है उसमे सुरुचि का विकास होता है प्रम के क्षत्र मे भी वह विलासी की दृष्टि से प्रमिका को न देखकर सौन्दय के देवता के रूप मे देखता है यदि प्रत्यक प्रमी म कवि रूप जाग्रत बना रहे तो विलास भाव रह ही नही सकता। विलास तटस्थ चित्तवृत्ति के अभाव म उत्पन्न होता है और प्रसाद के प्रमन्दशन म घोर आसक्ति की निन्दा मिलती है उसम तटस्थ होकर प्रत्यक वस्तु को देखने और भोगने की वृत्ति है।

प्रसाद के वाद कालक्रम की दृष्टि से निराला की प्रम सम्बधी रचनाएँ प्रकाशित हुई। इसम सव प्रथम जुही की कली अत्यधिक प्रसिद्ध हुई। द्विवेदी जी की सरस्वती म मुक्त छन्द क ही कारण नहो अपनी मुक्त शृङ्गार

भावना के कारण भी "जुही की कली" प्रकाशित नहीं की गई थी। जुही की कली में द्विवेदी युगीन दृष्टि को रीतिकालीनता की दुर्गन्धि भी दिखाई पड़ी थी। वस्तुतः द्विवेदीयुग के बाह्य नैतिकतावाद को "जुही की कली" में स्पष्टतः ललकारा गया था, एक चुनौती के रूप में इस कविता ने १६१६ ई० में द्विवेदीयुग की जड़ता पर प्रहार किया था। महादेवी ने लिखा है कि "स्थूल सौन्दर्य की निर्जीव आवृत्तियों से थके और कविता की परम्परागत नियम शृङ्खला से ऊबे हुए व्यक्तियों को फिर उन्हीं रेखाओं से बँधे स्थूल का न तो यथार्थ चित्रण रुचिकर ही हुआ और न उसका रूढ़िगत भाषा-आदर्श। उन्हें नवीन रूपरेखाओं की आवश्यकता थी जो छायावाद में पूर्ण हुई।" अन्यत्र उन्होंने लिखा है कि "खड़ीबोली की सौन्दर्यहीन इतिवृत्ति" दीर्घकाल से हमारे ऊपर वामनोन्मुख स्थूल सौन्दर्य के अधिकार को हिला भी न सकता था। परन्तु छायावाद ने उसे हटा कर अपने सम्पूर्ण प्राणवेग से प्रकृति और जीवन के सूक्ष्म सौन्दर्य को असंख्य रूप रङ्गों में अपनी भावना द्वारा सजीव करके उपस्थित किया।"

"जुही की कली" का यही योगदान था। उसमें रीतिकालीन स्थूल सौन्दर्य और प्रेम के स्थान पर सूक्ष्म सौन्दर्य का चित्रण है और दूसरी ओर "जुही की कली" में चित्रित सौन्दर्य "अनन्त" का अंचल भी स्पर्श करता करता दिखाई पड़ता है। 'व्यक्ति और विराट' का जो समन्वय इस कविता में मिलता है, इसकी ओर तात्कालिक स्थूल रूप रेखाओं को पसन्द करने वाले कवियों और आलोचकों का ध्यान नहीं गया। जुही की कली में यौवन की सारी उद्दामता एवं उष्मा अभिव्यक्त हो उठी है। साथ ही साथ कवि ने रति-क्रीड़ा के चित्र को एक प्रतीक के रूप में भी परिवर्तित कर दिया है। यही निराला की "रूप में अरूप" उपासना है। निराला ने 'जुही की कली' के मधुर-मिलन में "तमसो मा ज्योतिर्गमय" की ध्वनि सुनी थी।[1]

---

१. अभी-अभी हिन्दी साहित्य सम्मेलन में एक नेता ने उसे साहित्य कहा है जो मानव जाति को उठाता हो, यहाँ 'जुही की कली' में जो कला है, वह ऐसी है या नहीं, देख लीजिए, तमसो मा ज्योतिर्गमय की काव्य में उतारी हुई तस्वीर है, क्योंकि मन के अन्धकार के बाद है जागरण, आत्मपरिचय, प्रिय साक्षात्कार, मन का प्रकाश ......कली सोते से जगी हुई—प्रिय से मिली हुई खिली हुई पूर्ण मुक्ति के रूप में...... ।

—'निराला'

रूप और सौन्दर्य का निर्भय होकर सांकेतिक और सूक्ष्म चित्रण करना पुनः उस रूप में अरूप का प्रतिबिम्ब देखना, संयोग और वियोग में व्यक्तिगत उद्गारों का व्यक्त करके भी उनमें ब्रह्म के लिए आत्मा के संयोग और वियोग की प्रतिध्वनि उत्पन्न कर देना अर्थात् यथार्थ को प्रतीक में और प्रतीक को यथार्थ में बदल देना—इन प्रवृत्तियों से छायावाद का सौन्दर्य और प्रेम चित्रण रीतिकाल और द्विवेदी युग से भिन्न दिखाई पड़ता है। निराला रूप द्वारा अरूप की साधना कल्पना द्वारा अवश्य करते दिखाई पड़ते हैं। प्रेम का चित्रण जब ऐसा होगा कि वह पाठक या श्रोता के मन को केवल 'शरीर' और 'मन' तक ही सीमित न रखकर सर्वव्यापी प्रेमतत्त्व' के साथ सम्बद्ध कर देगा तब उसके ऐन्द्रिक अंश भी उत्तेजक नहीं रह सकते क्योंकि वे पाठक के ध्यान को नए अर्थों की ओर नई स्वत स्फूर्त अनुभूतियों की ओर मोड़ देते हैं। एक बार देख लेने पर छायावादी पद्यों का सौंदर्य समाप्त नहीं हो जाता ध्यान केंद्रित होने पर और वर्णित रूप का ध्यान करने पर वह रूप रेडियम की तरह अक्षय किरण फेंकता हुआ दिखाई पड़ने लगता है। अतः निराला के रूपचित्रणों में अद्भुत सांकेतिकता और विराटता मिलता है।

निराला की प्रेमिका विश्वव्यापी प्रेमिका है, यह संध्या में, तरङ्गों में, यमुना में, पुष्पों में, कलियों में अपना रूप बिखरती हुई कवि को मुग्ध करती हुई प्रतीत होती है। प्रसाद प्रारम्भिक काव्य में सौन्दर्य वर्णन द्वारा रूप और शिव को उतना ध्वनित नहीं कर सके जितना निराला कर सके हैं। प्रसाद में सूफियों जैसी मस्ती और सरसता अधिक है जब कि निराला में ब्रह्मवादियों जैसी उदात्तता अधिक है। नारी के चित्रण में एक सूक्ष्म तटस्थता निराला में मिलती है—

साहित्य के पृष्ठ में एक विकल नारी की मूर्ति तम के अनन्त प्रदेश में मृणालदण्ड की तरह अपने शत शत दलों को सकुचित सपरिति लेकर बाहर आकाश के देश में अपनी परिपूर्णता के साथ खिल पड़ती है, जन में प्राण संचरित हो जाते हैं, अरूप में भुवन मोहिनी ज्योति स्वरूपा नारी" (निराला)।

अतः निराला के प्रेम में मस्ती उतनी नहीं जितना प्रकाश है। मस्ती और खुमार प्रसाद जी में अधिक है, रूप को देखकर भीतर ही भीतर भुनभुन करने की प्रवृत्ति उनमें अधिक है, निराला उस रूप के अन्तर में और पारद की तरह चारों ओर विस्तृत प्रकाश का एकत्र करते हैं—यहाँ

नयनो का नयना से बन्धन।
काँपे थर-थर थर-थर युग तन।
समझ युग रागानुग भुक्ति रे।
ज्ञान परम मिल चरम युक्ति से।
सुन्दरता के अनुपम उक्ति के।
बाध हुए श्लोक पूर्ण का चरण।

निराला का प्रेम और सौन्दर्य सुन्दरता का पवित्र श्लोक है। निराला पर वेदना का प्रभाव सबसे अधिक था अत उन्होने सौन्दर्य और प्रेम के वर्णनो की ऐन्द्रिकता को अतीन्द्रियता मे रूप को अरूप मे ससीम को असीम म वासना को नान पावक म नारी को शक्ति मे लघु को विराट म व्यष्टि हृदय को समष्टि चेतना के अम्बुधि मे और स्थूल रेखाओ को सूक्ष्म रगो मे परिवर्तित कर दिया है अत उनके प्रेम मे लौकिकता का आभास भरा है दिव्यता के सागर मे फन की तरह वह ऊपर तैरती हुए अवश्य दिखाई पडती है किन्तु उसके नीचे ज्योति सागर का भरपूर प्रकाश लहरा रहा है। उनके चित्रो मे रङ्गीनी उतनी नही जितना प्रकाश है। पत जी म यह रङ्गीनी अधिक है। निराला जी आनन्द की सार्वत्रिक खोज और अभेद भाव से इन्द्रियो की परितृप्ति का पथ स्वीकार करते हुए भी वे मन बुद्धि की सात्विक प्ररणाओ से अधिक परिचालित हुए हैं।

सात्विक रूप—खुले केश अशेष शोभा भर रहे।
पृष्ठ ग्रीवा बाहु उर पर तर रहे।
बादलो म फिर ऊपर दिनकर रहे।
ज्योति की तन्वी तडित द्युति ने क्षमा माँगी।[1]

सम्मोहन और समर्पण—नयनो मे हेर प्रिये
मुझ तुमने ये उचन दिये।

---

[1] कौन तुम शुभ्र किरण वसना ?
सीखा केवल हसना, केवल हँसना !
चचल कसे रूपगर्व-थल।
तरल सदा बहती कल कल कल।
रूपराशि मे टलमल-टलमल।
कुन्दधवलदशना !

मेरी वीणा के तारो मे।
बँध हुए झँकारो मे
उर के हीरो के हारो मे
ज्योति अपार लिये।

मिलन का रहस्यमय वर्णन—चुम्बन चकित चतुर्दिक चचल।
हेर फर मुख कर बहु सुख छल।
कभी हास फिर त्रास सास बल।
उठ सरिता उमगी।

मधुर स्नेह के मेह प्रखरतर।
बरस गये रस निझर झरझर।
उगा अमर अकुर उर भीतर।
ससृति भीति भगी।

निराला की अस्फुट तथा ध्वन्यात्मक शैली मे लिखे हुए सौन्दय और प्रम के गीत आतरिक अनुराग से प्राणवन्त दिखाई पडते हैं कही कुण्ठा या दमित वासना का चिह्न नही मिलता। शरीर मन और आत्मा—तीनो स्तरो को एक ही प्रम भाव से पिरो कर जैसे कवि ने शरीर और मन का द्वन्द्व ही समाप्त कर दिया है। यही कारण है कि शब्द स्पश रूप रस और गध के वणन भी उत्तजक नही हो पाए। प्रम का पार्थिव रूप अपार्थिव के साथ सवत्र मिलकर चला है। ऐसा नही है कि पहले प्रम के पार्थिव रूप का उत्तजक वणन हो और फिर उसे अन्त मे अलौकिक का स्पश दे दिया जाय। अलौकिकता से वस्तुत शारीरिक सौन्दय मे स्वप्रकाशता आगई है—

तपा यौवन का दिनकर वाह प्रिय की सुछाँह सुखकर।
दूर अति दूर गगन विस्तार निकट अति निकट हृदय मे हार।
समाई उर सर मे मधुर विहार कर बनी चिन्तामणि भास्वर।

यौवन का दिनकर बिना किसी उष्णता को उद्दीप्ति किए बिना ही। किस प्रकार केवल 'भास्वरता का प्रेषक बनकर रह गया है यह निराला की विशेषता है। दुरूह शैली अस्फुट पदावली ध्वन्यात्मक और दाश निकता के कारण निराला का काव्य अधिक पढा नही गया किन्तु जो उसे पढता है वह यही कहता है कि पास ही है हीरे की खान, ढूढता अरे कहाँ नादान !"

पन्त जी की 'प्रेम भावना' उनके चिन्तन के साथ-साथ धीरे-धीरे विकसित हुई है। द्विवेदीयुग की 'निषेधवादिता' और रीतिकाल के स्थूल प्रेम के विरुद्ध पन्त जी ने शारीरिक आकर्षण को मुक्त होकर वाणी देने पर भी, मानसिक प्रेम का वर्णन अधिक किया है।

अनिल सा लोक लोक मे।
हर्ष मे और शोक मे।
कहाँ नही है प्रेम, सास सा सबके उर मे।

प्रेम की भावना को इतने व्यापक रूप मे अपनाने के पूर्व पन्त जी ने 'ग्रन्थि' मे अपनी प्रेमिका के प्रणय से वचित होने की स्पष्ट कथा भी कही है। 'ग्रन्थि' मे कवि का प्रेम आदर्शवाद से युक्त न होकर लौकिक है। उसमे समर्पण और प्रेमिका के सौन्दर्य से सम्मोहित होने तथा उससे वचित होने पर विरह-ताप का वर्णन किया गया है। किन्तु 'वीणा' मे अपने को 'बालिका' रूप मे चित्रित कर कवि ने प्रकृति को जिस विस्मय के भाव से देखा था, वह कवि को प्रकृति-छवि मे इतना लीन कर देता है कि वह अपनी बाला के बाल-जाल मे लोचनो को उलझा रखने से बाज आता है—

छोड द्रुमो की मृदु छाया।
तोड प्रकृति से भी माया।
बाले ! तेरे बाल जाल मे कैसे उलझा लूँ लोचन ?
छोड अभी से इस जग को !

अत पन्त का 'प्रेम' प्रकृति-प्रेम बन जाता है। फिर भी 'पल्लव' मे 'आँसू' और 'उच्छ्वास' जैसी रचनाओ मे पुरानी उद्दीपन पद्धति को भी अपनाकर 'विरह' का वर्णन किया गया है, जिसमे 'प्रसाद' की तरह "वेदना की विवृति" बहुत अधिक हो गई है। कवि ने काव्य की प्रेरणा का स्रोत 'वियोग' मे मान लिया है।[1] सयोग के चित्र भी 'पल्लव' मे मिलते हैं जिसमे कुसमो से सज्जित सरिता के तट से सरकती हुई लहर के समान प्रेमिका की "छपी सी, पी सी मृदु मुस्कान" के मधुर चित्र है। प्रेमिका के

---

१. वियोगी होगा पहला कवि, आह से निकला होगा गान।
उमड कर आँखों से चुपचाप, बही होगी कविता अनजान।

भोग्या थी उसके स्वतन्त्र व्यक्तित्व का महत्त्व अधिक न था। नारियो का अपहरण एक शान समझी जाती थी (विशेषकर क्षत्रियो म) अथवा सामान्यत उनका पिताओ द्वारा दान होता था। बहुविवाह की प्रथा प्रम के विरुद्ध पुरुष-स्वाथ की घोषणा करती थी। एसे समाज म नारी के प्रम म वह गरिमा स्वतन्त्रता और स्वाभिमान नही मिल सकता था जो छायावादी काव्य म मिलता है। नारी क शारीरिक सौन्दय के वणना म बिना किसी लज्जा के अश्लील सकेत रहते थे। इसके विरुद्ध द्विवेदीयुग न शारीरिक सौन्दय की अवहेलना की अत पन्त जी न नए ढग का सौन्दय चित्रण किया जो आधुनिकता के गौरव के अधिक अनुकूल था—

अरुण अधरो का पल्लव प्रात।
मोतियो सा हिलता हिमहास।
इन्द्रधनुषी पट से ढग गात।
बाल विद्युत का पावस लास।
हृदय मे खिल उठता तत्काल।
अधखिले अगो का मधुमास।
तुम्हारी छवि का कर अनुमान।
प्रिय प्राणो की प्राण!

पन्त जी ने प्रमिका के शारीरिक सौन्दय को सकल ऐश्वर्यों की सधान पावन गगा स्नान और त्रिवेणी की लहरो का गान कहकर नारी सौन्दय की महिमा को सम्मानित किया है। अत छायावादियो क शत्रु जब छायावाद पर रीतिकालीनता का आक्षप करते हैं तब वे भूल जाते हैं कि जिसे वह रीतिकालीन कहते हैं वह वस्तुत रीतिकाल के विरुद्ध है। इसका अथ यह नही है कि कही भी छायावाद म रीतिकालीनता नही है। द्विवेदीयुग के विरोध म तथा मनोविज्ञान के दमित कामवासना के सिद्धान्त के अनुसार 'मिलन और सम्भोग' को स्वाभाविक सिद्ध करने के प्रयत्न म कही-कही चित्र उत्तजक भी हो गए हैं।[1] किन्तु सामान्यत उक्त सिद्धान्त सही है।

---

१ तुम मुग्धा थीं अति भावप्रवण
उकसे थे अमियों से उरोज।
चचल प्रगल्भ हसमुख उदार
म सलज तुम्हें था रहा खोज।

पन्तजी ने प्रसाद और निराला की तरह नारी को सूक्ष्मसत्ता के रूप म भी परिणत किया है। छायावाद की नारी पुरुष के कध से कधा भिडा कर जीवन के वास्तविक सघप म खून-पसीना एक करने वाली नारी ह्नही है छायावादियो ने उसे इस रूप मे दखा है कि जसे वह किसी अदभुत लोक से अवतरित इन्द्रजालमयी सुन्दरी हो। छायावाद म इसीलिए उसे एक रहस्यमय भावना मे आवृत कर प्रस्तुत किया गया है। कही वह पहेली सी कही वह सूक्ष्म प्ररणादात्री सी और कही कही वह परमब्रह्म सदृश सवन व्याप्त सूक्ष्म सत्ता के रूप म प्रतिष्ठित की गई है। रोमानी कवि की विशेषता ही यह है कि वह प्रत्यक वस्तु को कौतूहल की दृष्टि से देखता है। रोज देखी हुई वस्तु को भी वह इस दृष्टि से देखता है जैसे वह आज ही प्रथम वार उसके सम्मुख उपस्थित हुई हो। सौदय का एक लक्षण क्षण क्षण नवता माना गया है। विस्मय मुग्ध होकर छायावादी कवि नारी पर इस क्षणे क्षण नवता' का आरोप करके उसके सौदय और प्यार का अन्त नही पाता। 'नवता' और कौतूहल के आरोप से नारी अक्षय सौदय की निधि बन गई है। अत छायावादी इस सम्मोहन' का गायक है। उसम भोगभावना सौन्दय को सदा देखते रहने और उम सम्मोहन मे ही मुग्ध रहने की प्रवृत्ति से मन के ऊपरी स्तर पर नही आ पाई जसा कि अचल और नरेन्द्र जसे परवर्ती छायावादियो म दिखाई पडता है। सौदय के आराधक छायावादी कवि प्रसाद निराला और पन्त के लिए नारी इसीलिए आराध्या बन गई है, परवर्ती कवियो ने इस पवित्रता के विरुद्ध क्रान्ति की है इसे ही मासलवाद कहा जाता है। छायावाद म इसके विरुद्ध नारी के मानसिक प्रम का गौरव स्वीकृत है तथा उसका अमूर्तीकरण भी बहुत किया गया है —

निखिल कल्पनामय अयि अप्सरि !
अखिल विस्मयाकार !
अकथ अलौकिक अमर अगोचर
भावो की आधार

तुमने अधरो पर धरे अधर
मने कोमल वपु भरा गोद
था आत्मसमपण सरल मधुर
मिल गए सहज मारुतामोद।

अथवा

वह खडी दृग के सम्मुख
सब रूप रेख रग ओझल।
अनुभूतिमात्र सी उर मे
आभास शात शुचि उज्जवल।

प्रसाद जी के यहा भी नारी को कुहुकमयी रूप मे देखा गया है मानो वह अलौकिक इन्द्रजाल और सूक्ष्म स्पन्दन मात्र हो।[1]

किन्तु यह स्मरणीय है कि छायावाद मे नारी का यह अमूर्तीकरण सौन्दयसाधना पर आधारित है। हम कह चुके हैं कि छायावाद सौन्दय शोध पर आश्रित है। सौन्दय चित्रण मे नारी के स्थूल सौन्दय का वणन बहुत अधिक हो चुका था अत सौन्दय की सूक्ष्म रेखाओ का प्रयोग करके प्रमिका को मात्र अनुभूति के रूप म परिणित करने का प्रयत्न भी छायावाद मे किया गया है। यह नही कहा जा सकता कि यह सूक्ष्मीकरण सवत्र दमित वासना का परिणाम है क्योकि यह तो सौन्दय चित्रण की एक स्वीकृति पद्धति मात्र है जो योरोप के स्वच्छन्दतावादी काव्य मे बराबर मिलती है। सौन्दय-सम्मोहित व्यक्ति को तब तक सतोष ही नही होता जब तक वह सुदर का आदर्शीकरण अथवा अलौकिकीकरण न कर दे सीमित को असीमित न बना दे लहर को अम्बुधि के रूप मे और अम्बुधि को लहर के रूप मे बार-बार कल्पित करके देखने मे एक नया सौन्दय बोध जन्म लेता है यही प्रवृत्ति छायावाद म दिखाइ पडती है।

तुम स्पशहीन अनुभव सी
नन्दन तमाल के तल मे —आसू प्रसाद

यह अमूर्तीकरण सवत्र नही है पन्तजी मे झरना के झिलमिल हारो और प्रसाद जी मे नील परिधान बीच मदुल अधखुले अगो आदि के वणन भी कम नही हैं। छायावाद मे प्रमिका का अलौकिकीकरण अतिशयीकरण अमूत्तन अथवा सम्मूत्तन—सब कुछ नारी को सौन्दय का सवश्रेष्ठ आलम्बन मान लेने के कारण मिलता है। नारी सुन्दरतम कृति है यह मान लेने पर प्रकृति को कामिनी—के रूप मे ही चित्रित किया गया है। निराला की सध्या-सुन्दरी

---

१ कौन हो तुम विश्वमाया कुहुक सी साकार।
प्राणसत्ता के मनोहर भेद सी सुकुमार

तरगो के प्रति महादेवी के रूपसि तेरे घन केश पाश आदि कृतियाँ प्रमाण हैं। पन्त जी नारी के सम्मोहन और सौदय के बहुत बड गायक हैं। निराला की तरह दार्शनिक दुरूहता न होने से उनके रमणीयता के चित्रण अधिक प्रचलित हुए। मान्व-सौन्दय का गायन पाप नही है बशर्ते कि वह कुत्सा की ओर न ले जाय पन्तजी अपनी स्वाभाविक शालीनता और शोभन के प्रति आसक्ति के कारण कुत्सा से बच सके हैं। आज रहने दो यह गृह काज जैसी रचना म भी।

छायावाद म नारी केवल कौतूहल की वस्तु नही है वह पुरुष के व्यक्तित्व की पूर्ति के रूप म भी चित्रित हुई है। वस्तुत नारी के प्रति आकषण दो व्यक्तित्वा की परस्पर पूर्ति की निसगगत कामना के कारण उत्पन्न होता है। प्रसाद जी ने इसीलिए नारी को केवल श्रद्धा कहा था और पन्त जी ने उस सहचरी के अतिरिक्त देवि और मा तक कहा है। पुरुष म जिन गुणा का अभाव है उसे नारी पूर्ण करती है।[1]

पन्त जी ने प्रेम के आकषण और विरह के वरदान का वणन अधिक किया है और अन्य छायावादिया की तरह सववाद के आधार पर नारी को प्रतिष्ठित कर लिया है।[2] पन्तजी के काव्य म नारी प्रकृति और परमसत्ता की एकता की रक्षा हुई है। सौन्दय का जम एक त्रिकोण बन गया हो जिसके मध्य म कवि है जो तीना बिन्दुआ को अपनी अनुभूति के द्वारा एक करता हुआ तृप्त नही होता—

नारी के नैसर्गिक आकषण क प्रति कवि पन्त की रति उनके नवीन दार्शनिक काव्य म भी निरन्तरता प्राप्त करती है। जगत् को नारीमय देखने

---

[1] तुम्हारी सेवा म अनजान, हृदय है मेरा अतर्धान।
देवि! माँ! सहचरि! प्राण!

[2] बिन्दु मे थीं तुम सिन्धु अनत, एक स्वर मे समस्त सगीत।

की प्रवत्ति के पीछ नारी की महिमा और उसका सौ दय ही अधिक है भोग की उत्कट लालसा प त जी मे बहुत कम मिलती है। अत इस दष्टि से पन्त जी ने प्रारम्भ मे धरा है सिर पर मैंने देवि तुम्हारा यह स्वर्गिक श्रृगार की जो प्रतिज्ञा की थी उसे वद्धावस्था म भी निभाया है। चि तन की दष्टि से प्रसाद जसी एकता (consistency) न मिलने पर भी पन्त जी म सौ दय शोध की निर तरता अवश्य मिलती है।

एक दो उदाहरण भी पर्याप्त होगे—

लौ यह आई विश्वोदय पर
स्वणकलश वक्षोजो पर धर
अधविवन कर ज्योति द्वार पर
ज्याति रश्मिया की अजलिभर। —स्वण किरण

अथवा

उठा इ द्र प्रभ धन अवगु ण्ठन
च द्रमुखी ऋतु वारिज लोचन
सरित पुलिन पर करती विचरण
सद्यस्नात कृश शुभ पीत अग
कु द मिलित स्मिति गुजित यह रग
सौम्य सलज चिर प्रकृति अक में
पली मोहती मुग्धा जग मन। —उत्तरा

महादेवी की प्रम भावना का रूप निश्चित है। प तजी की ही तरह नारी महादेवी के लिए भी अनय और अनुपम सौ दय की प्रतीक है अत प्रकृति वणनो मे भी नारी सुषमा का ही आरोप महादेवी के काव्य मे मिलता है।

यदि सौन्दय के प्रतीक के रूप मे नारी को छायावाद म स्वीकृत न किया गया होता तो कम से कम महादेवी तो नारी हैं उन्होंने प्रकृति पर नारी का आराप क्या किया ? 'दमित वासना' के सिद्धान्त से महादेवी के नारीवाद' को नहीं समझाया जा सकता। तुलसीदास ने लिखा है कि मोहै न नारि नारि के रूपा। उनकी बात भक्ति और माया के विषय म तो ठीक है परन्तु स्वय नारी नारी के रूप को ही अधिक सुन्दर मानती है अन्यथा प्रकृति पर महादेवी को पुरुष का आरोप करना चाहिए था। नारी म पुरुष की परपता के प्रति प्राकृतिक आकषण दूसरे रूपो म व्यक्त होना है यथा महादेवी के रहस्यवाद म विरह वणना म पुरुष के प्रति प्रम की ही व्यजना है किन्तु प्रकृति चित्रण म सवत्र 'नारीवाद ही मिलता है। इसका कारण यह है कि प्राचीनतम

काल से लेकर आज तक नारी के सौंदर्य को एक यथार्थ सत्य के रूप मे स्वीकार किया गया है। अत महिलाएँ भी मानवीकरण के समय नारी की छवियो का ही आरोप करती हैं। नारी मे सौंदय के साथ कोमलता का गुण सौदर्य को आकपक बनाता है। उदात्त वस्तु मे भय के मिश्रण के कारण महादेवी ने उदात्त पदार्थों का चित्रण बहुत कम किया है अत छायावाद की सौन्दय साधना का मापदण्ड नारी है—सवत्र उसी की छवियो का अकन है। 'छविअकन' मे पर्याप्त तटस्थता बिना छायावादी काव्य मे इतनी सुदर मूर्तियो का चित्रण सम्भव ही नही था अत अतृप्त वासना का आक्षप काफी दूर तक असत्य है यद्यपि उसमे सत्य का सीमित अश अवश्य है—

रूपसि तरा घन केश पाश !
श्यामल श्यामल कोमल कोमल
लहराता सुरभित केशपाश
नभगगा की रजत धार मे
धो आई क्या इह रात
कम्पित हैं तेरे सजल अङ्ग
सिहरा सा तन है सघ्नात
भीगी अलको के छोरा से
चूती बूँदें कर विविध लास।

अतृप्त काम वासना यहा-वहा है यहाँ तो तटस्थ होकर छवि का अकन किया गया है।

महादेवी का सौदय चित्रण अय छायावादिया की ही पद्धति पर है यद्यपि उसमे पुरुष कवियो जैसी स्फुटता और रिरिसा नही है। किंतु प्रम भाव के वणन म महादेवी अपने असफल प्रम के कारण रहस्यवाद का माग पकडती हैं उसम भी वदना और दुख को एक पवित्र साधना' के रूप मे अपनाया गया है। मिलन व्यक्ति को सकुचित बनाता है और विरह और दुख उसे उदार बनाता है दुख के कारण व्यक्ति सम्पूण मानवता के साथ एकता स्थापित कर लेता है। दुखी व्यक्ति अधिक सवेदनशील और करुणापूण देखे जाते हैं अत महादेवी ने गौतम बुद्ध से दुखवाद से प्ररणा लेकर एक कल्पनात्मक साधना पद्धति आविष्कृत कर ली है। मीरा की तरह वह अपनी विरह-व्यथा मे तडपना ही जीवन का लक्ष्य मानती हैं। विरह के पग को धीमा करके गतव्य तक न पहुँच कर, चलते चलते ही मिट जाना चाहती हैं पथ की सीमा पाकर क्या होगा—

चलते चलते मिट जाऊँ पाऊँ न पथ की सीमा।

अथवा

मेरे छोटे जीवन में देना न तृप्ति के कण भर।
रहने दो प्यासी आँखें भरती आँसू के सागर।

अथवा

मैं नीर भरी दुख की बदली।

अथवा

आज नयन क्या आते भर भर।
पिक की मधुमय वंशी बोली
नाच उठी सुन अलिनी भोली।
मृदुल अरुणधर दर्पण सा सर
आज रही निशि दृग इन्दीवर
आज नयन क्या आते भर भर।

महादेवी का प्रेम-वर्णन इस सत्य की घोषणा करता है कि पूँजीवादी व्यवस्था आ जाने पर भी नारी को वास्तविक स्वच्छंदता प्राप्त नहीं होती। भारतवर्ष में तो पूँजीवाद का विषम और अपर्याप्त विकास हुआ है अत पूँजीवादी बन्धनों के साथ यहाँ सामंती समाज के बन्धन भी साथ-साथ चल रहे हैं। पूँजीवाद में सौन्दर्य विलासिता का प्रेरक बन जाता है और नारी का प्रेम मुद्रा पर आधारित हो जाता है। महादेवी को पुरुष समाज की निष्ठुरता का स्वयं सामना करना पड़ा है। विद्योत्तमा होकर मूर्ख कालिदासों से अपमानित होना पड़ा अत अपने जीवन की कटुता असफलता आदि को उन्होंने चिरंतन सत्य के माध्यम से व्यक्त किया है। महादेवी के काव्य में प्रतिशोध और परिवर्तन की भावना नहीं अपितु स्वयंवेदना भारवहन करते चलने की प्रवृत्ति है। उनके काव्य की एकरसता उनके जीवन की एकरसता की प्रतिध्वनि मात्र है।

प्रथम 'श्रमविभाजन' सर्वप्रथम स्त्री और पुरुष के बीच हुआ। सन्तान का भार ढोने के कारण नारी को उस पुरुष के प्रधान युग में क्रमश हीन स्थिति स्वीकार करनी पड़ी थी। आदिम समाजों में तो वह घर बाहर—सभी जगह अधिष्ठात्री रही परन्तु तत्पश्चात् सभ्यता का सम्पूर्ण इतिहास पुरुष द्वारा नारी के दमन और शोषण की कहानी है। सामंतवादी समाज में नारी 'भार्या' रही तो आधुनिक युग में—पूँजीवादी विकास के युग में—नारी फैशन और विलासिता की प्रतिमा मात्र रह गई। जो अधिकार उसे मिले, उनसे सामंत-

वादी समाज के बन्धनों से कुछ मुक्ति मिली, किन्तु 'आर्थिक अधिकार' केवल उसे कृत्रिम रूप में ही प्राप्त हुए। वर्गवादी समाज हिंसा पर आधारित होता ही है और जब तक हिंसा है तब तक 'नारी' अपने कोमल गुणों के कारण हीन ही मानी जाएगी। युवावस्था में उसका मूल्य केवल पुरुषों का मन बहलाव के लिए रह जाता है। पुरुष की बर्बरता इधर बढ़ी ही है। इस विकट स्थिति का वर्णन महादेवी ने 'शृंखला की कड़ियाँ' में किया है अतः महादेवी का रहस्य की प्रेम निवेदन विरह और अश्रुप्रवाह आधुनिक युग के 'नारी समाज' का आर्त्त रोदन मात्र है। मीरा जिस तरह मध्ययुग के नारी समाज का प्रतिनिधित्व करती है, उसी प्रकार 'महादेवी सामंतवादी पूँजीवादी समाज के अत्याचारों के विरुद्ध अपनी करुण कथा सुनाती है। इस लोक का 'त्रास', यथार्थ समाधान के अभाव में, पारलौकिक प्रेम में बदल जाता है। महादेवी 'रहस्यवादी' काव्य में भी जो 'समर्पण' नहीं कर सकीं, उसका कारण पूँजीवादी समाज में नारी की अपने 'व्यक्तित्व' के प्रति जागरूकता है। मध्ययुग की 'मीराएँ' पातिव्रत के सिद्धान्त को स्वीकार करके चली थीं अतः उनमें 'समर्पण' होने के कारण, उनका काव्य 'वास्तविक रहस्यवाद' बन गया है, इसके विपरीत महादेवी का प्रेम-वर्णन, व्यक्तिवादी प्रवृत्ति के कारण सर्वत्र पुरुष-समाज की 'बर्बरता की कथा कहता है। पुरुष के प्रति समर्पण सम्भव न होने से आदि पुरुष—ब्रह्म के प्रति भी समर्पण सम्भव नहीं हुआ, केवल उसके प्रति आसक्ति की व्यंजना से यह ध्वनित होता है कि आधुनिका 'सहज जीवन' व्यतीत करना चाहती है किन्तु पुरुषों का पूँजी पर आधारित समाज यह अधिकार उन्हें नहीं देता है। वर्गहीन समाज में ही 'नारी' आत्मनिर्भर होकर अपना अस्तित्व कायम रख सकती है—यह महादेवी के काव्य का रहस्य है।

प्रेमी के प्रति आसक्ति—

> मुस्काता संकेत भरा नभ—अलि, क्या प्रिय आने वाले हैं।
> विद्युत के चल स्वर्ण पाश में, हँस हँस देता रोता जलधर।
> अपने मृदु मानस की ज्वाला, गीतों से लहराता सागर।
> दिन निशि को देती, निशि दिन को कनक रजत के मधु प्याले हैं।

अथवा

> सिहर-सिहर उठता, सरिता, उर
> खुल-खुल पड़ते सुमन सुधा भर
> मचल-मचल जाते पल फिर-फिर

सुन पिय की पदचाप हो गई—
पुलकित यह अवनी ।

व्यक्तिवाद—क्या अमरो का लोक मिलेगा
तेरी करुणा का उपहार।
रहने दो यह देव अरे
यह मेरा मिटने का अधिकार।

अथवा

उनसे कैसे छोटापन मेरा यह भिक्षुक जीवन।
उनमे अनन्त करुणा है मुझमे असीम सूनापन।

अथवा

अपने इस सूनेपन की मैं हूँ रानी मतवाली।
प्राणो का दीप जलाकर करती रहती दीवानी।

महादेवी की प्रम भावना इस प्रकार सवथा लौकिक है उसका अलौकिक रूप मात्र आवरण है। अप्रत्यक्ष प्रियतम प्रत्यक्ष प्रियतम के विषय म अपनी भावनाओ को व्यक्त करने का माध्यम मात्र है। इस प्रम मे समपण नही द्वन्द्व है। अह का विसजन नही अह की अस्तित्व रक्षा का जागरूक प्रयत्न है। सौन्दय अकन मे जो साकेतिकता है वह भी इसलिए कि महादेवी अपने हृदय का स्पष्टत प्रदशन नही करना चाहती क्योकि उन्हे सवत्र अपमान और उपेक्षा का भय है अत प्रम के आकषणो को अनुभव करके भी अस्तित्व को अलग रखना चाहती हैं। जब तक प्रिय दूर है वह पास आने की मनुहार करेंगी किन्तु यदि प्रिय चाहे भी तो भी पास आने पर प्रिय से अलग भाग कर अपने सूनेपन की आराधना करने लगेंगी। यह विचित्र लगता है किन्तु यह उस व्यक्ति को स्वाभाविक लगेगा जो एक तो द्विवेदीयुग की कठोर नैतिकता से परिचित है (महादेवी के काव्य म निजी सुख दुख की व्यजना के रूप मे इस कठोर नैतिकता के विरुद्ध विद्रोह है।) और दूसरी ओर जो पूँजीवादी शिक्षा-सस्थाओ सस्थाओ सम्मेलनो आदि म ऊपर से प्रतीत होने वाली स्वतन्त्रता समानता और बधुत्व की रिक्तता और कृत्रिमता से परिचित है। किसी से भी प्रम करने की स्वतन्त्रता देकर पूँजीवादी व्यवस्था समाज म एसी स्वतन्त्रता के विरुद्ध चुपचाप घृणा फैलाती रहती है। यह नारी को आर्थिक बलिवेदी पर बलिदान करने के लिए अपने को बचने क लिए विवश करके भी ऊपर से यही घोषणा करती है कि सब स्वतन्त्र हैं। बीसवी शती के इन कृत्रिम नैतिक और

सामाजिक बधनो को तोडन क लिए पूँजीवादी व्यवस्था को ही बदलना हागा यह तथ्य महादेवी के सम्मुख कभी स्पष्ट नहा हुआ और न अपने दु खवाद के कारण दु ख के समूल नाश के निए व्यावहारिक उपायो मे उन्ह श्रद्धा ही रही अत उनके प्रमकाव्य मे अरण्यरोदन अक्षय चीत्कार आत्मपीडन आदि स्वत आ गया है। छायावादियो म प्रम का जितना करुण और कातर रूप महादेवी म मिनता है वह अयन्त दुलभ है। महादेवी के काव्य को पढकर हम उनके साथ तमय नही होते अपितु हमारे मन मे करुणा और सहानुभूति उत्पन्न हो जाती है और पुरुष म इस प्रकार के उच्चभाव उत्पन्न करने म सफल हाने पर महादेवी का उद्देश्य एक सीमा तक पूण हो जाता है वह दुर्गा नही बनना चाहती दीप शिखा बनना चाहती है जो स्वय जलती है परन्तु दूसरो को प्रकाश भी देती है। इससे अधिक वह कुछ नहा चाहती और एक कवियित्री को इतनी उपलब्धि के लिए धयवाद ही देना चाहिए महादेवी पर जिस कुत्सा और सकीणता की वर्षा की गई है वह सामाजिक परिस्थितिया को न समझने के कारण ही हुई है अथवा उन समष्टिवादियो द्वारा जो महादेवी से बहुत अधिक आशा रखते थे।

छायावाद के परवर्ती कवियो मे अचल नरेन्द्र और बच्चन का उल्लेख आवश्यक है। सन ३० के बाद के छायावादी काव्य म उक्त कवि प्रेम और नारी-सौदय के चित्रण म नारी की महिमा और गौरव की रक्षा नही कर सके। छायावादियो ने नारी को ब्रह्ममय बनाकर लगता है इतना उच्चस्तर दे दिया कि उसके साथ प्लेटोनिक आदशवादी प्रम इन परवर्ती कवियो को पसन्द नही आया। शोभा शालीनता और सुरुचि को अति की सीमा पर पहुँचते देखकर जैसे इन परवर्ती कविया ने नारी के साथ शारीरिक सम्बध के प्रति बड चार छायावादियो द्वारा उपेक्षा अनुभव की अत जिस प्रकार योरोप म रोमाटिक कवियो के बाद डिकेडेन्टस का काव्य आया उसी प्रकार हिदी म अचल नरेन्द्र और बच्चन का काव्य प्रस्तुत हुआ। जिस प्रकार प्रसाद पत निराला व महादेवी के काव्य और योरोप के स्वच्छन्दतावादी आदोलन मे सादृश्य होने पर भारतीय स्वच्छन्दतावाद की अपनी विशेषताएँ हैं उसी प्रकार बच्चन अचल और नरेन्द्र के काव्य की अपनी विशेषताए हैं।

इन कवियो का मूल उद्देश्य तो यह था कि नारी-पुरुष के सम्बध का जो वासनात्मक आधार है, उसे स्वीकार किया जाय। पत जी ने भी प्रगति वादी रचनाओ म 'प्रिया क अधरो पर चुम्बन अकित न कर सकने वाली नैतिकता' का विरोध किया है। किन्तु इन कवियो ने सहज वासना को इतना

अधिक महत्त्व दिया तथा मानसिक प्रेम की इतनी उपेक्षा की कि उनकी क्रांति छायावाद की महनीय और शालीन रुचि को कुत्सित बनाने लगी। इनकी क्रांति उत्तरदायित्वहीन प्रेम और विलास की ओर उन्मुख करने वाली है। राजनैतिक बंधनों के विरुद्ध जिस प्रकार इन कवियों का अराजकतावादी स्वर है उसी प्रकार प्रेम के क्षेत्र में भी अराजकतावादी प्रवृत्ति इनकी विशेषता है। ये कवि भी यह नहीं समझ सके कि प्रेम सम्बन्ध की स्थापना आर्थिक व्यवस्था से सम्बन्धित है बिना उसके बदले नई मान्यताओं का विकास सम्भव नहीं है। न तो ये कवि वास्तविक क्रान्ति के लिए सर्वहारा वर्ग के साथ तादात्म्य करना चाहते हैं जहां यौन सम्बन्ध अब भी मध्यवर्ग से अधिक स्वाभाविक हैं और न ये कवि पूँजीपति बनकर मनमाना विलास कर पाए अतः दोनों ओर से कट कर अपने अहं की ही अभिव्यक्ति करने लगे। छायावाद में ललकार नहीं है कल्पना का लोक बनाकर उसमें रमे रहने की प्रवृत्ति है किन्तु इन कवियों में आत्मप्रदर्शन गर्जन-तर्जन अहं पोषण और अपनी स्वच्छाचारी मनोवृत्ति को निर्भय होकर व्यक्त करने की प्रवृत्ति है। भगवतीचरण वर्मा की रचनाएँ भी इन कवियों के साथ साथ चलती हैं। पैरों के नीचे क्रांतिकारी वर्गों का आधार न होने के कारण ये कवि अपने ऊपर शक्ति के आरोप मात्र से यह समझ बैठे कि उनके गर्जन-तर्जन से क्रांति हो जाएगी। नग्नता अश्लीलता आत्मरति और दम्भ के प्रदर्शन से समाज बदल जाएगा। या यह कि मन चाहे प्रेम सम्बन्ध कायम हो जाएंगे—

उच्छृंखलता—प्रीति तराने गाने वाले साध्य विहग से हम चंचल।
खोल चला अस्तस्त अम्बर नग्न माधुरी उच्छृंखल।
यह मुहूर्त शुभ पर्व पला है इसे मना न आज सखी।
सागर सीमा तोड़ चला अब सरि की कैसी लाज सखी।

अथवा

आज पीत ही चलो पी लो चलो उन्माद वालो।
जग के इन पुण्य विचारों में आग लगादें झंझा सी।

प्रारम्भिक छायावाद के पुण्यविचारों में आग लगाने वाले कवियों में प्रमुख हैं बच्चन। हिन्दी में उनका प्रेम काव्य मांसलवाद के नाम से प्रसिद्ध हुआ है। बच्चन प्रारम्भ में सुरा सुन्दरी के—हालावादी गीत गाकर सम्मुख आए किन्तु हालावाद में पवित्रता की सिफारिश अधिक है चित्रण कम है।

इसके अतिरिक्त बच्चन ने सुरा सुन्दरी सुरालय सागिर को प्रतीकों के रूप में अधिक प्रयुक्त किया है अत प्रत्यक्ष उत्तेजक मस्ती के साथ-साथ एक दूसरा स्वस्थ अर्थ भी ध्वनित होता चलता है अत बच्चन अधिक जनप्रिय हुए। किन्तु अचल ने उत्तेजक चित्र देने प्रारम्भ किए—

> फूर उसास प्रदोलित वक्षस्थल जब उठ उठ जाता।
> पावक सी इस रूपघटा को कौन विलोक अघाता ?
> गमक रही मद भरी मंजरी सी मधुमूर्ति नवेली।
> गोरे-गोरे अंग में हाला हालाहाल से अलबेली।
> कहा मिलेगा फिर यह बाला—प्यारा यौवन ?

रमणेच्छा यदि अप्रत्यक्ष भी होती तब भी यह काव्य सह्य हो सकता था किन्तु यहा रमणेच्छा को अभिधावादी पद्धति पर घोषित किया गया है। छायावाद की अप्रत्यक्ष प्रतीकात्मक और रहस्यमय अभिव्यक्ति के विरुद्ध इन कवियों का उद्देश्य यह था कि काव्य सरल हो किन्तु वण्यवस्तु के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण न रहने के कारण वह सरलता ही अभिशाप बन गई।

बलात्कार प्रियता—आज सुहाग हरूँ मैं किसका किसका लूटू यौवन।
किस परदेशी का बन्दी कर सफल करूँ यह वेदन।

आशिकाना लहजा—आज अमा पूरनिमा का यह मगन दिखलाओ।
हँस-हँस कर कण-कण लहराओ हियरा मस्त बनाओ।
इन सूनी घड़ियों मे तुमको हेर रहा मैं पापी।

प्रकृति में भी अचल ने अपनी तृष्णा का आरोप किया है यहा छायावादी महामयी, सुन्दरता की देवी का प्रकृति पर आरोप नहा है अपितु कवि का ध्यान यहाँ भी सम्भोग पर ही रहता है —

> अरी पगली मदमस्त बयार चली किसस करने अभिसार ?

छायावादी रेशमी आवरणा म स्थित सौन्दय की झलक देखा करते थे। अचल को यह पाखंड लगता है। उन्होंने नग्नवाद के समर्थन म कहा है कि नग्न उत्पन्न होते हैं अत नग्नता एक मानवीय मूल्य है—

> सभी यहाँ कफन लपेटे जाते किन्तु नग्न आते।
> वहाँ सुना सब यौवन अनुभव रंग रूप सब छिन जाते।

अत भोग पिपासा की घोषणा ही, मासलवाद की विशेषता है—

एक पल के ही दरस मे, जग उठी तृष्णा अधर मे।
जल रहा परितप्त अगो मे पिपासाकुल पुजारी।
कौन जलाता रन्ध्र रन्ध्र मे उच्छल रति-गति रस की।
अभी नही सतोप अभी तो अमित पिपासा बाकी।

अचल का उद्देश्य नवीन नैतिकता की स्थापना है जिसमे 'तृष्णावाद या भागवाद की स्वीकृति हो-दूसरे शब्दो मे यही अराजकतावाद है।

अचल के भोगवाद म प्रम क लिए कहीं स्थान नही दिखाई पडता।

वासना के गान गाते, कवि चला सूनी डगर मे।

प० नन्ददुलारे वाजपेयी ने अपणजता की भूमिका म व्यथ ही क्रान्तिकारी कहकर अचल की इस प्रवृत्ति की प्रशसा की है। भगवतचरण वर्मा म आत्मरति और स्व पर शक्ति का आरोप अधिक मिलता है—

मैं सागर का गजन हूँ, तुम सरिता की रँगरेली।
मैं जीवन का विप्लव हूँ, तुम उसकी मौन पहेली।[1]

वर्मा जी दीवानगी को बहुत पसद करने वाले कविया मे से रहे हैं। यह दीवानगी उत्तरदायित्व से रहित केवल आत्मतृप्ति का माध्यम मात्र है। वर्मा जी के लिए जगत् भ्रम है गति भ्रम है प्रगति भ्रम है यदि कुछ सत्य है तो बस केवल मैं। स्व का ऐसा प्रचार अन्य किसी कवि म नही मिलता। शम्भूनाथसिंह ने यह ठीक ही लिखा है कि यह 'व्यक्तिवाद (Individualism) नहीं है शुद्ध स्ववाद' (Personalism) है। व्यक्तिवाद सामती वधना के विरुद्ध प्रगतिशील तत्त्व बनकर आता है किन्तु 'स्ववाद' पूँजीवाद की विकृति का घोषक है—

हम दीवानो की क्या हस्ती, कल आज यहाँ कल वहाँ चले।
मस्ती का आलम झूम चले, हम धूल उडाते जिधर चले।

अराजकतावाद लक्ष्यहीन भ्रान्ति का अन्त सवथा निराशा और अन्तहीन वेदना म होता है। बच्चन, अचल व नरेन्द्र म यह निराशा बहुत मिलती है और नरेन्द्र म तो 'क्षयी रोमास' भी।

आज मुझसे दूर दुनियाँ।

---

१ छायावादयुग—शम्भूनाथ सिंह, द्वारा उद्धृत।

है चिता की राख कर मे, मांगती सिन्दूर दुनिया।

अथवा

छल गया जीवन मुझे भी

देखने म था अमृत वह।
हाथ म आ मधु गया रह।

और जिह्वा पर हलाहल, विश्व का वञ्चन मुझे भी।

'निराशा' का सामाजिक निदान न हो पाने पर बच्चन' म एक 'नियतिवाद' का विकास दिखाई पडता है। प्रसाद भी नियतिवादी थे किन्तु वहाँ नियतिवाद की व्याख्या यह थी— मैं नियति की डोर पकड कर निभय होकर कर्म-कूप मे कूद सकता हूँ। अर्थात प्रसाद म नियति कमवाद की विरोधिनी नही है। अजातशत्रु म इस नियतिवाद की व्याख्या जीवक' के उक्त शब्दो द्वारा स्पष्ट हो जाती है किन्तु 'बच्चन' के नियतिवाद मे निष्क्रियता और आत्म पीडन ही अधिक है। वर्मा जी म भी यह नियतिवाद मिलता है—

अब असह अवल अभिलाषा है
सबल नियति से सघषण[1]

नरेन्द्र म निष्क्रियता और सामाजिक चिंतन के अभाव म मृत्यु प्रियता का प्रचार मिलता है। प्रम म मृत्यु प्रियता एक अस्वाभाविक स्थिति है किन्तु निराशा म मृत्यु भी प्रिय लग सकता है—

मृत्यु ही है, जीवन का शेष
यही आकाक्षा का निशेष
इसी को कहते हैं अवसान
यहीं रुकता है जीवन यान।

महादेवी ने कही-कही 'शून्य' और 'अवसान' के प्रति प्रेम अवश्य प्रकट किया है किन्तु 'विरह' को साधना मान लेने के कारण उनकी मानसिक स्थिति 'रुग्ण' नही दिखाई पडती—

---

१ मैं बढता जाता हूँ प्रतिपल, गति है नीचे, गति है ऊपर।
भ्रमती ही रहती है पृथ्वी, भ्रमता ही रहता है अम्बर।
इस भ्रम मे पड कर ही भ्रम के जग मे मैंने पाया तुमको।
जग नश्वर है, तुम नश्वर हो, बस मैं हूँ केवल एक अमर।

शून्य मेरा जन्म था अवसान है मुझको सवेरा।
प्राण आकुल के लिए सगी मिला केवल अधरा।
मिलन का मह नाम ले मैं विरह म चिर हूँ।

किन्तु नरेन्द्र म मृत्यु की कामना जिजीविषा को परास्त करती हुई दिखाई पडती है। सभ्यता की प्रथम भोर मे जिस जाति के पूर्वजो ने जीवत् शरद शतम की स्वस्थ कामना प्रकट की हो वगवादी समाज के बन्धनो म तडपती हुई उन्हा की सन्तान यह कहने लगी—

मृत्यु ही है जीवन का शेष
यही आकाक्षा है नि शेष[1]

हालावादी प्रम भावना—मृत्युवाद या क्षयीरोमास मासलवाद नियतिवाद आत्मरति और अराजकतावाद का यह विवेचन बच्चन के हालावाद के बिना अधूरा रहेगा। बच्चन न १९३३ ३४ मे मधुशाला १९३४ ३५ म मधुबाला और १९३५ ३६ म मधुकलश लिखा है किन्तु इनम प्रथम रचना अधिक जनप्रिय हुई। बच्चन का भी उद्देश्य छायावादी अत्यधिक अलकृत शैली के विरुद्ध सरल शैली म काव्य लिखना था। यह स्तुत्य प्रयत्न था क्योकि पूँजीवादी व्यवस्था म जिस प्रकार उच्चकोटि के शिल्प को कोई नही पूछता उसी तरह छायावादी काव्य प्रचलित न हो पाया था वह केवल मध्यवग के ही एक भाग म प्रिय हो सका था जो कलापारखी थे। अत बच्चन ने काव्य को जनता तक ले जाना चाहा छायावाद की कमी को पूरा करना अपने मे उच्च आकाक्षा थी किन्तु काव्य म अभिव्यक्ति का मूल्य नही चित्र कल्पना का भी उतना मूल्य नही जितना मूल्य कवि के दृष्टिकोण और उसके भाव के स्वरूप का होता है अत बच्चन का प्रमकाव्य प्रचलित हो गया किन्तु साथ ही उसकी कला की उच्चता की रक्षा नही की जा सकी। पूँजीवादी व्यवस्था की असगतिया म यह एक विकट असगति भी दिखाई पडती है। पत्रिकाओ कवि सम्मेलनो रेडियो और दूसरे साधनो द्वारा कवि का जनता स सीधा सम्पक स्थापित हो जान पर भी पूँजीवाद द्वारा चारो ओर जो रुचि भ्रष्टता फल जाती है उससे कवि को लडना पडता है। सिनेमा पूँजीवादी मनोरजन है वह बाक्स हिट करने के प्रयत्न म जनता की कमजोरियो का शोषण करता है जो साहित्यिक पत्रिकाए रुचि भ्रष्ट होती हैं वह अधिक बिकने लगती हैं भाषा मनोहर कहानियाँ उदाहरण हैं। सिनेमा से सम्बधित पत्रिकाओ की बिक्री सबस अधिक हो रही है अत कवि यदि उच्चकोटि की

'काव्यकला' की सृष्टि करे तो कतिपय लोगो के अलावा उसकी पाप्यूलर' माग नही होगी अत पाप्यूलर होने की इच्छा करने वाले कवि पूँजीवादी 'पाप्यूलैरिटी के फौरन शिकार हो जाते है किन्तु कुछ कवि जनता की रुचि को क्रमश उच्चकोटि की काव्यकला के स्तर तक उठाने का प्रयत्न करते है, यदि उनमे प्रतिभा होती है तो वह भी पाप्यूलर हो जाते हैं क्योकि पूँजीवाद साधन सुलभ कर देता है। किंतु कवि रुचिभ्रष्टता के विरुद्ध सघर्ष का सामना करने मे सवदा सफल नही होता अत मध्यवर्ग से दो प्रकार के कवि सम्मुख आते है एक वे जो पूँजीवादी रुचि का प्रचार करते है—सस्ते प्रेम के गीत रचते है, कठ का कमाल दिखाते है कवि सम्मेलनो को व्यवसाय बनाते हैं और धीरे धीरे उनका स्तर' मनोरजन करने वाले वर्ग के स्तर तक ही सीमित रह जाता है। मध्यकाल मे जो कार्य विदूषक भाँड या वेश्याएँ करती थी वही ये कवि करते है किन्तु साथ ही कुछ कवि ऐसे होते हैं जो जनता की कमजोरियो का रूपातरण करते है सुरुचि जगाते हैं मनोरजन का ऐसा रूप प्रस्तुत करते है जिससे जनता पूँजीवादी मनोवृत्ति से ऊपर उठे और प्राय ऐसे कवि पूँजीवाद की असगतियो का पर्दाफाश भी करते हैं। ये कवि भी पेशेवर कवि हो सकते है परन्तु वे अपने पेशे मे अपना स्वाभिमान, और जनता का सम्मान नही खो देते।

बच्चन' ऐसे ही दूसरे प्रकार के कवियो मे रहे है। बच्चन' ने कवि सम्मेलनो मे हिंदी को जनप्रिय बनाया। वह प्रेमसम्बन्धी की नवीन स्थापना के लिए सम्मुख आते हुए प्रतीत होते हैं। सन् ३० के बाद उमरखैय्याम का अनुवाद बहुत जनप्रिय हुआ था, विश्वविद्यालयो मे भी, अत सूफियो के हाला, प्याला आदि प्रतीको को लेकर बच्चन ने जिस काव्य का पाठ किया, वह मस्ती, स्वच्छन्दता और सरलता के कारण विद्युतगति से प्रचलित हो गया।

सूफी कवियो ने कठोर नैतिकतावाद के विरुद्ध 'प्रेम' की घोषणा की थी। बच्चन के काव्य मे भी यह पक्ष प्रबल है। सन् ३० से ३५ तक का राजनैतिक जगत् भयकर असताप से आनप्रोत था—ब्रिटेन के अधिकारी गोलमेज सभाओ द्वारा भारत के आँसू पोछ कर भीतर सुलगती हुई आग पर राख डालना चाहते थे। सन् ३० मे भगतसिंह ने एसेम्बली मे बम फेंका था। क्रान्तिकारियो की कार्यवाहियाँ उग्रतम रूप धारण कर रही थी। राष्ट्र का यौवन विप्लव' के गीत गा रहा था, 'बच्चन' ने इस विप्लव को वाणी न देकर बाह्य नैतिकता के विरुद्ध अपना 'विप्लव' व्यक्त किया। इस 'विप्लव' का एक सीमा तक

समथन किया जा सकता है क्योकि समाज की नैतिकता के विरुद्ध कवि को बोलने का स्वाभाविक अधिकार था किन्तु यह स्मरणीय है कि हालावाद मासलवाद की तरह उच्छृङ्खलता का भी प्रचार करता है दिशाहीन विद्रोह चाहे प्रम के क्षत्र म हो अथवा राजनीति के क्षत्र मे अभिनन्दनीय नही कहा जा सकता।

अतीत के भक्तो ने प्राचीन भारतीय सस्कृति की कुछ ऐसी व्याख्या की थी कि उसमे प्रम की मधुरता के लिए बहुत कम स्थान रह गया था। छायावादियो ने इसका विरोध किया था। बच्चन का हालावाद भी इसका विरोध करता है इसलिए वह प्रशसनीय है किन्तु छायावादियो की तुलना म बच्चन की प्रतिक्रिया उच्छृङ्खल अवश्य हो गई है। उसमे सूफियो की साकेतिकता और कला की उच्चता न होकर सस्तापन आ गया है जो एक पूँजीवादी प्रवृत्ति है अत बच्चन का हालावाद अशत सामती नतिकता के विरुद्ध विद्रोह भी है और अशत पूजीवादी सस्तेपन का शिकार भी—

नतिकता के विरुद्ध भीषण ललकार—

वेदविदित ये रस्म छोडो वेदो के ठकेदारो।
किसी तपोवन से क्या कम है मेरी पावन मधुशाला।
ध्यान किए जा मन म सुमधुर सुखकर सुदर साकी का।
मुख से तू अविरत कहता जा मधु मदिरा मादक हाला।

मासलवाद जसी वासना—

कह रहा जग वासनामय हो रहा उद्गार मेरा।
मैं छिपाना जानता तो जग मुझ साधू समझता।
शत्रु मेरा बन गया है छलरहित व्यवहार मेरा।
वासना जब तीव्रतम थी बन गया था सयमी मैं।
है रही मेरी क्षुधा ही सवदा आहार मेरा।

पुरानी पीढी के विरुद्ध विद्रोह—

वृद्ध जग को क्यो अखरती है क्षणिक मेरी जवानी।

समाज से शिकायत—विश्व पूरा कर सका है कौन सा अरमान मेरा।

बच्चन म विरोधी स्वरो का मिश्रण मिलता है। खिलाफत आदोलन समाप्त होते ही इस देश के मुसलमान राष्ट्रीय काग्रेस से अलग हो गए थे और साम्प्रदायिकता बढ गई थी। हिदुओ म आपस म भी आयसमाजियो सनातनियो आदि की चखचख होती रहती थी अत हालावाद म इस साम्प्रदायिकता के विरुद्ध भी स्वर मिलता है और व्यापक प्रमभाव का प्रचार भी—

रक्त से सींची गई है राह मस्जिद मंदिरों की।
किन्तु रखना चाहता मैं, पाँव मधु सिंचित डगर में।
हैं कुपथ पर पाँव मेरे, आज दुनिया की नजर में।

यहाँ कवि के पाँव वस्तुत सुपथ पर है किन्तु साथ ही कवि पुरानी 'मदहोशी' को 'नव जागरण' पर तरजीह देता हुआ कहता है—

मैं कहाँ हूँ और वह आदर्श मधुशाला कहाँ है ?
विस्मरण दे, जागरण के साथ मधुशाला कहाँ है ?
है कहाँ प्याला कि जो दे, चिर तृषा चिर तृप्ति मे भी।
जो डुबो तो ले, मगर दे पारकर हाला कहाँ है ?

कोई इसे 'पलायनवाद' न कह दे अत कवि अपनी सफाई देता है कि उसने जीवन-समर मे ही ये गीत लिखे हैं किन्तु वह भूल गया कि 'राग' के भीतर के 'चीत्कार' को पहचान कर भी दुनिया माग चाहती है, गति चाहती है, जागरण चाहती है, कोरा 'चीत्कार' व्यर्थ है—

राग के पीछे छिपा, चीत्कार कह देगा किसी दिन।
हैं लिखे मधुगीत मैंने, हो खडे जीवन समर में।

ऐसे काव्य मे बावजूद जड नैतिकता और साम्प्रदायिकता के विरोध के, स्वस्थ 'व्यक्तिवाद' नहीं मिलता उसमे 'स्ववाद' अधिक है। अन्यथा सन् ३५ ई० मे 'कवि' विस्मृति का पाठ क्यो पढाता, सम्भवत राजनैतिक क्षेत्र की निराशा ही इस प्रकार के काव्य म प्रकट हो रही थी—

विस्मृति की आई है वेला, कर पाय न इसकी अवहेला
आ भूलें हास रुदन दोनो, मधुमय होकर दो चार पहर।

इस प्रकार 'बच्चन' मे "अघक्रान्ति" का भी पर्याप्त अश है। असफलता की स्थिति आने पर भाग्य से सम्बन्ध जोडकर कवि अपने दृष्टिकोण की व्यर्थता प्रकट करता है—

लाख पटक तू हाथ पाँव पर, इससे कब कुछ होने का।
लिखा भाग्य मे तेरे जो बस, वही मिलेगी मधुशाला।

इस निष्क्रियता की स्थिति में सुन्दरी के कोमल मक्खन से तन का आलिंगन करते हुए कवि 'पना' की स्थिति मे पहुँचता हुआ अपनी 'नास्तिकता' की भी घोषणा कर देता है क्योंकि आस्तिकता 'सयम' चाहती है और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के अभाव मे आरोपित नास्तिकता मे निर्बाध भोग ही भोग है—

छुडा मत भुज पाशो से प्राण
नये मक्खन सा कोमल तन
दूध से धोया सा है मन
ईश्वर को मैं नही जानता।
उसकी सत्ता नही मानता।

उपयु क्त विवचन से यह स्पष्ट है कि छायावाद की प्रमभावना पूव और परवर्ती दोना रूपो मे एक प्रकार के विद्रोह को व्यक्त करती है। चार वडो के काव्य म यह प्रम स्वच्छदता व्यक्त करता हुआ भी प्रमपात्र की सुषुमा का भी तल्लीन होकर चित्रण करता है। श्री शोभा गौरव और दिव्यता से अपने प्रमपात्र को युक्त कर चार बडो ने प्रम और सौदय का स्तर उच्चतर किया है इससे हिदी काव्य मे एक अभूतपूर्व सुकुमार और सहृदयता का विकास हुआ है। छायावाद चूंकि सववाद को भी सौदय सृष्टि के उपादान के रूप मे ही स्वीकार करता है साधना के लिए नही अत उसके प्रेम चित्रण मे मध्ययुगीन धार्मिकता की जगह मानवीयता अधिक मिलती है। परवर्ती छायावादो कवियो का प्रम भोग-वासना से पीडित होकर जिस सीमा तक पतित हुआ है उस सीमा तक उसे अवश्य डिकेडण्ट कहा जा सकता है किन्तु जैसा कि हमने देखा है कि परवर्ती कविया म परस्पर विरोधी स्वर भी मिलते हैं और उसमे कई स्वर सबल और स्वस्थ भी ह।

छायावाद के प्रमभाव म केवल योरोप के स्वच्छन्दतावाद से ही प्ररणा नही ली गई है अपितु उसम भारतीय वेदा उपनिषदो आगमा सतकवियो और सूफिया से भी प्ररणा ली गई है। मध्ययुग म जो वेदात मायावाद को ध्वनित करता रहा उसी वेदान्त के इस पक्ष पर बल न देकर छायावादिया ने विश्व भर म एकता का सूत्र खोजकर न केवल दश की एकता असाम्प्रदायिकता और बधुत्व का प्रचार किया अपितु एक देश द्वारा दूसरे देश के पीडन का भी विरोध किया और इन दोनो पक्षा क साथ उसी एकतासूत्र को निराला ने विश्वमोहिनी प्रसाद न श्रद्धा (शक्ति) पत ने अव्यक्त प्रिया और महादेवी ने चिर सुन्दर के रूप म अपनाकर वयक्तिक प्रम का भी उदात्तीकरण कर दिया। तीसरी ओर इसी एकता क सूत्र को प्रकृति म सवत्र झलक दख देखकर प्रवृति और मानवीय प्रम की भी एकता स्थापित कर दी। छायावाद की यह महान उपलब्धि है। उस समय की परिस्थति म यह प्रमभाव निश्चित रूप से प्रगतिशील था किन्तु आज भी सववाद म विश्वास न रहन पर भी उन कविया की निष्ठा समपण और सववाद के सौदयमय पक्ष से कौन प्रभावित

नही होगा । मानवजीवन को खुली आँखो देखने वाले कवि अपने युग मे किसी अवैधानिक सिद्धान्त को अपनाकर भी स्थायी महत्त्व की अनुभूतियो और मानसिक स्थितियो तथा उदात्त भावनाओ का ऐसा चित्रण कर जाते हैं जो व्यवस्था बदल जाने और तदनुरूप मन भी बदल जाने पर उनका महत्व बराबर बना रहता है, छायावाद तो अभी अनेक रूपो मे, कही स्पष्ट और कही वेष बदल कर हिन्दी मे जीवित है, प्रेम सम्बन्धो की सुन्दरता और मधुरता जब तक मनुष्य अनुभव करता रहेगा, छायावाद जीवित रहेगा ।

प्रकृति-प्रेम—छायावाद मे 'प्रेम' के बाद 'प्रकृति' का ही स्थान है। प्रेम की दृष्टि से भी प्रेम और प्रकृति साथ-साथ चले है अत सक्षेप मे छायावाद मे प्रकृति का स्वरूप देख लेना चाहिए ।

द्विवेदी युग मे प्रकृति का स्थूल रेखाओ से चित्रण हुआ था । किसी एक वस्तु का मन लगाकर, विस्तार से चित्रण न करके द्विवेदी युग का कवि शीघ्र-शीघ्र कई पदार्थों का चित्रण करने मे निपुण था । अनेक पदार्थों के लघु लघु चित्र 'प्रियप्रवास' के नवम् सर्ग मे देखे जा सकते हैं । इसके अतिरिक्त पदार्थ-अकन के समय द्विवेदीयुग का कवि पदार्थ के सौन्दर्य से इतना अभिभूत हो गया है कि वह अपने मन की प्रसन्नता का आनन्द लेने मे मग्न हो जाता है और चित्रण उपेक्षित हो जाता है। रामनरेश त्रिपाठी ने अपने 'पथिक' और 'मिलन' मे अवश्य सश्लिष्ट चित्रण करने की कोशिश की है किन्तु वह स्वच्छन्दतावादी पद्धति से भी परिचित थे ।

प्रश्न यह है कि छायावाद का प्रकृति-प्रेम क्या इतना विलक्षण है जो सर्वथा अभूतपूर्व है ? 'प्रसाद' जी इसे नही मानते थे, वह प्राचीन साहित्य मे भी 'छायावाद' जैसी प्रवृत्तियाँ देख चुके थे । वस्तुत प्राचीन साहित्य मे 'प्रकृति' के एक से एक सश्लिष्ट चित्र मिलते हैं परन्तु प्रकृति का जैसा स्वतत्र स्थान छायावाद मे बन गया, वैसा कभी नही हुआ था। पुराने कवि मानवीय भावनाओ को अधिक महत्त्व देते थे और उनकी व्यजना के लिए प्रकृति को माध्यम बनाते थे, बीच-बीच मे प्रकृति की ओर उन्होंने स्वतत्र रूप से भी देखा है। दरबारी काव्य मे भी प्रकृति के एक से एक सुन्दर चित्र मिलते हैं, नागरिकता की वृद्धि से प्रकृति-वर्णन मे स्वाभाविकता भले ही न रही हो परन्तु प्रकृति-प्रेम पर्याप्त मात्रा मे मिलता है। छायावाद मे प्रकृति के आलम्बनगत चित्रण सस्कृत से बहुत अधिक उत्कृष्ट नहीं हैं किन्तु प्रकृति मे चेतना का दर्शन वहाँ इतना नही हुआ है। किसी एक पदार्थ को लेकर कल्पना के द्वारा जैसे उपमान पन्त जी

के बादल म मिलते हैं वैसे सस्कृत मे एक स्थान पर नही मिलते परन्तु यदि सस्कृत साहित्य के सारे उपमानो को एकत्र कर लिया जाय तो छायावाद के कतिपय प्रयोग ही उत्कृष्ट दिखाई पडगे। प्रकृति म चेतना के दशन को सस्कृत के आचार्यों ने वस्तुत इतना अधिक महत्त्व नही दिया था छायावाद ने यह कमी अवश्य पूरी की है यद्यपि ऐसे आरापयुक्त वणनो को पढकर छायावाद की नारीमय दृष्टि भी एक वार मोहित हो जाएगी—

पर्याप्तपुष्पस्तवकस्तनीभ्य स्फुरत्प्रवालोष्ठ मनोहराभ्य
लतावधूभ्यस्तरवाप्यवापुर्विनम्र शाखा भुज बन्धनानि।

अर्थात तरु भी अपनी झुकी हुई शाखाओ के भुज बन्धनो से पर्याप्त पुष्पो के गुच्छो के रूप मे स्तनवाली तथा चचल पल्लवो के रूप मे सुन्दर ओष्ठ वाली लता वधू से आलिंगन करने लगे।

वेणीभूतप्रतनु सलिला ताम्यती तस्यु सिंधु
पाण्डुच्छायातटरुहतरुभ्रशभि शीणपर्णै
सौभाग्य ते सुभग विरहावस्थया व्यञ्जयन्ती
काश्य येन त्यजति विधिना स त्वयैवापपाद्य

पतला प्रवाह जिसकी वेणी हो गया है तट पर स्थित वृक्षो से घिरे हुए पुराने पत्तो से पाण्डु हुई बीते हुए सौभाग्य की अपनी विरहावस्था से व्यजित करने वाली वह सरिता जिस विधि से दुबलता त्याग हे सुदर मेघ! तुम वही करना!

गुरुगभभारक्लान्ता स्तनन्त्यो मेघपङ्क्तय।
अचलाधित्यकोत्सङ्गामम़ा समधिशेरत।

अर्थात गुरु गभ के भार से क्लान्त गजन करती हुई ये मेघ-पक्तियाँ पवत की गोद मे विश्राम करती है।

आचाय हेमचन्द्र ने काव्यानुशासन मे इन्द्रियहीन जड तथा पक्षियो पर मानवीय भावा के आरोप करने से रसाभास' और भावाभास माना है— 'निरिन्द्रियेषु तियगादिषु चारोपाद्रसभावाभासौ'[1]

यही कारण है कि रस के स्थान पर रसाभास' पर सस्कृत कवियो ने'

---

१ विस्तार के लिए द्रष्टव्य—"प्रकृति और काव्य"—डा० रघुवश, सस्कृत खड।

कम बल दिया है। इस दृष्टि से छायावाद का प्रकृति वर्णन रसाभास तथा भावाभास ही कहलायेगा क्योंकि पशु पक्षियो और जड पदार्थों पर चेतना के आरोप की उसमे बहुत अधिकता है। वस्तुस्थिति यह है कि छायावाद मे कवि प्रकृति को इतना अधिक महत्त्व देता है कि प्रकृतिप्रमरस एक स्वतन्त्र रस बनता हुआ दिखाई पडता है। सस्कृतकाव्यकर्त्ता समाज और सभ्यता से इतना अधिक नही ऊब गया था कि वह उसके विरुद्ध विद्रोह करके 'प्रकृति की ओर लौटो' जैसे आन्दोलन का समर्थन करता। हमारे यहा के सैकडो रूसो प्राकृतिक जीवन पर बल देते रहे हैं सिद्ध सरहपा तो नागरिक जीवन की कृत्रिमता छोडकर एक ग्राम्या के साथ प्राकृतिक जीवन भी व्यतीत करने लगे थे। समूची सिद्ध परम्परा' नागरिक जीवन की कृत्रिमताओ प्रपचो नैतिकता आदि के विरुद्ध प्राकृतिक जीवन पर बल देती आई है। साधना के लिए भी हमारे यहा मुक्त प्रकृति को ही पसन्द किया जाता था किन्तु नागरिक जीवन की वीभत्सता १९ वी सदी म दार्शनिको ने अनुभव की वह इतनी कभी नही अनुभव की गई अत एक सर्वथा नवीन मानसिकस्थिति का जन्म हुआ जो वस्तुत सामतवादी समाज के विरुद्ध विद्रोह' के रूप मे आई। सामती नागरिकता की विलासिता कृत्रिमता और प्रपचो से चिढ कर रूसो और गाडविन ने प्रकृति की शरण मे जाने का आदेश दिया और रोमाटिक कवियो ने इस मानसिक स्थिति का इतना भव्य वर्णन किया कि हमारे कवि भी आकर्षित हुए और रसाभास' रस के रूप मे परिणत होने लगा। पूंजीवाद के प्रारम्भ म वैज्ञानिक विकास अवश्य होता है अत प्रकृति मे आकर्षण और भी बढा प्रकृति म जिज्ञासा का एक यह भी कारण था। तीसरे दार्शनिको ने एक ही सत्ता की सर्वत्र व्याप्ति की ओर कवियो का ध्यान खीचा। छायावाद मे पूंजीवाद की इन तीनो प्रवृत्तियों ने काम किया है अत छायावाद के प्रकृति वर्णन म छायावादी कवि की दृष्टि से रस का आभास मात्र नही माना जा सकता। उसमे जब वास्तविक रस' का अनुभव होता है तब इसे प्रकृतिरस मान लेने मे क्या हानि है? रति के नाना रूप होते हैं यह तो रसवादी भी कहते हैं। और वात्सल्यरति का अधिक वर्णन होने से जब उसे रस' मान लिया गया ईश्वर विषयक रति को भरत रस मानने को प्रस्तुत नही थे परन्तु परवर्ती आचार्यों ने भरत की अनुकूल व्याख्या कर शात रस को भी रस मान लिया तब रसो की सख्या बढने पर प्राचीन आचार्यों की आत्मा सतुष्ट ही होगी क्योंकि इससे रसवाद व्यापक होकर अधिक जीवित रहेगा। बहरहाल छायावाद म आचार्यों के शब्दो म रसाभास अधिक है।

सन्लिष्ट वणन—शक्ल जी न सश्लिष्ट चित्रणो के सस्कृत से उदाहरण न्दिए हैं। छायावाद म सश्लिष्ट चित्रण अधिक हुआ है। किसी पदाथ का उसके आस पास की पूरी परिस्थिति क साथ सागोपाग चित्रण ही सश्लिष्ट चित्रण कहलाता है सस्कृत म ऐस चित्रणो का अभाव नही है। वाल्मीकि रामायण म ही कतिपय सश्लिष्ट चित्रण मिलत हैं।[१] डा० रघवश क अनुसार रामायण क बाद सश्लिष्ट चित्रणो की जगह अलकृत वणन महाकाव्यो म अधिक होन लग। फिर भी ऋतुसहार रघवश सेतुबध किरातार्जुनीय उत्तर राम चरित नाटक आदि स डा० रघवश ने उदाहरण दिए है। अत सस्कृत काव्य से परिचित पाठक के लिए छायावाद को सश्लिष्ट चित्र सव था अपरिचित नही लगते। प्रकृति चित्रण का विरोध अधिक हुआ भी नहीं। सस्कृत के चित्रणो की विशेषता अलकृति और सादृश्य भावना है। उहात्मक पद्यो को छोडकर सवत्र सादृश्य के आधार पर ही उपमान विधान किया गया है—ये दोनो प्रवृत्तिया छायावाद म यथावत् मिलती हैं फिर भी छायावाद अपने नए दृष्टि कोण के कारण भिन्न है।

छायावादी कवि प्रकृति का आदर्शीकरण अधिक करत हैं। प्रकृति की शोभा ही नही स्वय प्रकृति भी उनके अधिक निकट प्रतीत होती है। इस निकटता का स्वरूप क्या है। वस्तुत छायावादियो म स्वच्छदतावादी दष्टिकोण मिलता है। सस्कृत के कवि के लिए प्रकृति जड थी उस पर चेतना का आरोप हो सकता है किन्तु उसे जीवित व्यक्तित्व दकर उसक साथ अपने मन की ग्रथि भेदन का काय पुराने कवियो ने नही किया न मध्य काल म ही यह प्रवृत्ति मिलती है। वड सवथ के अनुसार प्रकृति म आत्मा का निवास है और इस प्रकार प्रत्येक पुष्प सरिता आदि म उनकी अपनी अपनी आत्मा है। प्रकृति की इस आत्मा अथवा विभिन्न पदार्थों की विभिन्न आत्माओ म (ईश्वर द्वारा) पूर्वनिश्चित एकता स्थापित हुई है अत प्रकृति कवि का आत्मा के सम्मुख अपने विचार और भाव व्यक्त करती है। यदि कवि प्रकृति के मूक सन्देश और राग को सुनता है तो उसकी आत्मा और प्रकृति म आत्यतिक एकता स्थापित हो जाती है।[२]

छायावाद म यह दष्टि यथावत् स्वीकृत हुई है। अन्तर केवल यह है

---

१ वाल्मीकि रामायण अयोध्याकाड।
2 Engl sh L crature page 154

कि वडमवथ पर नवीनप्लेटोवादी सववादी दशन का प्रभाव था।[1] और भारतीय कवियो पर भारतीय सववाद का। प्रसाद जी शैवागम से प्रभावित हुए अत उनके प्रकृतिचित्रणो म प्रकृति शक्ति का व्यक्त रूप है जो अपने भीतर सत्य को या शिव को छिपाए हुए है प्रसाद के यहा ज्ञान हो जाने पर प्रकृति तत्त्व साक्षात्कार म सहायक हो जाते है और अज्ञान की स्थिति म उनका मोहक रूप पथभ्रष्ठ भी कर सकता है जैसा कि मनु के साथ हुआ। निराला पन्त और महादेवी जी ने प्रकृति के पीछ अवस्थित सत्ता को नारी रूप देकर उसके सौदय का वणन किया है। सबसे अधिक पत जी मे प्रकृति को निकटतम आत्मीय मित्र के रूप म चित्रित करने की प्रवृत्ति है। प्रकृति के प्रति प्रम पन्त जी ने सबस अधिक घोषित भी किया है।

छायावादियो ने न केवल प्रकृति का आलम्बनगत अलकृत चित्रण किया है बल्कि प्रकृति के अचल म मुख डालकर निजी सुख-दुख का निवेदन भी किया है यह पहले के काव्य म नही मिलता। इसके अतिरिक्त जिन मानवीय राजनैतिक और सामाजिक प्रश्नो के विषय म छायावादी अपनी भावनाएँ और सदेश व्यक्त करते थे उन्ह भी प्रकृति-वणन के साथ कहते चले हैं जैसे West Wind म शेली ने अत म अपने विचार व्यक्त किए हैं। प्रतीक रूप म भी प्रकृति को अपना कर आन्तरिक धारणाओ को व्यक्त करने की प्रवत्ति छायावाद म मिलती है और सबसे ऊपर प्रकृति से इन सब तत्त्वो के दोहन की जिनका तात्कालिक समाज मे वे अभाव महसूस करते थे।

प्रकृति से सौदय-दोहन—यह प्रवृत्ति पत जी मे सबसे अधिक मिलती है। सौदय के प्रति उनकी दृष्टि सतत जागरूक रहती है उन्होंने प्रकृति मे विश्व कामिनी की छवि देखने के लिए कामना भी प्रकट की है—

ऐ असीम सौन्दय राशि म
हृतकम्पन से अन्तर्धान
विश्व कामिनी की मानव छवि
मुझ दिखाओ करुणावान।— अनग'

यद्यपि प्रसाद जी ने सवप्रथम प्रकृति की रमणीयता' उस पर मानवीय चेतना का आरोप और विस्मय तथा रहस्यभाव से युक्त चित्रण प्रारम्भ किए किन्तु प्रकृति क प्रति उत्कट प्रम और चित्रशाला को पत जी ही प्रस्तुत

---

१ वही

कर सके। पन्त जी की सौन्दर्यप्रियता ने उन्हे प्रकृति के भीषण रूपो की ओर आकर्षित नही होने दिया परिवर्तन अपवाद मात्र है। कारण कि पन्त जी सुन्दरता के प्रेमी है उदात्त (Sublime) सौन्दर्य के नही। प्रसाद मे दोनो प्रवृत्तिया है किन्तु उदात्तता निराला मे और भी अधिक है। तरगो के प्रति तथा राम की शक्ति की पूजा मे उनके उदात्त चित्रण प्रसिद्ध है। महादेवी भी पन्त जी की तरह सुन्दरता की ही प्रेमिका हैं उदात्त उनके स्वभाव के भी विरुद्ध है। पन्त जी का काव्य तो प्रकृति के अज्ञात और अव्यक्त आकर्षण से शुरू हुआ। प्रकृति मे विशेषकर पर्वतीय सुषमा मे उन्हे महान नीरव सम्मोहन मिला। प्रकृति के इस सम्मोहन की प्रेषणीयता मे पन्त जी अद्वितीय प्रमाणित हुए हैं।

सम्मोहित दृष्टि से विस्मित हो हो कर देखने से सामान्य पदार्थ पशु पक्षी मे भी सौन्दर्य उत्पन्न हो जाता है। अति परिचय से उत्पन्न जड़ता को विस्मयभाव समाप्त कर वर्ण्यवस्तु मे नया सौन्दर्य भर देता है। बाल विहगिनी मे यही प्रवृत्ति मिलती है।

प्रथम रश्मि का आना रगिणि कैसे तूने पहचाना ?
कहाँ-कहाँ है बालविहगिनि! पाया तूने यह गाना ?

निराला के अधभक्तो का कथन है कि पन्त के काव्य मे बचपना अधिक है स्वय पन्त जी ने भी 'कैशोर भावना' को स्वीकार किया है किन्तु लोग इन रचनाओ के समय को भूल जाते हैं। दृष्टिकोण की एकता होने पर भी निराला की दुरूह रचनाओ का प्रचार इसीलिए नही हो सका क्योंकि उनमे उस बचपने का कुछ अभाव था! जिज्ञासामूलक समान रचनाओ की तुलना कीजिए—

कौन तम के पार रे कह
अखिल पल के स्रोत जल जग गगन घन घन धार रे कह।
गध व्याकुल मूल उर सर लहर कचकर-कमल मुख पर।
हर्ष अलि हर स्पर्श शर सर गूज बारम्बार रे कह।

अर्थ गम्भीर है परन्तु अत्यधिक दुरूह पद्धति के कारण इसमे प्रेषणीयता का अभाव है—किन्तु पन्त जी मे सरलता है—

विश्व के पलको पर सुकुमार
विचरते है जब स्वप्न अजान
न जाने नक्षत्रो से कौन
सँदेसा मुझे भेजता मौन!—पन्त

पन्त जी का प्रकृति-काव्य इसीलिए अधिक जनप्रिय हुआ। निराला की सन्ध्या-सुन्दरी तरगा के प्रति जुही की कली जैसी अपेक्षाकृत सरल रचनाएँ अधिक जनप्रिय हुई। उक्त रचनाओ मे विस्मय का भाव कम है परन्तु सौन्दय की ग्राहिका शक्ति तीव्र होने से ये चित्रण अधिक प्रिय लगे। निराला वस्तुत कुल मिलाकर मानवीय भावो को अधिक प्रमुखता देकर चले हैं—पन्त जी के लिए तो प्रकृति काव के चितेरे हृदय के चित्र के रूप मे अधिक व्यक्त हुई है।

पन्त जी की एक तारा नौका विहार बादल अनग अप्सरा नौकाविहार परिवर्तन आदि रचनाए हिन्दी प्रकृति-काव्य के अमर स्तम्भ है। परिमाण की दृष्टि से पन्त जी ने प्रकृति पर सबसे अधिक लिखा है। उनकी मधुर कोमल कल्पनाओ के कारण खडी बोली का काव्य संक्षिप्त प्रकृतिवर्णन की पुरानी परम्परा से भिन्न दिखाई पडने लगा। पल्लव मानवीय राग के विस्तार का श्रेष्ठ उदाहरण है।

निराला मे प्रकृति की सुन्दरता के स्थान पर उदात्तता अधिक है उन्होने प्रकृति के चित्रो को अनादि और अनन्त सौन्दय मे मिलाने की अधिक चेष्टा की है। जुही की कली मे भी सान्त को अनन्त मे मिलाने का प्रयत्न मिलता है—

चौंक पडी युवती निज चारो ओर
हेर प्यारे को सेज पास
नम्रमुखी हँसी खिली
खेल रग प्यारे सग।

गीतिका के चित्रणो म भी यही प्रवृत्ति है—

सोचती अपलक आप खडी
लिखी हुई वह विरह वृत्त की
कोमल कुन्द कली
चमका हीरक हार हृदय का।
पाया अमर प्रसाद प्रणय का।

उदात्त चित्रो म निराला का बादल श्रेष्ठ रचना है। पन्त जी के बादल म सुन्दरता' को उदात्तता म परिवर्तित नही किया जा सका यद्यपि कवि ने यत्र तत्र वैसा प्रयत्न अवश्य किया है—

झूम-झूम मृदु गरज-गरज घन घोर।
राग अमर अम्बर मे भर निज रोर।

झर-झर-झर निर्झर गिरि सर मे
घर, मरु, तरु मर्मर सागर मे
सरित, तड़ित-गति चकित पवन मे
मन मे विजन गहन-कानन मे
आनन-आनन मे रव घोर-कठोर।

यहां सौन्दर्य बटोरने का प्रयत्न नही है जैसा कि पन्त जी के 'बादल' मे मिलता है। यहां गरजते-बरसते बादल का भयमिश्रित क्रान्तिमय प्रभाव चित्रित है। इस प्रकार के चित्रण से हमारी चेतना केवल मुग्ध होकर शान्त और सचिक्कण ही नही होती, जैसा कि पन्त जी के चित्रणो को पढ़कर होता है, अपितु उसमे 'साहस' और मुक्ति प्राप्त करने की भी कामना उत्पन्न होती है।

इसका अर्थ यह नही कि निराला मे चित्रण और सौन्दर्य-चयन नही है। 'सन्ध्या सुन्दरी' का चित्रण अति प्रसिद्ध है, पर यहाँ पुनरावृत्ति भी पुण्य-कर है—

दिवसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह सन्ध्या सुन्दरी परी सी
धीरे, धीरे, धीरे
तिमिराचल मे चचलता का कही नही आभास।
मधुर-मधुर है दोनो उसके अधर
किन्तु गम्भीर, नही है, उसमे हास विलास।

सुन्दरता और उदात्तता दोनो का चित्रण प्रसाद जी मे भी मिलता है। किन्तु 'प्रसाद' जी चित्रकार नही, कवि हैं अत उनकी प्रकृति कही भी अकेली नही है। 'द्रष्टा' की मानसिक स्थिति के अनुसार वह रूप बदलती है, अथवा यो कहे कि शक्ति की अभिव्यक्तिरूपिणी प्रकृति 'जीव' को कभी अकेला नही छोडती, वह उसकी 'पशुता' से मुक्ति दिलाने के लिये नाना रूप प्रस्तुत करती है। किन्तु इस शैवदृष्टि के पूर्ण विकास के पूर्व प्रारम्भिक रचनाओ मे कवि ने चित्रण-प्रियता भी प्रदर्शित की है—

सुन्दर प्राची, विमल उषा से मुख धोने को है।
पूर्णिमा की रात्रि का शशि अस्त अब होने को है।
तारका का निकर अपनी कान्ति सब खोने को है।
स्वर्ण जल से अरुण भी आकाशपट धोने को है।

चन्द्रिका हटने न पाई, आगई उषा भली
क्यों हिमांशु कपूर सा है, तारिका अवली लिए।[1]

'प्रसाद' जी सुन्दर वस्तुओं से कहीं अधिक "सौन्दर्य" को महत्त्व देते थे जिसके कारण इन्दु, कमल, सर, सरिताएँ आदि अपना 'सौन्दर्य' प्राप्त करती हैं अत सौन्दर्य-दोहन मे प्रसाद जी सर्वत्र उस कारणरूप सौन्दर्य से युक्त किए बिना चित्रण बहुत कम करते हैं—

लोग प्रियदर्शन बताते इन्दु को
देखकर सौंदर्य के इक बिन्दु को।

अत सौन्दर्य-दोहन इसलिए आवश्यक है ताकि चित्त पर यह मूलस्थित कारणरूप सौन्दर्य अंकित होता चले, इससे अन्त मे 'सत्य' का स्वत साक्षात्कार हो जाएगा। यही कारण है कि बाह्य-प्रतीयमान सौन्दर्य के अन्तराल मे "लुक-छुप कर" चलने वाले 'तत्त्व' को वह कभी नहीं भुलाते। 'बीती विभावरी' जैसी कविता मे भी उधर सकेत अवश्य मिलता है। 'किरण' जैसी रचना मे भी—

किरण ! तुम क्यो विखरी हो आज
रगी हो तुम किसके अनुराग।
स्वर्ण सरसिज किंजल्क समान
उडाती हो परमाणु पराग।
धरा पर झुकी प्रार्थना सदृश
मधुर मुरली सी फिर भी मौन।
किसी अज्ञात विश्व की विकल
वेदना दूती सी तुम कौन।

यह रचना पन्तजी की "छाया" से तुलनीय है किन्तु पन्त जी मे रहस्य का स्पर्श प्रसादजी से बहुत कम है। वास्तविकता तो यह है कि शुद्ध आलम्बन-गत चित्रण केवल पन्त जी ने ही किया है। प्रसाद जी आंसू मे तो आंसू बहती हुई आंखों से ही प्रकृति को देखते हैं। ऐतिहासिक स्थलो पर प्रसाद जी अतीत के स्वप्नों का चित्रण करते हैं, और "ले चल मुझे भुलावा देकर" जैसे गीतो मे प्रेम की भावनाओ का। कामायनी मे 'प्रकृति' के विविध रूपो का चित्रण अवश्य है परन्तु 'द्रष्टा' की मानसिक स्थिति और दृश्यो के पीछे स्थित परमतत्त्व वहाँ सर्वत्र प्रकृति के नीले परदे से झलमलाता प्रतीत होता है।

---

१. कानन-कुसुम।

प्रकृति पर चेतना का आरोप—पन्त जी ने चित्रकार की तरह ही सर्वत्र प्रकृति को नहीं देखा क्योंकि पन्त जी भी सौन्दय की स्थिति द्रष्टा के ही मन मे मानते है। अन्य कवि भी विषयीगत सौंदय की ही सत्ता स्वीकार करते हैं। अत सौंदय के चयन के अतिरिक्त सौंदय सृष्टि छायावाद म अधिक हुई है। प्रसादजी के आसू लहर झरना और कामायनी मे मानवीय भावनाओ के आरोप के कारण प्रकृति मे उत्पन्न छवि का अकन अधिक है—

उठ उठ री लघु लघु लोल लहर।
करुणा की नव अंगडाई सी
मलयानिल की परछाई सी
इस सूखे तट पर छहर छहर।

अथवा

बीती विभावरी जाग री
अम्बर पनघट मे डुबो रही
तारा घट ऊषा नागरी

अथवा

घूघट उठा देख मुस्क्याती किसे ठिठक्ती सी आती।
विजन विपिन मे किसी भूल सी जिसको स्मृति पथ मे लाती।
पगली हाँ सम्हाल ले कसे छट पडा तेरा अचल।
देख बिखरती है मणिराजी अरी उठा बेसुध चचल।

मनुष्य को अपनी भावनाएँ और चेष्टाएँ सबसे अधिक प्रिय होती हैं यह प्रियता सामाजिक और सास्कृतिक विकास के कारण उत्पन्न होती है और इस प्रियता का आरोप कर देने पर सौन्दय की सृष्टि अवश्य होगी। क्योंकि सौन्दय मूलत हमारी प्रिय अप्रिय की धारणाओ पर भी बहुत कुछ निभर करता है। प्रसादजी ने इसीलिए सूक्ष्म भावनाओ को मानवीय मूर्तिया म चित्रित करके सूक्ष्म मानसिक स्थितियो—लज्जा वासना चिन्ता ईर्ष्या श्रद्धा आदि को भी सुदर बना दिया है यदि वह लज्जा को चपल सौंदय की धात्री के रूप मे चित्रित न करते तो लज्जा का रूप साकार कसे होता ? सम्पूण प्राचीन साहित्य म प्रकृति और मनोवृत्तियो का यह मानवीकरण दुलभ है छायावाद की इस क्षत्र म उपलब्धि बेजोड है।

यह प्रवृत्ति अन्य अन्य कवियो म भी यथावत् मिलती है। केवल 'प्रसाद जी की तरह अन्य कोई कवि मानवीय सूक्ष्म वृत्तियो का मानवीकरण

नही कर सका किन्तु बाह्य प्रकृति का मानवीकरण चारो कवियो मे सुन्दर है। निराला की जुही की कली तरगो के प्रति सध्या सुन्दरी यमुना के प्रति आदि सभी प्रसिद्ध रचनाओ मे मानवीकरण द्वारा सौदर्य-सृष्टि की गई है। गीतिका म भी यही प्रवृत्ति दिखाई पडती है—

रूखी री यह डाल वसन वसन्ती लगी।
देख खडी करती तप अपलक
हीरक सी समीर माला जप।
शैल सुता अपण—अशना
पल्लव-वसना बनगी

अथवा

मेघ के घन केश निरूपमे नव वेश!
चकित चपल के नयन तव
देखती ही भूशयन तव
मन्द लहरा पट पवन रव
छा रहा सब देश!

महादेवी ने सवत्र इसी पद्धति पर गीत लिखे हैं। पुलकती आ बसन्त रजनी रूपसि तेरे घन केश पाश ओ विभावरी आदि गीतो म नारी की छवि और चेष्टाओ का आरोप द्वारा ही सौदय-सष्टि की गई है। महादेवी के स्वतन्त्र चित्रणो मे मानवीकरण स्वत आ जाता है—

सकुच सलज खिलती शेफाली
अलस मौलश्री डाली-डाली।
बुनते नव प्रवाल कुजो मे
रजत श्याम तारो से जाली।
शिथिल मधु पवन गिन गिन मधुकण
हरसिंगार झरते हैं झरझर।

पन्त जी ने सैकत शैय्या पर दुग्ध धवल तन्वगी गगा दो बाहो से किनारे तितली के नव कुमार समीर की परियाँ मधुपकुमारि के मीठ गान नाव की हसिनी बिधुरा क उर जैसे कुसुम चकित शिशु सा ससार नीले नभ के शतदल पर मृदु करतल पर शशि मुख धरे हुए आसीन शरद आदि के रूपो मे प्रकृति को मानवीय रूप देकर उसकी छवि को साकार किया है।

यह कहना आवश्यक है कि इस मानवीकरण को कोरे अलकार रूप मे छायावादियो ने प्रयुक्त न कर प्रकृति मे वस्तुत विश्वमोहिनी' नारी के रूप

को देखा है। अत चेतना के आरोप के जगह प्रकृति म चेतना के दशन शब्द अधिक उपयुक्त है। समासोक्ति अलकार का प्रयोग पुराने काव्य म सवत्र मिलता है—कुमुदिनि हू प्रफुलित भई दखि कलानिधि साथ जसे प्रयोगा म कवि कुमोदनी और चद्रमा म रुचि नहा रखता वह नायक और नायिका की ओर सकेत करता है। इसके विपरीत छायावाद का मानवीकरण प्रकृति म चेतना के दशन पर आधारित होने से वह अधिक भव्यता की सृष्टि म सहायक हुआ है। आज भी इस पद्धति को छोडा नही जा सका है। और इस रूप म छायावाद जीवित है।

परोक्ष सत्ता का प्रतिबिम्ब—हम कह चुके हैं कि छायावादी स्वच्छन्दतावादी कविया की तरह प्रकृति मे परोक्षसत्ता का दशन करत हैं। कौन है की जिज्ञासा इसी का परिणाम है। पन्त जी के शिशु मे वडसवथ के शिशु की तरह यह प्रवृत्ति स्पष्ट है—

खलती अधरो पर मुस्कान।
पूव सुधि सी अम्लान
स्वप्न लाका म किन चुपचाप
बिचरते तुम इच्छा गतिवान।

महादेवी आकाश म प्रिय की मुस्कराहट देखती हैं।[1] वह तम और स्वप्न सभी म प्रिय की आहट सुनती है।[2] प्रसाद ने तो स्पष्ट ही कहा है—

छायानट छवि परदे म सम्मोहन वीणा बजाता।
सध्या कुहुकिनि अचल म कौतुक अपना कर जाता।
प्राची के अरुण मुकुर म देखू प्रतिबिम्ब तुम्हारा।

प्रकृति प्रतीक रूप मे—छायावाद मे केवल सादृश्य को ही आधार नही बनाया गया किन्तु किन्ही भावनाओ और धारणाओ के लिए प्रकृति के कुछ पदाथ प्रतीक रूप भी प्रयुक्त हुए। यह साम्प्रदायिक प्रतीकवाद नहा या जो फ्रास के कविया म मिलता है और जिसका प्रयोगवाद म अधिक सम्मान है किन्तु सादृश्य के बिना भी छायावादियो ने पदार्थों को प्रतीक के रूप म प्रयुक्त

---

१ मुस्काता सदेश भरा नभ क्या प्रियतम आने वाले हैं?
२ अश्रु मेरे मागने जब नींद मे वह पास आया।

अथवा

मेरे प्रिय को आना है तम के परदे मे आना

लिया। कहीं सूक्ष्म सादृश्य भी मिलता है तो कहीं गुण का आश्रय लिया गया है, कहीं गति का कहीं प्रभाव था। मध्यकाल मे कबीर दादू नानक आदि ने प्रतीको के द्वारा सूक्ष्म अनुभूतियों का वर्णन किया है। जैसे चदरिया ज़िन्दगी का प्रतीक है और चरखा मानव जीवन या ससार का। प्रतीक वर्ण्य वस्तु या भावना का प्रतिनिधि होता है उपमान नही।

कप कँप हिलोर रह जाती
पर मिलता नहीं किनारा
बुद्बुद विलीन हो चुप से
पा जाता आशय सारा।

यहाँ लहर चचल चित्तवृत्ति की और बुदबुद समर्पित जीवन का प्रतीक है। किन्तु दर्शनीय यह है कि उक्त दोनो प्रतीको मे सूक्ष्म सादृश्य भी है—

अपने ही सुख से चिर चचल
हम खिल खिल पडती प्रतिपल।
जीवन के फनिल मोती को
ले ले चल करतल मे टलमल।

यहाँ भी सादृश्य विद्यमान है। लहर की गति और जीवन की गति म सादृश्य अवश्य है। प्रसाद जी के धधा चकोर गजन वारिदमाला और आतरिक—आपत्तियाँ बाधाओ और उलझनो म सादृश्य विद्यमान है। कामायनी म चिन्ता म जो प्रलय का वर्णन है वह मनु की चित्तवृत्तियों मे चलने वाली प्रलय का प्रतीक है परतु सादृश्य यहा भी है। इसी तरह कामायनी मे सन्ध्या निशा सरिता आदि के वर्णन वस्तुत प्रतीक के रूप मे भी स्वीकृत हैं किन्तु प्रकृति को छायावादी केवल प्रतिनिधि के रूप म प्रयुक्त न कर सवदा कुछ न कुछ सादृश्य के आधार पर अवश्य आधारित करते हैं। इससे यह सिद्धान्त प्रतिपादित होता है कि प्रतीक वह अधिक सुन्दर होता है जिसम प्रतिनिधित्व सादृश्य पर भी आधारित हो। छायावाद म ऐसे ही प्रतीको का प्रयोग अधिक हुआ है। धूल की ढरी और बचपन म अवश्य सादृश्य है। प्रयोगवाद म छायावादियो की महान सौन्दयवादी दृष्टि को भुला दिया गया और प्रतीकों ही नहीं, उपमान विधान म भी रूप के सादृश्य की उपेक्षा की गई फलत सौन्दय का ह्रास हुआ जहाँ प्रयोगवाद म छायावाद का अनुकरण है वहाँ सफलता मिली है।

उद्दीपन रूप मे प्रकृति— छायावाद मे प्रकृति का मानवीकरण तथा प्रकृति मे परोक्ष सत्ता का आभास न्यान भी अधिक किया गया है। शद्ध आलम्बन रूप मे प्रकृति चित्रण भी उसकी विशेषता है। अर्थात वस्तु व्यजना भी छायावाद मे सुन्दर हुई है किन्तु मध्यकालीन काव्य की प्रमख प्रवत्ति उद्दीपन रूप मे प्रकृति चित्रण भी छायावाद म कम नहा हुआ है। इस दृष्टि से वह मध्यकालीन साहित्य से सम्पृक्त दिखाई पडता है। मानवीकरण मे प्रकृति का सौन्दर्य और मानवीय सौन्दय—ये दोनो सौन्दर्य मिलकर द्रष्टा के आनन्द को द्विगुणित कर देते हैं। उद्दीपन म मानव-अनुभूतिया प्रधान हो जाती हैं और प्रकृति उन्हे उद्दीप्त करती है किन्तु विशिष्ट मानसिक स्थिति मे देखी गई प्रकृति अपनी एक विशिष्ट छवि का विस्तार करती है। सयोग मे हमारे हृदय का आनन्द प्रकृति दशन से द्विगुणित होता है उस समय भी हमम एक तटस्थता विद्यमान रहती है जो एक विलासी म नहा रह पाती कवि मे रहती है सहृदय म रहती है। जस कवि कह रहा हो कि सयोग की स्थिति म सम्भोग की विराट परिधि मे प्रकृति भी शामिल है और इस स्थिति मे जितनी ही अधिक तटस्थता होगी आनन्द उतना ही अधिक होगा। कामायनी मे 'वासना' सग इसका सुन्दरतम उदाहरण है—

> सृष्टि हसने लगी आखो मे खिला अनुराग।
> राग रजित चन्द्रिका थी उडा सुमन पराग।
> मधु बरसती विधु किरन हैं कापती सकुमार।
> पवन मे है पुलक मथर चल रहा मधुमार।
> तुम समीप अधीर इतने आज क्यो है प्राण।
> छक रहा है किस सुरभि से तप्त होकर घ्राण।

विप्रलम्भ स्थिति म प्रकृति एक ओर तो विरही के भाव के विस्तार का अवसर देती है और दूसरे विरही को अपनी मानसिक स्थिति के प्रक्षप से यथार्थ को अपना सवथा नया रूप प्रस्तुत करने का भी अवसर देती है अत उद्दीपन रूप म प्रकृति चित्रण प्रारम्भ से ही प्रिय रहा है और बराबर रहेगा क्योकि वह हमारी भावना क साथ गुथा हुआ है। यह कृत्रिम स्थिति नहा है। प्राय सभी प्रकृति की शोभा को सुख म सुखकर और दुख में उद्दीपक देखत हैं अत प्रकृति क इस रूप को छोड देने का अथ है एक यथार्थ अनुभव से हाथ धो बठना। हार्डी न प्रकृति का मानवी सुख दु खो स सवथा अप्रभावित रूप कहीं-कहीं चित्रित किया है किन्तु प्राकृतिक विधान की दृष्टि से सत्य होने

पर भी इस दृष्टिकोण म मानवीयता का अभाव है अत वह काव्य मे प्रचलित नही हो सका, हिन्दी काव्य मे तो उसे स्थान ही नही मिला।

'विप्रलम्भ' की स्थिति मे प्रकृति का उद्दीपक रूप पन्त जी की कई रचनाओं मे मिलता है—

तडित सा सुमुखि तुम्हारा ध्यान
प्रभा के पलक मार उर चीर
गूढ गर्जन कर जब गम्भीर
मुझ करता है अधिक अधीर
धधकती हैं जलदो से ज्वाल
बन गया नीलम व्योम प्रवाल
आज सोने का सन्ध्या काल
जल रहा जन्तु गृह सा विकराल।

कामायनी म भी उद्दीपन-विधि का नवीन प्रयोग हुआ है—

सध्या अरुण जलज केसर ले अब तब मन थी बहलाती।
मुरझा कर कब गिरा तामरस, उसको खोज कहाँ पाती।
क्षितिज भाल का कुकुम मिटता मलिन कालिमा के कर से।
कोकिल की काकली वृथा ही अब कलियो पर मँडराती।

महादेवी ने इस पद्धति का विस्तार से प्रयोग किया है प्राय महादेवी प्रकृति मे अपने दुख का प्रतिबिम्ब देखती हैं जो विरहिणी की पीडा को और बढाता है—

मैं क्षितिज भृकुटि पर घिर धूमिल
चिन्ता का भार बनी अविरल
विस्तृत नभ का कोई कोना
मेरा न कभी अपना होना
परिचय इतना, इतिहास यही
उमडी कल थी, मिट आज चली।

अथवा

विद्युत की चल स्वर्णपाशम, बँध हँस देता रोता जलधर।
अपने मृदु मानस की ज्वाला गीतो से लहराता सागर।
सघन वदना के तम म, सुधि जाती सुख सोने के कणभर।
सुरधनु नव रचनी निश्वासें, स्मित का इन भीगे अधरो पर।
आज आँसुओ के कोशा पर, स्वप्न बने पहरे वाले हैं।

आत्माभिव्यक्ति और प्रकृति—जब कवि समाज से असंतुष्ट होता है जब समाज म उसकी सुनन वाला कोइ नही होता तब वह प्रकृति के सम्मुख अथवा उसके माध्यम से निजी सुख दु ख की व्यजना करता है। लगता है कि छायावादी के लिए प्रकृति का वही महत्त्व था जो तुलसी के लिए सीता का। विनयपत्रिका म तुलसी माता की सिफारिश द्वारा राम स अपनी पत्रिका स्वीकृत कराने का स्वप्न देखा करते थे। छायावादी का लक्ष्य तो एक आदश-समाज की सृष्टि है उसके समय का समाज जब उसकी नही सुनता तब वह प्रकृति से आत्म निवेदन करता है कभी कभी 'परब्रह्म से भी और आशा करता है कि समाज का एक भाग उसकी आशाओ आकाक्षाओ को अवश्य स्वीकार करेगा औरवस्तुत जसे सीताजी की सिफारिश पर राम ने तुलसी की विनय-पत्रिका पर सही कर दी थी उसी तरह शिक्षित मध्यवग का एक भाग छायावादी काय का समथन करने लगा और आज वह वग छायावादियो के यूटोपिया को व्यावहारिक रूप देने म तल्लीन होगया है।

इस आत्म निवेदन का रूप विविध है। कही समाज की जडता और सकीणता देखकर कही स्वतन्त्रता का अभाव देखकर कही कुत्सित मनोभावनाएँ देखकर और कही समाज म सहृदयता का अभाव देखकर छायावादी प्रकृति की शरण खोजता है ले चल मुझे भुलावा देकर मेरे नाविक धीरे धीरे जैस गीतो का यही मम है पन्त जी प्रकृति की ओर समाज का ध्यान खीचत हैं—

यह अमूल्य मोती सा साज
इस सुवणमय सरस परा मे
शुचि स्वभाव से भरे सरा म
मुझको पहना जगत देख ले यह स्वर्गीय प्रकाश।
—पल्लव

इसी प्रकार पन्त जी गगन से जग का पाप हरने की प्रार्थना करते हैं।[1] वस्तुत छायावाद प्रकृति के सौन्दय का चित्रण इसी उद्देश्य से करता है कि जीवन म समाज म असुन्दरता देखकर उसे दु ख होता था अत सौन्दय चित्रण स्वय एक उपयोगी काय है सौन्दय का आनन्द लेने वाले व्यक्ति का मन किसी भी प्रकार की कुरूपता कुत्सितता कापुरुषता और असमानता का सह नही सकता। रूप रगो और अवयवो क सुविन्यास क प्रशसक कवि समाज म अवयवो

---

1 गरज, गगन क गान! गरज गम्भीर स्वरों मे
हर मेरा सन्ताप, पाप जग का क्षण भर म।

का सतुलन स्वत चाहने लगते हैं और सहृदय पाठक भी। अत छायावाद का इस प्रकार का प्रकृतिवर्णन केवल रूपलिप्सा नही है अपितु वह महत्त उद्देश्य से प्ररित है—

सिखा दो ना हे मधुर-कुमारि
मुझे भी अपने मीठे गान
कुसुम के चुने कटोरो से
करा दो ना कुछ कुछ मधुपान।

मानवता को पूर्ण बनाने की कैसी भावना इसमे छिपी हुई है। छाया शिशु निर्झर विश्व छवि बालापन आदि रचनाओ म पत जी ने मानवता को पूर्ण करने के लिए बराबर आकाक्षा प्रकट की है। याचना मे तो कवि ने स्पष्टत प्रकृति से ही सद्गुणो को चुनने की इच्छा प्रकट की है।[१] महादेवी न भी बादल की तरह घिर कर तथा शरदनिशा की तरह बिखर कर जग क विषाद को धोने की इच्छा प्रकट की है।[२] प्रकृति के बदलते चित्र जगत की नश्वरता का प्रकृति का सौन्दर्य जगत की मादकता का भ्रमरो और पुष्पो की उपेक्षा को देखकर जगत् की निष्ठुरता का तथा मुस्कराते हुए आकाश को देखकर आशावादिता का सदेश ग्रहण कर कवियित्री मानवता के विविध रूपो को प्रस्तुत करती है। निराला ने तो स्पष्ट ही घोषित किया है कि प्रकृति के विराट चित्रो का अकन किसी जाति की मुक्ति की कामना को प्रकट करता है। उनके 'शुभ्रकिरण वसना' म मानो मानवता को 'शुभ्रकिरण वसना' बनाने की इच्छा प्रकट की गई है।[3] निराला ने वृतहीन जीवन प्रसून को उषा-नभ म खिलते हुए देखा था जिसम ज्योतिसुरभि धाराएँ भर रही हो।[४]

उस असीम म ले जाओ।
मुझ न कुछ दे जाओ।

---

१ नव नव सुमनो से चुन-चुन कर, धूलि, सुरभि, मधुरस हिमकण
मेरे उर की मृदु कलिका मे, भर दे, कर दे, विकसित मन।

२ पावस घन सी उमड बिखरती, शरद निशासी नीरव घिरती।
धो लेती जग का विषाद, ढुलते लघु आसू कण अपने मे।

३ नहीं लाज, भय अनृत, अनय दुख, लहराता उर मधुर प्रणय सुख।
अनायास ही ज्योतिमय मुख, स्नेहपाश कसना।
कौन तुम शुभ्रकिरण वसना!

४ द्रष्टव्य— 'प्रभाती'—परिमल

तरगो के प्रति मे भी कवि ने अवलाओ की करुण प्रकार सुनी है और इस महान कविता का अत उक्त कामना के साथ हुआ है।

निराला की दृष्टि प्राय सवत्र प्रकृति चित्रण के समय मानवीय जीवन की अपूणता पर रही है धारा वन कुसुमा की शय्या रास्ते के फूल से प्रपात के प्रति कण आदि कविताए इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। जो छाया वादियो को कोरा कलावादी कहते हैं उन्हे छायावादियो के सौ दय चित्रण की पृष्ठभूमि मे काय करते हुए मन को टटोलना चाहिए।

प्रकृति म जो भी सम्मोहन रूप रग श द गति सुरभि स्पश सावयवताजन्यसौन्दय जीवन के लिए सुखद प्ररणाए और सदश मिल सका उसे छायावाद ने चित्रित करने का प्रय न किया है। रीतिकाल की सकीण दृष्टि यहा कितनी भव्य उ ज्वल और निजी जीवन स लेकर विश्व जीवन तक के सभी छोरो को स्पश करती हुई चली है इसे देख कर बडी प्रसन्नता होती है। छायावाद की दृष्टि मे सौ दयग्राहिका शक्तिइतनी अधिक सूक्ष्म सकेतपूण और पदाथममभेदिनी है कि उसमे पारसमणि और पारदर्शी शीशे के गुण एक साथ मिलते हैं। लघु और सामान्य पदाथ के सौन्दय को पाठक के सम्मुख प्रस्तुत करना और पारदर्शी दृष्टि डालकर पदाथ के भीतर के तत्व का साक्षात्कार करना—छायावाद की यह प्रमुख प्रवृत्ति है। कुरूपता के प्रति घणा होने क कारण छायावाद ने प्रकृति के कोमल प्रकाशमय और मधुर रूपो का ही चित्रण अधिक किया है परन्तु प्रकृति के भीषण पक्षो अर्थात् उदात्त सौ दय की भी उसने उपेक्षा नही की है। निराला और प्रसाद उदात्त के आकषण को बादलराग और राम की शक्तिपूजा तथा कामायनी मे तल्लीन होकर चित्रित करते हैं। सौदय और उदात्तचित्रण से हमारा आदोलनकारी राष्ट्रीय जीवन भीतर से पुष्ट हुआ और सास्कृतिक जीवन व्यापक मानवमूल्यो पर प्रतिष्ठित हुआ। मध्यकालीन जीवन मे प्रकृति की जो उपेक्षा थी वह वज्ञानिक युग म कम हुई प्रकृति न कवल सौदय की निधि मानी गई अपितु सामाजिक समस्याओ के समाधान के लिए भी हमने प्राकृतिक जीवन की ओर आशा भरे नेत्रो से देखना प्रारम्भ किया। इसके अतिरिक्त प्रकृति के रहस्योद् घाटन के लिए छायावाद ने हम प्रवृत्त किया।

अपनी सौन्दय निष्ठा के कारण ही छायावादी कवियो मे जो प्रगतिवाद की ओर उन्मुख हुए उन्हें प्रचारवाद क स्थान पर ग्राम्य जीवन के सुन्दर चित्रो को प्रस्तुत करने म अधिक सफलता मिली। सौदय निष्ठा के ही कारण पन्त जी के नाना सिद्धाता से प्रभावित होने पर प्रकृति को नाना दृष्टियो से

देखने की प्ररणा मिली। यहा तक कि नूतन दाशनिक काव्य मे भी उनकी सौ न्य निष्ठा नष्ट नही हुई। विचारो की दृष्टि से छायावादियो मे एक मात्र सक्रिय कवि पन्त जी के काव्य मे असगतियो और समन्वयजन्य उलझनें मिलती हैं। विचारपक्ष की प्रौढता का भी अभाव उनम खोजा जा सकता है परन्तु छायावादी सौदय निष्ठा क कारण उनके समूचे काव्य म जो सगति और एकता मिलती है वह है मानवता के उद्धार के लिए शुभ कामना और पुष्ट सौन्य बोध। छायावादी सवत्र पदाथ विचार और भाव के सौन्दय को खोज लेता है। ग्रीक कलाकारो की तरह छायावादी कवियो का सवत्र ध्यान वस्तु व्यक्ति विचार और भाव के सौदय पर ही रहा है अत उनका प्रकृति-दशन वास्तविक कलाकार का प्रकृति-दशन है उनके पलायन मे भी मानवता की मुक्ति के स्वप्न-दशन का प्रयत्न है।

परवर्ती छायावादी कवि और प्रकृति—छायावादी की लघुत्रयी—अचल नरेन्द्र और बच्चन तथा अन्य कवियो म सौदय निष्ठा का वह उच्च रूप नही मिलता जो बृहत्—चतुर्यी मे मिलता है। फिर भी छायावादी होने के कारण इन कवियो म भी सौदयनिष्ठा का एक अपना रूप मिलता ही है। नरेन्द्र शर्मा ने स्पष्ट लिखा है कि पूर्वार्ध के कवि (पन्त प्रसाद निराला महादेवी) सौन्दर्योपासक और असीम अनन्त के अनुरागी थे। असीम के उपासक बहुधा सीमाहीन मे अपनी ऐहिक सीमाओ को भुला देने के लिए प्रयत्नशील रहे सौन्दर्योपासक और असीमोपासक दोनो मे एक विशेष समानता थी। दोनो ही वास्तविकता स दूर हटकर अपने को कल्पनाजन्य स्वप्नो म भुलाते रहे। हम उनके मनोभावो को समकालीन सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध प्रतिक्रिया के रूप म समझना चाहिए।[1]

नरेन्द्र शर्मा भी इस तथ्य को मानते हैं कि सौदय की भूलभुलैयो मे भूले रहने वाले कवि बहुत समय तक अपने को प्रवचित नही कर सकते थे। समाज की वास्तविकता से कोई कब तक आखें मूंद सकता है।—फलत उत्तराध के कवियो म निराशा व्यक्त होने लगी।

प्रवासी के गीत म प्रकृति को इसी उक्त निराशावादी दृष्टि से देखा गया है।

> साझ होते ही न जाने छा गई कैसी उदासी
> क्या किसी की याद आई ओ विरह व्याकुल प्रवासी।

---

1 प्रवासी के गीत—भूमिका

नरेंद्र शर्मा ने अस्त रवि सी आशा फूट भाग्य सा घन भरी हुई आँखो सी निसरी पेड के परो पर पडी शान्त छाया विजन वन सा कवि श्वास के पतझार आदि का वणन किया है किन्तु कहीं कहीं प्रकृति के सौन्य ने कवि के निराशावा पर विजय भी प्राप्त की है—

कह सकेगा कौन कडवी बात ऐसी चान्नी मे।
कौन सोचेगा असुन्दर बात ऐसी चादनी मे।
खिल उठ है जाग सब गहरी अधरी नीन्से चव।
मन सुमन सा सुमन सी यह रात ऐसी चादनी मे

अथवा

तुम चद्रकिरण सी खेल रही हो मेरी चपल तरगो मे।

पलाशवन को छोडकर नरेंद्र ने कही भी मन लगाकर प्रकृति का निराशा की स्थिति मे भी चित्रण नहा किया। चित्रण से हटकर बार बार कवि का मन अपने मन के विश्लेपण मे लग जाता है। बच्चन की पहली पत्नी की मृत्यु पर लिखी हुई कविताओ मे भी यही प्रवृत्ति मिलती है। यदि नरेंद्र को अपना रूप मरघट का पीपल तरु जसा लगता है तो बच्चन को रात म कुत्त अपने भौंकते हुए अरमानो जसे लगते हैं किन्तु बच्चन मे सौन्दय निष्ठा भी मिलती है।[1]

बच्चन ने सिंदूरी चा को भी देखा है और यह भी कि चाँद सारी रात प्रम के ढाई अक्षर लिखता रहता है। पलाशवन मे नरेंद्र ने भी प्रकृति के सौन्य को देखा है। कूर्माचल कौसानी रानीखेत की रात और चाँदनी शीपक रचनाओ मे छायावादी परम्परा का ही पालन किया है यद्यपि सश्लिष्ट चित्रण के प्रति परवर्ती कवि कही भी विस्तार और सूक्ष्मता के साथ अग्रसर नही हो सके हैं। वस्तुत इन कवियो का ध्यान प्रकृति को मानवी भावनाओ क वणन के लिए माध्यम बनाने पर अधिक रहा है। सौन्दय-साधना म कवि को

---

१ पहचानी वह पगध्वनि मेरी
नन्दन वन मे उगने वाली मेहदी जिन लतवों की लाली।
ऊषा ले अपनी अरुणाई लेकर किरणों की चतुराई
जिनम जावक रचने आई
तथा
बुलबुल तरु की फुनगी पर से सदेश सुनाती यौवन का।
कम मुरझाने वाली कलियाँ हसकर कहती हैं मग्न रहो।

सौंदय को देखा नहीं है। छायावादी अतींद्रिय प्रमभाव के विरुद्ध जिस प्रकार इन कवियों ने स्थूल शारीरिक आकषण के प्रति स्पष्ट और सरल भाषा म अभिधावाली शली म अपनी रुचि प्रकट की उसी प्रकार प्रकृति के सश्लिष्ट चित्रो के स्थान पर सक्षिप्त चित्र और वह भी मानवी भावनाओ के सदभ म प्रस्तुत करते हुए इन कवियो ने वस्तुत प्रकृतिवाद को अधिक महत्त्व नहीं दिया। प्रकृति का जो भी वणन इन कवियो मे मिलता है खासकर अचल और नरेन्द्र मे उसम अधिकाशत प्रकृति को देखता हुआ कवि अपने मन को भूल ही नहीं पाता। इसके अतिरिक्त प्रकृति के सहज और वास्तविक रूप को यथावत् कह देने की प्रवृत्ति अधिक है कल्पना के द्वारा नाना उपमानो का विधान इन्हे इष्ट नहीं है। अनलकृत रूप मे आत्माभिव्यक्ति इनका उद्देश्य है—

> आया था हरे भरे वन म पतझर पर वह भी बीत चला।
> कोपलें लगी जो लगी नित्य बढने बढती ज्यो चद्रकला।
> पतझर की सूखी शाखा म लग गई आग शोले लहके!
> चिनगी सी कलियाँ खिली और हर फुनगी लाल फूल दहके!
> सूखी थी नसें वहा उनम फिर बूँद बूँद कर नया खून!

वसत के सौंदय का जो चित्रण पत जी के पल्लव म मिलता है उससे यह चित्रण कितना भिन्न है कितना सरल कल्पनाहीन और प्रकृति को केवल दद की स्थिति म देखने के प्रयत्न स्वरूप अत्यधिक व्यक्तिवादी—

> लो डाल डाल से उठी लपट! लो डाल डाल फूले पलाश
> यह है वसत की आग लगा दे आग जिसे छू ले पलाश।[1]

किंतु पलाश वन से एक बात साफ जाहिर होती है कि कवि छायावादी की अतींद्रिय सूक्ष्म उपमाओ और केवल महावने प्रकृति रूपो के अतिरिक्त प्रकृति के अपेक्षाकृत अधिक व्यावहारिक रूपो की ओर भी देखता है। नरेन्द्र शमा ने पलाशवन म सोने के रंग से उजली के साथ साथ प्रमिका को सरसो के फूलो से भी उपमा दी है—अनग अप्सरा और उवशी की काल्पनिक मान्यता की तुलनायें नरेन्द्र शर्मा का वास्तविक जीवन प्रेम देखिए—

> खुली हवा है खुली धूप है
> दुनियाँ कितनी सुदर रानी।

---

१ पलाशवन—नरेन्द्र शर्मा।

आओ सारस की जोडी से
निकल चले हम दोनो प्राणी ।[1]

नरेन्द्र ने "मैली धोती सी मैली" तथा "मरकत महलो के बीच चाँदी की गलियों सी सरिताएँ" का उल्लेख किया है । फागुन की आधी रात मे "बछडे से बिछुडी रँम्हाती हुई गाय" तथा "गजनेरी साँड" का, "रोते हुए शृगालो बोलते हुए उल्लुओ" का भी कवि ने उल्लेख किया है । अतीन्द्रियता के स्थान पर अधिक ऐन्द्रिकता, सूक्ष्मता के स्थान पर स्थूलता, सश्लिष्ट चित्रण के स्थान पर विश्लिष्ट चित्रण, तटस्थता के स्थान पर 'स्व' से आक्षिप्त दृष्टि, लक्षणा के स्थान पर अभिधा और काल्पनिक के स्थान पर वास्तविक प्रकृति-चित्रण परवर्ती छायावाद मे अधिक मिलता है ।

अलौकिक से प्रेम—हम कह चुके हैं कि प्रेम और प्रकृति के अतिरिक्त छायावाद मे अलौकिक तत्त्व से प्रेम की भी एक प्रवृत्ति थी । यह अलौकिक से प्रेम एक एकतासूत्र के रूप मे पाया जाता है, यह भी हमने सकेतित किया है । प्रेम के क्षेत्र मे प्रेमपात्र को 'विश्वमोहिनी' का स्तर दिया गया है । कामायनी मे प्रेमिका का निरूपण एक अत्यधिक उच्च दार्शनिक स्तर पर हुआ है जहाँ श्रद्धा, अपनी चेतना के ही एक पूरक अश के रूप मे दिखाई पडती है अत प्रेम के वर्णन मे भी 'अलौकिकता' के प्रति प्रेम हमे दिखाई पडता है । छायावादी 'प्रेमिका' के सौन्दर्य को सामान्य स्तर पर रखना उसके सौन्दर्य का अपमान समझता है जैसे उसका सौन्दर्य किसी दिव्यलोक से सम्बन्धित हो ।

प्रकृति के क्षेत्र मे भी यह प्रवृत्ति दिखाई पडती है । हम कह चुके हैं कि छायावादी प्रकृति के कण-कण मे एक सर्वव्यापक सत्ता का आभास देखते हुए चले हैं । वस्तुत इससे उनको सौन्दर्य-प्रियता के लिए एक अन्य उपादान और मिल गया है अतः उनका प्रकृति के क्षेत्र मे अलौकिक से प्रेम साम्प्रदायिक न होकर सौन्दर्यवादी है । यह अतर न समझने के कारण छायावादियो की इस महान उपलब्धि पर हमारी दृष्टि नही जाती कि जिस प्रकार उन्होंने मध्य-कालीन अधविश्वासो से ग्रस्त धर्म के स्थान पर केवल 'दार्शनिकता' को स्वीकार किया है जैसा कि पूँजीवाद के विकास के दौरान मे योरोप मे भी हुआ है—कालरिज, शैली, बायरन आदि ही नही, काट, हीगेल जैसे महान दार्शनिकों ने मध्यकालीन अधविश्वासो के स्थान पर केवल 'दार्शनिकता' को

१. वही ।

ही अपनाया था उसी तरह छायावादियो ने सिद्धान्तत ब्रह्म और आत्मा को स्वीकार कर फिर उनका सुन्दरीकरण किया है। छायावादिया का सौन्दय वाद इसीलिए साम्प्रदायिक नही है। दार्शनिक क्षेत्र म वह ब्रह्मवाद के आधार पर व्यापकवाद की प्रतिष्ठा करता है सौन्दर्य के क्षेत्र मे छायावाद घम के पजे से कला को निकालकर मुक्त कर देता है पूँजीवाद की मध्ययुग पर यह भी एक महान विजय है।

अज्ञय को अज्ञेय ही रखकर उसके प्रति प्रम सम्बन्ध की स्थापना और उसके सयोग वियोग म मध्यकालीन रहस्यवाद से छायावाद मे बहुत अन्तर पाया जाता है। अज्ञेय को सुन्दर और मगलमय मानकर छायावादियो ने सवप्रथम अज्ञय का सुन्दरीकरण किया है, उसे भव्य से भव्य रूप मे देखने का प्रयत्न किया है और दूसरी ओर आत्मा के सयोग के सुखद स्पर्शो का भी सुन्दरीकरण अधिक किया है जो वास्तविक दिव्य अनुभूति पर आधारित न होकर अनुमान आरोप तथा कल्पनाजन्य हैं। रहस्यवादी न होकर भी रहस्यवादी की मानसिक स्थिति की कल्पना कर लेना असम्भव नही है और इस विशिष्ट मानसिक स्थिति को जब रवीन्द्रनाथ टैगोर ने अत्यधिक आकपक नवीन काव्यकला मे अवतरित कर दिया तब इस मानसिक स्थिति की ओर अन्य कवियो का ध्यान भी आकर्षित हुआ। सौभाग्य या दुर्भाग्यवश हमारे प्राचीन काव्य और साहित्य मे इस प्रकार के साहित्यकी दीघ परम्परा थी। प्रसाद जी ने इसी लिए रहस्यवाद' और आनन्दवाद की परम्परा वेदो से लेकर आगम साहित्य मे खोज निकाली। आचाय शुक्ल भारतीय साहित्य मे रहस्यवाद का निषध करते रहे[1] किन्तु 'रहस्यवादी रचनाओ के सौन्दय ने स्वय शुक्लजी पर प्रभाव डाला था और स्वाभाविक रहस्यवाद' के वह भी प्रशसक थे। अत्यधिक गूढता प्रतीकात्मकता और कृत्रिमता उन्हे पसन्द न थी, इनकी निन्दा करते समय जोश मे वह यह भी कह गए कि रहस्य के प्रति जिज्ञासा तक तो ठीक है किन्तु उसके प्रति ललक और कामवासना, छद्म रूप म भी सही', व्यक्त नही होनी चाहिए। असलियत यह है कि छायावाद म 'रहस्यवाद' का गूढ़ रूप बहुत कम मिलता है। 'कामायनी' के अतिम सर्ग मे तथा मुक्तक रचनाओ मे वह अवश्य मिलता

---

१ अज्ञेय और अव्यक्त को अज्ञेय और अव्यक्त ही रखकर काम वासना के शब्दों मे प्रेम व्यजना भारतीय काव्यधारा मे कभी नहीं चली, यह बात "हमारे यहाँ यह भी था" की प्रवृत्ति वालों को अच्छी नहीं लगती।"

—हिन्दी साहित्य का इतिहास

है परन्तु उसमें घोर प्रतीकात्मकता और साम्प्रदायिक रहस्यवादियों जैसी धार्मिक अनुभूतियों की व्यंजना नहीं मिलती। 'प्रसपात' के रूप में आराध्य का अंकन करने में छायावादी वस्तुतः प्रेम की मधुरिमा का ही अधिक चित्रण करता है। कबीर, मीरा, दादू, रविया आदि रहस्यवादियों जैसी गूढ़ और आध्यात्मिक निगूढ़ता छायावाद में नहीं है। संत और साधक जिस तत्त्व को स्वयंप्रकाश्यनता द्वारा साक्षात्कृत करते थे छायावादी उसे कल्पना के नेत्रों से देखते हैं। साधक के लिए जो 'साक्षात्कृत अनुभव' हैं छायावादी के लिए वह 'चिंतन' है। सूक्ष्म कल्पनाशक्ति ब्रह्माण्ड में व्यापक किसी सत्य के प्रति मानवीय सम्बन्ध स्थापित कर यदि उसका वर्णन करती है तो इसमें साम्प्रदायिकता क्या देखनी चाहिए—यह तो रहस्यवाद की सौन्दर्यवादी अन्तर्दृष्टि द्वारा स्वीकृति थी।

छायावाद सत्य की खोज के लिए प्रयत्न नहीं करता अपितु वह पहले के साधकों द्वारा खोजे गए सत्य को स्वीकार कर उसे सुन्दर अभिव्यक्ति भर देता है और सर्वत्र शून्य से बचता है—

वही उर उर में प्रेमोच्छ्वास
वायु में औ कुसुमों में वास
अचल तारक पलकों में हास
लोल लहरों में लास —पंत

पल्लयमात्र में जीवन भरने से सौंदर्य की सृष्टि हो जाती है क्योंकि सौंदर्य वहीं है जहाँ जीवन है। जीवन के बिना केवल ज्यामितिक सौन्दर्य ही रह जाता है अतः यहाँ 'लोल लहरों में लास और तारकों के पलकों में हास' के रूप में चित्रित 'ब्रह्म साधना' का नहीं 'सौंदर्य' का स्रोत बन गया है—आश्चर्य है कि छायावाद के किसी विवेचन में इस ओर विवेचकों की दृष्टि ही नहीं गई फलतः छायावादियों के 'रहस्यवाद' पर तरह-तरह के व्यंग्य के आक्षेप हुए हैं। उदाहरणतः छायावादी पाखण्डी हैं उनकी भावनाएँ कृत्रिम हैं उनमें साधकों जैसी वास्तविकता नहीं है। बातें सही हैं किन्तु छायावादी को साधक होना चाहिए था यह तो इतिहास के विरुद्ध हो जाता। जिस मध्यकालीन मूकता से वह हम धीरे धीरे निकल रहा था उसी को वह कैसे स्वीकार कर लेता! कुछ पुरुष्यानवादी प्रवृत्तियों के कारण भी 'रहस्यवादप्रमा विदग्धियों के सम्मुख अपने देश के रहस्यवाद' को प्रस्तुत करना था परन्तु उसने उसका अनुकरण न कर उसे नूतन रूपविधायिनी शक्ति के द्वारा ग्रहण किया 'विरक्तावर्जक' चित्तवृत्ति द्वारा ग्रहण नहीं किया।

प्रसाद जी का रहस्यवाद वस्तुत विकसित रूप मे कामायनी म ही पाया जाता है। उसके पहले आँसू म यत्र तत्र रहस्यप्रियता अवश्य मिलती है। आसू के पूव जिज्ञासात्मक रूप मे अथवा पदाथ मात्र म उसके सौन्दय की झलक देखने की प्रवृत्ति है जो वस्तुत छायावादी प्रवृत्ति है। रहस्य को खोजने की प्रवृत्ति वहा उतनी नही है जितनी प्रकृति-सौन्दयवणन क लिए एक जीवनदायनी प्ररणा की स्वीकृति की प्रवृत्ति है।

कामायनी मे लगता है कि प्रत्येक काय अथवा पात्रो के अनुभव को कोइ शक्ति परदे के पीछ से सचालित कर रही है और पात्र—विशेषकर मनु उसे समझने के लिए विकल हैं। उनका भटकाव भी जैसे उस रहस्यमय सत्ता के सकेत से ही होता है क्योकि असमरता के दौर से गुजरे बिना समरसता प्राप्त नही हो सकती अत सामान्य छायावादी दृष्टि से उठ कर कवि शैवागमो के प्रत्यभिज्ञावाद को मन मे रखकर पात्रो की सृष्टि करक घटनाओ को सिद्धात के प्रतिपादन के लिए मोडता है। कामायनी म घटना और पात्र उतने महत्त्वपूण नही हैं जितना कि वह रहस्यमय सिद्धान्त जिसके प्रतिपादन के लिए कामायनी की सृष्टि हुई है। चूँकि इस सिद्धान्त द्वारा प्रसाद जी अपने युग के सारे प्रश्नो के उत्तर भी देना चाहते थे अत एव प्रतीकात्मक काव्य की सृष्टि मे आसानी रही है।

अत कामायनी की रचना मे मुख्य तत्त्व परमशिवतत्त्व का प्रकाशन और गोपन है। पाशो को काटकर वह कैसे पशु को शिव बना देता है यही तत्त्व कामायनी म मुख्य है अत रहस्यवाद का वह रूप जो हमे आगमो और तन्त्रो मे मिलता है कामायनी म भी मिलता है अत प्रसाद जी ने झूठ नही कहा था कि भारतीय काव्य मे रहस्यवाद उपनिषदो और आगमो मे सुरक्षित है।

नियति काल राग आदि कचुको या पाशो मे बद्ध जीव की स्थिति म कचुकग्रस्त चित्तवृत्ति मे प्रकृति और जीवन का चित्रण जब कामनीकार करता है तब शैवागमो के रहस्यवाद से परिचित पाठक स्पष्ट यह अनुभव करता है कि यह प्रतिपादन छायावाद की सामान्य पद्धति से भिन्न है और शैवागमो से अपरिचित पाठक के लिए यह अतर-स्पष्ट नही होता उदाहरण के लिए आशा म निशा का वणन देखिए—

> किस दिगत रेखा म इतनी सचित कर सिसकी सी साँस।
> यो समीर मिस हाँफ रही सी चली जा रही किसके पास।
> विकल खिलखिलाती है क्यो तू इतनी हँसी न व्यथ बिखर।
> तुहिन कणो फनिल लहरो म मच जावेगी फिर अधर।

घूँघट उठा देख मुस्क्याती, किसे ठिठकती सी आती।
विजन गगन में किसी भूल सा, किसको स्मृति पथ में लाती।

यहाँ रात पर चलना का सामान्य आरोप मान कर मानवीकरण अलंकारमात्र माना जा सकता है किन्तु शैवागम के रहस्यवाद की दृष्टि से यहाँ प्रकृति का सजीव शक्ति के रूप में चित्रण है। 'शक्ति' घूँघट उठाकर 'शिव' से यदि मिलन जाती है तो यह सर्वथा उचित है और यह भी उचित है कि मनु के मन में यह चिन्तन जग रहा हो कि वस्तुतः प्रकृति उस अव्यक्त सत्ता का ही एक व्यक्त रूप है। आत्मा की तरह ही प्रकृति भी पुरुष से एक होने के लिए आतुर रहती है— 'चिति का स्वरूप यह नित्य जगत—वह रूप बदलता है शत शत'।

इसी प्रकार श्रद्धा, काम वासना इच्छा आदि का दार्शनिक निरूपण भी कामायनीकार का ध्येय है। स्पष्टतः इसीलिए इन वृत्तियों के मानवीकरण द्वारा कवि सौंदर्य की सृष्टि ही नहीं कर रहा, नए काव्य विषयों पर ही केवल लेखनी नहीं आजमा रहा अपितु शैवागमों के अनुसार मनोभावों का रूपान्तरण कैसे हो, यह बताना भी कवि का मुख्य लक्ष्य है अतः श्रद्धा और काम के रहस्यमय रूप का प्रतिपादन कामायनी में किया गया है इसे ही तन्त्रों में "कामकलाविलास" कहा गया है।

प्रसाद जी इस 'रहस्यवाद' को मानसिक विकास के लिए आवश्यक मानते थे ऐसा लगता है। क्योंकि नाना संघर्षों में पड़ा हुआ व्यक्ति यदि अपने मानसिक संगठन की ओर ध्यान नहीं देता तो उसे संघर्ष और प्रकृति विजय का फल किसी एक या अधिक की महत्त्वाकांक्षापूर्ति का साधन बन सकता है और परिणामस्वरूप पुनः संघर्ष जन्म ले सकता है। अतः प्रसाद जी अन्तर्मुखता और 'आन्तरिक अनुसंधान' को बहिर्मुख संघर्ष और प्रकृति विजय के साथ आवश्यक मानते थे। मानवता की एक कल्पना उनके मन में थी जिसमें, इच्छा, ज्ञान और क्रिया तीनों का समन्वय करने में समर्थ "समरस व्यक्तित्वों" का विकास होगा जो बाह्य आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ-साथ मानसिक रूप से आनन्द सौंदर्य और नैतिकता की एक उच्च भूमि पर प्रतिष्ठित होंगे। व्यक्तिगत जीवन में भी बाह्य जीवन को आन्तरिक समरसता के आधार पर प्रतिष्ठित किए बिना प्रयत्न लक्ष्यहीन हो जाएगा, यह कामायनीकार का कथन है—अतः 'दर्शन', 'रहस्य', और 'आनन्द' नामक सर्गों में कवि ने स्पष्ट अलौकिक व उच्चकोटि के प्रेम का परिचय दिया है। इसे आप "यूटोपिया"

भी कह सकते है। प्रत्येक छायावादी एक-एक 'यूटोपिया' अपने मन मे रचता है और उसके ध्यान मे मग्न रहता है। किन्तु 'यूटोपिया' जितने स्पष्ट रूप मे पन्तजी की 'ज्योत्स्ना' मे है, उतनी स्पष्टता के साथ कामायनी मे नही है क्योकि कामायनी का 'यूटोपिया' राजनैतिक और सामाजिक जीवन की असफलताओ को दूर करने के लिए "कल्पित राज्य" नही है अपितु वैयक्तिक साधना से उच्चतम रूप मे प्राप्त होने वाले अनुभवो और दृश्यो का वह वर्णन करता है। जीवन का अनुभव कर लेने के बाद सृष्टि के पूर्व की स्थिति का अनुभव व्यक्ति कर सकता है—

विद्युत कटाक्ष चल गया जिधर
कम्पित संसृति बन रही उधर
चेतन परमाणु अनन्त बिखर
बनते विलीन होते क्षणभर
यह विश्व झूलता महा दोल।
परिवर्तन का पट रहा खोल।

किस प्रकार मूलचेतना अपने को प्रथम दो रूपो मे—शिव शक्ति रूप मे और पुन नाना रूपो मे व्यक्त करती है और साथ ही साक्षी रूप मे वह सारे दृश्य को देख देखकर प्रसन्न होती है, यह स्पष्ट करना ही अन्तिम सर्गों का उद्देश्य है। सृष्टि की उन्मीलन, निमीलन की क्रिया जिसके सम्मुख स्पष्ट है, वही मूल सत्ता के साथ एक होकर 'आनन्द' की प्राप्ति कर सकता है। दुख, सुख की लहरें गिनने वाले कभी आनन्दवादी नही हो सकते। 'आनन्द' आत्मा की पूर्ण मुक्तावस्था का नाम है जिसमे इन्द्रियाँ और अन्त करण का नाश नही हो जाता (जैसा कि शाकर वेदान्त मे माना गया है) अपितु दृष्टिकोण बदल जाने से—तत्त्व का ज्ञान हो जाने से, इन्द्रियो और अन्त करण के स्वाभाविक अनुभवो की आहुति से चैतन्य उसी प्रकार और भी आनन्दित होता है जैसे कि आहुति से अग्नि आनन्दित होती है अत समरसता वह रहस्यमय अथवा कल्पित मानसिक स्थिति है जिसमे एन्द्रिक और बौद्धिक तथा आत्मिक स्तरो मे परस्पर विरोध नष्ट हो जाय—यही समरसता है—सामाजिक स्तर पर व्यक्ति की यह मानसिक उच्चता वास्तविक समता पर आधारित समाज का निर्माण करेगी—

हम अन्य न और कुटुम्बी, हम केवल एक हमी हैं।
तुम सब मेरे अवयव हो, जिसमे कुछ नही कमी है।

शापित न यहाँ है कोई, तापित पापी न यहाँ है।
जीवन वसुधा समतल है समरस है जो कि यहाँ है।
वैसे अभेद सागर मे, प्राणो का सृष्टि-क्रम है।
सब मे घुल मिलकर रसमय, रहता यह भाव चरम है।

कामायनी म उक्त तीन सर्गों मे सब कुछ अलौकिक ही दिखाई पडता है। अथवा वह इतना अधिक आतरिक है कि अलौकिक ही सा लगता है किन्तु विश्व के किस रहस्यवादी ने रहस्यमय अनुभवा को प्रस्तुत करते समय क्या राजनैतिक, सामाजिक, सास्कृतिक और मनोवैज्ञानिक समस्याओ का समाधान प्रस्तुत करने का प्रसादजी की तरह प्रयत्न किया है ? मध्ययुग के रहस्यवादियो को उक्तियो मे मानव जीवन के लिए कुछ सार्वभौमिक सत्य अवश्य मिल जाते हैं, किन्तु कामायनीकार की तरह अपने युग की सारी बुराइयो का निदान करके रहस्यवाद के साथ साथ उनका समाधान सम्भवत किसी रहस्यवादी ने प्रस्तुत नही किया। आधुनिक युग मे गेटे के 'फाउस्ट' नाटक मे यह प्रयत्न अवश्य है। अत मध्ययुग के रहस्यवादियो से आधुनिक रहस्यवाद को भिन्न समझना चाहिए। हिन्दी म महादेवी मे मीरा का स दृश्य अवश्य मिलता है अन्यथा पन्त, प्रसाद, निराला का अलौकिकप्रेम का रूप ही भिन्न है। मध्ययुग की निरन्तरता इस प्रकार के काव्य मे देखी जा सकती है और वह पुनरुत्थानवादी प्रवृत्ति को भी सतुष्ट करती है परन्तु यह नया अलौकिक प्रेम मध्यकालीन न होकर पूँजीवादी व्यवस्था की सृष्टि है जिसमे कवि पुराने विश्वासो म मग्न न रहकर उनके द्वारा एक नया समाधान खोजता है नया मनोराज्य रचता है। तुलसीदास ने भी मध्ययुग म एक मनोराज्य रचा था परन्तु स्पष्टत वह मध्ययुग के ही अनुकूल था क्योकि तुलसी के सम्मुख वे प्रश्न ही नही थे, जो कामायनीकार के सम्मुख थे। वैज्ञानिकप्रवृत्ति के अस्तित्व के बिना कामायनीकार बुद्धिवाद पर प्रहार कैसे करता अत प्रसाद जी का रहस्यवाद साम्प्रदायिक न होकर सैद्धान्तिक और समसामयिक हो गया है।

निराला शाकर वेदान्त तथा उसकी विवेकानन्द द्वारा की गई व्याख्याओ से अधिक प्रभावित हैं। निराला मे जिज्ञासा से अधिक परतत्त्व के प्रति समर्पण की भावना मिलती है जो परमहसदेव की प्रकृति थी। निराला ने प्रकृति को ही नही, परब्रह्म को भी प्रेयसी का रूप देकर उसके प्रति आत्म निवेदन किया है। परिमल की निवेदन कविता इस ओर सकेत करती है—'एक दिन थम जाएगा रोदन, तुम्हारे प्रेम अचल म।" 'तुम और मैं' शीर्षक कविता मे

परब्रह्म के साथ आत्मीय सम्बन्ध स्पष्टत स्थापित किया गया है। रहस्यवाद मे जो प्रेम सम्बन्ध स्थापित किय जाता है वह भी यहाँ मिलता है—

तुम पथिक दूर के श्रान्त और मैं बाट जोहती आशा।
तुम नभ हो म नीलिमा तुम शरत काल के बाल इन्दु
मैं हूँ निशीथि मधुरिमा
तुम शिव हो मैं हूँ शक्ति
तुम मदन पञ्चशर हस्त
और म हूँ मुग्धा अनजान

किन्तु आधुनिक रहस्यवाद मे प्रेमसम्बन्ध के अतिरिक्त अन्य सम्बन्ध भी स्थापित किए गए हैं—

तुम नाद वेद आकार मैं कवि शृंगार शिरोमणि।

स्पष्ट उक्त कविता म मध्यकालीन रहस्यवाद स भिन्नता दिखाई पडती है कवि के व्यक्तित्व का अलगाव साफ दिखाई पडता है। यहा साधक की ऊब डूब नहा है यहाँ कवि कल्पित मानवीयसम्बन्धो की सुघरता कहने लगता है। अन्यत्र परमहसदेव की तरह भक्तिमूलक रहस्यवाद का भी एक रूप निराला मे मिलता है—

दवि तुम्हें मैं क्या दूँ
क्या कुछ भी नही ढो रहा व्यथ साधनाभार।
एक विफल रोदन का है यह हार—एक उपहार।
भर आसुओं म हैं असफल कितने विकल प्रयास।
झलक रही है मनोवेदना करुणा पर उपहास
क्या चरणा पर ला दूँ

इस प्राथना और भक्ति म भी कवि की वैयक्तिकता सुरक्षित है। जो सामूहिकता मध्यकालीन प्रार्थनाओं म है वह यहाँ नही है। कही-कही निराला ने चलि चकई री जहाँ न राग वियाग वाली पुरानी पद्धति का अनुसरण किया है किन्तु यहाँ भी आधुनिक व्यक्तिवादिता बोल रही है—

हम जाना है जग क पार।
वर्ण नयना म ककत प्रात
चन्द्र ज्योत्स्ना ही कवल गात
रेणु छाए ही रहत पात

नही रखती मैं जग का नान और हूस पन्नी हू अनजान।
रोकने पर भी तो सखि हाय नहा रुकती तव यह मुस्कान।

यहा स्पष्टत आत्मा को स्त्री और परमात्मा का पति माना गया है। अत शुद्ध रहस्यवाद की श्रेणी म उक्त पक्तिया आती हैं। वगाली कविया क विश्ववेण की सवत्र व्यापक प्रतिध्वनि भी कवि ने विश्ववेणु नामक कविता म सुनी है और उसे अमर अगोचर और अविकार भी कहा है। शिशु नामक कविता म कवि एक पूवलोक और रहस्यमय अनुभव का स्मरण दिलाता है। विसजन म आत्मा के समपण को कवि ने स्पष्टत वाणी दी है—

उस मन्हास म बहकर गा लू मैं वेसुर प्रियतम।
बस इस पागलपन मे ही अवसित कर दू निज जीवन।
नवकुसुमा म छिप छिपकर जब तुम मधुपान करोगे।
फूली न समाऊगी मैं उस सुख से हे जीवनधन।
यदि निज उर के काटो का तुम मुन न पहनाओगे।
उस विरह वेदना से मैं नित तडपू गी कोमल तन।
मैं सखिया से कह थाऊ प्रस्तुत है पद की दासी।
वे चाह मुझ हर हस ल मैं खडी रहूगी सनयन!

इस प्रकार रहस्यवादी प्रम को आज रहन दो प्रिय गृहकाज तथा बान्न अनग आदि कविताओ स अलग कर लेना चाहिए जसा कि हम छायावाद और रहस्यवाद के विवचन म कह चके हैं क्याकि उक्त कविता म रहस्यमय सत्ता के साथ स्पष्टत प्रम सम्बन्ध की स्थापना हुई है।

रवीन्द्र की पद्धति पर पतजी ने परमात्मा से प्राथनाए भी की है और सयोग वियोग निवन्न भी। जीवनयान मे प्रथम प्रवृत्ति दिखाई पडती है और द्वितीय विसजन शीषक कविता म।

रहस्यवाद का यह रूप युगवाणी युगान्त ग्राम्या के बाद नूतनकाय म पुन एक नया रूप धारण करता है। वहा रहस्य के साथ प्रम सम्बन्ध स्थापित न कर कवि ऊध्व चेतना के दिव्यस्तरो स छन छनकर आती हुई चेतना को प्रकृति पर प्रतिफलित कर उस ज भत आलोक म नूतन सौन्दय और नवीन अनुभूतिया का वणन करता है स्पष्टत य अनुभूतियाँ अलौकिक हैं। यह अरविन्ददशन से प्रेरित रहस्यवाद कहा जा सकता है।

महादेवी म रहस्यदशन के अतिरिक्त सरस अधिक स्पष्ट रूप म और अधिक विस्तार के साथ रहस्य के प्रति प्रमसम्बन्ध की व्यजना हुई है। विरह

मे तडप की अनुभूति महादेवी ने सर्वत्र व्यजित की है मध्यकाल के रहस्यवाद स भिन्नता इस बात म है कि—महादेवी मे मिलन की आकाक्षा है किन्तु समपण की भावना नही है अथवा या कह कि व्यक्तिवाद के कारण कवियित्री अपना स्वाभिमान अपना व्यक्तित्व सुरक्षित रखना चाहती है मीरा से इसी बात म महादेवी भिन्न दिखाई पडती है। महादेवी को लौकिक प्रम और अलौकिक प्रम को एक कर देने मे अदभुत सफलता मिली है कि तु मीरा मे जो विलापान समपण मिलता है वह उसे वास्तविक रहस्यवाद की परिधि मे प्रतिष्ठित करता है। महादेवी जो तुम आ जाते एक बार कहकर मिलन सुख के सम्भावित रूप का मग्न होकर वणन करती हैं और चिरसचित विराग के लुट जाने की भी चर्चा करती है किन्तु मानिनी अपने मान की भी रक्षा करना चाहती है—

मिलन मन्दिर म उठा दू जो सुमुख स सजल गु ठन।
मैं मिटू प्रिय मे मिटा ज्यो तप्त सिकता मे सलिल-कण
सजनि मधुर निजत्व दे कैसे मिलू—अभिमानिनी मैं।

समपण और स्वाभिमान का द्वन्द्व ही महादेवी के रहस्यवाद को आधुनिकता का दान करता है। इस द्वद्व का समन्वय होता है महादेवी क दुखवाद म जिसे वह मानवता का उच्चतम रूप मानती ह। रातदिन दुख म जलन से एक ओर वहाँ प्रिय के प्रति प्रम जाग्रत रहता है वहा दूसरी ओर वह दुख जगत् के प्रति करुणा म भी व्यक्त होता है अत जिस प्रकार हरिऔध की राधा वियोग म जगत सेविका बन जाती है उसी तरह महादेवी का रहस्यवाद आतरिक द्वद्व के निराकरण क लिए जगत सेवा की ओर उ मुख हो जाता है अत जो प्रगतिवादी इस तथ्य को नही समझ पाए वह यह भूल गए कि रहस्यमय सत्ता वैज्ञानिक दृष्टि से असत होने पर भी कवियित्री के लिए प्ररणास्रोत ही तो बन ही सकती है। रहस्यप्रियता मे देखना यह चाहिए कि रहस्य स कवि किस प्रकार की प्ररणा ग्रहण करता है। महादेवी के लिए जब तक उनम जलते रहने की शक्ति है तब तक उन्ह मिलन की चिंता नही वह अपने लिए पीडा को वरदान मानकर उसी म सतुष्ट होकर अपनी जलन के द्वारा जगत का प्रकाश भी देना चाहती है—

जब यह दीप थके तब आना
यह चचल सपने भोले है
दृगजल पर पाले मने मृदु
पलकों पर तोले हैं

दे सौरभ से पथ इह सब नयनो मे पहुँचाना।

अत रहस्यवादी अलौकिक पीडा और दुख का समाजीकरण महादेवी के रहस्यवाद की विशेषता है स्वय महादेवी के लिए जो मार्ग सयोग से रहित *दाहकारक और क्षरण है वही दूसरो के लिए प्रकाश और साधना का प्रतीक* बन गया है अत वह पुराने साधको की तरह चित्त को निष्कम्प दीपक के समान एकात म स्थिर कर केवल अपनी आत्मा की स्थिरता प्राप्त नही करना चाहती अपितु जगत के स्वार्थ अन्याय वितृष्णा बन्धन और बाधाओ के अधकार के बीच दीपशिखा की तरह जलना चाहती हैं—

यह मन्दिर का दीप इसे नीरव जलने दो।

राजकुमार वर्मा मे वास्तविक रहस्यवाद की सबसे कम आभा मिलती है। कवि की चेतना पद्धति निर्वाह सा करती हुई चलती हैं। यह तुम्हारा हास आया मे पद्धति निर्वाह मात्र ही दिखाई पडता है कवि की हृदयग्रंथि का स्वत भेदन कही नही दिखाई पडता। अत लौकिक भावनाओ और प्रकृति *वर्णन मे राजकुमार को अधिक सफलता मिली है— मैं तुम्हारी मौन करुणा* का सहारा चाहता हूँ जैसी पक्तियो मे महाघता नही आ पाई है। हलकापन आ गया है।

परवर्ती छायावादी कवियो मे तो रहस्य और सूक्ष्मता के विरुद्ध विद्रोह दिखाई पडता है। किन्तु बच्चन की मधुशाला कृत्रिम बन्धना के *विरुद्ध विद्रोह अवश्य प्रकट करती है। उसकी मदिरा बाला* मदिराशाला आदि प्रतीका के रूप मे प्रयुक्त हुए हैं किन्तु कही-कही सूक्ष्म रहस्यमय अनुभवो की ओर बच्चन के हालावाद मे सकेत अवश्य मिलते हैं—

कल्पना सुरा औ साकी है पीने वाला एकाकी है।
यह भद हमे जब ज्ञात हुआ क्या और समझना बाकी है ?

आत्यतिक आनन्द की स्थिति ही यहाँ सकेतित हुई है जिसका प्राप्ति वाह्य आचार विचार थोथी नतिकता आदि से नही हो सकती।

साराशत छायावादी कवियो का रहस्यवाद साधको का वास्तविक न होकर सौदयमूलक प्रकृतिमूलक तथा कल्पनामूलक रहस्यवाद है। उसम स्वयप्रकाश्य अथवा स्वत स्फूर्त भावनाओ के स्थान पर कल्पना द्वारा देखे गए विजन और उसके साथ यत्र-तत्र प्रेम सम्बन्धो की अभिव्यक्ति की प्रधानता है। वस्तुत आधुनिकयुग म आत्माभिव्यक्ति के लिए रहस्यवाद भी एक माध्यम बनगया था। वह साध्य नही बना जैसा कि प्राचीन काव्य म मिलता है। वहाँ

बना' गौण थी सौन्दय की सृष्टि गौण थी यहाँ रहस्यमय अनुभूति कला को एक विशेष आकषण दे देती है प्रम की अभिव्यजना म भी रहस्य के स्पश से एक आकषण उत्पन्न हो जाता है इसीलिए उसे अपनाया गया है। छायावादियो क रहस्यवाद म आत्मसमपण की मात्रा तो क्षीण दिखाई पडती है उसका कारण यह है कि य कवि व्यक्तिवादी थ और व्यक्तिवाद समपण का विरोधी होता है। वह साधना और विश्वास के क्षेत्र मे भी आत्मसत्ता को सुरक्षित रखना चाहता है। वैष्णवो द्वारा मुक्ति के विरोध म इस उक्त छायावादी प्रवृत्ति का साहश्य नही खोजा जा सकता क्योकि वष्णवो के यहाँ मुक्ति का स्वरूप ही भिन्न था और कवियो ने उसी का अनुसरण किया है। महादवी किसी आचाय के द्वारा निर्देशित सिद्धान्त का अनुसरण नही करती अत उनके अपन असमपणवाद म उनका अपना व्यक्तित्व बोलता है। बहुत जगह छायावाद म रहस्यभावना स्वाभाविक रूप मे ग्रहीत हुई है। पतजी जब हिमालय पवत की महान अनन्तता के दशन करते हैं तब जिस सम्मोहन और आश्चयजनक अनन्तता का अनुभव करते हैं वह वस्तुत रहस्यवाद' से बाहर की वस्तु है क्योकि वसा अनुभव सभी करते हैं रहस्यवाद तभी बनता है जब पारमार्थिक सत्ता म विश्वास के साथ उसके साथ प्रम सम्बन्ध की अभिव्यजना हो। समग्रत रहस्यवाद छायावादी काव्य की एक प्रवृत्तिमात्र है और इस प्रवृत्ति का साहश्य योरोपीय स्वच्छन्दतावादी काव्य मे प्राप्त रहस्यवादी प्रवृत्ति से अधिक है योरोप के साधनात्मक रहस्यवाद से यह पूणत भिन्न है।

वेदना और दुख की व्यजना—छायावादी व्यावहारिक जगत से ऊबकर जिस मनोराज्य की कल्पना करत है और उसम विचरते हुए सुख श्री स्वतत्रता आदि महत्तर अनुभूतियो का साक्षात्कार करते हैं उस मनोराज्य को छोडकर जब कवियो का मन धरती पर विचरता था तब उस व्यावहारिक जगत म कल्पित जगत का आनद न देखकर दुख होता था। जितने आवेश स छायावादी कवि तात्कालिक समाज पर प्रहार करता है और उसका फल कुछ नही दखता तो स्वप्नभ्रान्तिनाश के बाद दुख स्वभाविक है। कल्पित राज्य की स्थापना व्यावहारिक उपायो द्वारा हो सकती है परन्तु जनभीरु' स्वप्नाभिमग्न सवदा श्री शोभा और सौन्दय म निमग्न कवि व्यावहारिक कार्यों की कटुता, कुरूपता और कष्ट को कैसे सह सकता था अत वह समझता था कि केवल मानवीय मूल्यो की घोषणा स्वप्न चित्रो की सुघर सृष्टि और वचनो पर वाग्प्रहार से ही समाज बदल जाएगा। आशा के विपरीत समाज द्वारा अपनी गति न छोडने के कारण छायावादियो म एक घुटन और अवसाद मिलता है।

राष्ट्रीय स्तर पर १९२१ १९२६ तक के राजनतिक आन्दोलनो की असफलता की भी यह अभिव्यक्ति थी। सन १९२६ ४० तक राजनतिक जगत बहुत आशा पूण न था। सन ३५ का कानून एक भ्रम के रूप मे हमारे सम्मुख आया था। व्यक्तिगत परिस्थितिया भी छायावादी कवियो के दुख मे सहायक थी। प्रसाद का आर्थिक कष्ट भाई और पत्नी की मृत्यु महादेवी का पति के जीवित होने पर भी वधव्य पन्तजी का अविवाहित रहना प्रियजनो का विछोह और निराला की पत्नी और बाद मे पुत्री सरोज की मृत्यु दारुण आर्थिक सकट इस स्थिति मे सवदा स्वप्नो और सुन्दर छवियो म मग्न रहना कभी वास्तविकता का अनुभव न करना यह असम्भव था।

अत प्रसाद ने तो वेदना की विवृति को ही आधुनिकता कहा और करुणाकलित हृदय म विकल रागिनी को उन्होने ध्यान से सुना। नाटको और काव्यो मे सवत्र वेदना के प्रति एक रोमानी प्रम प्रसाद जी द्वारा व्यक्त हुआ है। वियोग मे वह वेदना वियोग की वेदना न रहकर एक अपना अनग रूप धारण कर लेती है। स्कन्दगुप्त के सम्मुख देवसेना की आह इसका प्रमाण है। निराला निशीथ की नग्न वेदना और दिन की दम्य दुराशा का वणन करते ही हैं। देवी को वह व्यथ साधनाभार और विकल रोदन ही अर्पित कर पाते है। सरोज स्मृति मे तो कवि ऐसा लगता है जसे विराट अश्वत्थ अचानक वज्रपात से भग्न हो गया हो और एक दिगन्तव्यापी चीत्कार के साथ वह धराशायी हो गया हो। किन्तु निराला का दुख सवत्र व्यक्तिगत न होकर सामाजिक भी है—तरगो के प्रति कविता मे कवि दग्ध चिता के हाहाकार और अबलाओ की कितनी करुण पुकार को भी सुनते है। वह तोडती पत्थर और विधवा क दुख को भी देखते हैं अधिवास म मे उन्होने मनुष्यमात्र के दुख को भी वाणी दी है।—

> मैंने मैं शली अपनाई
> देखा एक दुखी निजभाई
> दुख की छाया पडी हृदय म
> झट उमड वेदना आई।

पन्त जी मे दुख और वेदना का रूप प्रारम्भ म प्रम से सम्बन्धित दिखाई पडता है ग्रन्थि और उच्छवास भावो आँसू आदि मे यही रूप दिखाई पडता है। आँसू म आकर कवि ने अपने दुख का सामान्यीकरण भी किया है और उस दुख को व्यापकता भी दी है। दुख और स्वप्नवाद का द्वन्द्व भी प्रकट किया है—

हाय ! मेरा जीवन
प्रम औ आँसू के कन !
आह मेरा अक्षय धन
अपरिमित सुन्दरता औ मन

परिवत्तन म कवि जगत् के दुख की ओर आकर्षित होता है किन्तु पन्त जी मुख्यत सौन्दय और स्वप्नो के कवि हैं अत उनम अधिक समय तक स्वप्नो मे निमग्न रहने की क्षमता है। जो करुणा के पात्र होने चाहिए थे उन ग़रीब पासी के लडको मे भी वह सौदय ही देखते हैं। उनका दुख प्राय वियोग वणनो म मिलता है जहा वह व्यक्तिवाद की सीमाए तोडता हुआ युग म व्याप्त दुख का भी एक सीमा तक प्रतिनिधित्व करता है। वस्ट विड नामक कविता म जिस प्रकार गला रो उठा है उसी प्रकार छायावादी कवि स्थान-स्थान पर अपने और जगत के दुखो पर फफक उठते हैं—

एकाकीपन का अधकार दुसह है इसका मूकभार
इसके विषाद का रे न पार।

मानवतावाद—छायावादियो के निजी सुख दुख मे व्यापक मानवता के लिए भी पर्याप्त अश है यह हम देख चुके हैं। द्विवदी युग के हिन्दू पुनरुत्थानवाद के विरुद्ध छायावाद व्यापक मानवता के हित क लिए स्वप्न देखता है। उसम एक ओर वह तोडती पत्थर के प्रति सहज करुणा है तो दूसरी ओर वासना के स्तर से उठाकर नारी को सौदय और आराधना के स्तर पर प्रतिष्ठित किया गया है। नारी की महिमा कामायनी मे पूणत प्रतिष्ठत की गई है। इसके अतिरिक्त छायावादी कवि व्यापक प्रश्नो मे दिलचस्पी लेता है। छायावाद का विनयपरक काव्य इस दृष्टि से द्विवेदीयुग मे अवसर मिलने वाले जातिवाद से छायावाद को ऊचा उठा देता है। निराला तथा पन्त जी की प्रार्थनाओ मे प्रत्येक मनुष्य के लिए ज्ञान प्रम सुख और स्वतंत्रता के लिए प्रार्थना की गई है। छायावादी प्रकृति से जो नाना प्ररणाएँ ग्रहण करते हैं वे विश्व भर के लिए व्यक्त की गई हैं। पन्त जी ने मानव शीषक कविता म इसी मानवतावाद को वाणी दी है —

सुन्दर हैं विहग सुमन सुन्दर मानव ! तुम सबसे सुन्दरतम।

इस कविता म मनुष्य की यौवन ज्वाला मदिरा से भी मादक रतधार लावण्य लोक लोचन नवयुगो का जीवनोत्सग असन सत् का

विवश परस्पर प्रयय निनान पान का अवेषण आदि मानवी प्रवृत्तियो का महिमागायन मिलता है। मध्ययुगीन निषधवादिता यहाँ नही है। मानव की उसकी समस्त दुर्बलताओ क साथ स्वीकृति मानववाद की विशपता है। जीवप्रभू तथा चारी का दखा जभी कविताओ म पत जी न मानवमात्र क लिए प्ररणाएँ दी हैं। मैथिलीशरण गुप्त म जो हिन्दूवाद मिलता है उसका छायावाद म अभाव है। निराला म जो हिन्दूवाद मिलता है वह सकीण नही है। निराला मानव क गगन मगन मन म किरण विवरण पर ही बल दत हैं। उनका तुम और मैं मानवमात्र क लिए प्ररक है। छायावाद का सर्ववाद—पदार्थमात्र म एक चतना का दशन मानवतावाद को पुष्ट करता है क्योकि सर्ववाद जाति वण राष्ट्र क कटघरा का स्वीकार कर नही सकता। रवीन्द्र न जिस विश्वमानवतावाद का प्रचार किया था उसका छायावाद पर अवश्य प्रभाव पडा है। यह विश्वमानवतावाद उद्धत राष्ट्रीयता के विरोध म चला जाता था किन्तु उसन तक सीमा एक हमारे राष्ट के प्रति अन्य राष्ट्रो म सहानुभूति भी उत्पन्न की है यानी अतर्राष्ट्रीय परिस्थितियो को राष्ट्र क अनुकूल करन म विश्व मानवतावाद' सहायक हुआ है। किन्तु निराला' क बादलराग म भारतीय जनता के समग्र उद्धार क लिए कम आवाज व्यक्त नही हुआ है। जागो फिर एक बार म कवल हिन्दुओ को नही जगाया गया है भारतवासी मात्र को भी जगाया गया है और गुरु गोविन्दसिंह क वीर व्रत का स्मरण किया गया है। राष्ट्रीयता क युग म हिन्दूवाद का राष्ट्रीयकरण' कर दिया गया है। शिवाजी का पत्र म भी शिवास्तवन स्वतत्रता सनानी क रूप म है मुस्लिम विरोधी शिवाजी क रूप म नही। बल्कि सच तो यह है कि शिवाजी क पत्र म साम्राज्यवाद का विरोध अधिक है—

साम्राज्यवादियो की भाग वासना म
नष्ट होगा चिरकाल क लिय।
आयगी भाल पर भारत की नई ज्योति
हिंदुस्थान मुक्त होगा घोर अपमान स
दासता क पाश कट जाएँगे।

उद्धत राष्ट्रीयता क समय छायावाद औदाय प्रदशन न कर राष्ट्रीयता को मानवतावाद पर प्रतिष्ठित करता है। चूकि साम्राज्यवाद स दूसर राष्ट्रो को कष्ट होता है अत उसका विरोध मानवता की रक्षा के लिए किया गया है। साम्राज्यवादियो को भी मानवप्रम' का पाठ गाधीजी पढा रहे थे विरोध करते समय भी शत्रु स प्रम करना उनकी नीति थी अत छायावाद म जाति राष्ट्र

वर्ण, वर्ग आदि की सीमाओ को तोडता हुआ मनुष्य मात्र के प्रति प्रेम व्यक्त किया गया है, यही प्रवृत्ति योरोप रोमानी कविया मे थी। रोमानी कवि अपने देश के अतिरिक्त अन्य देशो को मानवता की मुक्ति के प्रति जागरूक रहे हैं।[1]

छायावादी वर्ड्सवर्थ की तरह प्रकृति और मनुष्य दोनो से प्रेम करते हैं। वर्ड्सवर्थ की तरह छायावादी 'प्रकृतिप्रेम से मानवप्रेम की ओर उन्मुख हुए हैं। अत छायावादियो द्वारा सामान्य जनजीवन और सामान्य प्रकृति का का आदर्शीकरण उनके मानवप्रेम का प्रतीक है।

सामतवादी व्यवस्था मे उच्च वग म दो प्रवृत्तियाँ दिखाई पडती हैं, एक अबाधित भोग और दूसरी कतिपय विद्वानो द्वारा जगत् का निषध, यह अजब विरोधाभास प्रतीत होता है, पर है यह ऐतिहासिक सत्य! एक ओर जनता के क्रन्दन की चिन्ता न कर सुरा और सुन्दरियो का असीमित उन्माद और दूसरी ओर मानवीय जीवन के प्रति पूर्ण निषेधात्मक दृष्टि का प्रचार, जिसम पूर्ण वैराग्य का उपदेश मिलता है—दोनो दृष्टियाँ मानव विरोधिनी थी। पूँजीवाद के अभ्युदय काल मे उत्पन्न छायावाद ने विलास के स्थान पर प्रेम—यहाँ तक कि "प्लेटोनिक" प्रेम का प्रचार किया और दूसरी ओर शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध और ऐन्द्रिक जगत् के सौन्दर्य को प्रथम बार खडी बोली मे प्रतिष्ठित किया। 'पल्लव' इस दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण काव्य है। इसके अतिरिक्त छायावाद ने मध्यकालीन निषेधात्मकता को छोड कर ऐन्द्रिकता (Sensuousness in poetry) को वाणी देकर भी, उसी ऐन्द्रिकता को अतीन्द्रियता का प्रतिबिम्ब मात्र बताया अत छायावाद न मनुष्य को सन्यासी बनाता है, न विलासी। मध्ययुगीन विरोधाभास, पर यह उसकी विजय है।

छायावादी मानवतावाद का उच्चतम रूप जैसा कि कहा जा चुका है, 'मुक्ति' की अभिव्यजना मे है। 'मानव' भक्तिकाल की तरह न तो 'ईश्वर'

---

1 During this time the interest in mankind, that is, in man independent of nation, class, and caste which we have seen in prose, began to influence poetry One form of it appeared in the pleasures the poet began to take in men of other nations than england, antoher form was a deep feeling for the lives of the poor

English literatre—S A Brooake page 147

पर निभर रहना चाहता है न वह कमवाद के अनुसार यह मानता है कि पूवजम के कर्मो के अनुसार ही सब कुछ निश्चित है। छायावाद का मानवतावाद यह मानकर चला है कि मनुष्य प्रयेक क्षत्र मे स्वतत्रता प्राप्त कर सकता है और एक अभीप्सित समाज की रचना सम्भव है। उसकी दृष्टि सवत्र इसी महत्तम मानव मूल्य पर केद्रित होकर चला है अत छायावाद धार्मिक आदोलन न होकर दाशनिक या सद्धातिक आदोलन है जो बुद्धिवाद को स्वीकार करता है किन्तु साथ ही बुद्धि के साथ श्रद्धा और विश्वास की भी उपेक्षा नही करता। यदि मनुष्य मनुष्य बन सके तो सब कुछ सम्भव है।[१] छायावाद सौदय सय और शिव के समन्वय पर सवत्र बल देता है। पन्त जी प्रना के सय-स्वरूप हृदय के प्रणय और लोक सेवास्वरूप शिवव को एक ही तव मानकर चले हैं। रवीद्रनाथ ने सौदय को विलास नही मगल माना है। महादेवी सौदय और शिवव की तुलना म प्राय शिवव को अधिक महत्त्व देकर चली हैं।

वह पल्लवो पर हसते हिलते हिमहीरक और दुखी यत्तिया के आसू कन के दशन मे आसुओ की ओर ही झुकती हैं। वह अनत नभ की दीवाली को देखती हैं परतु किसी कुटिया के निधन दीपक को नही भूलती। इग्लड के रोमानी कवियो पर चाहे मेथौडिस्ट चच के कारण गरीबो के प्रतिप्रम उत्पन हुआ हो किन्तु हमारे यहा कवियो ने प्रकृति के साथ मनुष्य की दुदशा को खुली आखो देखा था अत उसकी मुक्ति के लिए मध्यकालीन भक्त और योगियो की तरह छायावादी केवल विनय और योग की शिक्षा न देकर विद्रोह की शिक्षा भी देता है यद्यपि यह स्पष्ट नही कि इस विद्रोह का स्वरूप क्या होगा ?

अतीत के प्रति प्रम—वतमान से असतुष्ट कवि सवदा अतीत के वभव के गीत गाता है। वह अतीत को एक इतिहासन और समाजशास्त्री की दृष्टि से नही अपितु उसको वह हृदय म असीमित श्रद्धा भरकर दखता है। वतमान के प्रति असतोष के बावजूद भावी समाज की स्पष्ट मूर्ति न होने क कारण वह अतीत का आदर्शीकरण करता है और अतीत के बबर समाज को आदश मान बठता है। यह प्रवृत्ति शेली कीटस बायरन आदि कविया म मिलती है। हमारे कविया ने भी अतीत के गीत गाए हैं जो एक ओर साम्राज्यवाद के विरोध म पडने क कारण प्रगतिशील बन जाते हैं किन्तु साथ ही आय समाजिया

---

१ क्या कभी तुम्हें है त्रिभुवन मे यदि बने रह सको तुम मानव —पन्त

द्वारा पुनरुत्थान की प्रवृत्ति प्रतिक्रियावादी रूप भी धारण कर लेती है। प्राचीन का अधानुकरण नइ व्यवस्था म चल नही सकता था। छायावा" आय समाज की तरह अधानुकरण पर बन नही देता परन्तु अतीत के प्रति उसमे बुद्धिहीन आवेश अवश्य है—

कहाँ आज वह पूण पुरातन वह सुवण का काल।
भूतिया का दिगन्त छवि जाल।
ज्योति चुम्बित जगती का जाल! —पन्त

निराला ने यमुना के प्रति कविता मे अतीत क गौरवकागान का विस्मरण नही किया है। परिमल की अंतिम कविता जागरण म भी अतीत का आदर्शीकरण मिलता है—

प्राङ्गणविभूति का बालिका की नीडाभूमि
कल्पना की धन्यगोद
सभ्यता का प्रथम विकास स्थल
धवल पताका देव व की
ज्योतिमात्र अशरीर चिर अधीरता पर
विजय गव से बढनी हुई व्योम पथ पर
सोऽहम् का शान्त स्वर।
भरा हुआ प्रतिमुख म
पावन वह वनभूमि।

प्रसाद ने नाटको तथा काव्यो म प्राचीन भारत को बडी लालसा स दखा है। इस प्रकार छायावादकी यह प्रमुख प्रवृत्ति है जो पूँजीवाद के अभ्युदय काल म बढती है और हमारे देश मे साम्राज्यवाद के कारण और भी बडी।

व्यक्तिवाद—उपयु क्त प्रम अलौकिक प्रम दु खवाद मानवतावाद तथा अतीतप्रम आदि छायावादी प्रवृत्तिया म छायावादियो का व्यक्तिवाद स्पष्ट दिखाई पडता है। छायावाद म मानवता की पीडा परतन्त्रता और विवशता के विरुद्ध एक तीव्र भावावेश मिलता है किन्तु प्रय नहीनता क कारण वह जैसे छटपटाहट वेदना टीस और कष्टदायक कुरेदन म बदल जाता है। एक ओर रोमान्टिक कवि शान्ति का आवाहन करता है दूसरी ओर प्रम के उन्मुक्त गीत गाता है प्रम की प्रतिमा नारी को वह दिव्य स्वर्गीय हा नहा उससे भी उच्चतर सत्ता समझता है। उसके सौन्दर्य को कौतूहल विमुग्धता और भावावेश से देखता है, इस दृष्टि की प्रतिक्रिया स्वरूप जीवन-सघष से विलगाव की चाह

को भी व्यक्त करता है। मनुष्य पर किसी भी प्रकार के बन्धन को वह असहनीय और हानिकर समझता है अन्याय और विसादृश्य के विरुद्ध उसमें एक प्रलयकर विद्रोह उत्पन्न हो जाता है। किन्तु जीवन और जगत के सम्बन्धों के प्रति उसका दृष्टिकोण घोर आदर्शवादी अत एकाङ्गी रहता है। अव्यावहारिक आदर्शवादिता का परिणाम एकांगिता होता ही है और उसके परिणामस्वरूप पलायनवाद का जन्म होता है। नियमों के विरुद्ध आवश की यह प्रतिक्रिया इतनी प्रचण्ड मनोरम और असयत होती है कि रोमानी कलाकार सामाजिक सम्बन्धों की स्पष्ट व्याख्या न कर सकने के कारण सारे विश्व के विनाश का आवाहन करता है।[1] हमारे यहाँ बालकृष्ण शर्मा नवीन भगवतीचरण वर्मा नरेन्द्र दिनकर पन्त निराला सभी कवियों मे यह प्रवृत्ति मिलती है।

रोमानी कवि को प्लेटो शकराचार्य आदि के हवाई विचार शांति देते हैं। वह प्रकृति के पीछे सचेतन सत्ता का अनुभवकरता है। अपना हृत्स्पन्दन सुनकर चौंकता है। क्षितिज के पार जाना चाहता है कल्पना के धौरहरा पर वह भावना के भवन खड करता है उसमे निश्छलप्रेम के झूले डालकर मुसत्ता सुमनो के कटोरो से मधुपान करता ज्योत्स्ना म स्नान करता कल्पवृक्ष की छाँह म बैठता और मधुपरियो से विहार करता है[1] रोमांटिक कवियो का यह ससार मनोरम किन्तु परिणाम म विषादजनक होता है क्योंकि उसकी दृष्टि व्यक्ति वादिनी होती है। वह केवल वैयक्तिक आक्रोश और शुभकामनाओं को ही क्रान्ति के लिए पर्याप्त मानता है यही व्यक्तिवाद है। वह स्मृति के स्थान पर विस्मृति जागरण के स्थान पर नींद और नश्तर के स्थान पर सहलाव को अधिक पसन्द करने लगता है। कला का स्तर ऊँचा होता है यहाँ तक कि उसकी भगिमा अत्यधिक उच्च होता जाती है जो जनता के सामान्य स्तरो के काम की नहीं रह जाती है। रोमानी कवि अपने अह म ही निमग्न रहने लगता है— मैं कला का केन्द्र हो जाता है। छायावाद म बहुत कुछ मैं की अभिव्यक्ति है (मैंने मैं शैली अपनाई— निराला') कवि प्राय अपने ही राग विराग, आशा आकाक्षाओ केचित्रण को ही पर्याप्त समझता है। वह जानता है—वासना है मेरा मैं तडप रहा है परन्तु क्या इसका उत्तर स्पष्ट न होने से वह और भी अतमुखी होता जाता है अत वेदना को ही शाश्वत समझकर उसे चित्रित करता रहता है। यह अहवाद छायावाद की एक प्रमुख प्रवृत्ति है।

---

१ 'एक बार बस और नाच तू श्यामा', 'बादल राग', (निराला) 'द्रुतझरो जगत के जीर्णपत्र', 'गा कोकिल बरसा पावक कण" —पन्त

व्यक्तिवादी की नाति वैयक्तिक स्वप्न वैयक्तिक सौंदय वैयक्तिक भाषा वयक्तिक नतिकता वैयक्तिक और अभिव्यक्ति वैयक्तिक होती है। भारतवष के प्राचीन विराट साहित्य मे सबको मिलाकर भी इतना अह नही मिलता जितना अकेले छायावाद मे मिलता है। परवर्ती छायावाद मे तो मैं चरम सीमा पर पहुच जाता है और ये कवि अपनी विशिष्ट मानसिक स्थितियो की ही घोषणा करते फिरते हैं। प्रसाद पत निराला और महादेवी की अपनी अपनी निजता है उसे वे दूसरो से श्रेष्ठ समझते हैं। इन कवियो की भूमिकाओ को पढ़िए यह तथ्य स्पष्ट हो जाएगा। काय व्यक्ति की सृष्टि है यह सत्य है परन्तु व्यक्ति जब कोटि-कोटि जनता की भावनाओ को वाणी नही देता तब वह व्यक्तिवाद कहलाता है—छायावाद मे एक अश ऐसी रचनाओ का है जिसमे सामान्य जन की भावना को वाणी मिली है किन्तु एक अश ऐसा भी है जो सामान्य जन के लिए सुलभ नही है क्योकि कवि पगम्बरी मुद्रा म बोलता है। जब पन्त कहते हैं कि प्रकृति के आगे बालजाल मे लोचन नही उलझाएगे तो यह बात साधारण जन की समझ के परे हो जाती है एक मामूली वस्तु को देखकर कल्पना के बल पर जो छायावाद म आस्फालन हुआ है वह भी काव्य को अत्यधिक उच्च बना देता है। नारी और प्रम का आदर्शीकरण भी सामान्य धारणा के विपरीत पडता है। अत्यधिक लाक्षणिक शली वण्य को और भी दुरूह बना देती है। समपण के क्षणो मे भी अपने व्यक्तित्व की रक्षा का प्रयत्न भी विचित्र लगता है। अपने को बहुत अधिक महत्त्व देने की प्रवृत्ति एकान्तवास जनभीरुता व्यावहारिक उपायो का अभाव समाज के क्रान्तिकारी वर्गो के सगठन द्वारा स्वप्नो की उपलब्धि क प्रतिउपेक्षा आदि ने व्यक्तिवाद को पुष्ट किया है। क्षितिज के उस पार देखने की कामना उसे और मजबूत करती है।

हम कह चुके हैं कि सामतवादी समाज की मान्यताओ के विरुद्ध यह व्यक्तिवादी क्रान्ति अनिवाय और अभीप्सित थी। ऐतिहासिक दृष्टि से यह काय प्रगतिशील था फिर छायावाद हमारे देश मे पूँजीवाद के अपूण विकास की स्थिति म उत्पन्न हुआ था। राष्ट्रीय सग्राम साथ-साथ चलने के कारण उसमे व्यक्तिवाद ही नहा है और भी स्वर है परन्तु उसम व्यक्तिवाद भी है इससे कौन इनकार कर सकता है—इस व्यक्तिवाद ने ही रीतिकाल की रुचि और कलासीकल मान्यताओ के विरुद्ध शखनाद किया जो पल्लव की भूमिका म स्पष्टत वर्णित है। इसी व्यक्तिवाद ने द्विवेदीयुग के स्थूल आचारवाद के विरुद्ध क्रान्ति की। इसी ने भाषा भाव छन्द वण्य विषय सबम परिवत्तन कर

दिया। इसी ने विश्वमानववाद की प्रतिष्ठा की इसी ने नए मसीहा उत्पन्न किए जिन्होंने जनता से दूर खड़े होकर प्रकृति और प्रेम के उन्मुक्त गीत गाए और नई सामाजिक व्यवस्था—पूजीवाद के अनुकूल मानव मूल्यों की सृष्टि की।

छायावादी शैली—उपयुक्त विवेचन से स्पष्ट है कि उक्त प्रवृत्तियाँ वर्ण्य विषय से सम्बन्धित हैं। अत छायावाद को मात्र शैली समझना भूल है। यदि पुरानी शैली म भी उक्त नवीन दृष्टिकोण को व्यक्त किया गया होता तो भी वह छायावाद रहता। अभिधा की जगह लक्षणा अपना लेने से ही काव्य म नया युग नही आ गया। नयायुग नए दृष्टिकोण स आता है। प्रश्ने खानव वा कथन स्मरण रखना चाहिए कि काव्य का आकर्षण विचार म होता है और विचार 'नएभाव' को जन्म देता है जिसकी व्यजना नई उपमाओ और मूर्तियो म होती है। हम समझते हैं कि नई मूर्तिया उपमान और नई युक्तिया हम प्रभावित करती है जब कि असलियत यह है कि हम पर प्रभाव नए विचारो और तदनुरूप नए भावो का होता है। शैली वर्ण्य को प्रेषित करने का माध्यम मात्र है अत छायावाद मात्र नवीन शैली नही जीवन और जगत के प्रति नवीन दृष्टिकोण का नाम था। तभी छायावाद एक नवीन रुचि का विकास कर सका। छायावाद ने रीतिकाल और द्विवेदीयुग का अपदस्थ कर दिया। यह सफलता उपयुक्त नवीन विचार और भाव के कारण ही सम्भव हुई थी।

कल्पना का अतिरेक—छायावाद म भावावेग से भी अधिक कल्पना का प्रयोग हुआ है। कल्पना पदार्थ को प्रत्यक्ष करने वाली मानसिक शक्ति (Perception) से भिन्न है क्योकि इसम इन्द्रियजन्य अनुभव से अधिक स्वतन्त्रता होती है। कल्पना स्मृति से भी भिन्न होती है क्योकि स्मृति केवल पूर्व अनुभव का रक्षित करने वाली शक्ति है जबकि कल्पना नूतन उपलब्धियो म भी समर्थ शक्ति है। कल्पना भाव से भी भिन्न है क्योकि कल्पना शक्ति है भाव क्षोभ का नाम है। कल्पना अभिज्ञा (Understanding) शक्ति स भी भिन्न है क्योकि कल्पना विभिन्न मानसिक अनुभवो को समेट कर चलती है और साथ ही अपना अलग अस्तित्व भी रखती है जबकि अभिज्ञा जो सम्मुख है उसी आधार पर कार्य करती है। कल्पना इच्छाशक्ति (will) स भी भिन्न होती है क्योकि इच्छा शक्ति मानसिक शक्तियो की नियामिका शक्ति है जबकि कल्पना मानसिक जगत् की सम्राज्ञी है जो सर्वतत्र स्वतन्त्र होकर भी चल सकती है।[1]

---

१ एच० बी० अलक्जैडर।

सीमित भी है और असीमित भी। चूंकि इस समन्वय का बोध—पदार्थ (Matter) और चेतना की एकता कल्पना से ही ज्ञात होती है अत कल्पना के द्वारा हम ईश्वर को भी जान सकते हैं। क्योंकि 'प्रकृति वस्तुत ईश्वर की कला है। अत प्रकृति और चेतना मे आत्यंतिक विरोध नही है।

ईश्वर प्रकृति की रचना करता है और कलाकार की चेतना (जो ब्रह्म का ही अंश है) प्रकृति का पुनसृजन करती है। ईश्वर और आत्मा इस प्रकार दोनों कलाकार हैं। कल्पना पदार्थ का आदर्शीकरण और एकीकरण द्वारा पुनसृजन करती है। इस प्रकार कल्पना पदार्थ और मन के मध्य की दीवाल को गिरा देती है अत दर्शन (Philosophy) की उलझन यहाँ नही रहती। वह बाह्य को आतरिकता देती है आतरिकता को बाह्यता देती है और जड प्रकृति को चेतन बनाती है यही प्रतिभाशाली कलाकार का रहस्य है जो ललित कलाओं म दिखाई पडता है। जिस तरह प्रकृति ईश्वर का रूपायित विचार (Externalized Thought) है उसी तरह कलाकार अपने को कला मे रूपायित करता है। प्रकृति म ईश्वर की कल्पना क्रियाशील रहती है इसी तरह कला मे कवि की कल्पना क्रियाशील रहती है।

इसी महान कल्पना के द्वारा योरोपीय रोमानी कवियों की तरह छायावादियों ने द्विवेदी युग की तरह प्रकृति की अनुकृति न करके नूतन सृष्टि की है और पदार्थ और मन के मध्य की दीवाल को गिराने का प्रयत्न करते हुए सर्वत्र परमार्थिक सत्ता का आभास देखा है। छायावादी अपने को अपनी सृष्टि का विधाता मानता है अत कल्पनावाद रचनाविधान के क्षेत्र म उसके व्यक्तिवाद को पूर्णत स्पष्ट कर देता है। सर्वतत्र स्वतंत्र कल्पना के बल से वह क्षितिज तक फैले हुए बहुविध जगत से नाना नए रूप चुनता है, पार पहुचने की चेष्टा करता है और रहस्य को भेद कर उसके मर्म को जानने का भी प्रयत्न करता है। यह मर्मभेदनी प्रज्ञा दिशा काल के बंधनों के परे जाने वाली शक्ति कल्पना ही है।

कल्पना की अनंत शक्ति का विश्वासी छायावादी इसीलिए प्राचीन नियमों को नही मानता वह स्वतंत्र और निजीसृष्टि म विश्वास रखता है। १९वीं २०वी शताब्दी के किसी भी मानसी पूजीपति स कम साहस और कल्पना शक्ति पूँजीवाद के प्रारम्भ म जन्म लेने वाले कवियों म नहीं दिखाई पडती। दोनों पुरानी व्यवस्था की जगह नए समाज एवं नए सौन्दर्य

एक नए स्वप्न की रचना चाहते हैं। अत सवत्र स्वतन्त्रता' की पुकार कल्पना शक्ति से घनिष्ट्त सम्बन्धित है।

कल्पना के द्वारा प्रसाद निराला और पन्त ने प्रकृति की जडता को दूर किया उन्होने प्रकृति को चेतना दी और चेतना का प्रकृति से सम्बन्ध पुन स्थापित कर दिया जिसे मायावादियो ने छिन्न भिन्न कर दिया था। छायावाद ने आत्मवाद पर बल दिया है जगत् के मिथ्यात्व पर नही। कल्पना' के द्वारा ही प्रकृति को देखने के कारण वह 'नारी से भी अधिक सुन्दर लगी। यानी कल्पना ने वासना पर विजय प्राप्त की। अतद ष्टि सम्प मूल प्रवृत्तियो की अनुशासिका बनती है। निराला जुही की कली म मानवीय और दिव्य व्यापार देखने लग। पन्त जी पल्लवो को विश्व पर विस्मित चितवन डालने वाले अधरो क रूप म चित्रित करने लगे। पल्लवो को पन्तजी ने कल्पना के विह्वल बाल ठीक ही कहा है।

निर्माणशील कल्पना के कारण ही प्रकृति अपना सौन्दर्य कवि के सम्मुख स्फुरित करने लगी। ऐंचीला भ्रूसुर चाप खावने वाली और हरियाली दुकूल हिलान वाली वरसा के हार और चपला के पलक वाली पवतीय सुषमा काव्य म साकार होने लगी। कल्पना का सनाधिकअतिरेक पन्त जी म ही मिलता है। बीचिया को यतिगतिविहीन गूढ बात शैशवस्मिति वारिबेलि बिना नाल के फनिल फूल छुईमुई सी स्वणस्वप्न मधुरवेणु मुग्धा इच्छा दिव्यमूर्त्ति सिन्धुगिरा अप्सरी किरण दाल चान्दी का चुम्बन खेल मिचौनी मुग्ध अकूल की हास पुनकित श्वास जसी नाना उपमाए देते हुए कवि नही थकता न उसकी कल्पना शक्ति श्रान्त होती है। छाया तारा अनग अप्सरा नौका विहार गगा बादल आदि रचनाओ म कवि भाव से आन्दोलित न होकर केवल कल्पना के द्वारा नाना रूप प्रस्तुत करता है। इसस प्रकृति और चेतना की एकता स्थापित हुई है और दूसरी ओर कोमल भाव और चित्रो की चित्रशाला भी प्रस्तुत हुई है। पन्त न निश्चित रूप से कल्पना का इन्द्रजाल प्रस्तुत किया है और जहाँ जहा इन्द्रजाल है वहा कल्पना भाव' द्वारा अनुशासित सशोधित और सीमित नहा है जसा कि रसवादी काव्य म मिलता है। जहाँ कल्पना भाव स शासित की गई है, वहा उच्छ्वास' जसी रचनाओ की सृष्टि हुई है। गुजन क चित्रणा म कल्पना का इन्द्रजाल है और मननात्मक कल्पना है न कि भावना। वहाँ कवि क नए विचारो का आकषण है। ज्योत्स्ना' की रचनाओ म कवि ने कल्पना के बल पर नूतन और अद्भुत सृष्टि का निर्माण किया है जो अवास्तविक होन पर भी 'वास्तविकता' को प्रभावित करती

है। ज्योत्स्ना मे फैंसी या ललित और निरपेक्ष कल्पना" का रूप अधिक व्यक्त हुआ है। फैंसी मे काल और दिक का बन्धन नही रहता कल्पना म रहता है। रस्किन ने कहा है कल्पना ऐसी अतर्दृष्टि का नाम है जो पदार्थ के मर्म को पकडती है और भीतर से बाहर की ओर—मर्म से छिलके की ओर कार्य करती हुई बढती है जब कि फैंसी मुक्त विलास करती है और पदार्थ के मर्म की ओर उन्मुख नही होती।[1] ज्योत्स्ना ऐसी ही एक फैंसी या ललित कल्पना है।

पतजी ने कल्पना और फैंसी का प्राय साथ साथ प्रयोग भी बहुत किया है। किसी मामूली चीज को लेकर पतजी का मन दिवास्वप्नो मे अधिक डूबता है यद्यपि उसकी उडान मे लालित्य का सब ध्यान रखा गया है। इसीलिए वह द्विवेदीयुग के बाद कल्पना द्वारा वशीकरण मे अधिक सफल हुए हैं।

निराला मे कल्पना और अधिक फैंसी का प्रयोग बहुत कम मिलता है। इसके सिवा उनकी कल्पना सवत्र भाव से शोधित है। भावशोधित कल्पना का रूप तरगो के प्रति और उससे भी अधिक यमुना के प्रति मे अधिक दिखाई पडता है। यमुना के प्रति मे कवि की कल्पना सुदूर अतीत का गर्भ चीरती हुई सुन्दर चित्रो को पकडकर पाठको के सम्मुख प्रस्तुत करती है फलत वह वतमान की दुदशा को भी व्यजित कर देती है। गीतिका के गीतो म लघु कल्पना चित्र अधिक मिलते हैं। जिन्ह कल्पना की कजूसी के कारण कवि ने प्राय अस्फुट रखा है। पत कल्पना का अपव्यय करते है किन्तु निराला मे कल्पना का सयम है इतना अधिक कि चित्र स्पष्ट नहा हो पाता कौन तम के पार रे कह मे भी यही दोष है। राम की शक्ति पूजा मे कल्पना का अनन्त दौड दिखाई पडती है और तुलसीदास म विजन अत्यधिक मार्मिक है। जिसे मर्मोन्घाटक कल्पना कहते है वह इन दानो कृतियो म सर्वोच्च रूप म प्रकट हुई हैं पत जी म मर्मोन्घाटिका शक्ति की कमी है वह उडान अच्छी भरते हैं और सादृश्य विधान भी अच्छा करते हैं।

---

1 The name of Imag nat on he applied to the ins ght which se zes the heart of a matter and works from with n out wards while Fancy luxuriates in deta l without ever p ercing to the core—H story of Aesthetic—B Bosanquet page 458

प्रसाद' म भव्य साहश्य विधान क अतिरिक्त कल्पना बाह्य को आन्तरिकता और आन्तरिकता को बाह्यता देने म अधिक प्रवृत्त हुई है। प्रसाद की सबसे बडी उपलब्धि मनोवृत्तियो गुणा और अन्त प्रवृत्तियो के चिन्मयीकरण म है। वस्तुत मानवीकरण की जगह चिन्मयीकरण शब्द का प्रयोग छायावाद के पक्ष म अधिक सार्थक लगता है। पन्त जी का तरह दिक काल स रहित आनन्दभूमि की कल्पना म प्रसाद जी को सफलता प्राप्त हुई है। नाना क बाह्य सघर्षो जीवन के आन्तरिक क्षोभो और आत्मा की ऊँचाइयो की कल्पना द्वारा एकता अथवा सामरस्य म प्रसाद हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। निराला की तरह कल्पना प्रसाद म भाव स शोधित दिखाइ पडती है। आसूँ म भावा वेग की ही प्रबलता है वहा स्मृति मे मधुर क्रीडाओ और सौन्दय के मादक रूपों का झलक मारती हुई भगिमाए अधिक हैं जिनम कल्पना की ही सहायता ली गई है। दुहरी शिथिल शिजिनी मणि वाले फणियो के हीरा से भरे हुए मुख परिरम्भ कुम्भ की मदिरा आदि चित्रो की तथा छवियां की समष्टि कल्पना द्वारा ही सम्भव हो सकी है। कामायनी मे कल्पना द्वारा आदिम कालीन मानव के पिता और आदिजननी तथा उनके सघर्षो अन्तद्वन्द्वो मूल प्रवृत्तिया आदि का मानवीकरण और अन्य म उनका एकता कल्पना द्वारा हा रूपायित की गइ है।

महादेवी का रहस्यमय प्रमी कल्पना का परिणाम है। उनकी प्रकृति म झलक और प्रकृति की सुषुमा का चित्रण भी कल्पना क द्वारा ही हुआ है जब कि उस रहस्य क प्रति आत्मनिवदन मे महादेवी न कल्पना का भाव द्वारा शोधन अधिक किया है। निवेदन म एक तटस्थता बरतने के कारण महादेवी म पन्त जी की भान्ति की भरनि जस उदगार नही मिलत न उनकी कल्पना म आस्फालन ही मिलना है किन्तु साथ ही महादेवी मे अन्तर्दृष्टि की वह विराटता नहा मिलती जो निराला और उसस भी अधिक प्रसाद म मिलती है।

कल्पना क द्वारा साहश्यविधान उपमाना का अजस्र वर्षा पुरान काल म भी मिलती है। दरबारी काव्य म कल्पना का प्रयोग बहुत अधिक मिलता है किन्तु वहा देह पदाथ के लिए ललित साहश्य न खोज कर गूढ अनुमानो अथवा दूर का कौडी लान की ओर अधिक प्रवृत्त हुई हैं। इसक सिवा प्रकृति के प्रति वास्तविक प्रम का वहाँ अभाव दिखाइ पडता है। पुराने कवि मनुष्य म अधिक दिलचस्पी रखते थ अत छायावादी कल्पना के बल पर एक नूतन काव्य की सृष्टि कर सका है क्योकि वहाँ प्रकृति एक स्वतन्त्र विषय बन गई है।

जहाँ प्रकृति कवि के राग का माध्यम बनी है वहाँ पुराने काव्य से छायावाद अधिक निकटता प्रदर्शित करता है। कल्पना के द्वारा जिस नवीन दृष्टि से प्रकृति को देखा गया वह छायावाद को पुराने काव्य से अलग कर देती है।

गीति और भाषा— भाव के स्थान पर कल्पना का अतिरेक और प्रबन्ध काव्य के स्थान पर केवल गीतियों का प्रयोग छायावादी रचना विधान को विशिष्ट रूप देता है। कालरिज ने छन्दोबद्धता की पूर्ण मधुरता (Perfect Sweetness of Versification) पर बल दिया था। छायावाद ने रोमानी कवियों की तरह ही गीतियों को अपनाया। गीतियों में गेयता के लिए संगीतात्मकता और भाव की मधुरता आवश्यक थी। प्रेम और सौन्दर्य का गायन इसीलिए गीतियों में अधिक कामयाब हुआ। चित्रण के लिए अन्य छन्दों का आविष्कार किया गया। मधुरता के लिए सर्वत्र कोमल कान्त पदावली का प्रयोग किया गया। निराला ने वैदिक छन्दों का प्रयोग किया और तुकवाद को समाप्त कर दिया। आंतरिक नाद सौन्दर्य और आंतरिक लय के द्वारा मात्राओं के नियमों की अवहेलना की गई। पन्त जी ने कहा कि भाषा नाद का चित्र है। ब्रज भाषा का अनुप्रासविधान पन्त जी को रक्तमांस हीन लगने लगा। तरनि शब्द उन्हें ऐसा लगा जैसे तरणि को ग्रहण लग गया हो। भाषा के प्राण चिरकाल से क्षयरोग से पीड़ित तथा निःशक्त होकर अब प्रान कहे जाने योग्य रह गये। इसी प्रकार पत्थर से पाहन स्थान से थान जैसे शब्दों का प्रयोग पन्त जी को श्रीहीन लगा इसी प्रकार कहत लहत हरहु भरहु उन्हें ऐसे लगे जैसे शीत या भय किसी कारण से मुँह की पेशियाँ ठिठुर गई हों। मतलब यह कि नए संस्कार खड़ी बोली के शब्दों को अधिक पसन्द करने लगे और कवियों ने उसमें नया सौंदर्य बोध उत्पन्न करने के लिए कठोर श्रम किया। अतः छायावादी गीतियों में कर्कशता शब्द अप्रयुक्तता और प्रवाहहीनता नहीं मिलती।

इसी प्रकार शब्द के राग को पहचाना गया। पदार्थमात्र को रागमय मान लिया गया। राग के विद्युतस्पर्श से खिंचकर कवि शब्द की आत्मा की खोज करने लगे। पल्लव की भूमिका में पन्त जी ने कुछ शब्दों में स्थित सौन्दर्य और उनकी आत्मा पर प्रकाश डाला है। मत्स्य शब्द चटुल मछली की तरह छप छप करता हुआ प्रतीत हुआ। भ्रू से क्रोध की वक्रता 'भृकुटि' से कटाक्ष की चञ्चलता भौंहों से स्वाभाविक प्रसन्नता का अनुभव हुआ। हिलोर में उठान लहर में सलिल का कोमल कम्पन

'तरग म लहरो का आपस म घात प्रतिघात वीचि से किरणो मे चमकती, हवा के पलने म हौले-हौले झूलती हुई हँसमुख लहरो का भान हुआ। पख' म फडक और स्पश म रोमाच तथा 'रूप मे आनद का विद्युत स्फुरण दिखाई पडा।

इस प्रकार नई छायावादी गीतियो मे शब्द के नाद चित्र और उसकी आत्मा का अनुसधान उनकी विशेषता है। द्विवेदी युग मे शब्द का अनुशीलन नही हुआ। छायावाद के शब्द सस्वर है उनमे भाव और भाषा का सामञ्जस्य है। यही नही शब्द और अथ को भाव की अभिव्यक्ति मे भी लीन करने का प्रयत्न किया गया है अर्थात शब्दशिल्प के आगे भाव की उपेक्षा नही की गई।

छायावाद मे हरिऔधीय वर्णिक छदो के स्थान पर मात्रिक छदो का प्रयोग हुआ क्योकि हिंदी का सगीत केवल मात्रिक छदो म ही अपने स्वाभाविक विकास तथा स्वास्थ्य को प्राप्त कर सकता है। बंगला के छदो का भी अनुकरण नही किया गया। पत जी ने सवैया और कवियो की भी निन्दा की। निराला ने कवित्त के पुरुषत्व की प्रशसा की परन्तु छायावाद मे अधिकतर मात्रिक छद ही प्रचलित हुए और प्राय गीतियाँ ही अधिक लिखी गई। महादेवी ने तो गीतो को ही अपनाया प्रसाद ने कामायनी जैसे प्रबन्ध काव्य म भी बहुत से गीत लिखे। नाटको लहर और झरना मे भी उन्होने बहुत से गीत लिखे। पत जी का विश्व क पलको म सुकुमार तथा प्रसाद जी का आँसू म प्रयुक्त छद बहुत प्रचलित हुआ—आँसू छद मे आज भी लोग लिख रहे हैं। छदो की एकरसता को तोडने के लिए छोटी बडी पक्तियो का प्रयोग हुआ और निराला न छद के बाह्यबधन का पूण बहिष्कार कर दिया परन्तु आतरिक लय की उन्हे गजब की पहचान थी। प्रयोगवाद म इस विवेक क अभाव मे मुक्त छद गद्य मात्र रह गया। 'अथ की लय' की खोज म काव्य का नाद-सौन्दय लुप्त होने लगा।

इस प्रकार छायावाद गेय मुक्तको का काव्य है। मुक्त छद' को निराला ने सगीत का विषय बनाया और गाकर भी बताया परन्तु वह चल न सका। गीतिका के गीतो म 'मुक्तगीत' का अच्छा प्रयोग मिलता है। गेय मुक्तका तथा गीतिया म प्रेम और सौदय की मधुर अनुभूतियो की अभिव्यक्ति म तो अधिक सफलता मिली किन्तु जीवन के अन्य पक्षो के चित्रण के लिए गीतियाँ सदा ही अनुपयुक्त रही हैं किन्तु छायावाद ने जीवन का विशद चित्रण

किया ही नहीं उनमे लौकिक अलौकिक व प्रकृति सम्बन्धी प्रेम और अन्य कोमल अनुभूतिया ही ही अधिकता है। स्वप्न आंसुओ और मुग्धताओ के चित्रण के लिए गीति सबसे अधिक सफल माध्यम बनी किन्तु कामायनी म जीवन के विशद चित्रण के लिए 'आल्हा' जैसे छन्द का प्रयोग करना पडा। निराला पन्त और प्रसाद म भावनाओ का वैविध्य अपेक्षाकृत अधिक है अत छन्दो की भी विविधता मिलती है महादेवी का काव्यपथ सकुचित या अत उन्हें माध्यम और भाषा बदलने की कोई आवश्यकता नही पडी।

वण्यपक्ष के स्वरूप के निश्चित होजाने से जिस भाषा के आविष्कार के लिए शुरू मे कवियो को शब्द का काफी अनुसधान करना पडा, उसका रूप भी निश्चित और स्थिर होने लगा क्योकि शब्द म अपना सौन्दर्य कम होना है। सामाजिक स्थिति जब अलकृत और सगीतात्मक शब्दावली के विरुद्ध ऐसे वण्य विषयो की माग करने लगी जिसकी छायावाद म उपेक्षा हुइ अर्थात 'गरीबो की भूख की उच्च वर्गों पर आक्रोश आदि की, तब छायावाद की 'सुदर' और सगीतात्मक शब्दावली पीछ छूटने लगी नए शब्दो का प्रयोग आवश्यक हो गया। किन्तु आज भी कोमल अनुभूतियो की व्यजना के लिए कवश अथवा सवथा व्यावहारिक पदावली का प्रयोग सुदर नही माना जाता अत छायावाद के निन्दक भी सौदय अथवा प्रम के चित्रण मे छायावादी अलकृति से बचकर भी बच नहा पाते, क्योकि व्यावहारिक शब्दावली की भरमार से मनुष्य पुन नाद और लय की ओर आकर्षित होगा।

बढते हुए सामाजिक दबाव (Social Tensions) वग सघष, पद सघष प्रभाव सघष आदश क लिए सघष अस्तित्व के लिए सघष आदि सघर्षो के नाना रूपो की वृद्धि स ऊबा हुआ व्यक्ति काव्य को दुवह न बनाकर सहज शीतल और सगीतमय भी बनाना चाहता है अत छायावादी मिठान की आज भी कद्र है और उसका अनुसरण भी हो रहा है।

छायावाद युग म प्रगीति मुक्तको और गीतियो का प्रचार उसके अन्तर्निहित व्यक्तिवाद को प्रमाणित करता है क्योकि कवियो क निजी मनोवेग और स्वप्नो क लिए य काव्यरूप अधिक उपयुक्त प्रतीत हुए। द्विवदी युग के सभी कवियो म व्यक्तिवाद का अभाव था अत छायावाद युग म मैथिलीशरण गुप्त सियारामशरण गुप्त रामनरेश त्रिपाठी प्रबन्ध काव्य लिखते रहे। 'प्रसाद' ने 'कामायनी' को प्रतीकात्मक महाकाव्य बनाया आख्यानात्मक महाकाव्य उनके अनुकूल नही पडा। छायावाद युग म गुरुभक्तसिंह की नूरजहाँ,

वाले छायावादी अद्वैतवाद को पैरो के बल खडा कर दें। प्रथम भूततत्त्व है और चेतना उसी का गुणात्मक परिवर्तन है यह उस व्यक्ति को जल्दी समझाया जा सकता है जो यह मानता है कि प्रथम चैतन्य तत्त्व है और वही चैतन्यतत्त्व, सवत्र विविध रूपो मे अवस्थित है। हीगेल का अद्वैतवाद पूँजीवादी युग के दशन की चरम सीमा प्रस्तुत कर अपने गभ मे उन विचार—बीजो को उत्पन्न करता है जिन्हे मार्क्स ने अपने दशन म पल्लवित किया। इसी प्रकार छायावाद के अद्वैतवाद (एक तत्त्व की ही प्रधानता कहो उसे जड या चेतन) क बाद मैटरमूलक अद्वैतवाद के लिए हिन्दी काव्य म माग प्रशस्त हुआ। अत सव प्रथम आदशवाद (Idealism) ही एकतास्थापक और द्वैतवाद विनाशक रूप धारण करता है। उसी के गभ से भौतिकवाद का विकास होता है अत आदशवाद इतिहास की प्रगति मे एक महान सोपान है जो समसामयिक उत्पादन शक्तियो का प्रतिबिम्ब होता है।

इस दृष्टि से छायावाद की एकतास्थापक अद्वैतदष्टि की महत्ता स्पष्ट होती है और उसकी पैगम्बरी मुद्रा भी आवश्यक लगती है।

सैद्धान्तिक दष्टि स यह अद्वैतवाद छायावाद के कला सिद्धान्त मे भी प्रयुक्त हुआ है। द्विवेदीयुग बुद्धिवाद (Rationalism) तथा स्थूल नैतिकता (Puritanism) पर आधारित था। उसमे कोमलभाव को नैतिकता का विरोधी मान लिया गया था। जिस प्रकार शिलर ने भावावग (Feeling) को ज्ञान (Reason) का अविरोधी माना था[1] और ऐन्द्रिकता को बौद्धिकता का साथी उसी प्रकार छायावाद म ज्ञान और भाव का तथा नैतिकता और ऐन्द्रिकता (Sensuous impulse) का अविरोधी माना गया। छायावाद म यह स्वीकार किया गया कि ऐन्द्रिकता और ज्ञान सम्बद्ध तथा सहयोगी रूप म उपस्थित हो सकते है क्योकि—उनकी आत्यंतिक स्थिति परस्पर अविरोधिनी है। छायावादी विवेक इसीलिए अन्त करण और आत्मा म एकता स्थापित करता है और अन्त करण और इन्द्रियो की प्रतिक्रियाओ—का आवश्यक वणन करता है। प्रसाद जी चूँकि शैव थे अत उनमे यह एकता सबस अधिक मात्रा म दिखाई पडती है। सार्मावत बुद्धि के अभाव

---

1 The Sensuous impulse must be taken as co-ordinate with and not subordinate to the rational impulse

बी० बर्साक, पृष्ठ २८९

मे इच्छा, क्रिया और ज्ञान को अलग-अलग मान बैठना गलत है अत 'समरसता' का सिद्धान्त पदार्थ और मन की नैतिकता और ऐन्द्रिक आनन्द की, बुद्धि और विश्वास आदि की कामायनी मे पूर्ण एकता घोषित करता है। यही एकता प्रसाद मे भाषा, भाव, कल्पना और बुद्धि तत्त्व की एकता के रूप मे व्यक्त हुई है।

किन्तु दृष्टि की महत्ता स्वीकृति होने के बाद भी हमारा साहित्यशास्त्र छायावाद के विषय मे क्या कहता है यह कहना भी आवश्यक है क्योकि प्राचीन साहित्य शास्त्री प० रामचन्द्र शुक्ल छायावाद' का तटस्थ मूल्याकन नही कर सके। वस्तुत शुक्ल जी ने, पुराने बटखरो से प्राचीन काव्य का तो सफलता के साथ मूल्याकन किया और पुराने मापदण्डो को उन्होने सशोधित किया किन्तु उनसे आशा यह थी कि छायावाद का सशोधित मापदण्डो से मूल्याकन सभव होगा किन्तु यह सम्भव न हो सका। उनके शिष्यो मे प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र भी 'घनानन्द' का मूल्याकन तो कर सके किन्तु नवीन काव्य को समझने का प्रयत्न उन्होने बहुत कम किया। नूतन विचार पद्धति, नूतन कल्पनाविधान के कारण क्या छायावाद प्राचीन (किन्तु आधुनिक युग मे भी वैज्ञानिक प्रमाणित होने वाले) मापदण्डो से परीक्षित नही हो सकता ?

शम्भूनाथसिंह ने पुराने मापदण्डो से छायावाद की परीक्षा की है। छायावाद मे रस, ध्वनि, वक्रोक्ति, अलकार सभी के उदाहरण देकर उन्होने छायावाद के ही नही, नवीनतम काव्य के परीक्षण की विधि की ओर भी सकेत किया है। इससे नूतन मापदण्डो का स्वत निर्माण होगा क्योकि जहाँ प्राचीन मापदण्ड यथावत् लागू नहीं होगे वही उनके सशोधन की समस्या पर विचार करना होगा और उसी स्थान पर अन्य साहित्य शास्त्रो से अथवा 'मौलिक' मापदण्डो से सहायता लेनी होगी। इस प्रकार बना हुआ साहित्य-शास्त्र 'भारतीय साहित्य शास्त्र' का स्वाभाविक विकास होगा क्योकि उसकी कमी पूरी की जाएगी न कि उसका पूर्ण निषेध कर दिया जायगा जैसा कि उग्र वामपथी चाहते हैं। उनके लिए सामतवादी 'साहित्य शास्त्र' भी पूर्णत सामतवादी है यानी उस युग की कोई बात हमारे पास की नही है, तब प्राचीन 'धरोहर के उपयोग का क्या अर्थ है ?

छायावाद और ध्वनिवाद—छायावाद के पूर्व का काव्य तो स्पष्टत प्राचीन मान्यताओं के अनुसार मूल्याकित हो सकता है किन्तु छायावाद के मूल्याकन मे कठिनाई इसलिए हुई कि आलोचको की अपनी रुचियाँ अथवा

किसी एक वाद का अनुसरण इस काय मे बाधक हुआ है। हमारे प्राचीन साहित्य शास्त्र म यदि साहित्य को देखने की द्वद्वात्मक ऐतिहासिक पद्धति और जोड दी जाय तो वह पूण वैज्ञानिक साहित्य शास्त्र बन सकता है। हमने पीछ छायावाद तक के काव्य विकास मे द्वद्वात्मक दृष्टि का प्रयोग किया है। यहा भारतीय साहित्य शास्त्र का समग्रत प्रयोग करके हम छायावाद का सक्षिप्त मूल्याकन करने की चेष्टा करेंगे।

छायावाद द्विवेदीयुग के इतिवृत्तात्मक अर्थात तथ्य कथनात्मक काव्य क विरुद्ध ध्वनि की घोर प्रतिक्रिया है। हमारे यहाँ तथ्यकथन को काव्य ही नही माना गया अत जिस प्रकार ध्वनिकार ने कामिनी के मुख नासिका अधर आदि अगो के अतिरिक्त प्रतीयमान लावण्य को सौदय कहा है अथवा मोती की तरलता को उसी प्रकार प्रसाद जी ने भी छायावाद को मोती म प्रतीयमान काति या विच्छित्ति कहा है—

मुक्ताफलेषु यच्छायायास्तरलत्व मिवान्तरा।
सलक्ष्यते यदङ्गेषु तल्लावण्यमिहोच्यते॥

मोतियो मे काति की तरलता (पानी) की तरह जो वस्तु अगो के अतर मे दिखाई देती है वही लावण्य है।

पल्लव की भूमिका म पत जी ने इसी लावण्य की व्याख्या की है। पीछे उनके द्वारा की गई शब्दो की व्याख्या दी जा चुकी है। किस शब्द मे क्या तत्व या लावण्य छिपा है यह उन्होने बताया है।

ध्वनिकार ने कहा है कि महाकवियो की वाणी मे प्रतीयमान कुछ और ही वस्तु है जो स्त्रियो म उनके प्रसिद्ध अधर नेत्र आदि अवयवो क अतिरिक्त लावण्य के समान शोभित होता है अथवा जो अलकारादि काय अवयवो से भिन्न उसी प्रकार शोभित होता है जिस प्रकार स्त्रियो मे प्रसिद्ध अवयवो से भिन्न लावण्य।

छायावाद म इसी प्रकार के लावण्य की प्रधानता है। इस लावण्य की व्याख्या म कठिनाई इसलिए हुई कि सवत्र रस का ही अनुसधान करने की प्रवृत्ति रही है जब कि ध्वनिकार न रस ध्वनि के अतिरिक्त अलकार ध्वनि और वस्तु ध्वनि की पर्याप्त प्रशसा की है। रसध्वनि श्रेष्ठ है परन्तु अलकारध्वनि और वस्तुध्वनि को भी उत्तम काय माना गया है। विश्वनाथ द्वारा रस पर अत्यधिक बल दिए जान क कारण रस प्रधान काव्य के अभाव म आलोचको को निराशा होन लगी। विश्वनाथ के आधुनिक शिष्य

आचाय नगन्द्र ने भी छायावाद को रसवादी दृष्टि से ही देखा था अत उन्हे भी निराशा ही हुई। ध्वनिकार की दृष्टि व्यापक थी अत छायावाद म रसध्वनि अलकारध्वनि और वस्तुध्वनि तीनो की अधिकता है। मुख्यत 'अलकारध्वनि और वस्तुध्वनि का पूव काव्यो से अधिक प्रयोग होने के कारण केवल रसध्वनि का प्रयोग छायावाद म नहीं हुआ। इसके अतिरिक्त कवियो की आत्माभिव्यजनाओ से हमारे यहा कवि निबद्धपात्रो की अभिव्यजनाए अधिक मार्मिक मानी जाती रही है। इसलिए भी छायावाद को समझन म कठिनाई हुई। क्योकि यह स्पष्ट कहा गया है कि सहृदयपुरुष कविप्रौढोक्तिसिद्ध से कविनिबद्धवक्तृ प्रौढोक्ति सिद्ध को अधिक चमत्कारजनक मानते हैं और उसकी गणना कवि प्रौढोक्तिसिद्ध से अलग करते हैं। कवि म स्वत रागाद्या विष्टता नही होती परन्तु कवि निबद्ध म रागाद्याविष्टता होती है इसी से उसका वचन अधिक चमत्कारक होता है।[1]

इसके अतिरिक्त यह भ्राति हमारे यहा प्रारम्भ से ही है कि अलकार और वस्तु व्यजना और रस व्यजना म परस्पर विरोध है जब कि वास्तविकता इसके विपरीत है। पुराने आलकारिक भी कोरे वचन के कौशल को काव्य नही कहते थे। वह अनुभूति को आवश्यक मानते थे। इस दृष्टि से जब भामह उद्भट वामन आदि को देखा जाएगा तो वे अलकारवादी नही अलकारशास्त्री यानी सौदयशास्त्री दिखाई पडेंगे। परवर्ती टीकाकारो ने भी इस मम को नही समझा था। ध्वनिकार ने इसीलिए अलकार व्यजना को रसाक्षिप्त बनाने पर बहुत बल दिया है—

> रसाक्षिप्ततया यस्य बन्ध शक्यक्रियो भवेत।
> अपृथग्यत्न निर्वत्य सोऽलङ्कारो ध्वनौमत।

अर्थात रसादिध्वनि म जिस अलकार की रचना रस आक्षिप्त रूप मे बिना किसी प्रयत्न के हो सके ध्वनि म वही अलकार मान्य है।

ध्वनिकार ने 'यमक जैसे अलकारो का प्रयोग रसध्वनि म आयासहीनता द्वारा ही श्रेयस्कर माना है। ध्वनिकार ने रूपकादि अलकारो के प्रयोगम सोच समझकर प्रयोग करने के लिए बार-बार कहा है (समीक्ष्य विनिवेशन) और रस म अलङ्कार को ध्वनिकार सदैव ही अङ्ग मानकर चले हैं अङ्गी मानकर नही (विवक्षा तत्परत्वेन नाङ्गित्वेन कदाचन)। उन्होने यह भी कहा है कि

---

१ आचार्य विश्वेश्वर—ध्वन्यालोक की टीका, पृ० १८६।

अलकारा के आयासहीन प्रयोगो को भी एक बार पुन सावधानी से दख ना चाहिए कि वे कहीं अङ्गी तो नही होगए हैं—

निव्यूढापि चाङ्गत्वे यत्नेन प्रत्यवेक्षणम ।
रूपकादिरलङ्कार वगस्याङ्गत्वसाधनम ।

छायावाद मे ऐसे स्थल कम नही हैं जहाँ रसकी प्रधानता है और कल्पनाप्रिय छायावादियो ने जहा अलकारा को रस के अङ्ग क ही रूप मे ही प्रयुक्त किया है ।

किन्तु छायावाद तो स्वतन्त्र कल्पना के प्रयोग के कारण प्रसिद्ध है । अत अलकार व्यजना और वस्तु व्यजना मे उनकी कल्पना आयाससहित चित्रो की खोज मे निकलती है । वस्तुव्यजना मे भी सश्लिष्टता लाने का प्रयास भी सायास प्रयत्न है । किन्तु ध्वनिकार ने इस काव्य की श्रेष्ठता का मापदण्ड यह बताया है कि मात्र अलकार का प्रयोग न कर अलकार से अलकार को जहाँ ध्वनित किया जाएगा वहाँ अलकारध्वनित होगा और यह उत्तम काव्य होगा । इसी प्रकार वस्तुव्यजना मे जहाँ वस्तु से वस्तु को ध्वनित किया जाएगा वहाँ उत्तम काव्य होगा । इसी प्रकार वस्तु से वस्तु की वस्त से अलकार की अलकार से वस्तु की अलकार स अलकार की जब व्यजना होती है तो उत्तम काव्य की सृष्टि होती है । वण्य की दृष्टि से वस्तु प्रकृति मे पूर्व से ही विद्यमान हा सकती है (स्वत सम्भवी) अथवा कवि के द्वारा कल्पित (कवि प्रौढोक्ति मात्र सिद्ध) हो सकती है अथवा कविनिबद्धप्रौढोक्तिसिद्ध हो सकती है ।

यह स्मरणीय है कि अलकारव्यजना और वस्तुव्यजना की पृष्ठभूमि मे अनुभूति अवश्य स्थित रहती है । जो रस को केवल पूरी सामग्री के प्रयोगो म ही मानते थे वे ऐस स्थलो को रसवादी नही वह सकते जहा रस की प्रधानता न हो यथा अलकारध्वनि अथवा वस्तुध्वनि मे । परन्तु विभावा नुभाव व्यभिचारि सयोग के अतिरिक्त भी रस अलकारध्वनि और वस्तुध्वनि द्वारा ध्वनित होता है यथा पन्त जी की पर्वतीय सुषुमा के वणना मे वस्तु व्यजना अथवा स्वाभावोक्ति अलकार है । ऐसे स्थाना म प्रकृति के प्रति क्या रति की व्यजना नहा होती ? इसी प्रकार अनग और छाया म अलकार ध्वनि म क्या विभिन्न विशेषण और अलकार हृदय की किसी वृत्ति को साथ ही साथ ध्वनित नही करते ? पन्त जी ने प्रकृति क प्रति आसक्ति विषय म तो यहाँ तक कहा है कि बाला की आर भी वह नही दखना चाहते तब क्या प्रकृति के अनकूल वणन रति को ध्वनित नहा करत उसी तरह

जिस तरह नारी के प्रति आसक्ति शृगारिक वणनो द्वारा ध्वनित होती है। अत असलियत यह है कि छायावाद मे कही कही तो रसात्मक स्थल है कही अलकार और वस्तुध्वनि का प्रयोग है कही वस्तु से वस्तु को वस्तु से अलकार को अलकार से वस्तु आदि को ध्वनित किया गया है और उसके बाद यह ध्वनि पुन हृदय की किसी वृत्ति को भी ध्वनित करती है अत छायावाद मे शास्त्रीय दृष्टि से ध्वननव्यापार कई तत्त्वो को एक साथ ध्वनित करता है, इसीलिए उसमे इतना आकषण है। कामायनी मे एक साथ ही कितने तत्त्वो— इतिहास मनोविज्ञान समाजशास्त्र अध्यात्म आदि को ध्वनित किया गया है अत छायावाद मे एक भी उक्ति ऐसी नही है न प्रयोगवाद मे ही है जिसका मूल्याकन ध्वनि सिद्धान्त द्वारा न हो सके और यदि रस सिद्धान्त को व्यापक अर्थों मे लिया जाय अर्थात इस अथ मे कि काव्य मे सवदा और सवत्र किसी न किसी भाव की ही व्यजना होती है भावरहित काव्य निकृष्ट होगा यथा प्रहेलिका काव्य तो रसवाद के द्वारा भी प्रत्येक काव्य का मूल्याकन हो सकता है किन्तु यदि रस के लिए विभावानुभाव सचारी—सभी तत्त्वो का सहयोग पुराने ढग पर ही अनिवाय माना जाएगा तब आनदवधन और अभिनवगुत और पण्डितराज जगन्नाथ हमारी अधिक सहायता कर सकेंगे क्योकि निश्चित रूप से ध्वनिवाद ही सबसे अधिक व्यापक और पूण सिद्धान्त है उसमे प्रबन्ध काव्य मुक्तककाव्य दोनो के मूल्याकन की क्षमता है।

वस्तुत प्रधानता के आधार पर निणय करने के कारण जहाँ रस' अलकार और वस्तु का नाम दिया गया है वहा भ्रमवश यह मान लिया जाता है कि एक के प्रधान होने से अन्य तत्त्वो का वहाँ अत्यन्ताभाव होजाता है जबकि आचार्यों ने अगी और अग के रूप मे विभिन्न तत्त्वो को देखने पर बहुत बल दिया है। उदाहरण के लिए रस या असलक्ष्यक्रमव्यग्यध्वनि वही मानी गई है जहा रस की प्रधानता हो केवल भाव व्यजना मे रस नही माना गया।

एव वादिनि देवर्षौ पार्श्वे पितुरधोमुखी।
लीला कमल पत्राणि गणयामास पार्वती। (कुमारसम्भव)

अर्थात देवर्षि के ऐसा कहने पर पिता के साथ बैठी हुई पार्वती मुँह नीचा करके लीला कमल की पखुडिया गिनने लगी।

लोचनकार ने इस पद्य को लज्जारूप व्यभिचारि भाव का अभिव्यजक माना है। और कहा है कि यहा असलक्ष्य क्रमव्यग्य ध्वनि नही है क्योकि जहाँ साक्षात् शब्द से वर्णित विभाव अनुभाव और व्यभिचारी भावो से रसादि

की प्राप्ति होती है वही केवल असलक्ष्यक्रमव्यग्यध्वनि होती है।[1] अत उक्त श्लोक मे केवल व्यभिचारी भाव की ही व्यजना मानी गई है।

रस के इस सकीर्ण अर्थ मे छायावाद म बहुत कम रस प्राप्त होगा किन्तु भावव्यजना जहाँ प्रधान हो और अलकार और वस्तुव्यजना गौण उसे रसवादी काव्य ही मान लेना उचित है इससे रसवाद व्यापक होगा और छायावाद मे ऐसे उदाहरण बहुत है। इसी प्रकार जहा अलकार अगी और रस या भाव अग हो वहा काव्य को चमत्कारवादी कहकर निकृष्ट नही माना जा सकता। जहा भाव या अनुभूति इतनी अधिक गौण हो कि हृदय के लिए कुछ न मिले केवल मानसिक व्यायाम ही हो वही चमत्कारवाद मानना चाहिए। इसी तरह वस्तुव्यजना मे जहा भाव और अलकार की प्रधान रूप स सत्ता न हो वहा उसे इतिवृत्तात्मक माना गया है। वस्तु जहाँ अलकार या किसी भाव को व्यजित करती हो अथवा किसी विशेष मानसिक स्थिति मे वस्तु की वर्णना हो वहा प्रधान रूप से वस्तु का सौन्दर्य और अप्रधान रूप से रस और अलकार का भी आनन्द मिलता है। प्रारम्भिक आचार्यों ने अचेतन पदार्थों पर आरोपित चेतना से युक्त वर्णना को जब रसवत अलकार कहा था तब अप्रत्यक्ष रूप से प्रकृति के मानवीकरण म रस की सत्ता स्वीकार की थी—

तरङ्ग भ्रूभङ्गा क्षभितविहग श्रणिरशना
विकर्षयन्ती फन वसनमिव सरम्भशिथिलम्
यथाविद्ध याति स्खलितमभिसन्धाय बहुशो
नदीरूपेणय ध्रुवमसहना सा परिणता।

अर्थात टेढी भौहा के समान तरगा को और करधना के समान क्षुब्ध विहग पक्ति को धारण किये हुए क्रोधावेश मे खिसके हुए वस्त्र के समान फना को खीचती हुइ यह नदी बारम्बार ठोकर खाकर जो टेढी चाल से चली जा रही है सो जान पडता है कि मेरे अनेक अपराधो को देख कर रूठी हुई वह उर्वशी ही नदी रूप म परिणत होगई है।

यहाँ वस्तु व्यजना है इसे कौन नीरस कहेगा ऐसा मानवीकरण ही छायावाद मे है।

---

१ आचार्य विश्वेश्वर—पृष्ठ १८२।

वस्तुध्वंजना—

> भावव्रात हठाज्जनस्य हृदयाजन्याक्रम्य यन्नर्तयन् ।
> भङ्गीभिर्विविधाभिरात्महृदय प्रच्छाद्य सन्नीडसे ।
> स त्वामाह जड तन सहृदयम्मन्यत्व दु शिक्षितो ।
> मन्येऽमुष्य जडात्मता स्तुतिपद, त्वत्साम्यसभावनात् ।

हे भावव्रात अर्थात् पदार्थ समूह ! समग्र विश्वसौन्दर्य के भडार इस प्राकृतिक जगत् के चन्द्रमा आदि पथार्थ-समूह ! तुम विविध प्रकारो से अपने आन्तरिक रहस्य को छिपाकर और लोगो को हठात् अपनी ओर आकृष्ट कर स्वेछापूर्वक नचाते हुए जो क्रीडा करते हो, उसी से दु शिक्षित और सहृदयता का मिथ्याभिमान करने वाले लोग तुमको "जड" कहते हैं। वस्तुत वे स्वय जड हैं ! परन्तु उनको "जड" कहना भी तुम्हारी समानता का सम्पादक होने से उनके लिए स्तुति रूप ही है, यह प्रतीत होता है !

लोचनकार ने यद्यपि यहाँ 'किसी महापुरुष' का अप्रस्तुत चरित्र प्रतीयमान माना है परन्तु हमे यहाँ 'पदार्थ समूह' की उक्त स्तुति से ही तात्पर्य है। छायावाद की महत्ता उक्त पद्य द्वारा स्पष्ट है। पदार्थसमूह के आन्तरिक रहस्य और आकर्षण को व्यक्त करने वाले छायावादी काव्य की निन्दा 'जडता' ही है !

> अरे ! ये पल्लव-बाल !
> सजा सुमनो के सौरभहार गूँथते वे उपहार।
> अभी तो हैं ये नवल-प्रवाल, नही छूटी तरुडाल।
> विश्व पर विस्मित-चितवन डाल, हिलाते अधर प्रवाल।
>
> न पत्रो का मर्मर सगीत, न पुष्पो का रस, राग, विराग।
> एक अस्फुट, अस्पष्ट, अगीत, सुप्ति की ये स्वप्निलमुस्कान।
> सरल शिशुओं के शुचि अनुराग, वन्यविहगो के गान।
> प्रथम मधु के फूलों का बान, दुरा उर मे कर मृदु आघात।
>
> रुधिर से फूट पडी रुचिमान, पल्लवो की यह सजलप्रभात।
> शिराओ मे उर की अज्ञात, नव्य जीवन कर गतिवान !

यहाँ 'पल्लवो' का अलङ्कृत वर्णन है। पल्लवो को 'शिशु' बना देने से 'रूपक' अलकार है, किन्तु 'मानवीकरण' भी साथ-साथ चला है। किन्तु पूर्ण कविता यह व्यजित करती है कि प्रकृति 'जीवन और गति' देती है, तथा "सुख

का समय आकर्षक होता है (मुग्ध हाने मधु से मधुवात सुरभि से अस्थिर मरुताकाश) । यहा ध्वननव्यापार से अथ अर्थान्तर को प्रकट करता है ।

इस प्रकार पल्लवा की सु दरता व्यजित होने से यहा वस्तुव्यजना है किन्तु रूपक से मानवीकरण व्यजित होने से अलकार से अलकार व्यजना और पूरी कविता से एक मानवीय सत्य की भी व्यजना है। छायावाद की वस्तुव्यजना म पदाथ की सु दरता की व्यजना के साथ साथ जीवन सत्यो और अलकारा की व्यजनाए भी हाता चलती हैं और यह भी स्मरणीय है कि प्रकृति के प्रति कवि की आम क्त की व्यजना के कारण ही यह पद्य इतना सुन्दर बन पडा है। यह कौशल द्विवेदी युग म अथवा रीतिकाल म कहा था ?

इसी प्रकार उच्छ्वास मे पवतीय सुषुमा वीचिविलास छाया बादल आदि मे पन्त जी ने नाना व्यजनाएँ भरी हैं। प्रकृति कितनी सु दर है यह तथ्य सवत्र ध्वनित होने के कारण इन रचनाओ म उच्चकोटि की वस्तुध्वनि मिलती है जिसके साथ कवि के हृदय का राग भी ध्वनित होता चलता है निराला की यमुना क प्रति तरग के प्रति जुही की कली आदि म भी यही प्रक्रिया अपनाई गई है। जुही की कली और मौननिमत्रण (पन्त) म रहस्य मय सत्ता की भी व्यजना है। महादेवी के कौन तुम मेरे हृदय मे मे भी यही विशेषता है। प्रकृति की सुदरता छायावाद म सवत्र किसी अय रहस्यमय सौदय को ध्वनित करती चलती है।

अथ शक्ति उदभव सलक्ष्यक्रम व्यग्यध्वनि मे प्रौढोक्ति—उपयुक्त उद्धरण स्वत सम्भवी वस्तु के उदाहरण हैं किन्तु कवि द्वारा कल्पित वस्तु भी व्यजित होता है छायावाद म इस प्रकार की ध्वनि के अनेक उदाहरण हैं। ज्योत्स्ना (पन्त) कवि प्रौढोक्ति मात्र है जिससे ऐसा समाज ध्वनित होता है जिसमे पूण सौम्य समानता और स्वतत्रता है। आसू की ये पक्तिया देखिए—

चचला स्नान कर आवे चद्रिका पव मे जैसी।
उस पावन तन की शोभा आलोक मधुर थी वैसी।

चचला चाँदनी म स्नान नहा कर सकती क्योकि चान्दनी रात म मेघ होने पर ही बिजली चमक सकती है और मेघ रहने पर चाँदनी नही रह सकती अत यहाँ कवि प्रौढोक्ति मात्र है। यहाँ नायिका म चमक और शीतलता दोनो एक साथ है यहाँ वस्तु व्यग्य है।

कवि निबद्ध वक्तृ प्रौढोक्ति—

नील परिधान बीच सुकुमार खुल रहा मृदुल अधखुला अग।
खिला हो ज्यो बिजली का फूल मेघ बन बीच गुलाबी रग।

यहाँ बिजली का पुष्प' कवि कल्पित है। श्रद्धा के अग की चमक व्यग्य है—

कुसुम-कानन अचल मे मन्द पवन प्ररित सौरभ सुकुमार।
रचित परमाणु पराग शरीर खडा हो ले मधु का आधार।
और पडती हो उस पर शुभ्र नवल मधुराका मन की साध

'कुसुम कानन मे पराग और मधु से निर्मित शरीर लोक मे नही मिलता अत यह कवि प्रोढोक्ति मात्र है और श्रद्धा के शरीर की सुगधि मधुरता मादकता, शीतलता आदि वस्तु' व्यग्य है। चूंकि उक्ति पद्यो मे मनु का कथन है अत यहाँ कवि द्वारा निबद्ध वक्ता से सम्बन्धित प्रौढोक्ति है। इसे अधिक सुन्दर माना गया है क्योकि इसमे राग' अधिक रहता है।

शब्द शक्ति पर आधारित ध्वनि—'शब्द शक्ति उदभव अर्थान्तर सक्रमण' का उदाहरण मैं तोडती पत्थर' (निराला) से शम्भुनाथ सिंह ने दे दिया है (पृष्ठ २४४) 'मैं तोडती पत्थर शब्द अपना मुख्याथ छोडकर मजदूरिनी के दु ख, सामाजिक विषमता आदि को भी क्रमश व्याजित करते हैं।

अत्यन्त तिरस्कृत वाच्यध्वनि–उक्त कवियो म मुख्याथ की आवश्यकता रहती है किन्तु इसमे वाच्यार्थ सर्वथा अनपेक्षित हो जाता है यथा 'बाँधा है विधु को किसने इन काली जजीरो से' मे विधु' का अथ मुख और जजीरो का अर्थ केश लिया गया है। इसी प्रकार पतजी के उड गया अचानक लो भूधर" म पहाड उड नही सकते अत पहाड का अदृश्य हो जाना ही व्यजित है।

अर्थान्तर सक्रमण और अत्यन्त वाच्यतिरस्कृत ध्वनियो मे प्रथम मे वाच्याथ के बाद अनुरणन व्यापार से अन्य अथ की प्रतीति हो जाती है। दूसरी ध्वनि मे मुख्याथ मे सहसा बाधा देखकर सादृश्य के आधार पर पाठक के मन म अन्य अर्थ ध्वनित होता है। छायावाद मे इस प्रकार के प्रयाग बहुत है, जब कि ब्रजभाषा और द्विवेदीयुग के कई कवि श्लेष' के प्रयोगो को नही छोड सके। रत्नाकर' ने ब्रजभाषा मे श्लेषमूलकता' के कारण व्यर्थ के चमत्कारवाद को प्रश्रय दिया है यथा 'रस के प्रयोगनि मे सुखद सजोगनि आदि कवित्तो मे। गुप्तजी ने साकेत' मे 'उप रुदन्ती विरहिणी के रुदनरस के लेप से" जैसे श्लेषात्मक प्रयोग किए हैं। श्लेष' मे अभिधा प्रधान रहती है जबकि उक्त उपयुक्त प्रयोगो मे लक्षणाओ के द्वारा नए अथ ध्वनित किए गए हैं।' इसके सिवा श्लेष म तथ्यकथन' प्रधान रहता है और उक्त ध्वनियो मे 'अलकार' प्रधान रहता है अत छायावादी पद्धति श्लेष प्रणाली से अधिक श्रेष्ठ है। ब्रजभाषा के रसवादी कवि इसीलिए श्लेष प्रणाली से बचे है क्याकि उसमे कवि

का केवल द्विअर्थक ग्न्ा पर ही अधिकार प्रकट होता है काय मे व्यजना नही आ पाती !

अलकार ध्वनि—छायावाद मे कल्पना का अतिरेक है यह हम कह चुके हैं। पदार्थों क वणन म कवियो ने मुख्यत सादृश्यमूलक अलकारो का प्रयोग किया है। उपमान विधान मे उपयुक्त और नवीन विशेषणों का प्रयोग छायावाद के शिल्प की विशेषता है। अत पर्यायमूलक ध्वनि' छायावादी अलकृत वणनो म बहुत अधिक मिलती है। इसके सिवा अलकारो के द्वारा वस्तु और अलकारो को ध्वनित करने से छायावादी अलकृत शली मे चारुता अधिक आ गई है—

अलकार से अलकार की ध्वनि—

मेखलाकार पवत अपार अपने सहस्र द्ग सुमन फाड।
अवलोक रहा है बार बार नीचे जल म निज महाकार
जिसके चरणा म पला ताल दपण सा फैला है—विशाल

यहा रूपक और उपमा अलकारा द्वारा मानवीकरण अलकार व्यजित है अत यहा अलकार ध्वनि है।

यही तो काटे सा चुपचाप
उगा उस नरुवर म—सुकुमार।
सुमन वह था जिसम अविकार
बध डाला मधुकर निष्पाप।

यह अलकार द्वारा यह वस्तु व्यजित है कि बडा म भी दुबलता होती है ! अविकार निष्पाप शब्द अपना अथ छोडकर उक्त अथ देते हैं। यहा अथ शक्ति उद्‌भव सलक्ष्यक्रम व्यग्यध्वनि है।

हो गया था पतझड मधुकाल
पत्र तो आने हाय नवल !
झड गए स्नेहवृत्त स फूल
लगा यह असमय कैसा फल !

यहाँ स्वभावोक्ति अलकार स यह वस्तु व्यजित है कि एक का विनाश दूसरे के ज म का कारण है ! इस प्रकार नवीन विशेषणो से वण्य वस्तु क निहित सौन्दय की व्यजना छायावादी शिल्प की विशेषता है। कामायनी म चिन्ता के विशेषण ध्वन्यात्मक हैं उनस चिन्ता के उत्पन्न होने पर सारी मानसिक दशाएँ ध्वनित हो जाती हैं जिन्हे वह पर नही बताया जा सकता।

ये विशेषण वाच्यार्थ को सर्वथा छोडकर अत्यन्ततिरस्कृत वाच्यध्वनि के भी उदाहरण हैं। इसी प्रकार पन्तजी की इन पत्तियो मे—

गूढ सास सी यतिगति हीन
अपनी ही कम्पन मे लीन
सजल कल्पना सी साकार
पुन पुन प्रिय पुन नवीन —वीचिविलास

इसी प्रकार अनग के लिए नियम की नयनवह्नि के लुप्त स्वर्ण, असीम सौन्दर्य राशि मे हृत्कम्पन 'स्वप्न' के लिए अतीतमृदुहास, पक्षी के लिए 'विटपबालिका' 'विश्ववेणु' के लिए भारत के मृदुल झकोर, बाल कल्पना, 'निर्झर' के लिए 'जलद ज्योत्स्ना के गात', छाया के लिए रतिश्रान्ता व्रज वनिता, मुक्त कुतला, विरक्ति, बच्चो के तुतलेभय, असीम की आँखमिचौनी, अस्पृश्य अप्सरसि, तथा 'नक्षत्र' के लिए अनन्वय वृत्त, स्वर्ण समय के सुखमय स्मारक, अविदितयुग के मुद्राकर, सजलदिगम्बर के ताडव आदि अनेक विशेषणो का प्रयोग पन्तजी ने किया है। इनमे कुछ सुन्दर है, कुछ कल्पना का व्यर्थ प्रदर्शन बताते हैं परन्तु उनमे ध्वन्यात्मकता सर्वत्र है, यह स्मरणीय है।

निराला के 'कौन तुम शुभ्र किरण वसना' मे 'रूपक' अलकार और 'कुन्दधवलदशना' जैसे विशेषण एक अज्ञात और सूक्ष्म अशरीरी 'सुन्दरी' के अस्तित्व को भी ध्वनित करने मे पूर्ण समर्थ हैं। 'जुही' मे भी यही विशेषता है, यहाँ 'अलकृति' सर्वत्र ध्वन्यात्मक है, वह 'वस्तु', 'अलकार, भाव को एक साथ सकेतित करती हुई चली है—

सौन्दर्य सरोवर की वह एक तरग
किन्तु नही चचल प्रवाह-उद्दाम—वेग
सकुचित एक लज्जित गति है वह
प्रिय समीर के सग

और सन्ध्या-सुन्दरी मे तो सारा वातावरण अपरिमित सौन्दर्य के साथ-साथ ध्वनित हुआ है—

छाँह सी अम्बर-पथ से चली
नही बजती उसके हाथो मे वीणा
नही होता कोई अनुराग राग आलाप
नूपुरो मे भी रुनझुनरुनझुन नही

सिफ एक अव्यक्त शब्द सा चुप चुप चुप'
है गूँज रहा सब कही ।

महादेवी के रूपसि तेरा घन केशपाश और वासन्ती रजनी मे भी वातावरण को अलकृति द्वारा पूणत ध्वनित किया गया है। छायावाद ने इस ध्वन्यात्मक वस्तु वणना और अलकार वणना से लोचनकार के इस कथन को पूण चरिताथ कर दिया है—

भावन्नात हठाज्जनस्य हृदयान्याक्रम्य यन्नतयन
भङ्गीभिविविधाभिरात्महृदय प्रच्छाद्य सक्रीडसे।

रसध्वनि—छायावाद मे कवियो की निजी आशा-आकाक्षाओ स्वप्नो आदि की व्यजना तथा अचेतन प्रकृति का चेतनवत् वणन वस्तुत रसवादी काव्य मे गिना जाना चाहिए। कामायनी मे मनोवृत्तियो का मानवीकरण तथा चादनी रात प्रलयकाल म पृथिवी आदि के वणन वस्तुत रसमय हैं। यहा यह दुराग्रह व्यथ होगा कि यहा रस की पूण सामग्री वर्णित है या नही। वस्तुत ऐसे वणनो म रस की जिस सामग्री का वणन न हो उसका समाहार कर लेना चाहिए। कई स्थानो पर पूण रस-सामग्री मिलती भी है—

गिर रही पलकें झुकी थी नासिका की नोक।
भ्रूलता थी कान तक चढती रही बेरोक।
स्पश करने लगी लज्जा ललित कण कपोल।
खिला पुलक कदब सा था भरा गदगद बोल।

यहा केवल अनुभावो का वणन है परन्तु श्रद्धा आश्रय और मनु आलम्बन उपस्थित हो है। रति स्थायी भाव और प्रकृति उद्दीपक है। रोमाच और लज्जा विगत जीवन की स्मृति के बिना रह नही सकते अत एस स्थलो म रसध्वनि स्पष्ट है।

छने म हिचक दखने मे पलक आँखो पर झुकती हैं।
कलरव परिहास भरी गूँज अधरो तक सहसा रुकती हैं
सकेत कर रही रोमाली चुपचाप बरजती खडी रही।

ऐसे स्थलो म अनुभाव के अतिरिक्त अन्य रस के अगो का समाहार बहुत बहुत कठिन नही है। कामायनी के अतिम सर्गो म शान्तरस का पूण परिपाक हुआ है। वस्तुत कामायनी म सवत्र हृदय की वृत्तियो का ही सवत्र प्रधान होने स यह काव्य केवल बुद्धिवादी काव्य नही कहा जा सकता।

पन्तजी ने सयोग शृगार की स्मृति के रूप उच्छ्वास मे नायिका के सौंदर्य का वर्णन किया है और 'आंसू' मे तो परम्परागत विरह वर्णन ही मिलता है—

आह ! यह मेरा गीला गान
वर्ण वर्ण मे उर की कम्पन
शब्द शब्द मे सुधि की दशन
चरण चरण है आह

तथा

धधकती है जलदो से ज्वाल
बन गया नीलम व्योम प्रवाल
आज साने का सन्ध्याकाल
जल रहा जतुगृह सा विकराल।

महादेवी का सारा काव्य 'विप्रलम्भ शृगार' मात्र है, सर्वत्र उनके हृदय की 'वेदना' ही व्यजित हुई है—

दीप मेरे जल अकम्पित धुल अचचल !
सिन्धु का उच्छ्वास घन है।
तडित तम का विकल मन है।
भीति क्या नभ है व्यथा का।
आंसुओ से सिक्त अचल।

यहां प्रकृति उद्दीपक मात्र है, यहां कवियत्री की 'रति' ही मुख्यत. ध्वनित हुई है अत अलकार रस के अग के रूप मे महादेवी ने प्रयुक्त किए है—

सब बुझे दीपक जला लूं।

क्षितिज भारा तोड कर अब, गा उठी उन्मत्त आंधी।
अब घटाओ मे न रुकती, लासतन्मय तडित बांधी।
धूलि का इस बीण पर मैं तार हर तृण का मिला लूं।

यहां 'रूपक', प्रतीक (आंधी) मानवीकरण (लासतन्मय तडित) आदि अलकार हृदयगत भाव की अभिव्यजना मे सहायक मात्र हैं।

निराला के काव्य मे तो प्रकृति वर्णन भी 'अनुभूति' व्यजित करने का माध्यम है यथा तरगो के प्रति मे अतिम अश। 'सरोज स्मृति' (करुण रस) शिवाजी का पत्र (वीर रस) जागो फिर एक बार (वीर रस) बादल राग

(वीर रस) गीतिका के शृंगार मूलक गीत (सयोग और विप्रलम्भ शृंगार) आदि अनेक रचनाओ मे रसपरक स्थलो की कमी नही है ।

इस प्रकार छायावाद मे रसध्वनि का अभाव नही है ।

अलंकृति—छायावाद ने सौन्दर्य की सृष्टि के लिए नूतन अप्रस्तुत-विधान किया था। द्विवेदीयुग म परम्परागत उपमान ही अधिक मिलते है। *हम कह चुके हैं कि छायावाद साहश्य पर सबसे अधिक ध्यान देता है।* कल्पनाशील छायावादी कवि ने मानसिक स्थितियो और वर्ण्य वस्तुओं का उपयुक्त सादृश्य खोजकर उन्हे सचित्रित कर दिया है, साहश्यमूलक अलकारो का प्रयोग कोई अद्भुत घटना नही थी किन्तु नए उपमानो अथवा पुराने उपमानो के नूतन विन्यास मे वर्ण्य वस्तु को सचित्रित करना छायावाद की विशेषता है—

अरे, ये पल्लव बाल !
विश्व पर विस्मित चितवन डाल, हिलाते अधर-प्रवाल !

अधर की 'प्रवाल' से उपमा नवीन नहीं है, किन्तु 'हिलाते' शब्द के प्रयोग से चित्रोपमता आ गई है। पन्तजी की साहश्यप्रियता द्रष्टव्य है—

उपमाएँ—(१) खिल उठी रोओ सी तत्काल, पल्लवो की यह पुलकित डाल !
(२) सिंडी के गूढ हुलास
(३) ढाल सा रखवाला शशि आज
(४) अरुण कलियो से कोमल घाव
(५) कुहरे सी भावी
(६) तड़ित सा ध्यान
(७) जुगनुओ से प्राण
(८) सरल शुक्र सी सुधि
(९) विधुर उर के से मृदु उद्गार
(१०) इन्द्रजाल ही स्वर्ण-पराग
(११) जलनिधि की मृदु पुलकावलि सी
(१२) तारको मे पलको पर मृद
(१३) बच्चों के तुतले भय सी
(१४) कभी लोभ सी लम्बी
(१५) कभी तृप्ति सी होकर पीन।

रूपक—(१) तरुणतम सुन्दरता की आग, मधुराग (पल्लव के लिए)

(२) मेखलाकर पर्वत अपार अपने सहस्र दृग-सुमन फाड़

(३) उचक चपला के चचल-बाल

(४) चला मनिदृग चारो ओर अरी यारि की परी किशोर।

(५) चाँदी के चुम्बन का चूर

(६) तुमने भौंरो की गुंजित ज्या कुसुमो का लीलायुध थाम।
अखिल भुवन के रोम रोम म केशर शर भर दिए निकाम।

(७) बजा दीर्घ सासो की भेरी सजा सत्-कुश कलशाकार।
पलक पाँवडे बिछा खडे कर रोओ मे पुलकित प्रतिहार।
गोमावर्ति की शर शैय्या मे तडप तडप करता चीत्कार।
ऐ त्रियन के नयन वह्नि के तप्त स्वर्ण ऋषियो के गान।

(८) ऐ नश्वरता के लघु बुदबुद काल चक्र के विद्युत्कन।
ऐ स्वप्नो के नीरव चुम्बन, तुहिन दिवस, आकाश सुमन।

पन्तजी के नौकाविहार एक तारा गगा नक्षत्र, बादल आदि रचनाओ म नूतन उपमाओ और रूपको का ही अधिक चमत्कार मिलता है। विशेषणविपर्यय के कारण इन उपमानो मे और भी आकर्षण उत्पन्न हो गया है। कल्पना के बल पर नूतन उपमान खोजने के प्रयत्न मे पन्तजी ने सादृश्य का अधिक ध्यान रखा है अत बतुके, और अजनबी उपमान उनम बहुत कम मिलते हैं, चित्रोपमता के लिए सादृश्य का ध्यान रखना ही पडता है।

निराला म भी सादृश्यमूलक अलकारो की ही प्रधानता है पन्तजी की तरह विरोधमूलक अलङ्कृति भी नही मिलती—टूट गई पतवार, पारावार अपार प्रात समीरण सा जीवन, अचल सा चचल, बालिका सी चितवन, जीवन प्रसून यौवन की माया सा ध्यान आँसू सा उर का उदगार नूपुर की ध्वनि सी तरग शशि सा मुख ज्योत्स्ना सा गात वीचि चितवन, मरु मरीचिका सी ताक रही आकाश, हृदय सरोवर का जलजात, उठा तूलिका मृदु चितवन की कनक-कोरो के नीरव अश्रु कणो मे भर मुस्कान, दिवस स्वप्न सा, अनत का नीला अचल हिला हिलाकर, सोह रहा क्षीण-कटि म अम्बर शैवाल तैर तिमिर तिल भुज मृणाल, तुम दिनकर के खर किरण जाल म सरसिज की मुस्कान तुम चित्रकार घनपटल श्याम, मैं तडित तूलिका रचना, इत्यादि।

निराला की समासमूलक पदावली सादृश्यमूलक अलकारो से गु जित होकर ही व्यक्त हुई है।

मूत्त के लिए अमूत्त और अमूत्त भावनाओ के लिए मूत्त उपमान भी छायावाद की विशपता है सभी कवियो मे यह विशेपता मिलती है। और महान्देवी मे भी सादृश्य को आधार बनाकर ही उपमान विधान किया गया है—हिम स्तब्ध उसी के हृदय समान उसी तपस्वी से देवदार जो चिता विश्ववन की व्याली अभाव की चपल बालिका जय ल मी सी उषा सिंधुसेज पर धरा वधू मधुर जागरण सी आशा शीतल दाह सा जीवन मानो हँसी हिमालय की है फूट चली करती कल गान जब कामना सिंधु तट आई ल सन्ध्या का तारा दीप सस्कृति जलनिधि तीर तरगा से फकी मणि एक पहेली सा जीवन तक जाल सी अलकें आदि।

रूपकातिशयोक्ति अलकार मे साकेतिकता अधिक रहती है लक्षणाप्रिय छायावादियो ने साध्यावसाना लक्षणा के लिए इस अलकार का प्रयोग भी खूब किया है—

बाधा था विधु को किसने उन काली जजीरो से।
मणि वाले फणियो का मुख क्या भरा हुआ हीरो से।

(प्रसाद)

कहाँ सूर के रूप बाग के दाडिम कुन्द विकच अरविन्द।
कदली चम्पक श्रीफल मृगशिशु खजन शुक पिक हस मिलिन्द।
काले नागो मे मयूर का बन्धुभाव सुख सहज अपार

—(निराला)

कमल पर जो चारु खजन थे प्रथम
पख फडकाना नही थे जानते
चपल चोखी चोट कर अब पख की
ये विकल करने लगे हैं भ्रमर को —(पन्त)

महान्देवी म भी सान्ध्यप्रियता ही अधिक है—सिन्धु का उच्छवास धन तडित तम का विकल मन मैं सरित विकल मैं उर्मि विरल मोम सी साधें अगरुधूम-सी साँस सुमन म सकेत लिपि चचल विहग स्वर ग्राम तरल मोती से नयन भरे पारद से अनबीध मोती साँस इन्हे बिन तार पिरोती विद्युत के चरण धूप सा तन दीप सी मैं नीलम की निस्सीम पटी पर तारा के बिखरे सित अक्षर किरणा की अजन रेखा तम कारा बन्दी सान्ध्य रगा सी चितवन

पाषाण चुराए हैं, लहरों से स्पन्दन, तारकों से चित्र उज्जवल, हाट किरणों की, विद्युत-प्यास, चन्दन सी ममता, नभ मेरा सपना स्वर्णरजत, हीरक जल, शून्यताभर तरल मोती से मधुर दीप आदि।

परवर्ती छायावाद मे यह अलकृति कम हुई है क्योकि अत्यधिक अलकृति के बाद अभिधावादी शैली की ओर कवि उन्मुख हो रहे थे, बच्चन, नरेन्द्र दिनकर आदि मे सरल उपमाएँ मिलती है और वाच्यार्थ मूलकता बढने लगती है।

सौन्दर्य का आधार सादृश्य है। इस 'सत्य' की उपेक्षा आगे चलकर नई कविता मे हुई, जिसमे किंचित्, सादृश्य' के आधार पर उपमान विधान होने लगा।

भाषा—छायावाद मे व्यावहारिक भाषा का बहिष्कार मिलता है, जो द्विवेदीयुग की विशेषता थी। छायावाद के पूर्व इस व्यावहारिक भाषा को काव्य मे प्रयुक्त होते देखकर लोग खीझते थे। यह भी कहा जाता था कि खडी बोली मे सुकुमार और सूक्ष्म भावनाओ की व्यजना-शक्ति का अभाव है। छायावाद ने इस आरोप को असत्य सिद्ध करने के लिए ललित भाषा को 'अति' की सीमा तक पहुँचा दिया। शब्दशिल्प के नूतन चमत्कारो से छायावाद ओतप्रोत है। असुन्दर, कठोर और अशोभन शब्दावली का छायावाद ने बहिष्कार किया। इससे काव्य भाषा 'समर्थ' अधिक हुई किन्तु उसकी 'सहजता' कम हो गई, काव्य का स्तर जन साधारण से एकदम ऊँचा उठ गया। इस कमी को स्वय छायावादियो ने महसूस किया—भाषा के साथ केवल सौन्दर्यमूलक दृष्टि की अधिकता के विरुद्ध भी प्रतिक्रिया हुई अत 'कुकुरमुत्ता' जैसे काव्य लिखे गए—किन्तु 'जुही की कली' और 'कुकुरमुत्ता' मे काव्य की दृष्टि से कौन उत्कृष्ट रचना है ? निश्चित रूप से 'जुही की कली'। इसी प्रकार युगान्त, युगवाणी और ग्राम्या से पन्त जी की 'पल्लव' और 'गुजन' की रचनाएँ काव्य की दृष्टि से श्रेष्ठ हैं। क्योकि परवर्ती काव्य मे चित्रण सश्लिष्ट नही हो पाए और सिद्धान्तो की घोषणाएँ अधिक होने लगी। ग्राम्या अपेक्षाकृत अधिक उत्कृष्ट रचना है क्योकि उसमे कवि की सौन्दर्यमूलक दृष्टि विद्यमान है। भाषा मे व्यावहारिकता और सरलता के आन्दोलन ने काव्य को सहज बनाया परन्तु छायावादी काव्य भाषा का "वैभव" और "लावण्य" खडी बोली मे पुन नही आ सका। दुरावस्था मे हमे यह वैभव खटकता है, काव्य को जनप्रिय बनाने की भी हमे चिन्ता है किन्तु दुरावस्था दूर होते ही 'छायावाद' के शब्द-कौशल

और लालित्य की माग पुन बढगी उसी प्रकार जिस प्रकार हमे कालिदास और भवभूति आज प्रिय लगते हैं। छायावादोत्तर काव्य के प्रति रुचि जागृत करने के लिए छायावाद की भाषा को कोसने के स्थान पर यह सोचना अधिक श्रेयस्कर होगा कि अत छायावाद इतना अधिक क्या आकर्षित करता हैं ? उसकी भाषा मे आखिर कौन सा-आकर्षण है ? हम आज की आवश्यकताओ का अनुभव कर यह एक बात हुई किन्तु छायावाद मे जिस सुरुचि शालीनता और भव्यता का विधान काव्य भाषा मे किया गया वह एक उपलब्धि है। उसकी निन्दा न कर उसकी असामयिकता पर बल देना अधिक श्रेयस्कर होगा। आज हम अलकृति नही चाहते भाषा के सहज रूप को चाहते हैं परन्तु यह कौन कह सकता है कि नीरस अललित पदावली से ऊबकर कल हम पुन ललित पदावली को पसन्द न करने लगेगे रुचि के इतिहास म पुनरावृत्ति प्राय पाई जाती है।

भाषा और सगीत—छायावाद की भाषा सगीतात्मक है। सभी जानते हैं कि छायावाद ने छन्दो के क्षेत्र मे क्रान्ति उपस्थित की थी किन्तु उसने लय को कभी नही छोडा। निराला ने वैदिक छन्दो के मुक्त नाद को अपनाया और मात्राओ के निश्चित जड बन्धन को तोड फका। पन्तजी ने गेय गीत और कविताएँ लिखी। पन्तजी के अनुसार भाषा का प्राण राग है। राग ही के पखो की अबाध उन्मुक्त उड़ान म लयमान होकर कविता सान्त को अनन्त से मिलती है। राग ध्वनि-लोक निवासी शब्दो के हृदय मे परस्पर स्नेह तथा ममता का सम्बन्ध स्थापित करता है। ससार के पृथक पृथक पदार्थ पृथक-पृथक ध्वनियो के चित्र मात्र हैं। समस्त ब्रह्माण्ड के रोओ म व्याप्त यही राग उसकी शिरोपशिराओ म प्रधावित हो अनेकता म एकता का सचार करता यही विश्ववीणा के अगणित तारो से जीवन की अँगुलियो के कोमल कठोर घात प्रतिघातो लघुगुरु सम्पर्कों ऊँच-नीच प्रहारो से अनन्त झकारो असख्य स्वरो म फूट कर हमारे चारो ओर आनन्दाकाश के स्वरूप म व्याप्त हो जाता यही ससार के मान्व समुद्र म अनेकानेक इच्छाओ आकाक्षाओ भावनाओ कल्पनाओ की तरगो म प्रतिफलित हो सौदर्य के सौ सौ स्वरूपो म अभिव्यक्ति पाता है (पल्लव की भूमिका)।

पन्तजी ने यह भी बताया है कि राग द्वारा ही हम शब्दो की आत्मा तक पहुँचते हैं। राग द्वारा ही व्याकरण की जडता पर विजय पाई जाती है। बिखरे हुए व्यावहारिक प्रयोगो म सौदर्यहीन शब्द राग द्वारा ही एक

प्रसाद जी ने भी प्रलय की छाया पेशोला की प्रतिध्वनि आदि रचनाएँ इसी आधार पर लिखा। इस छन्द मे धारा प्रवाह का सौदय है। हर हर करती हुई बिना रुके हुए जैसे नमदा नद बह रहा हो। किन्तु पन्त जी के अनुसार यदि कवित्त छन्द को तोड कर एक एक पक्ति मे दो दो पक्तिया कर दी जाय तो एक सुदर मात्रिक छन्द बन जाएगा और राग का जो कही निश्चित गति धारण करता हुआ चलता है विधान हो जाएगा—

कूलन म केलिन कछारन मे कुजन मे—
क्यारिन मे कलित कलीन किलकन्त है।

सुकूलन मे केलिन मे (और)
कछारन कुजन म (सब ठौर)
कलित क्यारिन मे (कल) किलकन्त
बनन म बगरयो (विपुल) बसन्त।

इसी छन्द म पन्त जी नाद की रक्षा सम्भव मानते हैं क्योकि हिन्दी क असमासप्रधान शब्द इसम परस्पर मिलकर नृत्य करते हुए चलत हैं और प्रत्यक पक्ति के अन्त मे रुक कर पुन लौट पडते हैं अत गति निश्चित हो जाती है आदि और अवसान निश्चित हुए बिना सगीत बिखरा हुआ रहता है। पन्त जी क अनुसार हिन्दी का राग स्वर प्रधान है जबकि कवित्त म व्यजन वर्णों की प्रधानता हो जाती है। उसम स्वर और मात्राओ के विकास के लिए स्थान नही है।

साराश यह कि निराला पन्त प्रसाद और महादेवी तथा परवर्ती छायावादी कवियो ने सवत्र अपने अपने ढग पर नाद सौदय और सगीत का ध्यान रखा है। वे जानते थे कि भावजगत् म जो काय कल्पना करती है वही काय शब्दजगत् म राग करता है सगीत के बिना भाषा म शक्ति स्फूर्ति और आकपक गतियाँ उत्पन्न नही होती। पन्त जी ने तो तुका तत्र का समथन किया है—तुक राग का हृदय है जहा उसके प्राणा का स्पन्दन विशेष रूप स सुनाई पडता है राग की समस्त छोटी-बडी नाडियाँ मानो अन्त्यानुप्रास के नाभी चक्र म केन्द्रित रहती जहाँ स नवीन बल तथा शुद्ध रक्त ग्रहण कर छन्द क शरीर म स्फूर्ति सचार करती रहती हैं। *जो स्थान ताल म सम का है वही स्थान छन्द म तुक का है।* वाक्य के प्राण शब्द विशेष पर अवलम्बित हो जाते हैं। अन्त्यानुप्रास वाला शब्द राग की आवृत्ति म सशक्त होकर हमारा ध्यान आकर्षित करता है। फिर भी पन्त जी न द्विवेदीयुगीन

'तुक वदिता के स्थान पर रोना छन्द को अधिक अपनाया जिसकी नीरसता को भग करने के लिए वे कहीं-कहीं पक्तियो को ताडने चलते हैं अत वह एक नया छन्द सा प्रतीत होता है—रोला छन्द म शब्दा के कलरव और नय की नाना भगिमाओ को उत्पन्न करके पत जी ने एक नया सगीत उत्पन्न कर दिया है—'परिवत्तन' मे प्रयुक्त स्वतत्र छन्द मे भी पत जी ने सगीत का ध्यान रखा है। मात्रिक छन्दा मे मदगामी क्षिप्रगामी मध्यगामी आदि अनेक प्रकार की पक्तिया का प्रयोग किया गया हे पर सवत्र राग की रक्षा का प्रयत्न है।

पत जी खेंच ऐंचीला भ्रू सुर चाप तथा बादल म प्रयुक्त छद मे तथा निराला जी नय पर आधारित मुक्त छद मे, अधिक सफल हुए हैं। प्रसाद जी का आसू छन्द तो प्रसिद्ध ही है कामायनी मे छदो का वैविध्य है महादेवी न एक ही गीत को सजाया सवारा है सीमित क्षत्र म ही परिष्कार उनकी विशेषता है।

पन्त जी के मात्रिक छन्दो निराला के मुक्त छदो तथा अन्य छायावादियो के गीतो की 'गेयता' ने सभी को आकर्षित किया क्योकि सगीत से काव्य सुन्दरतर बनता है। काव्य एक मिश्रित कला है जिस प्रकार छायावाद मे चित्रण कला का भव्यतम रूप मिलता है उसी प्रकार उसम सगीत का आनन्द भी सुरभित है—शब्द स्पर्श रूप रस और गध के चित्रण और इनका सगीतात्मक रूप प्रियतर बन गया है।

वणमत्री —स्थापत्य कला का प्रयोग छायावाद के वणविधान म दिखाई पड़ता है। पन्त जी के अनुप्रास विधान' निराला जी की दीघसमासान्त पदावली प्रसाद जी की अलकृत पदावली और महादेवी की सचिक्कण पदावली मे स्थापत्यकला के उच्च प्रयोग मिलते हैं। पत्थर के टुकडो को काट छाट कर उन्हें क्रम से सजा कर रखने मे जो कला है वह छायावाद से कोई भी सीख सकता है। रीतिकाल मे यह कला चरम सीमा पर पहुँच चुकी थी किन्तु वहाँ केवल पच्चकारी ही रह गई अनुभूति की नवीनता और वण्य विषय पिष्टपेषित रहने से पुनरावृत्ति के कारण रीतिकालीन काव्य म प्रयुक्त पच्चीकारी से लोग ऊब उठ किन्तु छायावाद ने रीतिकाल के दुगुणा का दूर कर अनुप्रासप्रियता को अवश्य अपनाया यह स्मरणीय है। अनुप्रासं के बिना व्यावहारिक भाषा की रुक्षता नष्ट नहीं होती—

वाले! तरे बाल जाल मे कैसे उलझा लू लोचन ?
तरे भ्रूभगो स कसे बिधवा दू निज मृग सा मन ?

सम्पृक्त कला —उक्त पंक्तियों से अनुप्रास निकाल दीजिए आकर्षण बहुत कम रह जाएगा। अतः छायावादी कवि वर्ण मैत्री का आवश्यक ध्यान रखते हैं। बड़े-बड़े पत्थरों को ढांके लगा कर आतंककारी दुर्ग की दीवार की तरह भयंकर भाव के वर्णनों में छायावादियों ने भीषण और बड़े-बड़े शब्दों का ही प्रयोग किया है जैसे कामायनी के प्रलय वर्णन में पन्त जी के परिवर्तन में तथा निराला के बादल राग में। जैसे स्थापत्यकला निपुण कलाकार यह जानता है कि किस प्रकार के पत्थर का कहाँ उपयोग होना चाहिए उसी प्रकार छायावादी कवि को शब्द ज्ञान तथा शब्दों का परस्पर सम्बन्ध भी ज्ञात रहता है। अनुभूति की ऊष्मा कल्पना की उड़ान और शब्द शिल्प के साथ-साथ दृष्टि की विराटता के कारण ही छायावाद द्विवेदीयुगीन काव्य की नींव पर ताजमहल का निर्माण करने में सफल हुआ है। ताजमहल को देखकर लगता है जैसे वह घनीभूत संगीत (Frozen Music) है। ताज पर समग्र दृष्टि डालते ही पत्थर के टुकड़ों से प्रमानुभूति भास्वरित होने लगती है। अंग में लावण्य की तरह अनुभूत साफ झलकती है इसी तरह छायावादी काव्य में संगीत चित्रकला मूर्तिकला स्थापत्य और काव्य का एक साथ आनन्द आता है पाठक की कल्पना में शिल्प और सहृदयता के बल पर पल्लव, गुंजन राम की शक्तिपूजा तरंगों के प्रति जुही की कली आंसू कामायनी दीपशिखा आदि रचनाएँ लघु और विराट ताजमहलों को रचने में सफल होती हैं। सम्पूर्ण ललित कलाओं के कौशल को एक साथ अपनाने से काव्य सुन्दर बनता है इसका प्रबल प्रमाण छायावाद है। कुछ कला के पास बैठा हुआ प्रयोगवादी कवि वक्र को प्रतीक मान कर जिस सूक्ष्म यथार्थ को ही सर्वस्व समझ बैठा है और उसी में मग्न है उसमें भी कुछ आकर्षण अवश्य होगा किन्तु यदि वक्र पर बैठे हुए गर्वीले सांड की तरह यदि वह ताजमहल की निन्दा करता है तो दर्शक उसे असंतुलित समझ कर मुस्कराते हुए आगे बढ़ जाएँगे। ताजमहल के भी निन्दक कम नहीं हैं परन्तु उनकी कौन परवाह करता है ?

यह सही है कि केवल विन्यास में सौंदर्य नहीं है खिड़राव में भी सौन्दर्य है। ताजमहल सुन्दर है किन्तु किसी भग्नावशेष उजाड़ जगह में भी एक आकर्षण होता है। किन्तु यह कहना कि ताजमहल में सौन्दर्य नहीं है और उसका सौन्दर्य सारी मानवीय जनता को आकर्षित नहीं कर सकेगा यह मिथ्या सिद्धांत है क्योंकि अनुभव इसके विरुद्ध है।

छायावाद की कला जनसाधारण में उच्चतर कान्ति की हो गई

इस समाधिगुण कहा करते थे। नेत्रों के निमीलन उन्मीलन का आरोप कमलों पर कर देने से कमल आँख खोलते और बन्द करते प्रतीत होने लगते हैं। इससे कमल जीवन्त रूप में प्रतीत होते हैं। छायावाद में इस उपचार की ही अधिकता है तो उसकी सौंदर्यमयी दृष्टि के अनुकूल जीवंत माध्यम का आविष्कार हो सका। प्राचीन काल से आज तक बिना इस उपचार के श्रेष्ठ काव्य की सृष्टि नहीं हो सकी। छायावाद भी इस तथ्य को प्रमाणित करता है।

छायावादयुग में द्विवेदीयुगीन प्रवृत्तियाँ—आचार्य शुक्ल ने लिखा है कि छायावाद लेकर चलने वाली कविताओं के साथ-साथ और दूसरी धारा की कविताएं भी विकसित होती हुई चल रही हैं। द्विवेदी काल में प्रवर्तित विविध वस्तु भूमियों पर प्रसन्न प्रवाह के साथ चलने वाली काव्यधारा सब श्री मैथिलीशरण गुप्त ठाकुर गोपालशरण सिंह अनूप शर्मा श्यामनारायण पाडेय पुरोहित प्रतापनरायण तुलसीराम शर्मा दिनेश इत्यादि अनेक कवियों की वाणी के प्रसाद से विविध प्रसंग आख्यान और विषय लेकर निखरती तथा प्रौढ़ और प्रगल्भ होती चली चल रही है। उसकी अभिव्यंजना प्रणाली में अब अच्छी सरसता और सजीवता तथा अपेक्षित वक्रता का भी विकास होता चल रहा है।[1]

शुक्लजी ने इसी परम्परा के कवियों में रामनरेश त्रिपाठी की रचनाओं को भी प्रतिष्ठित किया है। सियारामशरण गुप्त सुभद्राकुमारी चौहान गुरुभक्तसिंह उदयशंकर भट्ट आदि भी इसी परम्परा में आते हैं। ये कवि न तो केवल नवीनता के प्रदर्शन के लिए पुराने छंदों का तिरस्कार करते हैं न उन्हीं में एक बारगी बंधकर चलते है। वे एक छोटे से घेरे में इनके प्रदर्शन मात्र से संतुष्ट नहीं होते। उनकी कल्पना इस व्यक्त जगत और जीवन की अनंत वीथियों में हृदय को साथ लेकर विचरने के लिए आकुल दिखाई पड़ती है।

इन कवियों के अतिरिक्त माखन लाल चतुर्वेदी का नाम भी लिया जा सकता है परन्तु माखनलाल जी वस्तुत द्विवेदीयुग और छायावाद के संधि स्थल के कवि हैं। राष्ट्रीय चेतना और वैयक्तिक कोमल भावनाओं के घात प्रतिघात और सामञ्जस्य की मनोहरतम अभिव्यक्ति माखनलाल चतुर्वेदी की रचनाओं में दिखाई पड़ती है। उनमें एक ओर तो चाह नहीं मैं सुरबाला के गहना मैं गूँथा जाऊँ जैसी स्पष्ट पंक्तियाँ हैं जिनमें अभिधावाली शैली का ही

१ हिन्दी साहित्य का इतिहास-पृष्ठ ६२८।

प्रयोग है और राष्ट्रीय उत्तजक चेतना को ही वाणी मिली है दूसरी ओर कैदी ओर कोकिला जैसी रचनाओ मसधष के लिए समर्पित चित्तवृत्ति के भीतरी स्तरो पर तडपती कोमल सवेदनाओ को भी वाणी मिली है—

निज मधुराई को कारागह पर छाने
जी के घावो पर तरलामृत बरसाने।
या वायुविटप वल्लरी चीर हठ ठान।
दीवार चीर कर अपना स्वर अजमाने
या लेने आयी इन आखो का पानी
नभ के ये दीप बुझाने की है ठानी ?

लाक्षणिक शैली न अपनाकर भी चतुर्वेदी जी ने निजता को काव्य मे प्रतिष्ठित किया है जिसका द्विवेदीयुग मे अभाव सा दिखाई पडता था। वस्तु के मम मे घुसकर अतरोन्घाटन इस कवि की विशषता है। मील का पत्थर कलिका से आदि रचनाओ मे यही विशेषता मिलती है। वार्तालापात्मक' शैली म तो चतुर्वेदी श्रष्ठ कवि है—

क्या मुसकाती ! बोलो आली !
जाडा है रात अँधेरी है
सन्नाटा है जग सोया है
फिर यह काँटो की टहनी है
कैसे मुसका उठठी आली ?
क्या तुम्हे रात मे दीख रहा ?

सियारामशरण गुप्त भावुकतावादी कवि हैं मनुष्य की भावनाओ का विह्वल होकर वणन करने वाले कवि। अत उनमे कुशल कवि की विदग्धता कम किन्तु सहृदय कवि की रसज्ञता अवश्य मिलती है। विदग्ध और कल्पनावादी कवियो के बीच सियाराम' जी की सरल और भावविभोर रचनाएँ एक अलग ही आनन्द देती हैं। दलित वग के प्रति सियाराम जी के वैष्णव हृदय मे बडी सहानुभूति है—

काम खोजने जा जब निशि को लौटा यह इस घर मे।
रुग्णा पाली पहुँच चुकी थी तब तक लोकातर म !
रोया नही नहा वह विलपा आखें भी थी रुखी
अच्छा हुआ बची वह मर कर अब न रहेगी भूखी।

जीवित थी तब दे न सका कुछ लिया एक वस अनशन।
अब चिता पर भी न दे सका उसे यथोचित इधन।

सियारामशरण वस्तुस्थिति के चित्रण म कही भी विदग्धता नही लाते न वचित्र्य अपनाते है भावो को द्विवेदीयुगीन कवियो की तरह साध साथ कहते है। एसी रचनाओ म कवि की भावनाओ की सच्चाई व ईमानदारी और उसकी मानवतावादी दृष्टि अधिक प्रभावित करती है। गीतियो म भी आख्यानात्मकता भरना उनकी विशेषता है।

गोपालशरणसिंह के माधवी मानवी सचिता ज्योतिष्मती कादम्बिनी आदि कई सग्रह है। शुक्ल जी ने इनकी रचनाओ मे व्यक्त जीवन की अनेक दशाओ की प्रशसा की है। ज्योतिष्मती पर छायावाद का प्रभाव दिखाई पडता है। ठाकुर साहब के खडी बोली म कवित्त बहुत पसद किए गए। कवित्तो का परिष्कृत रूप देखते ही बनता है। काश [1] इस प्रवृत्ति का और भी अधिक विकास हुआ होता— मैंने कभी सोचा वह मधुर मधुर मे है देखता इसी से उसे चाव से चकोर है वैसा अचरज है न मैंने जान पाया कभी मेरे चित्त म ही छिपा मेरा चितचोर है जसे कवित्त अत्यधिक सफल हुए हैं— प्रम का बड़ा ही उदात्त रूप इनमे व्यक्त हुआ है जो गूढता से रहित है—

बन रही तरल तरग अग अग अग म है—
प्रम की तरगिणी तरगित है तन म।
मन म छिपाये छिपती है अभिलाषा नहो
झलक रही है आशा रुचिर वदन म।
ज्यो ज्यो देखने का हग होते हैं अधीर और
ज्यो ज्यो अब हो रहा विलम्ब आगमन म।
जान पडता है उन्हे लाने को यहाँ तुरत—
आतुर है प्राण उड जाने को पवन म।

जगन्नाथप्रसाद ने हितैषी इसी प्रकार के अनेक सुदर कवित्त लिखे हैं उनके गवैए भी सफल हुए हैं। हितैषी जी ने पुराने छन्दो म प्रकृति के प्रति नए दृष्टिकोण का अभिव्यक्ति और अलकृत शैली म व्यक्त किया है साफ लगता है कि ये कवि नए कवि हैं इनम आधुनिकता अवश्य है—

नीरवाला शय्या पर निद्रित नाहारिका थी—
झरने लगे थे वन वन गान करने।

उलझे उषा के केश अपने करो से जब
अलग अलग लगा अशमान करने।
अम्बर खसित होके जब आस अम्बुधि मे
सुमनो की सुषमा लगी थी स्नान करने।
नाशक वियोग रोग अनुपान आनन्द से
तब योगवारुणी लगा म पान करन।

महादेवी की तरह हितैषी ने छायावादी सौन्दर्यमूलक दृष्टि और मानवीय दुदशा के प्रति आकर्षित हती हुई चित्तवृत्ति के द्वन्द्व का भी चित्रण किया है— ऊपर प्रसार तारको क हास्य का है किन्तु नीचे पृथ्वी के हाहाकार दुखियो का है। अत एक ओर तो हितैषी ने महि से मृत कोमल कामिनिया कलिका बन के फिर से निकली जसी सौंदयवादी रचनाए प्रस्तुत की तो दूसरी ओर सुधारात्मक स्वर भी उनमे पूरा उभरता हुआ दिखाई पडता है। उनमे सवत्र अभिधावादी शैली का प्रयोग मिलता है।

अनूप शर्मा व्रजभाषा के ओजस्वी कवि के रूप मे प्रसिद्ध है। खडी बोली म भी उन्होने दिलचस्प रचना की है द्विवेदीयुगीन शैली मे। कहीं कहीं लगता है कि जसे हरिऔध बोल रहे हों—

चन्द्रोज्ज्वल सुभग सुन्दर कान्तिशाली
कैसी प्रशस्त छवि सयुक्त निवधू है।
शोभामयी वसुमती कर यामिनी म
ज्योत्स्ना लसी अमित सुन्दर शोभनीया।

यह हरिऔध शैली सिद्धाथ वद्धमान म प्रयुक्त हुई है। हरिऔध ने शिखरिणी का प्रयोग बहुत कम किया है अनूप जी न इसी कमी को भी पूरा कर दिया है—

तदा गोपी सोई सिसक कर दुस्वप्न दुख से।
पुन सोते सोते समय अब आया सुन पडा।
प्रिया के सोने ही विगत कर चिता हृदय की।
गये फूल तारे रजनिकर-सयुक्त नभ मे।

परन्तु हरिऔध जसी उद्विग्न भावुकता अनूप जी मे कम मिलती है कहा कहीं ही भावुकता कवि पर प्रभाव डालती है—

तमिस्र हे मित्र कमल दल यों बन्द कर दो।
कि गोपा के दोनो नयन पुट भी आवृत रहे।

अहो ! ज्योत्स्ने वामा अधर अब सपुष्ट कर दो
सुनाई दें हाहा —वचन उसके जो न मुझको ।

गुरभक्तसिंह का प्रसिद्ध काव्य नूरजहा अभिधावादी शैली मे अत्यधिक जनप्रिय काव्य है। छायावादी नक्काशी सबकी समझ मे नही आती न उसके सूक्ष्म सकेत ही सब समझ पाते हैं किन्तु नूरजहा की भाषा की अदाएँ सबको प्रिय लगी। सरलता हिन्दू उर्दू भाषा का अपूर्व सामजस्य और कवि की चित्रण शक्ति से सभी प्रभावित हुए। गुरुभक्तसिंह मे उचित मात्रा मे विदग्धता का भी विधान हुआ है लक्षणाओ के प्रयोग मे भी कवि निपुण है। व्यावहारिक भाषा से सुन्दर मुहावरे चुन चुन कर प्रयोग करने म गुरुभक्तसिंह अन्यतम कवि हैं—

मलियानल ! सदेश प्रम का मेरा उस तक पहुँचा दो।
उसके अति कठोर मानस को रस दे देकर पिघला दो।
अगर उसे सोते पाना तो खटपट नही जगाना।
जाकर पहले छिप उपवन मे कलियो को चिटकाना।
फिर भँवरा को भेज कमलमुख पर गुणगान कराना।
तितली दल पखो से मलता रहे किरण के छीटे।
पत्रो को समझाते रहना कि ताली मत पीटें।

मलयानिल शीर्षक से रचित कविता की इस भाषा मे खडी बोली की अपनी सुगधि है। अत्यधिक सस्कृतमय रूप मे भाषा का अपना आनन्द लुप्त हो जाता है और सस्कृत भाषा अपने आनन्द और सौन्दर्य से खडी बोली के स्वरूप और सुगधि को दबा लेती है खेद है कि इस तथ्य की ओर कविगण बहुत कम ध्यान देते हैं।

सुभद्राकुमारी चौहान ने भी द्विवेदीयुगीन अभिधावादी शैली मे ही लिखा है किन्तु विषय के गौरव भाव की ओजस्विता और लोक-काव्य के स्पश के कारण उनकी झाँसी की रानी बहुत प्रसिद्ध हुई। सुभद्रा जी की भाषा म भी खडी बोली न अपनी सुगधि कायम रखी है। उनकी वाणी ओज म फडकती हुई और कोमल भावनाओ की अभिव्यक्ति म मसृण हो जाती है—

तुम कहते हो मुझको इसका रोना नही सुहाता है।
मैं कहती हू इस रोने से अनुपम सुख छा जाता है।
सच कहती हूँ इस रोने से छवि को जरा निहारोगे।
बडी बडी आँसू की बूँदो पर मुक्तावलि वारोगे।

श्यामनारायण पाडय खडी बोली के 'भूषण' माने जाते है। ध्वन्यार्थ-मूलक शब्दो से युद्ध के वातावरण का सर्जन कर देना उनकी विशेषता है। सम्पूर्ण चित्रण प्रस्तुत करते हुए चलना उनकी प्रवृत्ति है। नर्मदा-नद जैसा शैली का प्रवाह उनका गुण है। क्षितिज के उस पार क्या है की धुन मे मग्न कवियो के बीच पाडय जी की वाणी जीवन के उत्साह क्षणो को व्यक्त करती हुई अपना विशिष्ट स्थान बनाए हुए है। कवि सम्मेलनो म हाल की ईट ईट को हिला देने वाली ललकार पाडय जी म ही मिलती है—

हर एकलिंग हर एकलिंग बोला हर हर अम्बर अनन्त।
हिल गया अचल भर गया तुरत हरहरनिनाद से दिगदिगन्त
घनघोर घटा के बीच चमक तड-तड नभ पर तडिता तडकी।
झनझन असि की झनकार इधर कायर दल की छाती धडकी।
गज गिरा मरा पिलवान गिरा हय कटकर गिरा निशान गिरा।
कोई लडता उत्तान गिरा कोई लडकर बलवान गिरा।

श्यामनारायण पाडय, आनन्द मिश्र दिनकर और नवीन जी ने खडी बोली के कोमलकोमल युग म उग्र भावनाओ का वणन करके काव्य के वैविध्य को सुरक्षित रखा है। यह दुरूह न होने के कारण और महाभारत, आल्हा' पढकर उत्साह ग्रहण करने वाली सामान्य जनता मे ही नही, शिक्षित जनता म भी प्रचलित हुआ। इस काव्य से विदेशी साम्राज्यवाद से लडने मे भी मदद मिली।

छायावाद-युग मे छायावादी चेतना और शैली से प्रभावित मैथिलीशरण गुप्त की रचनाओ का सर्वाधिक महत्त्व है। १९२५ ई० मे गुप्तजी की पचवटी प्रकाशित हुई। इसके प्रारम्भिक प्रकृति चित्रण पर छायावाद का प्रभाव दिखाई पडता है। किन्तु गुप्तजी वैविध्यप्रमी कवि हैं अत स्वदेशी सगीत हिन्दू शक्ति, सैरध्री वनवैभव वकसहार गुरुकुल जैसी रचनाएँ भी छायावाद-युग मे वह लिखते रहे। झकार (सन् १९२९ ई०) मे प्रकाशित हुई। इसमे स्पष्टत कवि ने छायावादी चेतना—अलौकिक से प्रेम का वणन किया है किन्तु इसम कवि की सगुणप्रियता तथा मर्यादावाद और दैन्य बाधक हुआ है। शैली छायावाद से प्रभावित होन पर भी स्पष्टत द्विवेदीयुगीन अभिधावाद को नही छोड पाइ है। अन्य गुप्तजी की महत्त्वपूण कृतियो मे केवल साकेत और 'यशोधरा' को ही लिया जा सकता है। द्वापर जयभारत, और विष्णुप्रिया अन्य उल्लेखनीय कृतियाँ हैं।

साकेत और यशोधरा क्रमशः १६३१ और १६३२ ई० की रचनाएँ हैं छायावाद के पूर्ण वैभव का यह युग था। दोनों कृतियाँ "उपेक्षिता नारियों के उद्धार के लिए लिखी गई है। छायावाद नारी की महिमा का गायन था, जो सामंतवादी उस दृष्टि का जो नारी को भोग्या, दासी आदि समझती थी, विरोधी था। छायावाद नारी का जीवनसाथी के रूप म स्वीकार करता है और प्रेम तथा जीवन के अन्य प त्रा म पूर्ण स्वतन्त्रता का प्रचारक है बल्कि प्रसाद जी तो नारी को बवर मनुष्य का सुधारक मानते थे। प्रकृति पर विजयी और सतत सघर्षशील पुरुष को प्रेम करुणा और त्याग से वश मे करके उस मानवीय गुणा की शिक्षा देने वाली नारी प्रसाद जी के यहाँ 'श्रद्धा' के रूप मे प्रतिष्ठित है जो इस जीवन मे ही नही परलोक के लिए भी मनुष्य को सिद्धि दे सकती है।

गुप्तजी वैष्णव कवि हैं जिसम दलित वग के प्रति प्रारम्भ से ही सहानुभूति रही है। पराई पीर" को समझने वाले व्यक्ति को ही 'वैष्णव' कहा गया है। युग की प्रवृति देखकर गुप्तजी ने भी अपनी 'वैष्णव" सहानुभूति 'उर्मिला 'यशोधरा और 'विष्णुप्रिया" को दी है किन्तु यह स्मरणीय है कि यह सहानुभूति और नारी का आत्मगौरव किसी समाजशास्त्रीय सिद्धात पर आधारित नही है जिसके अनुसार नारी-वर्ग की उन्नति के लिए उन्हे 'आर्थिक-शिक्षा सम्बन्धी, सामाजिक काय-चयन सम्बन्धी सभी अधिकारो" के देने की प्रवृत्ति है। गुप्तजी प्राचीन हिन्दू पारिवारिक व्यवस्था को ही श्रेष्ठ मानते हैं, और सामती सयुक्त-परिवार-व्यवस्था के हामी हैं। वे चाहते केवल यह है कि स्त्रियो के व्यक्तित्व का आदर हो उनमे स्वाभिमान का विकास हो किन्तु यह कैसे होगा? क्या केवल मौखिक सहानुभूति से? इन प्रश्नो के उत्तरो के चक्र मे न पडकर गुप्तजी केवल पुरुष के मन म सहानुभूति—जागरण को ही पर्याप्त मानते है अत नारी के प्रति छायावादी दृष्टिकोण स्वच्छदतावादी था, जबकि गुप्तजी का दृष्टिकोण वैष्णवीय' दृष्टिकोण है। स्वच्छदतावाद, पूँजीवादी व्यवस्था के अनुसार नारी को सामती बन्धनो से मुक्त करना चाहता था, जब कि गुप्तजी सामती बधनो के मूलाधार—पुरुष के आर्थिक प्रभुत्व की कहीं आलोचना नहीं करते। उनकी सदिच्छा है कि नारी पुरुष के समान सम्मान पाए परन्तु इस सदिच्छा को कार्यरूप म परिणित करने के लिए 'सामती' व्यवस्था म—आमूलचूल परिवर्तन के लिए वह कभी प्रस्तुत नहीं हुए—उनम एक भद्र और उदार व्यक्ति की सदिच्छा मात्र है, सामाजिक क्रान्तिकर्त्ता की वास्तविक दृष्टि नहीं है। तभी यशोधरा और उर्मिला' जैसी नारियाँ पीडा' को

अधिक व्यक्त करती है, आत्मसम्मान प्रकट करती हैं किन्तु कहीं भी यह नहीं सोचती कि अतत अवला जीवन की इस करुण कहानी का अत कैसे होगा ? अथवा नारी कब से और क्यो "अचल मे दूध और आंखो मे पानी" भरकर रोती आई है । गुप्तजी ने सामाजिक क्रान्ति के 'स्वरूप' को समझने का कभी प्रयत्न नहीं किया । यही कारण है कि उनके नारी पात्र अन्त मे सर्वदा अध-समर्पण की ओर उन्मुख हो जाते है । 'द्वापर' की विधृता' ही केवल विद्रोह करती है किन्तु वहाँ भी असतोष अध विद्रोह' है । पाठक के सम्मुख यह स्पष्ट नही होता कि अतत पुरुषो की अहम्मन्यता का कारण क्या है ?

रोग के निदान और वास्तविक औषधि की ओर पाठका का ध्यान न खीचकर गुप्तजी "नारी जीवन के यथार्थ चित्रण पर अधिक बल देते हैं। नारी जीवन की 'पीडा' को पूरी ईमानदारी से उन्होंने व्यक्त किया है और यहाँ गुप्तजी की उपलब्धि प्रशसनीय है। साकेत और यशोधरा' मे कसकते हुए नारी हृदय की मार्मिक चित्रावलियाँ और उक्तियाँ निश्चित रूप से छायावादी युग मे "नारी-जागरण" और "महिला-आन्दोलन" के कवि पर प्रभाव को ध्वनित करती हैं। भारतीय नारी की 'ममता, आत्मयातना, अपमान, और 'आँसुओ' को जितना गुप्त जी समझते हैं, उतना बहुत कम कवि समझते हैं। गुप्तजी की 'नारी' का 'वायवीकरण' नही है जैसा कि छायावाद मे मिलता है। यहाँ धरती पर रहने वाली, पग-पग पर यातना भोगती हुई और 'बर्बर पुरुष के तेज को अपने उदर मे ढोती हुई नारी का वास्तविक रूप अकित है । 'साकेत' और यशोधरा' का मुख्य योगदान समाज के अर्धभाग को अपने अधिकारा के प्रति जागरूक करने मे है।

'साकेत' एक महाकाव्य माना जाने लगा है। उसमे 'राम' का आदर्श चित्रित है और लक्ष्मण भरत आदि का अनुपम त्याग भी अकित है। किन्तु इस पुरानी कथा का विन्यास नया है। 'साकेत' के प्रथम सर्ग मे मर्यादावाद उतना नहीं है। लगता है, कालेज मे शिक्षित युवक अपनी वधू से प्रेमालाप कर रहा है—यह नए युग का प्रभाव है, छायावाद की द्विवेदी युग पर विजय है—

पार्श्व से सौमित्र आ पहुँचे तभी
और बोले—लो, बता दू मैं अभी
मुस्कराकर अमृत बरसाती हुई।
रसिकता मे सुरस सरसाती हुई।

उर्मिला बोली, अजी तुम जग गए।
स्वप्ननिधि से नयन कब से लग गए ?
'मोहिनी ने मन्त्र पढ जब से छुआ"
जागरण रुचिकर तुम्हे जब से हुआ"
'जागरण है स्वप्न से अच्छा नही"
"प्रेम मे कुछ भी बुरा होता नही"

उर्मिला की इस उक्ति मे भी आधुनिकता की झलक है—

दास बनने का बहाना किस लिए
क्या मुझे दासी कहाना, इसलिए ?

सन् ३० तक इतना मनोविज्ञान गुप्तजी भी समझ गए थे कि कोई व्यक्ति पूर्णत बुरा नही होता। उनकी 'वैष्णवता' ने भी पतित पावनता की ओर उन्हे उन्मुख किया अत कैकेयी के चरित्र के दोषो को दूर किया गया।

'साकेत' मे कथा की विशृंखलता, सर्गों के विस्तार मे सतुलन का अभाव आदि दोप नही, आधुनिकता के प्रतीक हैं। "फ्लैशबैक" द्वारा कथा को शीघ्र दुहरा देना और अभीप्सित अश का विस्तार से वर्णन करने की प्रवृत्ति ही 'साकेत' मे है। अत नवम् सर्ग मे विस्तृत विरह-वर्णन और छायावादी शैली का प्रयोग, दशम सर्ग मे उर्मिला द्वारा पूर्व कथा कहने के लिए "फ्लैशबैक" का प्रयोग तथा द्वादश सर्ग मे सारी जनता को एक साथ 'दिवास्वप्न' या "दिव्यदृष्टि" द्वारा लका की घटनाओ का प्रदर्शन आदि प्रवृत्तियाँ यह बताती हैं कि साकेत नए युग का काव्य है। अत भी लक्ष्मण-उर्मिला मिलन से होता है। 'आधुनिका' की तरह ही उर्मिला अपने विगत यौवन पर पश्चाताप करती हुई दिखाई पडती है।

'साकेत' मे द्विवेदीयुगीन वर्णनात्मक अभिधावादी शैली का ही प्रयोग है, परन्तु यह साफ झलकता है कि यह नए युग की रचना है। वेदना का स्तवन (वेदने ! तू भी भली बनी), दीप-शलभ के प्रतीक, स्मृति मे 'आलिगन' का वर्णन (मुख लज्जा, उसी छाती मे छिपाई थी), प्रकृति मे प्रिय के सौन्दर्य के दर्शन पर बल (निरख सखी, ये खजन आए, द्वन्यार्थमूलक शब्दों मे 'नदी" का वर्णन (सखि, निरख नदी की धारा), अमूर्त्त-उपमान, साध्यवसाना लक्षणा का प्रयोग (शिशिर, न फिर गिरि वन मे), नए, रूपक (मेरे चपल यौवन वाल) मानवीकरण (श्रुति पुट लेकर पूर्वस्मृतियाँ खड़ी, यहाँ पट खोल) आदि प्रवृत्तियो से 'साकेत' पर छायावाद का प्रभाव स्पष्ट झलकता है।

यशोधरा मे भी गीतिकाव्य पर तथा कई उक्तियो पर छायावाद का प्रभाव दिखलाई पडता है परन्तु गुप्तजी की यह विशेषता है कि वह अपना द्विवेदीयुगीन आख्यानात्मक रूप कभी नही छोडते। उन्हे पढकर साफ लगता है कि कोई पुराना सफल कवि, नए युग मे लिख रहा है। छायावादी कवि सौन्दर्य-वादी अधिक था, जबकि गुप्तजी की प्रतिभा भावुकतावादी है।

गद्यकाव्य :—जब गद्य मे काव्य की भावुकता कल्पना और अलकृति आती है, तो गद्यकाव्य का जन्म होता है। डा० कमलेश के अनुसार "अपने आधुनिक रूप मे गद्यकाव्य हिन्दी की विशेषता है"[1] यानी अन्य भाषाओ मे इतनी मात्रा मे गद्य काव्य का विकास नही हुआ। उक्त लेखक के अनुसार सर्वप्रथम गद्यकाव्य भारतेन्दु के नाटको के 'समर्पणो' मे मिलता है। गोविन्द-नरायण मिश्र, और प्रेमघन मे भी गद्यकाव्य मिलता है। जगमोहनसिंह के 'श्यामस्वप्न' मे गद्यकाव्य के मार्मिक अश है। बालकृष्ण भट्ट का 'चन्द्रोदय' अलकृत गद्य काव्य के रूप मे प्रसिद्ध ही है।

किन्तु सन् १६११ से कमलेश जी एक नए गद्यकाव्य का आरम्भ मानते हैं। प्रसाद जी के 'इन्दु' और बाबू ब्रजनन्दन सहाय के 'सौन्दर्योपासक' मे गद्य-काव्य का अच्छा विकास हुआ। बंगला के चन्द्रशेखर मुखोपाध्याय के 'उद्भ्रान्त' प्रेम मे व्यक्तिगत प्रेम की मार्मिक व्यजना हुई। राजा राधिकारमण प्रसादसिंह की "प्रेम लहरी" (सन् १६१६) मोहनलाल महतो वियोगी के "धुंधले चित्र" (१६३०) और सुधांशु के 'वियोग' मे यही परम्परा चली।

द्रष्टव्य यह है कि छायावाद के प्रारम्भिक चरण मे यह प्रेम-पूर्ण गद्यकाव्य द्विवेदीयुगीन दृष्टि के विरुद्ध छायावाद के विकास मे योग दे रहा था। माखनलाल चतुर्वेदी के सन् १४-१५ के कवित्वमय गद्य खण्डो मे प्रेम के ही उद्गार हैं और यह प्रेम परब्रह्मपरक भी है। रायकृष्णदास ने रवीन्द्र से प्रभावित होकर सन् १६१६ मे 'साधना' गद्यकाव्य मे की प्रस्तुत ही अत इसे "छायावादी गद्यकाव्य की कृति" ही कहा जाना चाहिए। वियोगी हरि की तरगिणी' (१६१६) और चतुर सेन शास्त्री के "अन्तस्तल" (१६२१) मे भी अन्तर्मुखता की प्रवृत्ति ही प्रधान है।" "अन्तस्तल" मे मानसिक वृत्तियो के गद्यचित्र हैं" जो छायावादी प्रवृत्ति थी, सन् १६२६ ई० मे वियोगी हरि का 'अन्तर्नाद' प्रकाशित हुआ, इसमे भी रहस्योन्मुखता स्पष्ट है यद्यपि देश, समाज

---

१. हिन्दी गद्य काव्य-शोध-ग्रन्थ।

की भी चिन्ता यहाँ व्यक्त हुई है। सन् १६२६ मे प्रकाशित रायकृष्णदास के 'छाया पथ' का तो नाम ही छायावादी है और वर्ण्यविषय और शैली भी नवीन है। रामकुमार वर्मा की 'हिमहास' (१६३५) भी ऐसी ही रचना है।

कहना यह है कि छायावाद ने केवल द्विवेदीयुगीन कवियो को ही प्रभावित नहीं किया अपितु गद्यकारो को भी प्रभावित किया और गद्य मे छायावादी-रहस्यवादी चेतना को मुखरित किया गया। दूसरे गद्यकाव्य का विधा की दृष्टि से भी एक महत्त्व है। असलियत यह है कि छायावाद के बाद, प्रयोगवादी कवियो की अनेक रचनाएँ गद्य काव्य मे ही रखी जा सकती हैं, क्योकि किसी भी प्रकार की लय, तुक आदि का प्रयोग जब कवियो को इष्ट नही रहता तब उसे 'पद्य' नही माना जा सकता। डा० कमलेश ने अपनी शोध मे "नई कविता' की गद्यकाव्यात्मक रचनाओ को शामिल नही किया, किन्तु होना ऐसा ही चाहिए था। इससे इस भ्रम का विनाश होता कि 'नई कविता मे जो लिखा जा रहा है, वह सब कविता है" और यह कोई अपमान की बात नही है। 'गद्य' मे बाण और सुबन्धु को "कवि" ही कहा गया है किन्तु यह किसी ने नही लिखा कि 'कादम्बरी' कविता है, उसे 'गद्य' ही कहा गया है, कहना चाहिए। आगे हम देखेंगे कि प्रयोगवाद मे छायावाद-युग मे विकसित यह विधा और भी अधिक विकसित हुई।

चतुर्थ प्रवाह

प्रगतिवाद

हिन्दी काव्य छायावाद युग मे, गद्य और पद्य दोनो क्षेत्रो मे सूक्ष्म, अलकृत और विविध भावनाओ को व्यक्त करने मे प्रौढता प्राप्त कर सका। इसके लिए सारा श्रेय केवल छायावादियो को ही नही दिया जा सकता, क्योकि छायावादयुग मे द्विवेदीयुगीन कवियो ने भी प्रचलित भाषा के विकास मे अद्भुत योग दिया है। अभिधा और लक्षणा-दोनो शब्दशक्तियो का चरमविकास छायावाद-युग की उपलब्धि है। वाच्यार्थ के आधार को न छोडते हुए, 'कला' का कौशल-प्रदर्शन गुप्तबन्धुओं, गुरुभक्तसिंह, गोपालशरणसिंह आदि कवियों की विशेषता है, यह प्रवृत्ति छायावादी सूक्ष्म शैली की प्रतिक्रिया मे बच्चन, अचल, दिनकर, नरेन्द्र आदि मे एक नए रूप मे विकसित हुई। उधर छायावाद ने लक्षणा और लक्षणा पर आधारित व्यजना तथा प्रतीकात्मक भाषा का विकास चरम सीमा पर पहुँचा दिया।

किन्तु छायावाद के उत्तरकाल मे लोग यह अनुभव करने लगे थे कि छायावाद विषयवस्तु की दृष्टि से ही 'असाधारण' नही है, अपितु उसकी शैली भी सहजगम्य नही है। महावीरप्रसाद द्विवेदी का भी मुख्य आरोप यही था किन्तु तब नवीन शैली और नवीन विषयो की व्यजना की ऐतिहासिक आवश्यकता को अज्ञात रूप से अनुभव करने वाले शिक्षित-वर्ग ने द्विवेदी जी की बात पर ध्यान नहीं दिया था। १०-१२ वर्ष छायावाद का आनन्द ले चुकने के बाद तथा राष्ट्रीयसघर्ष मे नई चेतना के आगमन के कारण लोगो की 'रुचि' मे परिवर्तन होने लगा। जो यह समझते है, कि काव्य के रूप मे परिवर्तन का मुख्य कारण 'रुचि' है, उन्हे यह समझना चाहिए कि सामाजिक परिस्थितियाँ ही रुचि विशेष का रूप निर्धारित करती हैं। सामाजिक परिस्थितियो के

कारण कई शताब्दियों तक धार्मिक काव्य के पठन-पाठन से लोग ऊबे नहीं किन्तु औद्योगीकरण होते ही विभिन्न सम्प्रदायों का साहित्य केवल शोध का विषय रह गया। इसी प्रकार छायावाद का आनन्द और भी अधिक समय तक कविगण उठाते रहते यदि सामाजिक परिस्थितियों मे द्रुत परिवर्तन न होते। कम से कम हमारे देश मे सामाजिक क्षेत्र म बिना किसी परिवर्तन के रुचियां फैशन की तरह नही बदली।

हम देख चुके हैं कि छायावाद युग मे द्विवेदी युग से अधिक तेजी के साथ उद्योगो मे पूँजी लगी किन्तु यह विदेशी पूँजी ही अधिक थी अत भारतीय श्रेष्ठी वर्ग राष्ट्रीयता का दम भरता था। उधर पूँजीपतियों और जमींदारो को अपने पक्ष मे रखने के लिए शेयरो के रूप मे भारतीय पूँजीपतियो को प्रोत्साहन भी मिल रहा था। बीस लाख से अधिक मजदूर देश मे काम कर रहे थे जिनके सम्मुख यह प्रश्न था कि यदि आजादी मिली तो उस पर किसका अधिकार होगा ? गाधी जी के समय मे वर्ग संघर्ष स्पष्ट हो गया था। अत कांग्रेस के भीतर एक समाजवादी उपदल की स्थापना हुई। जवाहरलाल नेहरू, राममनोहर लोहिया जयप्रकाशनरायण इसी उपदल की प्रतिभाएँ हैं।

सन १९२७ ई० म भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी की स्थापना हुई किन्तु सन २७ ई० के पूर्व से ही जागरूक नवयुवकों पर रूसी राज्य क्रान्ति का प्रभाव पड चुका था। रूसी साहित्य और क्रान्तिकारी द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के प्रति रुचि भी जाग्रत हो चुकी थी। आश्चर्य का विषय यह है कि *छायावादी कवियों पर इस दर्शन का विशेष प्रभाव नही पड़ा अन्यथा छायावाद* का रूप ही कुछ और होता और यह तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उसम अलौकिक प्रेम की इतनी मात्रा और भविष्य-दर्शन के विषय म इतनी अस्पष्टता नही आ पाती। कामायनी सन १९३५ मे प्रकाशित हुई किन्तु प्रसाद जी पूँजीवादी पाश्चात्य सभ्यता और उसके भारतीय संस्करण के विरुद्ध तीव्र *रोष व्यक्त करके भी अपने बुद्धिवाद वर्गवाद असहृदयता और निष्ठुरता का* सारस्वतनगर के वर्णन म प्रदर्शन करके भी साम्यवादी विचारधारा से पूर्णत परिचित न होने के कारण मनु को कैलास पर ले गए और कल्पित आनन्दवादी भूमि के दर्शन कराके मानवता को यह संदेश दे गए कि समस्या का निदान बाहर नहीं भक्ति बुद्धि और श्रद्धा के समन्वय म है। स्पष्टत प्रसाद जी वर्गहीन समाज की कल्पना और उसके कार्य रूप म परिणति के द्वन्द्वात्मक संघर्ष के स्थान पर रहस्यवाद की ही अंत म स्थापना करते हैं।

बावजूद सारी सदिच्छाओं और स्वप्नों के ज्योत्स्ना (पन्त) का कल्पित लोक और कामायनी का कैलास यूटोपिया ही है।

अन्य कवियों से कहीं अधिक जागरूक वे नवयुवक थे जो राजनीति के क्षेत्र में काम कर रहे थे। राजनीतिज्ञों द्वारा ही सर्वप्रथम द्वन्द्वात्मक भौतिक-वाद का अध्ययन हुआ। कथाकारों में प्रेमचन्द अवश्य राजनीतिज्ञों की तरह ही जागरूक थे और उन्होंने गोर्की के साहित्य का अध्ययन करके समाज के भावी रूप—पूँजीवाद के विनाश और वर्गहीन व्यवस्था को समझ लिया था अतः वर्गसंघर्ष को अपनी आँखों से चारों ओर देखकर उन्होंने उपन्यासों में चित्रित किया। गांधी जी के प्रभाव से उन्हें यह विश्वास था कि शायद उच्च वर्ग का हृदय परिवर्तन हो जाए और क्रान्ति के बिना ही वर्गहीन राज्य की स्थापना हो जाय किन्तु गोदान तक आते-आते उनके इस भ्रम का भी निराकरण हो चुका था यह स्मरणीय है कि गोदान सन १९३६ की रचना है। हिंदी में अकेले प्रेमचन्द ही छायावादी युग में सामाजिक व्यवस्था का वास्तविक स्वरूप समझते थे। उनकी रचनाएँ सन १९१८ ई० से १९३६ ई० के बीच में लिखी गईं। निराला पर भी गोर्की का प्रभाव पड़ा। अतः उनके कथा-साहित्य में भी यथार्थ का चित्रण हुआ। प्रेमचन्द की प्रेरणा-स्वरूप प्रसाद जी ने भी कंकाल और तितली में समाज के अन्तर्विरोधों का पर्दाफाश किया।

सन १९३५ में कामायनी प्रकाशित हुई। इसी वर्ष पेरिस में फासिस्टों के विरोध में ई० एम० फास्टर (E. M. Forester) की अध्यक्षता में साम्यवादी लेखकों की बैठक हुई। इसी वर्ष मुल्कराज आनन्द, सज्जाद जहीर आदि के प्रयत्न से प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हुई, प्रथम बैठक लंदन में हुई। सन १९३६ में गोदान का प्रकाशन हुआ और इसी वर्ष प्रेमचन्द के सभापतित्व में प्रगतिशील लेखक संघ की बैठक लखनऊ में हुई।

दलितवर्गों के प्रति सहानुभूति भारतीय काव्य और साहित्य में प्रारम्भ से ही मिलती है। महाकवि में मानवतावाद होता ही है परन्तु उन सबको 'प्रगतिवादी' नहीं कहा जा सकता, उन्हें प्रगतिशील अवश्य कहा जा सकता है क्योंकि वाद या एक सिद्धान्त के रूप में प्रगतिवाद द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद से सम्बन्धित है। उदाहरण के लिए मध्ययुग में गरीबी रोग दुःख आदि का वर्णन करके भी साहित्यकार समझता था कि यह सब 'ईश्वरीय विधान' है अतः उनकी दृष्टि आदर्शवादी थी। वह 'रामराज्य' की कल्पना तो कर सकते थे किन्तु यह नहीं समझते थे कि समाज के विकास के नियमों को समझकर

वण वगहीन समाज की स्थापना की जा सकती हैं। राजा यदि बुरा था तो वह राम के रूप मे आदश राजा की कल्पना कर सकते थे परन्तु राजा रहित समाज का कल्पना तब असम्भव थी।

इसी तरह आधुनिक युग मे छायावादी स्वतन्त्रता और समानता की घोषणाए ता करत थ परन्तु यह न जानते थे कि समाज के विकास का सिद्धात क्या है और पूण समतायुक्त समाज कसे बन सकता है ? रवीन्द्रसहाय वर्मा ने लिखा है कि नरेन्द्र शर्मा नेमिचन्द शमशेर प्रभाकर माचवे नरेशमेहता आदि कवि अगरेजी के साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित आडन (Auden) जसे कवियो से प्रभावित हैं। किन्तु साथ ही उन्होने यह भी लिखा है कि आडन वग के कवि राजनीति की दृष्टि से साम्यवाद की ओर प्रवृत्त थे परन्तु उनमे व्यक्तिवाद भी पूणत मिलता है अत मार्क्सवादी नियत्रण के विरुद्ध विद्रोह भी ध्वनित करने लगत हैं।

इस तथ्य से भी यही स्पष्ट होता है कि परवर्ती छायावादी कवि भी द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद से पूणत परिचित न थे। अत प्रगतिशील लेखकसघ की स्थापना के बाद साहित्यकारो का ध्यान सिद्धान्तपक्ष की ओर भी गया। कुछ ने इसे पूणत स्वीकार किया और कुछ ने इसे अशत स्वीकार किया। उदाहरण के लिए पन्तजी ने मार्क्सवाद को अशत स्वीकार किया। ज्योत्स्ना (१९३२) मे भी वह भूतवाद और अध्यात्मवाद क समन्वय की चर्चा करत हैं और युगान्त और युगवाणी म भी। किन्तु स्मरणीय यह है कि युगान्त (१९३५ ३६) तथा युगवाणी (१९३६ ३९) मे उनकी सहानुभूति मार्क्सवाद की ओर अधिक दिखाई पडती है और गाधी जी के कार्यों तक को उन्होने मार्क्सवादी दृष्टि से देखा है।

निराला जी की रचनाओ को दो अवधियो म बाँटा गया है—१९१६ से १९३४ तक की रचनाए और १९३४ से १९३८ ई० तक की रचनाए। सन ३८ के बाद निराला पर स्पष्टत प्रगतिवाद का प्रभाव दिखाई पडता है। सन ३४ से सन् ३८ ई० के बीच की प्रमुख रचनाए ये हैं—सरोजस्मृति (१९३५) राम की शक्ति पूजा (१९३६) वह तोडती पत्थर (१९३५) हिन्दी के सुमना के प्रति (१९३७) बनबेला (१९३७) तुलसीदास (१९३८)। इन रचनाओ म वह तोडती पत्थर ही प्रगतिवादी रचना कही जा सकती है अत सन् ३८ ई० क बाद की रचनाओ को ही प्रगतियुग म रखना उचित होगा। अणिमा नए पत्त कुकुरमुत्ता आदि रचनाओ म निराला प्रगतिवादी दिखाई पडते हैं।

सन् १९३८ ई० के 'रूपाभ' मे पन्त जी ने सम्पादकीय मे लिखा--"इस युग की वास्तविकता ने जैसा उग्र रूप धारण कर लिया है, इससे प्राचीन विश्वासो मे प्रतिष्ठित हमारे भाव और कल्पना के मूल हिल गए है। श्रद्धा, अवकाश मे पलने वाली संस्कृति का वातावरण आन्दोलित हो उठा है और काव्य की "स्वप्न-जडित" आत्मा जीवन की कठोर आवश्यकता के उस नग्न रूप से सहम गई है। अतएव इस युग की कविता सपनो मे नही पल सकती। उसकी जडो को अपनी पोषण सामग्री धारण करने के लिए कठोर धरती का आश्रय लेना पड रहा है।[1]

अत. रवीन्द्रसहाय वर्मा से मैं सहमत हूँ कि "पन्त द्वारा इगित कविता का यह नया आदर्श वस्तुत मार्क्सवादी आदर्श है। युगवाणी मे स्पष्टत कवि ने कहा कि "मृत्यु नीलिमा गहन गगन" को छोड कर "पुण्यप्रसू भू" की ओर देखना ही उचित है, युगधर्म है।" युगान्त मे कवि पुरातन के नाश के लिए विद्रोहस्वर व्यक्त करता है—

साम्यवाद के साथ स्वर्ण युग करता मधुर पदार्पण।
मुक्त लिखित मानवता करती, मानव का अभिवादन!

(युगवाणी)

ग्राम्या मे कवि पन्त ने स्पष्ट घोषित किया—

तुम वहन कर सको जन मन मे मेरे विचार
वाणी मेरी चाहिए तुम्हे क्या अलकार

अतः द्वितीय विश्वयुद्ध के कम से कम ६ वर्ष पूर्व ही छायावादी और परवर्ती छायावादी (अचल, नरेन्द्र, आदि) तथा राष्ट्रीय (दिनकर, नवीन आदि) कहे जाने वाले कवियो को मार्क्सवाद से प्रेरणा मिलने लगी थी और सन् ३५-३६ से स्पष्टत हम प्रगतिवादी "काव्य प्रवाह" के दर्शन कर सकते है।

किस प्रकार 'विचार तत्त्व' बदल जाने पर 'रुचि' मे परिवर्त्तन हो जाता है, इसका प्रबल प्रमाण प्रगतिवादी प्रवाह का आगमन है। स्वय छायावादी कवियो ने ही 'छायावाद' को असामयिक घोषित किया, उसे मात्र "अलकृत सगीत" कहा और नई चेतना का स्वागत किया। इससे यह स्पष्ट है कि छायावादी कवि जनमगल वास्तविक रूप मे चाहते थे। 'मार्क्सवाद' के

---

१. हिन्दी पर आग्ल प्रभाव।

द्वारा वे जनकल्याण के सद्धातिक और व्यावहारिक पक्षो से भी परिचित हो गए अत अपने को बदलने के लिए प्रस्तुत हो गए किन्तु छायावादी सस्कार इतने गहरे थे कि उनस शीघ्र मुक्ति मिलना कठिन था। भारतीय आदशवादी चिंतन से पूण मुक्ति भी कठिन थी अत भौतिक उन्नति के लिए मार्क्सवाद और आध्यात्मिक उन्नति के लिए भारतीय अध्यात्मकवाद के समन्वय की ओर सस्कार निष्ठ पतजी का मन स्वत ही अकर्षित हो गया और आज तक वह दोनो परस्पर विरोधी दशनो के गडमगड्ड (Patch work) को व्यजित कर रहे हैं। अरविन्द-दशन ने उनकी इस इच्छा को पहले से ही सिद्धान्त रूप मे प्रतिष्ठित कर रखा था अत नूतनकाव्य पर अरविन्द का अपरिमित प्रभाव दिखाई पडता है।

प्रगतिवाद के फलस्वरूप कविगण नूतन विषयो की ओर आकर्षित हुए। आपबीती के माध्यम से जगबीती कहने वाला छायावादी कवि भी अब चारो ओर फले दुख और दारिद्रय का वणन करने लगा। प्रत्येक कवि मे भवभूति की आत्मा जसे प्रविष्ट कर गई हो। विषमता के विरुद्ध वह भूषण की तरह गरजने तरजने लगा। उसने अलकारो द्वारा अलकार ध्वनि और अतिशयकल्पनावाद द्वारा केवल सुन्दर पदार्थों के वणन मे उपमान विधान के स्थान पर अभिधावादी शैली पुन अपनाई। उक्तियो की सूक्ष्मतर पगचाप के स्थान पर—सामूहिक जनता की आदोलनकारिता का चित्रण होने लगा। सुदर के स्थान पर कुरूप और मोहक के स्थान रूक्ष की ओर दृष्टि गई। केवल प्रम की कोमल भावनाओ के स्थान पर सामूहिक क्रान्ति का भरव नाद ध्वनित होने लगा। विरहा के स्थान पर भैरवी का स्वर सुनाई पडने लगा। चिरन्तन सत्ता या अलक्ष्य साजन के स्थान पर केवल भूततत्त्व (Matrer) की सत्ता को ही वास्तविक मानकर उसके विकास के क्रम म चेतना को स्वीकार कर ईश्वरवाद के स्थान पर मानव का प्रकृति से सनातन सघष वाणी का विषय बनने लगा। प्रायना समपण मनुहार रहस्यवाद प्रकृति म ब्रह्मरूपाभास के तथा प्रकृति के नारीकरण के स्थान पर ईश्वर को चुनौती उसकी सत्ता का निषध यथायवादी प्रकृति का यथातथ्य रूप-वणन और नारीकरण के स्थान पर प्रकृति के अब तक उपेक्षित रूपो के यथावत चित्रण पर बल दिया जाने लगा। मानवसमाज म शोषित वग को जाग्रत करने का लक्ष्य काव्य के सम्मुख उपस्थित हुआ क्योकि केवल सवहारा वग की जागृति ही समाज के सुनहरे भावी रूप की प्राप्ति म कारण मानी गई। वगहीन वणहीन और स्वतत्रतायुक्त समाज की झाकियाँ प्रस्तुत की जाने

लगी और महलो के स्थान पर चौपडिया के गीत गाए जाने लगे ! लोक मानस का समझने लोकजीवन के विविध जीवनस्तरो—उसके आचार विचारो नाच रंग आदि को वाणी दी जाने लगी—पन्त जी जसे पवतीय सुषुमा और पारलौकिक सय को वाणी देने वाले जनभीरु कवि भी कालाकाकर नरेश के राजमहला के वातायना से लाकजीवन के विविध रूपा को पुरानी रोमानी दृष्टि से दखने लगे। जिसे रुक्ष अशिष्ट अपरिष्कृत अशिक्षित समझा जाता था उस किसान और मजदूर के जीवन को करुणा पूण नेनो से देखा गया। उसकी प्रयेक गतिविधि को विस्मय की दृष्टि से चित्रित किया गया नागरिक रुचि और नागरिक जीवन का उपहास किया गया क्याकि वह शोषको की संस्कृति थी। सभ्यता को अपने दुबल कधो पर धारण करने वाले अपने रक्त से सभ्यता के बाग को सीचने वाले शोषित वग का महत्त्व काव्य मे स्वीकार कर लिया गया उसे क्रातिकारी वग के रूप मे देखा गया और पूँजीवादी समाज की निष्ठुरता देखकर मध्यवर्गीय प्रगतिशील चेतना इस नूतन वग को जाग्रत करने म जुट पडी क्योकि समाजवादी विचारधारा ने स्पष्ट कर दिया था कि समाज का कल्याण उत्पादन के साधनो पर जनता के सर्वाधिकार सुरक्षित करने म है और यह काय साम्यवादी दल की देखरेख मे ही सम्भव है अत राजनीतिज्ञ और साहियकार कधा से कधा भिडा कर काम करने लगा।

परवर्ती छायावादी कवियो—अचल नरेन्द्र शर्मा बच्चन आदि मे जो आममुग्ध व्यक्तिवाद विकसित हुआ था प्रगतिवाद की प्रेरणा ने इन कवियो का जसे नवप्रकाश का दान किया अत इन कवियो म केवल मासलवाद क्षयी रोमासवाद और हालावाद ही नही है इनमे सामाजिक और स्वस्थ स्वर भी हैं। प्रेम को सबसे अधिक बदनाम करने वाले कवि अचल ने मधूलिका और अपराजिता के बाद किरण बेला लिखी जिसमे प्रगतिवाद से स्पष्ट ही प्रेरणा ली गई है। यद्यपि कवि क्षयीरोमासवाद को पूणत छोड नही सका है। जो अचल नारी को केवल 'प्रणय की खिलाडिन'[1] के रूप म ही चित्रित करता था वह अब सामाजिक विषमता का चित्रण करने लगा—

---

१ एक नारी सिर्फ नारी ही तुम्हें म मानता हूँ।
तुम प्रणय की हो खिलाडिन म तुम्हें पहचानता हूँ—लाल चूनर—
अचल

इन खनिहाना मे गूज रही किन अपमानो की नाचारी।
हिलती हड्डी के ढांचा ने पिटती देखी घर की नारी।
युग युग के अत्याचारो की आकृतिया जीवन के तल म।
घिर घिर कर पुजीभूत हुइ ज्यो रजनी के छाया छल मे।

बालकृष्ण शर्मा नवीन ने सुदर शीर्षक कविता लिखी जिसमे छायावाद के सौन्दयवाद की सकीणता पर हमला किया गया। मेरे पास कोई प्रमाण नही है जिसके बल पर यह कहा जा सके कि इस कविता पर मार्क्सवाद का प्रभाव है परन्तु नवीन जी की राष्ट्रीय रचनाओ मे प्रारम्भ से ही दुखी दलित जनता के प्रति सदभावना व्यक्त हुई थी और विषमता को दूर करने के लिए उग्र भावनाए भी उनकी रचनाओ मे मिलती ही हैं अत छायावाद के विरोध की पृष्ठ भूमि मे प्रगतिवादी मानसिक स्थिति अवश्य है जिसका जन्म समाजवादी विचारो से हो रहा था—

ओ सौदय उपासक तुमने सुदर का स्वरूप क्या जाना।
मधुरमजु सुकुमार मृदुल ही को क्या तुमने सुदर माना ?
क्यो देते हो चिर सुदर को इतने छोटे सीमा-बन्धन ?
कठिन कराल ज्वलत प्रखर भी है सौदय प्रकेत चिरतन।
कल कल टल मल सर-सर ममर यही नही सुदर की वाणी।
इद्रवज्रध्वनि भी है उसकी गहन गभीर गिरा कल्याणी।
क्या सुदर बोला है तुमस अब तक केवल विहस विहँस कर ?
क्या तुमने न लखा है अब तक सुदर का विकराल स्वयवर ?
है जीवन के एक हाथ म मधुर जीवनामृत का प्याला
और दूसरे कर म उसके है कटु मरण-हलाहल-हाला।
एक आँख से निकल रही है सब दहन की वह्नि अपारा।
और दूसरी के बहती है नित्य करुण जन कलकन धारा।
चिर सुन्दर से किस स्वरूप का कहो करोगे तुम अभिनन्दन ?
सदा रहेगा क्या सीमित ही तव पूजन अचन अभिवन्दन ?

ऐसा नही है कि छायावाद म केवल सवत्र कोमल ही हो परन्तु ममप्रत छायावाद का सौन्दयवाद कोमल ही रहा उग्र और उदात्त का वणन उसम कम ही हुआ अत प्रगतिवाद म इस कमी की पूर्ति हुई।

प्रगतिवाद के पूव भारतीय चिंतन यह नही समझ पाया था कि समाज का विकास कुछ वैज्ञानिक नियमो पर आधारित है और उन नियमो का पता

लग सकता है। उन नियमो का पता चल जाने पर हम समाज को अभीप्सित मोड दे सकते हैं। हजारो वर्षों से भारतीय कवि और साहित्यकार आदर्शवादी ही रहा आया है वह मानवीय राग विराग आशा आकांक्षा आदि के चित्रण म अपनी समग्र कला का प्रदशन कर चुका है परन्तु मनुष्य के प्रति अपनी समग्र सहानुभूति क साथ-साथ वह समाज के वैज्ञानिक विश्लेषण से परिचित नही था। नवीन विज्ञान की उपलब्धियो और नतत्त्वशास्त्र तथा समाजशास्त्र के विकास से परिचित होन पर कला और जीवन के प्रति दृष्टिकोण ही बदल गया अत प्रगतिवाद का हिन्दी मे अवतरण सबसे अधिक महत्त्वपूण घटना थी। जिस प्रकार पाश्चात्य विज्ञान को हमने विदेशी समझ कर उसे छोडा नही अपनाया उसी प्रकार समाजशास्त्र को इतिहास की नूतन व्याख्याओ को भी हमने अपनाया। यह सम्भव नहा था कि प्राकृतिक विज्ञान (Natural Sciences) को अपना लिया जाता और उसी के ऊपर आधारित समाज विज्ञान को विदेशी कहकर छोड दिया जाता। इसी समाज विज्ञान को अपनाकर रूस मे जनक्रान्ति सफल हुई थी अत पराधीन भारत के विलक भी जनक्रान्ति के लिए इसकी ओर आकर्षित हुए। यह कुण्ठा' नहीं थी प्राचीन काल से ही प्रचलित सर्वे भवति सुखिन सर्वे सन्तु निरामया अथवा विश्ववंधुत्व को काय रूप मे परिणत करने के लिए व्यावहारिक विचारधारा की स्वीकृति थी जो कल्पना और सदिच्छा मात्र पर आधारित न होकर ठोस सामाजिक विज्ञान पर आधारित थी। 'वगसघर्ष' को इतिहास की एक हकीकत के रूप मे स्वीकार किया गया न कि किसी 'कुंठा' के कारण। वैज्ञानिक दृष्टि का तकाजा यह है कि जो तथ्यो से प्रमाणित हो उसे स्वीकार किया जाय। वगसघष अथवा समाज के द्वन्द्वात्मक विकास को इसीलिए स्वीकार किया गया और इसीलिए प्रत्येक प्रकार के आदर्शवाद अध्यात्मवाद रहस्यवाद और भारतीयता के नाम पर चलने वाले अन्धविश्वास' और कल्पित ज्ञान को अस्वीकार किया गया।

यह प्रमाणित किया गया कि भारतवष कोई ऐसा विचित्र देश नही है जिसम अन्य समाजो पर लागू होने वाले समाजशास्त्रीय सिद्धान्त यहा के समान विकास पर लागू न होते हो। यहाँ भी आदिमसाम्यवाद सामतवाद और पूँजीवाद के स्पष्ट सोपान दिखाई पडते हैं अत पूँजीवादी व्यवस्था मे उत्पन्न साहित्यकार ने यह अनुभव किया कि सवहारा को कला और साहित्य द्वारा सगठित करना एक ऐतिहासिक दायित्व है। यह कवल मनोरञ्जन, धमप्रचार अध्यात्मसाधना और केवल उच्चवर्गों के चित्रण के लिए नही होता,

उनका दायित्व महान होता है। समग्र विश्व जनता की आर्थिक सांस्कृतिक शोषण से मुक्ति ही उसका लक्ष्य हो सकता है अत वासघय पूँजीवाद का विरोध सामतवाद का विरोध और पूँजीवादी-सामतवादी विश्वासा और मान्यताओं का विरोध मुक्ति के साधन के रूप म स्वीकृत हुआ और साहित्य मे वासघय का चित्रण प्रचलित हुआ। यह कतिपय व्यक्तियो की 'कुण्ठा अथवा केवल भावुकता नहीं थी यह समाज इतिहास और प्रकृति की नवीन शोधो का प्रतिफल था जो भावना और सौन्दर्य-बोध को नया रूप दे रहा था। यह सर्वथा दूसरी चीज है कि हिन्दी के कवि और साहित्यकार इस काय म कितने सफल हुए। किन्तु प्रगतिवाद' के आगमन और उसकी वैज्ञानिकता पर आक्षेप तभी सफल हो सकते हैं जब समाज-विज्ञान के मूलभूत सिद्धान्तो के स्थान पर प्रयोगवादी अस्तित्ववादी फासिस्टवादी अध्यात्मवादी तथा दूसरे जनवादविरोधी विचारक एसे नए सिद्धान्तो को प्रस्तुत कर सकें जो बुद्धि को तथ्यो के आधार पर सतुष्ट कर दें। जब तक ऐसा नही होता तब तक कवियो और साहित्यकारो की कलागत असफलता की चर्चा होने पर भी प्रगतिवाद को अवदम्य नहा किया जा सकता और 'मानवता की विजय के प्रति आश्वस्त प्रगतिवादी कवि और साहित्यकार की मान्यताओ में परिवर्तन नहीं किया जा सकता और मान्यताओ के रहने पर मानसिक स्थिति म परिवर्तन असम्भव है।

हिन्दी म प्रगतिवाद के विरोधियो ने प्रगतिवादी काव्यप्रवाह की आलोचना म तरह-तरह की कमजोरिया दिखाकर (और कमजोरिया कम नहीं हैं) भी एक भी पुस्तक म प्रगतिवाद के मूलाधारो पर समग्रत विचार नहीं किया। यह काय कठिन है क्योंकि इसके लिए न केवल मार्क्स एगिल्स लेनिन आदि को ही समझना होगा अपितु इनके पूर्व के सम्पूर्ण चिन्तन से वाकिफ होना पड़ेगा। यही नहीं मार्क्सवाद जिस प्राकृतिक विज्ञान पर आधारित है उस भूततत्त्व (Matter) की नवीनतम शोधो से भी परिचित होना पड़ेगा। इसके साथ सम्पूर्ण नतत्त्व शास्त्र (Anthropology) को मिथ्या ठहराए बिना साम्यवाद का खण्डन असम्भव है। हिन्दी म ही नही अन्य भाषाओ म भी एक भी कवि और साहित्यकार एसा नहा है, जो प्रगतिवाद के विरोध के लिए इतना विराट श्रम करके प्रगतिवाद के मूलाधारो को मिथ्या प्रमाणित कर देता। विरोधियो न केवल पाश्चात्य विचारको— इलियट सात्र आदि कतिपय प्रगतिविरोधी विचारको की धारणाओ का हिन्दी में अनुवाद कर दिया और पाश्चात्य प्रगतिवादी विरोधी प्रवृत्तियो स

हिन्दी-पाठक को परिचित करा दिया परन्तु इससे प्रगतिवाद पुष्ट ही हुआ क्योकि सामाजिक तथा राजनैतिक परिस्थितियाँ साम्यवादी विचारकों के विश्लेषण के अनुसार ही आज के मनुष्य के सम्मुख प्रस्तुत हो रही हैं। जिस 'वर्गसघर्ष' को कल्पना कहा जा रहा है, उसे प्रत्येक व्यक्ति सामाजिक जीवन से महसूस कर रहा है। जिस 'पूँजीवाद' को स्वतन्त्रता का रक्षक कहा जा रहा है, उसकी वृद्धि इसी "पुण्यभूमि" मे हमारे नेत्रो के सम्मुख हो रही है। बेकारी, भूख, दबाव, नेताओ के झूठे वादे आदि तत्त्व मनुष्य को अध्यात्मवाद की ओर नही लिए जा रहे हैं, बल्कि उसे सोचने के लिए बाध्य कर रहे हैं। मनुष्य निराशा, कुण्ठा और अवसाद मे सिर छुपा कर सन्तुष्ट नही रह सकता अपितु वह इन सबके कारणो पर विचार कर रहा है और विश्लेषण की प्रवृत्ति उसे उस सामाजिक व्याख्या की ओर ही उन्मुख कर रही है, जो मानवीय समस्याओ का वैज्ञानिक समाधान प्रस्तुत करती है अत रूस और चीन की उपलब्धियों के प्रति वह प्रशसात्मक रुख अपनाएगा ही। किन्तु साथ ही इन देशो मे प्रतिष्ठित सामाजिक व्यवस्था के निर्णायको की गलतियो के प्रति भी वह असावधान नही रह सकता। भारतवर्ष मे अपने देश और काल का विचार कर वह समाजवादी व्यवस्था की प्रतिष्ठा करना चाहता है। 'अधअनुकरण' की निन्दा तो स्वय लेनिन ने की है। "सत्य सदा स्पष्ट और यथार्थ होता है" (truth is always concrete) यह वाणी लेनिन की है अत समाजवादी देशो की आलोचना करने का यह अर्थ नही है कि इस देश से 'जनवाद' समाप्त हो जाएगा या हो रहा है, विरोधी इस आलोचना के समय अभावात्मक रुख अपना लेते है किन्तु समाजविज्ञान से परिचित लोग जानते हैं कि प्रगतिवादी समाजव्यवस्था को प्रतिष्ठित करते समय अनेक भूलें हो जाती हैं। कभी-कभी पूँजीवादी घेरे और दबाव के कारण अन्तर्विरोधात्मक पथ अपनाना पडता है अत परिस्थिति को न देखकर जनवाद के विरोधियो ने 'प्रयोगवाद' और "अध्यात्मवाद" के नाम पर जो उलझनें खडी की हैं, वह चल नही सकती। बीसवीं शती की जागरूक जनता को न तो 'रहस्यवाद' मे मग्न किया जा सकता हैं और न व्यक्तिवादी प्रवृत्तियो मे ही भुलाया जा सकता है।

प्रगतिवाद का वैज्ञानिक दर्शन क्या है ?

हम यहाँ अत्यधिक सक्षेप मे ही विचार कर सकते हैं क्योकि हिन्दी काव्य की प्रवृत्तियो का विश्लेषण ही इस पुस्तक का मुख्य विषय है।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद :—प्राचीन काल से ही इस विश्व को समझने

का प्रयत्न हो रहा है। प्राचीन और मध्यकाल मे आदशवादी और भौतिक वादी—इन दो दृष्टियो स जगत और समाज को समझने का प्रयत्न किया गया था। आदशवादी (सभी प्रकार के) वह विचारक था जो विश्व के मूल मे सवप्रयम किसी चेतनसत्ता को मानता था। भौतिकवादी वह विचारक था जो विश्व के मूल मे भूततत्त्व (Matter) को मानता था। वेदो म प्रकृति के पदार्थों म एक एक शक्ति को आरोपित किया गया और बाद म उपनिषद युग म विश्व के मूल म चेतनसत्ता या ब्रह्म को स्वीकार कर लिया गया। यह आदशवाद (Idealism) तत्पश्चात षडदशनो मविकसित हुआ। इनमे वेदान्त (बादरायण) सबसे अधिक आदशवादी थे। योगदशन मे शरीरशास्त्र (Phisiology) का अश भौतिकवादी था किन्तु योग का ईश्वर वाद आदशवादी था। साख्य म प्रकृतिदशन (Philosophy of Nature) भौतिकवादी और आत्मा का सिद्धान्त (पुरुष सिद्धान्त) आदशवादी था। इसी प्रकार न्याय का ईश्वरवाद मुक्ति का सिद्धान्त आदि आदशवादी और अणुवाद भौतिकवादी था। सबसे अधिक भौतिकवाद वैशेषिक दशन मे मिलता है जो जगत के विकास मे अणु सिद्धान्त को मानता है अर्थात् जड जगत के मूल म अणु है जिनके मिलन से जगत का विकास हुआ है। किन्तु वैशेषिक-दशन मे भी ईश्वर की सत्ता स्वीकृत है क्योंकि ईश्वर के बिना अणु स्वत गतिमान नही हो सकते ऐसा वैशेषिक दार्शनिक को विश्वास था। मीमासा-दशन ईश्वर को नही मानता किन्तु वेदो को अपौरुषेय मानता है और कमकाण्ड को ही सवस्व मानता है अत उसका अनीश्वरवाद भौतिक वाद का प्रतीक होकर भी समग्रत वह आदशवादी ही है। तन्त्रदशन भी मूलत भौतिकवादी होकर भी बाद मे आदशवादी बन गया।

बौद्धो म प्रारम्भिक बुद्धदशन अनात्मवादी है अत भौतिकवादी है किन्तु बाद म महायान क विकास म शून्यवाद और विज्ञानवाद म आदशवाद की उसम अमित वृद्धि हुई। जैनमत म भी ईश्वर को किसी न किसी रूप म स्वीकार कर लिया गया।

शुद्ध भौतिकवाद की दृष्टि से चार्वाक ही प्रसिद्ध हैं जिसे आदश वादियो ने बहुत बदनाम कर दिया है। वस्तुत भारतीय दशन म एक प्रबल प्रवृत्ति भौतिकवाद की प्रारम्भ से ही रही है जो बाद म आदशवादी दशनो म काई के नीचे जल की तरह साफ दिखाई पडती है। अभी तक भारतीय दशन म इस महान भौतिकवादी प्रवृत्ति को अलग नही किया जा सका

है[1] अत ऐसा समझा जाता है कि भारत मे भौतिकवादी केवल 'चार्वाकिम' ही था, यह एक गलत धारणा है। समग्रत आदर्शवादी विचारधाराऐं भी समाज के विकास के दौरान मे पूर्णत भौतिकवाद का निषेध नही कर पाई। वेदान्त तक मे 'व्यावहारिक सत्य' और पारमार्थिक सत्य को अलग-अलग स्पष्ट स्वीकार किया गया है।

इस प्रकार समग्रत भारतीय दर्शन आदर्शवादी और भौतिकवादी इन दो धाराओ मे बाँटा जा सकता है। और इनमे भेदक तत्व यह है कि आदर्शवादी दर्शन विश्व के मूल मे किसी 'चेतनसत्ता' को मानते हैं जबकि चार्वाकमत विश्व के मूल मे भूततत्त्व (Matter) को मानते हैं।

यही स्थिति योरोप मे दिखाई पडती है। योरोप मे भी आदर्शवाद किसी अलौकिक सत्ता के विश्वास पर आधारित है जब कि भौतिकवाद भूततत्त्व को ही मानता है और चेतना को उसी का विकास मानता है।

इन दोनो विचारधाराओ के अन्तर को इन शब्दो मे स्पष्टत समझा जा सकता है—"भौतिकवाद, आदर्शवाद का विरोधी है क्योकि जहाँ आदर्शवाद मानता है कि भूततत्त्व के पूर्व चेतना (spritual or ideal) की सत्ता है, वहाँ भौतिकवाद यह मानता है कि चेतना (Consciousness) के पूर्व भूततत्त्व की सत्ता है। इस भेद के कारण प्रत्येक प्रश्न की व्याख्या मे अन्तर पड जाता है। आदर्शवाद अपने मूल मे किसी अलौकिक सत्ता के विश्वास पर आधारित है। यह आदर्शवाद दो लोको मे विश्वास करता है—पारलौकिक अर्थात् कल्पित लोक और यह यथार्थ जगत्। आदर्शवाद द्वारा पारलौकिक जगत् को यथार्थ जगत् से अधिक महत्त्व देता है।"[2]

इस प्रकार आदर्शवाद और भौतिकवाद प्रत्येक प्रश्न पर अलग ढँग से सोचता है। 'बिजली' को चमकता देखकर या बादल को गरजता देखकर आदर्शवादी कहेगा कि यह देवता का क्रोध है जब कि भौतिकवादी 'विद्युत' की उत्पत्ति के लिए प्राकृतिक कारण की खोज करेगा। यह पुराने आदर्शवादियो

---

१. द्रष्टव्य—(अ) हिन्दी की दार्शनिक पृष्ठभूमि
(ब) 'लोकायत'—डी० चट्टोपाध्याय—
पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली

2 Dialectical Materialism —Maurice Cornforth.

की बात हुई। वैज्ञानिक होने पर भी आदशवाद पीछा नही छोडता। मैंटर के विश्लेषण मे आज आदशवादी और भौतिकवादी दोनो परिचित है। आदशवादी कहेगा कि शक्ति के रूप मे परिणत हो जाने वाला मैंटर वस्तुत कोइ रहस्यमय शक्ति है जबकि भौतिकवादी यह कहेगा कि मैंटर और मोशन—भूततत्त्व और उसमे निहित शक्ति (वेग विद्युतप्रवाह) अभिन्नतापूवक स्थित है इन्हे अलग नही किया जा सकता। विश्लेषण करते हुए जहा जहा हम आज पहुचे हैं उससे और भी हम आगे बढगे किन्तु विश्लेषण मे मिलेगा हम मैंटर का ही कोई रूप। अत जगत के मूल म मैंटर है भूततत्त्व है चेतना नही है—चेतना भूततत्त्व का विकास है—गुणात्मक परिवत्तन। जिस प्रकार जिस प्रकार $\frac{2}{3}$ हायड्रोजन और $\frac{1}{3}$ आक्सीजन को मिला दने पर जल नामक एक नए गुण की उत्पत्ति हो जाती है उसी प्रकार भूततत्त्व का गुणात्मक परिवत्तन ही—मानवीय चेतना है। मैंटर शाश्वत है उसका कभी विनाश नही होता वह सदा परिवत्तनशील है उसके भीतर क्रिया और प्रतिक्रिया सदा चलती रहती है इसी से आतरिक द्वन्द्व के कारण नाना पदार्थों का निर्माण होता रहता है।

माक्स के पूव का भौतिकवाद यात्रिक भौतिकवाद था—उससे माक्सवाद को अलग करने के लिए द्वन्द्वात्मक शब्द भौतिकवाद के पूव जोडा जाता है यात्रिक भौतिकवाद क्या है?

जगत मे सवत्र परिवत्तन दिखाई पडता है। दिन रात का आवागमन ऋतुओ का परिवत्तन विभिन मानव समाजो का उत्थान पतन पदार्थों का निर्माण और नाश सभी मे सतत परिवत्तन दिखाई पडता है। आदशवादी इस क्षण क्षण-परिवत्तन को देखकर एक स्थिर स्थायी सत्ता की कल्पना करते हैं और उस शाश्वत अनश्वर सत्ता को इस परिवत्तन का कारण ठहराते है जब कि भौतिकवाद इस परिवत्तन के लिए भौतिक कारणो की खोज करता है और यह मानता है कि भूततत्त्व ही आतरिक द्वन्द्व के कारण नाना रूपा म परिवर्तित हो रहा है वह भूततत्त्व अविनाशी है परन्तु आत्मा या ब्रह्म की तरह तटस्थ या स्थिर सत्ता नही है वह क्षण क्षण परिवत्तनशील है।

पुराने भौतिकवादी परिवत्तनशील जगत के मूल म अविनाशी अणुओ (Atoms) को मानत थ। परिवत्तन इन्ही अणुओ क कारण होता है परन्तु अणु स्वय अपने म परिवतन से परे मान जात थे। रामन कवि ल्यूक्रिटियस ने On the nature of things नामक कविता म इसी अणुवाद को वाणी

दी थी। उसके पूर्व ग्रीक दार्शनिक 'एपीक्यूरस' ने 'अणुवाद' को प्रवर्तित किया था, जिसमे बिना किसी ईश्वर की सहायता के अपरिवर्त्तनशील अणुओ के परस्पर मिलन और प्रभाव से पदार्थों के रूप-परिवर्तन की व्याख्या की गई थी।

यान्त्रिक भौतिकवाद—१६वी और १७वी शताब्दी मे ईसाइयो के धर्म-दर्शन (Theology) के विरुद्ध वैज्ञानिको और अन्य विचारको ने उक्त ग्रीक 'अणुवाद' को स्वीकार किया। इसने मध्यकालीन 'अन्धविश्वासो के विरुद्ध यान्त्रिक भौतिकवाद' को प्रतिष्ठित किया। यह 'वाद पूँजीवाद के अभ्युदय के साथ—तकनीकी उन्नति, नए देशो की शोध, व्यापार की उन्नति आदि के साथ विकसित हुआ।

यान्त्रिक भौतिकवाद के अनुसार जगत् के मूल मे भूततत्त्व के 'अणु' (Particles of Matter) स्थित हैं जो एक दूसरे को प्रभावित करते हैं (Inter Action)। प्रत्येक 'अणु' दूसरे से अलग और विशिष्ट (Separate and distinct) सत्ता रखता है। और अपनी सामूहिकता मे वे जगत् का निर्माण करते हैं। इस प्रकार जगत् एक प्रकार की सकुल मशीन या यन्त्र है।

प्रश्न होगा कि इस 'यन्त्र' का जो कि विभिन्न अणुओ (पुर्जों) से बना है, कार्य कौन करता है?

न्यूटन ने सौर-व्यवस्था (Solar-System) की व्याख्या की। 'एप्पीक्यूरस' की तरह 'न्यूटन' भी यह मानता था कि सौरमडल अणुओ से बना है। सूर्य कोई देवता नही है। अणुओ का समूह मात्र है। परन्तु एप्पीक्यूरस भारतीय वैशेषिको की तरह पूरी प्रक्रिया नही बताता जबकि 'न्यूटन' ने 'सौरमडल' का विवरण प्रस्तुत किया। किस प्रकार सौरमण्डल कार्य करता है, यान्त्रिकभौतिकवादियो ने यह भी बताया अत प्राचीनो से 'न्यूटन' का दर्शन अधिक आगे था।

किन्तु जिस प्रकार 'एप्पीक्यूरस' और 'कणादि' अणुवाद के आगे किसी पदार्थ की पूर्ण प्रक्रिया नही बताते, उसी प्रकार 'न्यूटन' जैसे यान्त्रिक भौतिकवादी यह नही बताते कि 'पदार्थ' का जन्म और विकास कैसे हुआ? जगत् को विभिन्न पुर्जों (अणुओ) से बना हुआ यन्त्र मानकर यान्त्रिक भौतिकवादी न्यूटन 'सौरमण्डल' की प्रक्रिया को समझाने लगता है। इसी प्रकार हार्वे (Harvey) रक्त सचरण की प्रक्रिया को समझाता है।

(१) यान्त्रिक भौतिकवाद शाश्वत अणुओ की सत्ता मानता है।

(२) अणुओ के परस्पर मिलन या प्रभाव के लिए एक प्ररक शक्ति (ईश्वर) मे विश्वास करता है। जिस प्रकार एक मशीनरी इजीनियर एक बार चला देता है उसी प्रकार ईश्वर इस विश्वरूपी यन्त्र का चालक है। एक बार चल पडने पर जिस प्रकार मशीन के नियमो और प्रक्रिया को हम समझ सकते हैं उसी प्रकार जगत रूपी यन्त्र की प्रक्रियाएँ निश्चित नियमो पर आधारित हैं उन्हे समझा जा सकता है।'

यान्त्रिक भौतिकवादियो मे से कुछ मनुष्य शरीर को भी एक मशीन के ही रूप मे मानते थे। लमेट्री (Lamettrie) नामक विचारक ने १८वी शताब्दी मे यही विचार प्रकट किया था।

यह यान्त्रिक भौतिकवाद अनेक प्रश्नो के उत्तर नही द सकता। यदि जगत यन्त्र है तो उसे किसने बनाया ? यान्त्रिक भौतिकवादियो ने इस प्रश्न के उत्तर के लिए ईश्वर को स्वीकार किया। किन्तु ईश्वर ने इसे क्यो बनाया ? इसका उत्तर कोई कभी नही दे सका। हमारे यहा भी इस प्रश्न को टाला गया। किसी ने लीला के लिए किसी ने स्वानुभूति के लिए और किसी ने किसी अन्य उद्देश्य के लिए जगत् का निर्माण ईश्वर द्वारा बताया। किसी ने कहा कि ईश्वर सवकाम है किसी ने कहा कि वह सृष्टि की इच्छा करता है (सोऽकामयत) किन्तु ये उत्तर बच्चो को ही बहला सकते है। इन्ही विपत्तियो से वचने के लिए जैनियो और बौद्धो ने अनीश्वरवाद को स्वीकार किया था परन्तु वे बाद मे पुन उसी चक्र मे फँस गए।

दूसरा दोष यान्त्रिक भौतिकवाद मे यह था कि इसके अनुसार कोई सवथा नवीन वस्तु उत्पन्न ही नही हो सकती। यह केवल परिवत्तन देखती है सवथा नवीन की सृष्टि की व्याख्या नही कर सकती।[1] रसायनिक तत्वो के परस्पर मिलन से सवथा नए पदाथ का उदय होता है इस तथ्य की व्याख्या यान्त्रिक भौतिकवाद नही कर पाता। यान्त्रिक भौतिकवाद की दृष्टि से उष्मा (Heat) केवल अणुस्थित गति (motsion) की मात्रा म वद्धि मात्र है परन्तु रसायन शास्त्र म उष्मा को गुणात्मक परिवत्तन के रूप मे भी समझा जा सकता है।

---

1 Chem cal interactions d ffer from mechan cal interactions in as much as the cl anges wh ch take place as a result of chem cal interactions involve a change of qual ty

इसी तरह प्रकृति म यांत्रिक पुनरावृत्ति नहा मिलती है अपितु प्रकृति म स्पष्टत विकास और प्रगति दिखाई पडती है यह प्रगति और विकास यांत्रिक भौतिकवाद द्वारा नही समझा जा सकता।

इसी प्रकार यांत्रिक भौतिकवाद समाज के विकास को नही समझा सकता।

यांत्रिक भौतिकवादियो से सहमति प्रकट करने वाले मार्क्स के पूर्व के यूटोपियन समाजवादी भी द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी नही थे। उन्होने समाज मे मनुष्य को अणु की तरह मानकर एक कल्पित समाज को प्रस्तुत किया उन्होंने समाजवाद का पूँजीवाद के अन्तर्विरोधो से उत्पन्न एक अनिवार्यता के रूप मे नहा माना। उनके अनुसार यदि मनुष्य समाजवाद से परिचित होता तो वह किसी भी समय म और कही समाजवादी समाज की स्थापना कर सकता था परन्तु *समाजवाद समाज के एक विशेष सोपान म ही उदित हो सकता है।* सामन्तवादी व्यवस्था म चाहने पर भी समाजवाद प्रतिष्ठित नही हो सकता था।

चीन म पूँजीवाद के विकास के चरम सीमा पर पहुँचने के पूर्व ही *जो समाजवाद की स्थापना हो सकी उसका कारण यह है कि विश्वपूँजीवाद* के अध्ययन द्वारा रूस मे पहले समाजवाद की स्थापना हो चुकी थी अत आज किसी भी देश म जागरूक जनता सम्पत्ति पर जनता का एकाधिकार स्थापित करके समाजवाद की स्थापना कर सकती है किन्तु रूस म समाजवाद की *स्थापना तभी सम्भव हो सकी थी जब पश्चिमी देशो म औद्योगिक उन्नति हो* चुकी थी। सर्वहारावर्ग उदित और संगठित हो चुका था तथा रूस म भी पूँजीवाद का भी काफी विकास हो चुका था और लेनिन का सर्वहारावर्ग प्राप्त था।

आज समाजवाद एक यथार्थ तथ्य है और उससे प्रेरणा लेकर सर्वहारावर्ग के अभाव म कृषक और कृषि मजदूर भी समाजवाद स्थापित कर सकते हैं बशर्ते कि प्रगत मध्यवर्ग हो और छोटे किसान और भूमिहीन मजदूर *संगठित हो जाएँ।*

हिन्दी म प्रारम्भ म पंत जी 'यूरोपियन समाजवाद से ही प्रभावित थ अत समाजवाद क लिए वर्गसंघर्ष पद्धति—जनसंगठन—वर्गसंघर्ष आदि से बचते रहे और शीघ्र ही समाजवादी शिविर की निष्ठुरता देखकर उनका स्वप्न भंग हो गया जैसे इतिहास का निर्माण केवल कोमल कोमल ही हो!

द्वन्द्वात्मक विकास—यान्त्रिकभौतिकवाद के विरुद्ध द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद यह मानता है कि जगत स्वतन्त्र तत्त्वों या अणुओं का सघात नहीं है, अपितु भूततत्त्व की विकासात्मक प्रक्रिया मे नाना पदार्थ उदित होते हैं। भूततत्त्व (मैटर) तथा गति (मोशन) अभिन्न रूप से अवस्थित है यानी मैटर को मोशन से अलग नही किया जा सकता। भूततत्त्व की गति से अनन्त रूप वाले पदार्थ उत्पन्न होते जाते हैं। ये पदार्थ एक दूसरे से उत्पन्न होते हैं और एक दूसरे मे समा जाते हैं अत तत्त्व निरपेक्ष्य रूप से स्थित न होकर परस्पर सम्बन्धित हैं।

आज परमाणु का भी विश्लेषण हो चुका है, जो विद्युत कणो (Electrons protons and neutons) के रूप मे माने जाते हैं किन्तु ये भी मूल अणु नही हैं ये शाश्वत और अविनाशी नही हैं ये विद्युतकरण या विद्युत प्रवाह भी उदित होते हैं और नष्ट हो जाते हैं तथा अनेक प्रक्रियाओं मे से गुजरते हैं।

अत मूलभूत वस्तु अणु नही है अपितु प्रकृति की अनादि प्रक्रिया (Unending process of nature) ही शाश्वत है जिसमे विभिन्न पदार्थ या वस्तुएँ उदित होती हैं ये कुछ समय तक विद्यमान रहती हैं और नष्ट हो जाती हैं। प्रकृति की यह प्रक्रिया अनादि है। एलक्टन अणु के रूप मे असमाप्त तत्त्व है उसका भी विश्लेषण सम्भव है।

इसी प्रकार समाज मे कुछ सस्थाओ या मनुष्य समूह शाश्वत नही हैं न वे स्थिर हैं अपितु समाज के विराट विकास मे वे एक विशिष्ट सोपान मे उदित होते हैं विद्यमान रहते हैं और उत्पादन के साधन बदलने पर अर्थात अपने आतरिक विरोधो से विवश होकर नई सस्थाओ और व्यवस्थाओ मे परिवर्तित हो जाते हैं।

इस प्रकार जो विचारक प्रकृति और समाज को एक ही द्वन्द्वात्मक दृष्टि से नही देखता वह आदर्शवादी है।

यान्त्रिक भौतिकवाद मानता है कि बाह्य प्रभाव के बिना अणु गति नही पकडते किन्तु द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद मैटर मे मोशन को अनादि काल से ही मानता है अत गति वस्तु के भीतर स्वय स्थित है। वस्तु को गति देने के लिए किसी ईश्वर की आवश्यकता नहीं है—मैटर (मोशन सहित) का स्वभाव ही यह है कि वह गतिमान है। यह स्मरणीय है कि चार्वाक मतावलम्बियो मे एक दल एक प्रकार के स्वभाववाद को मानता था।

जगत मे परिवर्तन किसी ईश्वर की इच्छा का परिणाम नहीं है अपितु परिवर्तन अर्थात गति भूततत्त्व का स्वभाव है। चार्वाकमत विज्ञान के अभाव में इस स्वभाव के सिद्धान्त के विकास को स्पष्ट नहीं कर सका था। यह काम द्वन्द्वात्मक भौतिकवादियों ने किया।

यान्त्रिक भौतिकवाद तथा पुराना भौतिकवाद भूततत्त्व को गति से अलग मानता है। मगर जड तत्त्व है और गति उससे अलग है। यह द्वैतवाद द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद में नहीं मिलता यहाँ भूततत्त्व और गति एक और अभिन्न हैं तभी विकास स्वयं भूततत्त्व में अन्तरस्थित है। बाह्यप्रेरणा या ईश्वरेच्छा की उसे आवश्यकता नहीं। अतः द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद जडवाद नहीं है साम्यवादी को जडवादी नहीं कह सकते वह प्रगतिवादी कहला सकता है।

प्राकृतिक विज्ञान द्वारा प्रमाणित भूततत्त्व के उक्त रूप को यदि हम स्मरण रख तो यह स्पष्ट है कि ईश्वरवाद एक कल्पना ही है। जब भूततत्त्व अनादि है तब उसके कर्ता का प्रश्न ही नहीं उठता। जब गति उसका 'स्वरूप' ही है तब विकास क्या हुआ यह प्रश्न असम्बद्ध है। जब किसी 'वस्तु' का निर्माण भूततत्त्व के अन्तरस्थित संघर्ष द्वारा ही होता है तब विकास में सामञ्जस्य की कल्पना गलत है। इसी प्रकार समाज का विकास उसके भीतर स्थित अन्तर्विरोधो से होता है आन्तरिक संघर्ष को नजरन्दाज करना भाववाद है। हमें प्रकृति और समाज म जो 'स्थिरता' की प्रतीति होती है, वह भ्रामक है।

आदर्शवादी कहते है कि गतिसंयुक्त भूततत्त्व अगर है तो जड ही है जड से चेतना कैसे विकसित हुई। अतः चेतना का बाहर से आगमन मानना होगा। अथवा चेतना से ही भूततत्त्व का विकास मानना होगा अथवा भूततत्त्व को मिथ्या मानना होगा जैसा कि वेदान्ती कहते हैं।

किन्तु गतिसंयुक्त भूततत्त्व के विकास के दौरान म 'प्राण या चेतना' का उदय मानने म क्या बाधा है ? प्राण या चेतना (life) चेतनाहीन गतिसंयुक्त भूततत्त्व के एक निश्चित सोपान मे ही विकसित होता है अतः बाहर से चेतना का अवतरण नहीं माना जा सकता। चेतना रहस्यमय नहीं है वह भूततत्त्व का ही गुणात्मक परिवर्तन है।

इसी प्रकार समाज मे चेतना का विकास धीरे-धीरे हुआ है और वह सभी युगो म भौतिक परिस्थितियों के अनुरूप ही दिखाई पडती है तभी कहा गया है कि चेतना परिस्थिति की नियामिका नहीं है परिस्थिति चेतना की

नियामिका है । किन्तु नियामक परिस्थितियों में यद्यपि आर्थिक शक्तियाँ ही मुख्य नियामक शक्ति होती हैं परन्तु केवल आर्थिक उत्पादन के साधनों को ही सब कुछ मान लेना और सूक्ष्म से सूक्ष्मकल्पनाओं और विचारों को सीधे आर्थिक परिस्थिति से सम्बद्ध कर देना आर्थिकनियतिवाद (Econemic determinism) है मार्क्सवाद नहीं । प्रारम्भ में प्रत्येक देश में आर्थिक कारणों पर ही अधिक बल दिया गया है । परन्तु उन्हें मुख्य मान कर भी अन्य कारणों को स्वीकार न करना यान्त्रिक भौतिकवाद है द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद नहीं । क्योंकि जीवन सकुल (complex) है ।

द्वन्द्वात्मक विकास—इस प्रकार द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद पदार्थ विज्ञान पर आधारित है, यह दार्शनिक कल्पना नहीं वैज्ञानिक सत्य है । द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का मर्म प्रत्येक प्रक्रिया प्रत्येक पदार्थ में अंतर्निहित द्वन्द्व को समझना है । प्रकृति और समाज के विकास में इसीलिए मार्क्सवाद अंतर्निहित क्रिया प्रतिक्रिया और उनकी टकराहट से विकास की अनवरत प्रक्रिया पर बल देता है अतः मार्क्सवाद प्रकृति और समाज को समझकर समाज को बदलने का अस्त्र बन जाता है जबकि आदर्शवाद विकास को संघर्षात्मक न मानकर स्थितिशीलता का समर्थक बन जाता है ।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद यह मानता है कि यह विश्व निरन्तर गतिशील भूततत्व का ही विकास है । विकास (Evolution) को यान्त्रिक भौतिकवादी और बहुत से आदर्शवादी भी मानते हैं किन्तु उसमें आदर्शवाद निहित रहता है । आदर्शवादी हीगल कहता था कि जगत् के रूप में अलक्षित सत्ता स्वानुभूति करती है अतः जगत आइडिया या अनंतसत्ता का ही विकास है । हर्बर्ट स्पेंसर विकास में एक सर्वव्यापक सत्ता' के दर्शन करता था । हेनरी बर्गसाँ प्राणसत्ता (The life Force) को ही विकास में देखता था । बीसवीं शताब्दी के पूँजीवादी देशों के वैज्ञानिक विकास की प्रक्रिया की व्याख्या में कहीं न कहीं रहस्यवाद' को अवश्य ले आते हैं । वे यह नहीं कहते कि आज अमुक तथ्य की हम व्याख्या नहीं कर पा रहे हैं वरन यह कहते हैं कि कोई अज्ञात सत्ता अवश्य है ।

कुछ आदर्शवादी विकास को संघर्षहीन मानते हैं । इसीलिए उनका विचार है कि बिना संघर्ष के स्वतः पूँजीवाद समाजवाद में विकसित हो जाएगा अतः उसके लिए प्रयत्न व्यर्थ है हम स्वतः समाजवाद की ओर ही जा रहे हैं ।

किन्तु द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद विकास को अनवरत मानता है जिसमें सघर्षहीन प्रतीत होने वाली विकास की प्रक्रिया अतर्निहित द्वन्द्वो के कारण उछाल (Leap) से टूटती है। यह उछाल पदार्थ विज्ञान से भी पुष्ट होती है अत द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद वस्तुत पदार्थ और समाज के भीतर चलने वाले अतर्विरोधो का अन्वेषण है। तभी वह विकास को परस्पर विरोधी शक्तियो का सघर्ष मानता है— Development is the struaggle of opposites। जब जल को गरम किया जाता है तब भाप का जन्म सहसा उछाल द्वारा ही होता है उसके पूर्व जल के भीतर ताप के कारण सघर्ष चलता है अत नवीन का जन्म प्राचीन के अतरस्थित-सघर्ष का फल है। गर्भ से शिशु की उत्पत्ति मे भी यह सघर्ष देखा जा सकता है। दिमाग मे निर्णय के पूर्व परस्पर विरोधी विचार टकराते हैं अत निर्णय शात विकास नही है स्वय प्रकाशमान ज्ञान नही है पूर्व विचारो के सघर्ष का फल है चूंकि कभी कभी निर्णय अकस्मात् हो जाता है अत हम समझते हैं कि वह ईश्वरेच्छा द्वारा उदित हुआ है वस्तुत अकस्मात् कोई वस्तु या विचार उत्पन्न नही होता। अकस्मात् पूर्व सघर्ष का फल मात्र है। समाज मे भी पूँजीवाद के अतर्निहित विरोधो से ही सामाजिक क्रान्ति रूपी उछाल द्वारा समाजवाद की प्राप्ति होती है। यदि पूँजीवाद अपने अतविरोधो को दूर कर सकता तो कभी क्रान्ति न होती किन्तु अतविरोधो को वर्गहीन समाज मे ही दूर किया जा सकता है क्योकि वर्गगत समाज मे वर्ग ही स्वय समाज के स्वरूप को स्थिर नही रहने देता असतोष को जन्म देता है। समाजवाद के भीतर अत विरोधो को दूर किया जा सकता है।

प्रश्न होगा कि पूँजीवाद के अर्तविरोधो से जब समाजवाद का जन्म होता है तब समाजवाद के बाद विकास कैसे रुक सकता है? इसका उत्तर यह है कि जड पदार्थ और मनुष्य मे अतर होता है। मनुष्य का मस्तिष्क यद्यपि भूततत्त्व का ही विकास है परन्तु वह लम्बे विकास के दौरान मे जागरूक हो गया है। पदार्थ अपने भीतर निहित अर्तविरोध को दूर नही कर सकता मनुष्य कर सकता है अत समुद्र पर्वत सरिता चट्टान आदि के भीतर के अर्तविरोध समाप्त नही हो सकते अर्थात् भूततत्त्व की गति रोकी नही जा सकती परन्तु ऐसा मानव समाज बनाया जा सकता है जिसमे वर्ग न हो जिसमे मानसिक और शारीरिक श्रम का अतर मिट जाय जिसमे मनुष्य-मनुष्य का शोषण न कर सके अत वर्गहीन समाज का निर्माण सम्भव है। वर्ग मानव समाज का मुख्य अर्तविरोध है उसे समाप्त करने के बाद भी अन्य लघु

अतर्विरोधो से लडना होगा किन्तु जो मनुष्य मुख्य अतर्विरोध को समाप्त कर सकता है वह अन्य अतर्विरोधो की पहचान कर उन्हे समाप्त करने का प्रयत्न क्यो न करेगा ? अत द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद राज्य पुलिस सैन्य रहित समाज की रचना मे विश्वास दृढ करता है यह कुण्ठा नही है यह समाज के अध्ययन का फल है। अत समाजवाद की स्थापना ही अतिम पग नही है अपितु स्थापना के बाद भी बुराइयो से सघष करना होगा। साम्यवादी देशो मे पूजीवाद के ध्वसावशेषो से लडने की पुकार इसीलिए उठती है। मनुष्य ने वगगत समाज मे रहकर जिस लोभ दम्भ युयुत्सा आदि दुगु णो की धरोहर को प्राप्त किया है उससे एकदम तो मुक्ति मिल नहीं सकती। अभी अभी चीन के साम्यवादियो के द्वारा भारत पर आक्रमण और तिब्बत पर जनता के न चाहने पर भी सुधार थोपने की याद ताज़ी ही है, रूसी साम्यवादी भी चीन के साम्यवादियो की जल्दबाजी और अदूरदर्शिता की निन्दा कर रहे है। अत विकास सचिक्कण नही होता उसके लिए अत्यधिक जागरूकता और दूरदर्शिता की आवश्यकता होती है। किन्तु दूसरा की गलतियाँ दखकर निराश हो जाने से वगगत समाज के शोषण और दमन को हम छूट देते हैं प्रयोगवादी यही कर रहे हैं।

अत विकास मे द्वन्द्व का विस्मरण गलत होगा। यह द्वन्द्व विद्युत म धनात्मक और ऋणात्मक रूप म गणित मे धन और ऋण के रूप म तथा वगगत समाज मे शोषक और शोषित वग के रूप मे अवस्थित है अत जिस प्रकार पदाथ के भीतर दो परस्पर विरोधी शक्तियाँ काम करती रहती हैं और उनके सघष से नवीन पदाथ का जन्म होता है उसी प्रकार समाज मे भी यह सघष चल रहा है। इसकी उपेक्षा करने से इस सघष की अवधि और बढगी। इसे पहचान कर इस सघष को नवीन के विकास की दिशा मे मोड देने से मानव समाज की समस्या का समाधान हो सकता है। यही आधुनिकतम सिद्धान्त है। प्रयोगवादी और आदशवादी जिसे आधुनिक कहते हैं वह प्राचीन अधविश्वासो का प्रत्यूह मात्र है।

किन्तु प्रत्येक पदार्थ और वगगत समाज के इस द्वन्द्व मे—परस्पर विरोधी दो तत्त्व सदा एक दूसरे से सम्बद्ध होत हैं। ये दोनो सवदा साथ दिखाई पडत है एक के बिना दूसरे की सत्ता नही रह सकती। चुम्बक मे दोना ध्रुवा की सत्ता साथ-साथ रहती है। चुम्बक की छड को तोड दने पर पुन दो ध्रुव बन जाते हैं अत पदाथ और समाज क परिवतन पर विचार करते समय द्वन्द्व को स्वीकार करना एक हकीकत को स्वीकार करना है। प्रत्यक पदाथ

और समाज परस्पर विरोधो का सामञ्जस्य होता है। इस सामञ्जस्य या विरोधो की *एकता को शाश्वत नही माना जा सकता क्योंकि यह एकता* अस्थायी होती है—सामतवाद मे परस्पर विरोधी वर्ग थे किन्तु औद्योगीकरण के पश्चात सामतवाद मे परस्पर विरोधी शक्तियो की एकता भग हो गई और पूजीवाद स्थापित हुआ। उसकी एकता भी आतरिक विरोधो—शोषक और शोषित के सघर्ष के कारण भग हो रही है और जहा अवशेष है वहा भग होगी। अभी है इसका अर्थ है कि सघर्ष उस बिंदु तक नही पहुचा है जो एकता को भग कर दे। अत द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद विकास को वृद्धि (groath) मात्र नही मानता किन्तु मात्रा से गुणात्मक परिवर्तन मानता है *जो सहसा उछाल के रूप मे घटित होता है जो निम्न से उच्चतर दिशा* की ओर प्रभावित है और जो साधारण से सकुल की ओर गतिमान है।

'तत्त्व' की सापेक्ष्यता—चीज सापेक्ष्य है एक दूसरे से सम्बन्धित हैं यह द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की मान्यता है। हिंदी साहित्य से उदाहरण लीजिए—लक्ष्मीकान्त वर्मा के अनुसार नयी कविता मे परम्परागत मूल्यो और मतवाद की निन्दा होनी चाहिए। यह निरपेक्ष दृष्टिकोण है। मानवमूल्य किसी विशिष्ट सामाजिक परिस्थिति मे निर्धारित हो सकते है। परम्परागत मूल्यो के बहुत से तत्त्व आधुनिक युग मे भी स्वीकृति पाएगे। सम्पूर्ण *परम्पराए कहती हैं कि मनुष्य को सदाचारी बनना चाहिए यह सत्य आज* भी स्वीकृत है। परम्परा कहती है कि जनकल्याण के लिए स्वार्थ का बलिदान करना चाहिए, इसे प्रत्येक मतवादी मानता है अत परम्परा का समूल नाश *नहीं हो सकता केवल आज की परिस्थिति मे अवाछनीय तत्त्वो का विरोध* उचित है। उदाहरणत परम्परा मे अधविश्वास भी है उसका विरोध करना होगा। पूँजीवाद के नाश का अर्थ यह नही है कि मशीनो का भी नाश कर दिया जाय अत पूँजीवाद के नाश का अर्थ है—एकाधिकार का समाप्त अर्थात कतिपय के स्थान पर जनता का स्वामित्व। इसी तरह प्राचीन मानवमूल्यो मे बहुत से तत्त्व आज भी अपनाने होंगे। पुराना साहित्य महान मानवीय गुणो—धीरता वीरता त्याग प्रेम सहिष्णुता मानवप्रेम आदि से भरा पडा है। इस साहित्य की आकर्षक अभिव्यक्ति और इन मानवमूल्यो के कारण सदैव प्रतिष्ठा रहेगी किन्तु प्राचीन साहित्य के साम्प्रदायिकता अध विश्वास राजा महाराजाओ की स्तुति बहुविवाह अधराष्ट्रवाद अश्लीलता आदि तत्त्वो का विरोध भी होगा अथवा उन्हे तात्कालिक सीमाए कहकर उनकी उपेक्षा करनी होगी। नवीन व्याख्या की भित्ति प्राचीन मानव मूल्यो पर

हो खड़ी हो सकती है और भारत जैसे देश के पुराने साहित्य में नवीन समाजवादी व्यवस्था के लिए महान मानव मूल्यों का अभाव नहीं है समता विश्वबन्धुत्व अथवा समदर्शिता की पवित्र वाणी सर्वत्र सुनाई पड़ती है।

इस प्रकार प्रत्येक मत बुरा है यह निरपेक्षतावाद है। मत जीवन और जगत् के प्रति दृष्टिकोण का नाम है कौन सा दृष्टिकोण वैज्ञानिक है मानव का कल्याणकारक है यही मत के परीक्षण का आधार है अतः द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद को अपनाना होगा और अध्यात्मवाद तथा निराशावाद का विरोध करना होगा।

लक्ष्मीकान्त वर्मा कहते हैं कि वह वर्जन के विरोधी हैं। वर्जन बुरी चीज है किन्तु बहुत सी बातों के लिए समाज को रोकना भी पड़ता है। जब तक मनुष्य का इतना विकास नहीं हो जाता कि वह स्वतः समाज विरोधी कार्यों से घृणा करने लगे। तब तक समझाना भी पड़ेगा और न मानने पर वर्जन भी आवश्यक होगा अतः लक्ष्मीकान्त वर्मा (नई कविता के प्रतिमान) तथा अन्य कई अन्य स्थलों के प्रतिमान निरपेक्ष हैं। लक्ष्मीकान्त कहते हैं कि आज की समस्या यह है कि हम कुण्ठाग्रस्त महानता से निस्पन्द लघुता को अधिक महत्त्वपूर्ण समझते हैं अर्थात् महानता कुण्ठाग्रस्त होती है और लघुता यथार्थ है। वर्मा जी ने अन्यत्र यह बताया है कि छायावाद 'महान' का चित्रण करता रहा और प्रगतिवाद भी महान के चक्कर में ही फँस गया। प्रयोगवाद ने मनुष्य की 'लघुता' का चित्रण किया। किन्तु महानता और लघुता के नारे निरर्थक हैं। क्या 'लघुताप्रियता' का अर्थ यह है कि महानता के लिए किए गए प्रयत्न व्यर्थ हुए? अथवा क्या यह क्या जा सकता है कि संगठित होकर मनुष्य के महान भविष्य की तैयारी करना गलत है? कठिनाई यह है कि 'मूल्य' का प्रश्न रुचि के साथ उलझाया गया है। यथार्थ परिस्थिति का विश्लेषण ही मूल्य के प्रश्न को सुलझा सकता है? आधुनिक होने का अर्थ यह नहीं है कि अब तक के विकास का निषेध किया जाए। आधुनिक होने का अर्थ है मनुष्य की अब तक की प्रगति का सही मूल्यांकन करना और भविष्य में स्वप्नद्रष्टा कवियों के देखे हुए स्वप्नों को कार्यरूप में परिणत करने के लिए कटिबद्ध जनता को गुमराह न करना। लघुता का अर्थ है अपनी कमजोरियों को पहचानना शक्ति की सीमा को पहचानना तथा समाज का अविरोधी बनकर उसके अंग का भाग करना किन्तु नयी कविता के प्रतिमान का लेखक एक चिंतन को थापी देता है कि जो यह नहीं जानता कि

वस्तुएँ परस्पर सम्बद्ध हैं, लघुता और महानता भी सम्बद्ध है प्रत्येक व्यक्ति मे 'लघुता' और महान्ता का संघर्ष चलता रहता है तब एक पक्ष की ही स्वीकृति क्यों ? "महानता" का भाव "अविश्वास" से उत्पन्न नही होता—कुछ कर दिखाने की इच्छा से उत्पन्न होता है। हां 'लघुता' पर ही बल देने से अवश्य आत्मविश्वास की कमी का बोध होता है।

वस्तु और गति- गति मे उनका उदय और अस्त—द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद प्रत्येक वस्तु, पदार्थ और समाज को उनकी 'गति' मे—प्रवाह मे देखता है, उस 'प्रवाह' मे उनका कैसे उदय होता है, कैसे अस्त होता है और किस प्रकार वस्तुओ का यह प्रवाह सर्वथा चलता रहता है।

वैज्ञानिको के प्रयोगो से स्पष्ट हुआ है कि किसी शरीरी (Organism) की शरीर-वृद्धि के एक विशिष्ट सोपान मे उसे परिवर्तित किया जा सकता है, उसकी वशपरम्परा (Heredity) को बदला जा सकता है किन्तु पूँजीवादी वैज्ञानिक कहते हैं कि वशपरम्परा को कभी भी बदला नही जा सकता। प्रगतिवादी वैज्ञानिक प्रमाणित करता है, जब 'नवीन' तत्त्व का जन्म हो रहा हो उस समय Organsim मे परिवर्तन किया जा सकता है। इसी प्रकार भारत मे आज जो 'प्रगतिशील' शक्तियो का उदय हो गया है, उन्हें स्वीकार कर उनका पक्ष समर्थन कर, भारतीय समाज को नवीन दिशा की ओर मोडा जा सकता है। इसके विरुद्ध सामंतवादी और पूँजीवादी दलों और मान्यताओ का समर्थन कर समाज को गतिहीन बनाया जा सकता है। साहित्य मे 'प्रगतिवाद' का समर्थन करके यथार्थवादी सौन्दर्यबोध और समाजवादी मूल्यो का समर्थन किया जा सकता है, इसके विरुद्ध अज्ञेय-भारती और लक्ष्मीकात वर्मा आदि के भ्रामक प्रचार का समर्थन कर जनता की प्रगति मे बाधा डाली जा सकती है। भारतीय समाज की प्रारम्भ से अत तक—विभिन्न स्थितियो को देखना और उसकी अब तक की प्रगति का अध्ययन करना तथा यह देखना कि आज देश मे निर्णायक वर्ग कौन है ? इस निर्णायक वर्ग की उत्पत्ति इसी शताब्दी की चीज है, इस निर्णायक वर्ग को सगठित करने के लिए साहित्य लिखना और विरोधियो का पर्दाफाश करना वस्तु को उसकी गतिमान स्थिति मे देखना है।

सत्य की स्पष्टता—द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद मानता है कि सत्य निरपेक्ष या रहस्यमय नही होता, स्पष्ट और सापेक्ष होता है। हिन्दी साहित्य मे कुछ विचारक समझते हैं कि प्रगतिवादी पूर्वनिश्चित सिद्धान्तो को साहित्य पर आरोपित करते हैं। ये चाहते हैं कि सिद्धान्तो की घोषणा ही साहित्य है।

यह एक बेबुनियाद बात है। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद कोई पूर्वनिश्चित धारणा नहीं है वास्तविक परिस्थिति के विश्लेषण से प्राप्त विचार का नाम ही द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद है। यह एक तथ्य है कि प्रारम्भ मे प्रगतिवादी विचारको ने कुछ भूलें की थी। भारतीय साहित्य और समाज की व्याख्या म यहाँ की परिस्थिति के अध्ययन म भी गलतिया हुइ है—साम्यवादी दल ने भी वास्तविक परिस्थिति का ठीक अदाजा न पाकर पूर्वनिश्चित सिद्धान्तो क आधार पर निणय किए हैं परन्तु साथ ही उनकी उपलब्धिया भी महान हैं। आज जो मध्यवग और निम्न जनता का दबाव बढ रहा है और अपने वगवादी स्वरूप को छिपाने के लिए सरकार को अनेक समाजवादी आवरण ओढने पड रहे हैं उसका एक यही कारण है कि साहित्य जनता को अधिकारो के प्रति जागरूक कर रहा है अत जिस प्रकार 'प्रगतिवादियो से देश को समझने मे भूलें हुई है उसी प्रकार प्रगतिवाद को समझने मे भी हम प्राय भूल कर जाते हैं और नई कविता के पुरोहित तो यही समझते हैं कि प्रगतिवाद स्वतन्त्रता का शत्रु और षडयन्त्रो का पुलिन्दा है। अध्यात्मवादी प्रगतिवाद को रूस और चीन का अनुगामी मात्र समझते है जब कि वे स्वय रूस और चीन की बहुत सी अच्छी बातो का चुपचाप अनुकरण कर रहे हैं।

सत्य किसी एब्सट्रैक्ट फार्मूला मे नही है सत्य परिस्थिति के गभीर विश्लेषण मे है। रूस मे मेनशेविक कहते थे कि समाजवाद के पूव पूँजीवाद का विकास करना चाहिए अत उन्होने उदारपथियो का समथन किया। इसके विपरीत लेनिन ने देखा कि रूस मे श्रमिको और किसानो के सगठन से बिना पूँजीवाद के पूर्ण विकास के ही समाजवाद की स्थापना सम्भव है। लेनिन का विश्लेषण सही था यह क्रान्ति ने प्रमाणित कर दिया। इसके विपरीत तेलगाना म भारतीय साम्यवादी दल परिस्थिति का सही विश्लेषण न कर सका और केन्द्र म दृढ सरकार रहने तथा अन्य प्रान्तो म पार्टी के कमजोर होने पर भी क्रान्ति छेड दी गई फलत जनआन्दोलन को भारी आघात पहुचा। इस गलती को १९०५ की रूसी क्रान्ति से तुलना करना गलत है। अन्तत अमृतसर के जनतन्त्रवादी सिद्धान्त को स्वीकार करना पडा जो सही विश्लेषण का फल है अत सत्य किसी फार्मूले म नहीं है फार्मूला दृष्टि देता है किन्तु उसका सही उपयोग हमारे ऊपर निभर है। इसी प्रकार प्रगतिशील लेखक सघ को व्यापक सगठन न रखकर उसे सकीर्ण बनाया गया फिर प्रगतिवाद के साथ सहानुभूति रखने वाले सुमित्रानन्दन पन्त आदि की कटु आलोचना की गई। इसके सिवा आपस म ही सग्राम छिड गया। प्रगतिविरोधियो के सिद्धान्तो और भारतीय

साहित्य सस्कृति की पुनर्व्याख्या के स्थान पर व्यय के विवादो मे ही शक्ति का अपव्यय होने लगा। आलोचना मे तात्त्विक चर्चा के स्थान पर अखबारनवीसी शुरू हो गई। यह सब इस लिए हुआ कि परिस्थिति के अध्ययन म ही दोष था। आज हालत यह है कि प्रगतिवाद के स्तम्भो को जहाँ परिस्थितियो ने खडा कर दिया है वही वे केवल अपने काय के छप्पर को ही उठाए हुएहैं। उनमे आज भी इतनी सहिष्णुता और दूरदर्शिता नही आ पाई कि वे एक साथ मिलकर अपने व्यक्तिगत मतभेदो के बावजूद बिखरे हुए सगठन को व्यापक रूप देकर पुनरुज्जीवित करें। इस फूट का लाभ स्वभावत तरह-तरह के आरोप लगाकर प्रतिक्रियावादी उठा रहे हैं। किन्तु इससे यह समझना भूल होगी कि प्रगतिवाद समाप्त हो गया—यह भी परिस्थिति को न समझना होगा। जनवादियो मे फूट होने पर भी प्रत्यक्ष जनवादी कायरत है—आज हिन्दी मे अधिक सशक्त कथाकार कवि और आलोचक आदि है। पूणत समाजवादी लेखक चाहे कम हो परन्तु प्रगतिशील लेखको की ही हिन्दी म अधिकता है। यह इसलिए है कि प्रगतिवादी बिखर गए किन्तु पथभ्रष्ट नहा हुए। अध्यात्मवादियो मे भी अधिकतर लेखक सम्प्रदायवाद जातिवाद व्यक्तिवाद आदि के विरोधी हैं। इसका प्रमाण यह है कि प्रयोगवादी मान्यताओ का हिन्दी मे अध्यात्मवादियो ने कम विरोध नही किया है अत फामूला बना कर उन सबकी निन्दा करना जो पूणत समाजवादी नहीं हैं गलत होगा। क्रान्ति सवदा केन्द्रस्थ दल के आस पास जमा होने वाले प्रगतिशील जन सगठन द्वारा होती है।

परिप्रेक्षण—द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद पदाथ और वस्तु के अन्तर्निहित सघष को पहचान कर नवीन समाज रचना के लिए सघष करता है। उसके सम्मुख छायावादियो जैसा आरोपित विज़न नहा है वह स्वप्नद्रष्टा नही है अपितु समाज के शरीर का वह वैद्य है कायाकल्प करने के लिए वह शरीर की परीक्षा करता है और नाडी और रक्त तथा शक्ति के अनुसार आचरण करता है। वगहीनराज्य एक अनिवायता है स्वप्न मात्र नहा। आवश्यकता को स्वतन्त्रता मे परिणित कर सकना कोई ख्यालीपुलाव नही है और इस काय के गभीर दायित्व को माक्सवादी स्वीकार करता है क्योंकि मनुष्य की मुक्ति ही महत्तम मानवमूल्य है। अत उसका परिप्रेक्षण व्यक्तिगत नही वैज्ञानिक है, ऐतिहासिक है। *लक्ष्मीकान्त वमा कहते हैं— माक्सवाद मनुष्य की चरस्त* शक्ति को केवल ऐतिहासिक प्रक्रिया के रूप मे स्वीकार करके उसकी सक्रियता को स्वत कोई शक्ति मानता ही नहा बिना इस मानव विशिष्टता को स्वीकार किय उसका दायित्व निभ नही सकता है माक्सवाद यथाय स्वीकार करते

हुए द्व द्वात्मक भौतिकवाद को अन्तिम कसौटी मान लेता है। अर्थात् यदि ईश्वर वाद मनुष्य से बडा ईश्वर को मानता है तो मार्क्सवाद मनुष्य से बडा द्वद्वात्मक भौतिकवाद को मान लेता है यदि उसके लिए वेद अन्तिम शब्द कह चुके है तो दूसरे के लिए मार्क्स का अन्तिम शब्द वेद बन गया है। इस प्रकार दोनो ही यथार्थ की वास्तविकता और इसी सक्रिय आन्दोलन शक्ति की अवहेलना तो करते ही हैं साथ ही वे मानव विशिष्टता की भी हत्या करते हैं और उनको सामान्य परिधि की अपेक्षा अपनी परिधि मे पगु और जजर बना देते है (नई कविता के प्रतिमान पृष्ठ १०६)

आदशवाद के विषय मे वर्माजी का आरोप सही हो सकता है यद्यपि आदशवादी वेद की व्याख्या युगानुरूप करते आए है परन्तु मार्क्सवाद मानव विशिष्टता को स्वीकार नही करता यह गलत है। यदि किसी देश मे मार्क्स वादी ने मानव विशिष्टता को स्वीकार नही किया तो यह दोष मार्क्सवाद का नही उस मार्क्सवादी का है। मार्क्स ने स्वप्नवादी समाजवादियो का खडन करते हुए लिखा है कि जो भौतिकवादी यह कहते हैं कि मनुष्य परिस्थिति की उपज है और परिवर्तित मनुष्य परिवर्तित परिस्थितियो की उपज है वे यह भूल जाते हैं कि मनुष्य ही परिस्थिति को बदलता है तथा वे यह भी भूलते है कि स्वय इस प्रकार की शिक्षा देने वाले को सही शिक्षा लेनी चाहिए।[1]

अत मार्क्सवाद को वेद मानने के आरोप का उत्तर यह है कि मार्क्स वाद अधिक वैज्ञानिक प्रतीत हुआ इसलिए इस पुण्यभूमि के मार्क्सवादियो ने भी वेद को छोडकर मार्क्सवाद को अपनाया। मार्क्सवाद का शब्दत अनुकरण व्यवहार मे सम्भव भी नही हो सका। सहअस्तित्त्व और युद्ध के विषय मे आज भी रूस और चीन मे विवाद है और इस देश के मार्क्सवादी रूस द्वारा की गई लेनिन की व्याख्या से सहमत हैं क्योकि सत्य सापेक्ष होता है यह भी लेनिन ने ही कहा था अत परिस्थिति का विश्लेषण ही मुख्य है। मार्क्सवाद अस्त्र है उससे शत्रु को पछाडा जा सकता है और अपना गला भी काटा जा सकता है अत मार्क्सवादी को मार्क्सवादी वेद नही विकसित

---

1 The Material st doctrine that men are products of circumstances and upbringing and that therefore changed men are produced by changed circumstances and changed upbring ng *forgets that* circumstances are changed precisely by men and that the educator must himself be educated

दान मानन हैं। लक्ष्मीकान्त वमा समझते हैं कि इन आरोपों से वास्तविक परिस्थिति म अंतर पड जाएगा। हा द्विविधा की सृष्टि अवश्य हो सकती है और हो रही है किन्तु जिस इतिहास' से वमाजी को भय है वही यह बताता है कि समाजवाद की स्थापना म बहुत से बहके हुए लोग बाधक बनेंगे अत लक्ष्मीकान्त की 'चहचहाहट' केवल मनोरंजन का विषय बनकर रह जाती है। वमाजी का परिप्रेक्ष्य व्यक्तिगत अत अनैतिक है, अत तथ्यों से उनका समथन नहीं होता। नई कविता के प्रतिमान' म एक स्थान पर भी यह उल्लेख नहीं मिलता कि लेखक समाज म परिवत्तन चाहता है जबकि माक्स ने स्पष्ट कहा था कि दार्शनिकों ने जगत् की व्याख्या की है परन्तु प्रश्न उसे बदलने का है। अत मार्क्सवादी यथाथ समाज का बदलने के लिए यथाथ चित्रण करते समय समाज के विकास को ध्यान मे रखता है जबकि प्रयोगवादी 'यथाथ म स्थितिशीलता की ही व्यंजना हो रहा है। यह एक भटकाव है। प्रगतिशील भी भटक जाते हैं। यशपाल और राजेन्द्रयादव का सघष का अच्छा चित्रण करते हैं किन्तु 'सैक्स के सम्बन्ध म इन लेखकों की दृष्टि निरपेक्षतावादी है। इसी प्रकार 'उखड हुए लाग' म राजेन्द्रजी भारतीय पूँजीवाद' का सही चित्रण नहीं कर सके।

ऐतिहासिक भौतिकवाद—लक्ष्मीकान्त वमा का सबसे अधिक रोष मार्क्सवाद' द्वारा स्वीकृत इतिहास की व्याख्या पर है क्योंकि उनके अनुसार इससे 'मानवविशिष्टता' के सिद्धान्त को आघात पहुँचता है। अत द्वन्द्वात्मकभौतिकवाद' के इस पक्ष पर भी सक्षपत विचार करना चाहिए। सव प्रथम यह कहना आवश्यक है कि हमारे समाजवादी भा यह कहते सुनाई पडते हैं कि द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद पदाथ विज्ञान पर आधारित है। मटर से चेतना के गुणात्मक परिवतन को वह समझाकर पुरान दाशनिक सम्प्रदायों को समाप्त अवश्य कर देता है परन्तु पदाथविज्ञान के नियमों का चेतनसमाज पर लागू करने से अनेक प्रश्न उत्पन्न हो जाते हैं। मनुष्य की चेतना बहुत विकसित है, उसम स्वज्ञान (self-consciousness) भी रहती है जो अन्य जीवों म उतनी नहीं होती।

अत लक्ष्मीकान्त वमा और वर्तिराय गम्भीर समाजवादियों का प्रश्न एक ही है यद्यपि वमा जी के प्रश्न की पृष्ठभूमि म गम्भीर दृष्टि नहीं है जबकि द्वितीय आरोपकत्ता ऐतिहासिक प्रक्रिया से भली भाँति परिचित होकर ही यह प्रश्न कर रहा है।

दो॰ उत्तर एक ही होगा। मनुष्य को मार्क्सवाद प्रकृति का अग मान कर ही चला है और यवहार से मनुष्य प्रमाणित भी यही करता है कि वह प्रकृति का ही एक अंग है भोजन नि । मथुन और भय की दृष्टि से उसे अ न्यवादी भी पशु मानते ही हैं। उसकी विशिष्टिता है— स्वचेतना (self cons ousness)। यदि यह स्वचतना परिस्थिति से इतनी स्वतन्त्र ह ती ना ऐति॰ सिक विकास मे युग विशष मे सवज्ञ दार्शनिको या पहुचे हुए साधको अ नि के रहते हुए उत्पादन के साधन उनके चतना प्रवाह का सीमित नही कर देते। सवत ऋषि और मुनि मर्मी गौतम बुद्ध और महावीर भी यह नही सोच सके कि मनुष्य की मुक्ति का वास्तविक उपाय क्या है ? नतिक जीवन पर प्रबल आग्रह होने पर भी उनकी नतिकता उत्पादन के साधन न बदलने पर किस प्रकार व्यक्तिगत ही रह गई यह इतिहास ही बताता है। अत मनुष्य की स्वचेतना' मार्क्स ने असीमित और अनन्त न मानकर उसे युगविशेष की अन्य सामाजिक परिस्थितियो के अनुरूप ही पाया था। और भारत का इतिहास भी साक्षी है कि मनुष्य की चेतना का क्रमश विकास हुआ है साथ ही आर्थिक उत्पादन के साधन यहा भी निर्णायक रहे हैं अत आधारभूत मान्यता की दृष्टि से इतिहास की आर्थिक व्याख्या सही है।

किन्तु एगिल्स ने मार्क्स के बाद लिखा था कि केवल आर्थिक पक्ष पर ही बल देना गलत है जीवन और समाज का विकास एक सकुल विकास है अत अन्य तत्वो को भी देखना चाहिए। इस सिद्धान्त मे मनुष्य जीवन की विशिष्टता और उसकी सीमा स्पष्टत स्वीकृत है। वह दूसरी बात है कि मार्क्सवादी अपने विश्लेषण मे केवल आर्थिक पक्ष पर ही बल दे जाते हो। किन्तु लक्ष्मीकान्त वर्मा न ऐसे यान्त्रिक मार्क्सवादियो की आलोचना न करके मार्क्सवाद मे ही यह कमी बताई है कि वह मानव विशिष्टता को नही मानता।

गभीर समाजवादी जब तक यह सिद्ध नही करता कि युग विशष म सस्कृति—कला दर्शन धर्म आचार विचार आदि आर्थिक शक्तियो के अनुरूप न होकर स्वच्छन्द होते हैं तब तक प्राय विज्ञान-क्षत्र के नियमो का समाज पर लागू करने का औचित्य अखडित ही रहेगा। एगिल्स ने जब यह कहा था कि केवल आर्थिक-पक्ष पर बल देना गलत है तब उनका यह भी मतलब नहीं था कि मार्क्स और एगिल्स न अब तक आर्थिक पक्ष पर अधिक बल दे दिया है अब आग उसकी चर्चा यर्थ है। उत्पादन के साधनो के अनुरूप ही

संस्कृति (super structure) होती है", इसे भुला देने से भौतिकवाद ही समाप्त हो जाता है। किन्तु संस्कृति के उत्पादन के साधनों के अनुरूप होने पर भी, उसमें बहुत से तत्त्व परम्परा से आए हुए हो सकते हैं जिन्हें लेनिन ने 'आदिम मूर्खता' (Primitive nonesense) कहा है अतः सामन्तवाद में गुरु शिष्य परम्परा से दासप्रथा की विकसित शैलियों का अनुकरण होता रहता है। किन्तु यदि आज कवित्त' के प्रयोग को देख कर कोई कहे कि आजकल भी रीतिकालीन अर्थ-व्यवस्था है, तो यह गलत होगा। यह बार-बार कहा गया है कि संस्कृति दर्शन धर्म, कला आदि में परिवर्तन आकस्मिक रूप से नहीं होता। क्रान्ति के बाद भी मानवीय चेतना एकदम नहीं बदल पाती अतः मार्क्सवाद मानव विशिष्टता का विरोधी नहीं है। 'कला' के वैविध्य के जो विरोधी हैं, वे यह मान लेते हैं कि जीवन सपाट है, संकुल नहीं है और यह गलत है।

'किन्तु 'विशिष्टता' के नाम पर, क्षण क्षण में कौंधते अनुभव-अणुओं की पकड़ के प्रयत्न के नाम पर अथवा पूँजीवादी घेरे के कारण रूस और चीन में निरपेक्ष स्वतन्त्रता न देने के कारण तथा समाज विरोधी कार्यों की 'वर्जना" के कारण सामूहिक हित, सामूहिक भाव और सामूहिक मुक्ति का विरोध करना गलत है जैसाकि प्रयोगवाद कर रहा है। किसी तथाकथित प्रयोगवादी ने यह नहीं कहा कि रूस ने जो गलतियाँ की हैं, उन्हें हम न करेंगे और जनतांत्रिक तरीके से, हम यहाँ समाजवाद की स्थापना करेंगे। इसके विपरीत ये लोग नाना प्रतिक्रियावादी विचारों को वाणी देकर, मानव विशिष्टता के नाम पर उनकी स्वीकृति चाहते हैं, इसीलिए इनका विरोध आवश्यक है।

समाजवाद का उद्देश्य तानाशाही की स्थापना नहीं है, अपितु 'सर्वहारा की तानशाही' को रूस में अनिवार्य आवश्यकता के रूप में स्वीकार किया गया था। आज समाजवादी शिविर प्रबल है और जनता समाजवाद से परिचित हो रही है अतः जन-तांत्रिक तरीके से भी समाजवाद की स्थापना हो सकती है, अतः 'आजादी के नाश' का नारा भारतीय परिस्थिति में तो और भी गलत है क्योंकि यहाँ सभी दल जनतान्त्रिक तरीकों को ही मान चुके हैं। 'आलोचना' (मासिक) में जो लेखकों की स्वतन्त्रता' पर लेख छपे, वे भारतीय परिस्थिति में असम्बद्ध थे। किन्तु लगता है कि भारती साही-लक्ष्मीकान्त वर्मा आदि को समाजवादी देशों से नफरत है अतः उनके विरुद्ध प्रचार करना वे अपनी कला का लक्ष्य और अपनी 'विशिष्टता' समझते हैं।

मार्क्सवाद समाज के विकास के अध्ययन मे समाज के अन्तर्विरोधो का अध्ययन करता है। नन्ददुलारे वाजपेयी के अनुसार मार्क्सवाद वर्गसघर्ष को स्वीकार कर साहित्य को वर्गसघर्ष का अस्त्र बना देता है यह मार्क्सवाद का अपराध है। हम देख चुके हैं कि वर्गसघर्ष का सिद्धान्त पदार्थ विज्ञान से सम्बन्धित है और समाज म वर्गसघर्ष स्पष्टत दिखाई पडता है। पूँजीवाद के पूर्व यह तीव्र और मुखर रही हो या ना अत पुराने साहित्य मे वर्गसघर्ष को आवृत करने वाले तत्त्व धर्म दर्शन आदि रहे है। अर्थात इनके माध्यम से जीन और अनजान म वर्ग सघर्ष को स्पष्ट या प्रच्छन्न रूप मे वाणी मिलती रही है। सिद्ध नाथ और सत साहित्य उच्च वर्गों की सस्कृति और कला के प्रति स्पष्ट विद्रोह था। इसके विपरीत भक्त कवि मानवतावादी थे अर्थात निम्न जातियो को सुविधाए देकर भी पुरानी वर्णाश्रम व्यवस्था के प्रचारक थे। तुलसीदास मे यह प्रवृत्ति सबसे अधिक है। आचार्य शुक्ल वर्णाश्रम धर्म के समर्थक थे अत वे सन्त कवियो के कृतित्व को पसन्द नही कर सके। उनके शिष्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र की भी वही दृष्टि है। नन्ददुलारे वाजपेयी का भी यही दृष्टिकोण है। हजारी प्रसाद द्विवेदी समाजवाद से प्रभावित हैं अत उनके विश्लेषण मे अध्यात्मवाद के ध्वसावशेष रहने पर भी सतकवियो का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वर्गगत आधार उनके विश्लेषण मे स्पष्टत स्वीकृत है। डा० रामविलास शर्मा स्पष्टत वर्गसघर्ष की भूमिका को स्वीकार करते हैं किन्तु सन्तो और भक्तो का अन्तर न मानकर वे दोनो के समान तत्त्वो पर बल देते है किन्तु इन दोनो मे क्या अन्तर है यह स्पष्ट नही करते। तुलसीदास की वर्णाश्रमव्यवस्था सम्बन्धी मान्यताओ का विरोध करने पर वे ऐसी चौपाइयो को प्रक्षिप्त कह देते हैं। वह प्राचीनतर साहित्य और धर्म म वर्णाश्रम विरोधी प्रवृत्तिया और वर्ण समर्थक प्रवृत्तिया को अलग नही करते फलत उलझन उत्पन्न होती है और नन्ददुलारे वाजपेयी और डा० रामविलास शर्मा म इस दृष्टि से अन्तर लुप्त होने लगता है।

यह स्पष्ट है कि भारतीय समाज म वर्णाश्रम विरोधी प्रवृत्तिया म वर्गसघर्ष सबसे अधिक स्पष्टता के साथ मुखरित हुआ है। भक्ति आन्दोलन मूलत इसी भूमिका म परखा जाना चाहिए। बाद म भक्ति के दो स्वरूप हुए प्रथम वर्ण निराधी शवो नाथो और सन्तो की भक्ति और दूसरी वैष्णवो की भक्ति। इन दोनो म समान तत्त्व भी हैं पर मौलिक भेद भी हैं।

अत वर्गसघर्ष के सिद्धात को स्वीकार किए बिना साहित्य दर्शन और कला के रूप म जिस सौन्दर्य की व्यजना हुई है उसकी पृष्ठभूमि म

स्थिर 'यथार्थ या सत्य' का पता नहीं लग सकता। न साहित्य के विकास को समाज के सामान्य विकास के साथ सम्बद्ध किया जा सकता है। हां यदि कोई 'साहित्य' को समाज के विकास से निरपेक्ष मानना हो तो बात ही दूसरी है। समाज के विकास को आदर्शवादी भी मानते हैं किन्तु उनका विकास कल्पित है क्योंकि विकास अन्तर्स्थित द्वन्द्व के कारण होता है अतः 'गति' को देखना किन्तु 'गति' के अन्तस की उपेक्षा करना आदर्शवाद है। मजा यह है कि विकास से सम्बन्धित अपने अभाव को छिपाने के लिए आदर्शवादी सदैव 'भारतीय संस्कृति' या 'भारतीयता' का नारा लगाता है। जैसे भारतीय संस्कृति का विकास भारतीय समाज के द्वन्द्वात्मक विकास से असम्बद्ध है।

समाज के विकास में 'दासप्रथा' की भूमिका डा० रांगेय राघव भी स्वीकार करते हैं। उन्होंने प्राचीन 'भारतीय परम्परा और इतिहास' नामक ग्रन्थ में भारतीय संस्कृति प्रवाह और साहित्य को इसी दृष्टि से देखा है। डांगे की प्राचीन भारत पर पुस्तक, डा० कोसाम्बी की पुस्तक (भारतीय इतिहास का परिचय—अंग्रेजी में), 'लोकायत' (डी० चट्टोपाध्याय) उक्त 'भारतीय परम्परा और इतिहास' तथा डा० रामविलास शर्मा की 'मानव-सभ्यता का विकास'—इन कतिपय पुस्तकों से भारतीय इतिहास सम्बन्धी धारणा पर कुछ प्रकाश पड़ता है। अभी तक भारतीय इतिहास के विभिन्न युगों पर गम्भीरतम और पूर्ण कार्य नहीं हो सका है अतः साहित्य के विद्यार्थी को उलझन हो रही है। फिर भी उक्त कृतियों से यह स्पष्ट है कि भारतीय इतिहास का विकास भी आदिम साम्यवाद, सामन्तवाद और पूंजीवाद—इन्हीं मार्क्सवादी कोटियों में हुआ है। डा० रांगेय राघव महाभारत के युग तक 'दासप्रथा' को भी निर्णायक व्यवस्था के रूप में मानते हैं परन्तु तथ्यों से दासप्रथा भारत में निर्णायक व्यवस्था के रूप में प्रमाणित नहीं होती। प्रतिक्रियावादी जब तक भारतीय इतिहास के इस विकास का खण्डन नहीं करते, तब तक 'इतिहास-वाद' की वृद्धि ही होगी और वास्तविकता तो यह है कि अभी इतिहास को द्वन्द्वात्मक दृष्टि से परखने की ओर हम उन्मुख ही हुए हैं अतः इस क्षेत्र में अभी बहुत कार्य शेष है। साहित्य की द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी व्याख्या में सबसे बड़ी कठिनाई केवल इतिहास के प्रति आदर्शवादी धारणा ही नहीं है अपितु द्वन्द्वात्मक दृष्टि का विश्वासी विद्वत्वर्ग भारतीय इतिहास को पूर्ण वैज्ञानिक रूप में अभी तक प्रस्तुत नहीं कर पाया। यही कारण है कि शोधग्रन्थों में साहित्य का अनुशीलन प्रतिक्रियावादी इतिहासों से कुछ पृष्ठ नकल करके अपने कर्तव्य से मुक्त हो जाता है। ऐसी शोधों में इतिहास अलग दिखाई पड़ता है,

धर्म अलग और साहित्य अलग। रीतिकाल की भूमिका (नगेन्द्र) राधावल्लभ सम्प्रदाय (विजयेन्द्र स्नातक) रामभक्ति में रसिक साधना (भगवतीसिंह) आदि शोधों में यही प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। काव्यशास्त्र को तो इतिहास से परे माना जाता है अतः भरत के समय की परिस्थितियाँ और जयदेव और पंडितराज के समय की सामाजिक व्यवस्था में महान अन्तर होने पर भी इनकी धारणाओं को तात्कालिक व्यवस्था से सम्बद्ध नहीं किया जाता। हिन्दी में सुपर स्ट्रक्चर का अनुशीलन ही अधिक हुआ है किन्तु उसका मूलभूत आर्थिक व्यवस्था तथा अन्य सामाजिक सम्बन्धों से क्या सम्बन्ध रहा है इस ओर कार्य बहुत कम हुआ है। सामाजिक चिंतन की भ्रान्ति के कारण साहित्यिक अनुशीलन भी कल्पनाओं पर अधिक आश्रित है।

इतिहास के प्रति भौतिकवादी धारणा इन तथ्यों से स्पष्ट होती है—

(१) समाज का विकास यथार्थ (Objective) नियमों पर आधारित है जिनकी शोध सम्भव है।

(२) राजनैतिक संस्थाओं धार्मिक सम्प्रदाय दर्शन काव्य कला विधि आदि का विकास समाज के भौतिक जीवन के विकास के अनुरूप होता है।

(३) उक्त संस्थाएँ और सम्प्रदाय दर्शन काव्य कला आदि युग विशेष में तत्कालिक भौतिक जीवन के अनुरूप विकसित होकर भी, भौतिक जीवन (Material life) को प्रभावित करते हैं।

प्रथम भौतिकवादी धारणा को स्पष्ट करने के लिए उदाहरण लें। यदि हिन्दू धर्म के उदय और विकास को समझना है तो इसके लिए इसके उदय के समय की भौतिक परिस्थिति को समझना होगा। हिन्दू धर्म का विकास समाज के सामान्य विकास को प्रतिबिम्बित करता है। इसी प्रकार बौद्ध जैन वैष्णव शैव धर्मों आदि का अध्ययन वैज्ञानिक हो सकता है। इसी प्रकार पतंजलि का विकास आस्तिकतावाद बुद्धिवाद नास्तिकतावाद भक्तिवाद आदि दर्शनों के विकास के लिए भी भौतिक परिस्थितियाँ ही उत्तरदायी हैं। इन भौतिक परिस्थितियों में उत्पादन के साधन तथा उनके अनुसार निश्चित मानवीय सम्बन्धों का अध्ययन करने से दर्शन धर्म काव्य आदि का स्वरूप स्पष्ट होता है। विकास को समझने समय अंतर्निहित द्वन्द्व को समझना होगा जो नया हो रहा है।

द्वितीय भौतिकवादी धारणा के अनुसार समाज के विकास में निर्णायक

तत्व सर्वदा 'आर्थिक' होते हैं। यह बात "अध्यात्मवादी" विचारक को पसद नही आती किन्तु यह कोई सर्वथा अदभुत बात नही है—'अर्थ' को मूलाधार रूप मे बहुत से भारतीय विचारको ने भी माना है। पुरुषार्थ चतुष्टय मे 'अर्थ' ही मूल माना गया है। मार्क्स ने सिर्फ इस सिद्धान्त को पूर्णता दी है अत काव्य, दर्शन, धर्म आदि को समझने के लिए भी इस मूलाधार—यानी उत्पादन के साधनो का युग विशेष मे विकास, उत्पादन का स्वरूप, उसकी वितरण-व्यवस्था, वर्गों का जन्म, उनके आपस मे सम्बन्ध और वर्गसघर्ष—इस मूलाधार को समझे बिना काव्य मे भी व्यक्त धारणाओ भावनाओ और उनके 'सौन्दर्य' का स्वरूप नही समझाया जा सकता।

इस मूलाधार को समझ लेने पर कवि के 'उद्देश्य' और भाव का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। इतिहास के विकास मे विभिन्न दल, वर्ग आदि भाग लेते हैं। भौतिक परिस्थितियो के कारण उनके उद्देश्य, रुचि, भाव आदि भिन्न भिन्न होते हैं। इस भिन्नता को 'मूलाधार' की व्याख्या के बिना समझाया ही नही जा सकता। उदाहरण के लिए 'प्रगतिवाद' शोषितो की हिमायत करता है, यथार्थवाद को अपनाता है, क्या ? क्योकि वह अधिकतर शोषितो और उनसे वास्तविक सहानुभूति रखने वालो का साहित्य है। इसके विपरीत प्रयोगवादी साहित्यस्रष्टाओ मे मध्यवर्ग के ऐसे बहके हुए युवक हैं, जिनके सम्मुख समाज का स्वरूप स्पष्ट नही है। वे "ईमानदारी" से अपनी व्यक्तिगत विशिष्टता को वाणी देते हैं, परन्तु उनकी भावनाएँ प्राय प्रगति के प्रति जागरूक जनता के विरोध मे जाती है और इस प्रकार वे प्रतिक्रियावादी बन जाते हैं। आज की सामाजिक व्यवस्था को बिना समझे हुए प्रगतिवाद और प्रयोगवाद को नही समझा जा सकता। साहित्य इस 'मूलाधार' से सर्वथा स्वतन्त्र सौन्दर्य' की सृष्टि करता है, वह वर्ग से परे सामान्य मानव को अपील करता है, यदि यह कहा जाय तो इसका उत्तर यह है कि सामान्य मानव के लिए जो साहित्य लिखा गया है या लिखा जाता है, उसमे भी 'मूलाधार' की अप्रत्यक्षरूप से व्यजना होती है। 'प्रेम' को शाश्वत वृत्ति माना जाता है परन्तु वह बराबर बदलता आया है। वात्सल्यवर्णन वर्ग से परे प्रत्येक को अपील करता है, किन्तु इसमे 'मानवीय-सम्बन्ध' और सौन्दर्य की ही व्यजना होती है—कादम्बरी के वात्सल्यवर्णन और सूरसागर के वात्सल्य वर्णन मे अन्तर है। 'बाण' का वात्सल्य वर्णन दरबारी है, सूर का जनवादी, क्योकि सूर दरबारी कवि नही थे, अत सूर का सामाजिक सम्बन्ध बाण के सामाजिक सम्बन्ध से भिन था अत उनके वात्सल्य-वर्णन मे भी अतर है। तुलसी के वात्सल्य-वर्णन मे जो

सहजता नहीं है उसका कारण तुलसीदास द्वारा परम्परा का पालन है, फिर भी 'वाण' से यह जनता के अधिक निकट है।

वन प्रेम, वात्सल्य, भूख जैसी स्थायी वृत्तियाँ प्राकृतिक हैं, ये हमेशा रहेंगी परन्तु इनका स्वरूप-निर्धारण समाज के विकास के अध्ययन द्वारा ही हो सकता है। अन वर्ग से परे साहित्य नहीं है—कालिदास, तुलसी, सूर, प्रसाद और अन्य के प्रमचित्रण में इनका अपना-अपना युग बोलता है और 'युग के इस बोलने' में मूलाधार की प्रतिध्वनि भी साफ सुनाई पड़ती है।

सूर ने वात्सल्यचित्रण किया। उन्हें क्या पता था कि आगे कारखाना में, खानों में और बाजारों में 'बालगोविन्द' की क्या दशा होगी। जो पूँजीपति सूरसागर को पढ़कर विह्वल हो उठता है, वही 'जसोदा के लाला' पर दया नहीं दिखाता। वर्गसंघर्ष जब तीव्र नहीं था तब इधर ध्यान नहीं गया किन्तु आधुनिक साहित्य में इधर अधिक ध्यान गया फलत शोषकों पर आक्रोश और शोषित बालगोविन्दों के प्रति करुणा का वर्णन हुआ, यह वाल्मीकि की ही परम्परा है परन्तु इस 'वर्गगत' मानकर यह कहना कि वास्तविक साहित्य वर्ग से परे है शुद्ध शोषकों का समर्थन है, यह स्पष्ट बात कटु है, पर सही है।

शृंगार पढ़कर पूँजीपति, मजदूर सभी को आनन्द आता है इस तथ्य की पृष्ठभूमि में भी समाज है। सच्चाई यह है कि उज्ज्वल या उदात्त शृंगार की जो दोनों वर्ग प्रशंसा करते हैं, उसका कारण यह है कि उसका एक नैतिक प्रभाव शुभकर लगता है जैसे रामचरितमानस में सीता राम के प्रेमवर्णन में। राधा-कृष्ण के स्वच्छन्द प्रेम वर्णन में इसलिए आनन्द आता है कि 'प्रेम' के मार्ग में दम्भियों ने नाना व्यवधान उपस्थित कर दिए हैं, साथ ही समाज के विकास में हम यह उचित और आवश्यक समझते हैं कि एक व्यक्ति एक से ही प्रेम करे अन एक के प्रति समर्पण हमें इतना प्रिय है। हमारे मन के भीतर इस समर्पित प्रेम के वर्णन से यह संस्कार संतुष्ट होता है कि ऐसा प्रेम ही कल्याणकारक है किन्तु इतिहास गवाह है कि प्रेम के अन्य रूप भी प्रचलित थे और उनका कविगण उत्साह से वर्णन करते थे। रसवादियों ने भी यही माना है कि युगधर्म के अनुसार जो मान्यताएँ हों, उनके औचित्य की रक्षा होनी चाहिए।

इस प्रकार साहित्य का इतिहास समाज के सामान्य इतिहास से ही सम्बद्ध होता है। साहित्य की किसी भी अवस्था का निरूपण रूप में नहीं देखा जा सकता। 'रसवादी' साहित्य के समय कवि समाज के प्रति इतना जागरूक नहीं

था, जितना आज है, तब वर्गसघर्ष तीव्र नही था अत आज रसवादी साहित्य की ही सृष्टि हो, मनुष्य ने जिस 'सत्य' को पहचाना है, उसे उपेक्षित किया जाय, यह गलत है। यदि नवीन 'सत्य' की वर्णना आकर्षक नही है, उसमे 'ईमानदारी' का अभाव है तो वह 'प्रचार' हो जाएगा और साहित्य मे उसकी गणना न होगी। यह हमारी असमर्थता होगी न कि उस 'सत्य' की, जो पुकार-पुकार कर आज के कवि से कह रहा है कि समाज के वास्तविक रूप को समझो और उसे वाणी दो। निश्चित रूप से शोषको का दल उसे 'प्रचार' कहेगा परन्तु शेष जनता उसका अभिनन्दन करेगी। शोषको के जान-अनजान मे समर्थक भी उसे प्रचार कहेगे किन्तु उनकी चिन्ता भी व्यर्थ है। वे बहके हुए लोग हैं, राह पर आजाएँगे, उनके विरोध से डर कर उन्ही के स्वर मे स्वर मिलाकर बोलने लगना तो नूतन सत्य के प्रति विश्वासघात होगा। समाज की अब तक की प्रगति को परख कर जो दायित्व हमे पुकार रहा है, उसके प्रति हमारी गद्दारी होगी। सन् ३५-३६ के बाद इसी नवीन सामाजिक सत्य की व्यजना कथा, काव्य, आदि मे हो रही है और दिन पर दिन समाजवादी मानसिक स्थिति पुष्टतर हो रही है। इसके दबाव को स्वय सरकार महसूस कर रही है। अत साहित्य को इस प्रवृत्ति से वचित कर देना गलत होगा।

प्रगतिवादी धारणा यह है कि विचार और सस्थाओ का स्वरूप-निर्धारण, अतिम विश्लेषण मे भौतिक जीवन द्वारा ही होता है। काव्य के स्वरूप निर्धारण के विषय मे भी यही सत्य स्वीकृत है और उक्त व्याख्या से प्रमाणित भी होता है। अत निम्न मध्यवर्ग और मध्यवर्ग का एक वर्ग प्रगतिवाद के साथ है और एक प्रयोगवाद का एक आदर्शवाद का भी हिमायती है। आदर्शवादी और प्रयोगवादी कहता है कि वह वर्ग-चेतना से परे है परन्तु इतिहास के अध्ययन मे व्यक्ति या दल की 'कथनी' के पीछे पूरी ईमानदारी होने पर भी देखा यह जाता है कि जो 'प्रेरणा' वह 'कथनी' उत्पन्न करती है, वह सामान्य जनता का हित करती है या अहित। साहित्य मे आकर्षक शैली ही सब कुछ नही है, 'सवेदना' का स्वरूप भी महत्त्वपूर्ण है अत प्रतिक्रियावादी जिस 'सवेदना', प्रेरणा या भावना को जन्म देता है, उसका विरोध आवश्यक है।

मध्ययुग मे योरोप मे प्रोटेस्टैण्ट मत के लिए लोग लडे। साहित्य और व्यवहार दोनो क्षेत्रो मे विराट सघर्ष हुआ। किन्तु क्या यह युद्ध केवल विचारो का ही सघर्ष था। धार्मिक युद्धो ने नए राज्यो को जन्म दिया और पूँजीवाद की नीव पडी। प्रोटेस्टेण्ट मतावलम्बी विचारो का जन्म नए वर्ग और उत्पादन के नवीन सम्बन्धो के कारण हुआ था। इसी प्रकार हिन्दी काव्य मे प्रगतिवादी साहित्य

के विरोधी जो नए नए तर्क प्रस्तुत कर रहे हैं और सैद्धांतिक संघर्ष चल रहा है उसकी पृष्ठभूमि में आधुनिक समाज के पूँजी सम्बन्धों की ही अभिव्यक्ति है। प्रगतिवादी चाहते हैं विषमता मिटे प्रतिक्रियावादी चाहते हैं विषमता की रक्षा हो। एक आज़ादी को आवश्यक मानता है दूसरा निरपेक्ष आज़ादी की माँग करता है। एक मानव मूल्यों का मर्म यह मानता है कि मानव द्वारा मानव का शोषण और दमन बन्द हो दूसरा कहता है कि शोषण चाहे समाप्त न हो परन्तु हमारी आज़ादी और विशिष्टता की रक्षा हो। अतः प्रगतिवादी कहता है कि तुम जनद्रोही हो प्रयोगवाद कहता है कि तुम्हारा जनवाद झूठा है।

किन्तु यह समझना गलत होगा कि काव्यगत आन्दोलनों में प्रत्येक भाव प्रत्येक मानसिक स्थिति प्रत्येक संवेदन सीधा मूलाधार से सम्बन्धित है। मानव जीवन संकुल जीवन है अतः समाज की यथार्थ दशा के वर्णन में वर्ग संघर्ष स्पष्ट सुनाई पड़ता है किन्तु प्रकृति या प्रेम वर्णन में सार्वभौमिक पार्श्वों का चित्रण मिलता है। प्रयोगवाद में भी सर्वत्र प्रतिक्रियावाद नहीं है विशेषकर प्रकृति चित्रण में प्रयोगवाद में आकर्षक छवियों को पकड़ने की बहुत जगह प्रवृत्ति मिलती है। उसका नवीन शैली और नई उपमाओं के प्रति भी आग्रह है। सब जगह आरोपित अवसाद और कुण्ठा भी नहीं है अतः विकास को सीधा न समझ कर उसे समग्र रूप में गहराई के साथ देखना होगा।

समाजवाद समाजवादी विचारधारा समाजवादी भावना और समाजवादी सौन्दर्य-बोध के बिना स्थापित नहीं हो सकता प्रगतिवादी आन्दोलन का यह मर्म है। बिना विचार के जन आन्दोलन संगठित नहीं हो सकता बिना साहित्य के समाजवादी राष्ट्र के जीवन के विविध पक्षों का स्वरूप निर्धारण नहीं हो सकता अतः मार्क्सवाद कला और विचार को सादृश्य मानता है।

प्रगतिवादी काव्यधारा—हिन्दी में प्रगतिवादी आन्दोलन का उद्देश्य स्पष्ट था—पूँजीवाद और सामन्तवाद के विरुद्ध संघर्ष और भारतवर्ष में समाजवाद की स्थापना। छायावाद के कवि ने इन्हीं समाजवादी विचारों के प्रति आकर्षित होकर कहा था—

> तुम वहन कर सको जन मन में मेरे विचार।
> वाणी मेरी चाहिए तुम्हें क्या अलंकार?

काव्य प्रक्रिया की दृष्टि से देखा जाय तो यह एक भूल भी थी क्योंकि काव्य केवल विचारों की घोषणा नहीं है। यह सही है कि कभी सत्य की

घोषणा ही काव्यमय लगती है। कबीर सीधे सीधे विचारो की घोषणा कर जाते है परन्तु विचार की ऊष्मा कितनी प्रिय लगती है! फिर भी काव्य मूलत घोषणा नही, व्यजना है। विचारो, भावो और कल्पनाओ का मूर्तीकरण करना पडता है अत छायावाद के अत्यधिक अलकृत काव्य के बाद कुछ समय तक विचारो के वमन मे ही आनन्द आता रहा परन्तु शीघ्र ही उस पर 'प्रचार' का आरोप लगा जो अशत सही था किन्तु यह आरोप अशत गलत भी था क्योकि प्रगतिवाद मे काव्य का अश भी कम नही है।

'पुष्पप्रसू' कविता मे पन्तजी ने कवि की गगन ताकने" और "मृत्यु नीलिमा गहन गगन' मे मग्न रहने की प्रवृत्ति का ललकारा। इस कविता मे केवल प्रचार है ऐसा कौन कह सकता है ?

> देखो भू को, अविप्रसू को
> हरित भरित, पल्लवित, मर्मरित कुजित गु जित भू का।
> कल कल छल छल जल जल निर्मल
> कुसुम खचित, मारुत सुरभित, खगकुल कूजित
> प्रियपशु मुखरित जिस पर अकित, सुरमुनि वन्दित
> मानव पदतल!

पुष्पप्रसू १६३८ की रचना है। इसी वर्ष की रचना 'चीटी' मे भी विचारो का वमन नहीं है, प्ररणा की गूँज है। इसी वर्ष की रचना 'झझा म नीम" रचना म प्रकृति प्रेम का नवीन सहज रूप है, रूपलिप्सा मात्र यहाँ नही है। १६३६ की रचना 'भारतमाता मे भारत की जो मूर्ति पन्त जी ने अकित की है, वह आजतक बेजोड है—

> दैन्य जडित अपलक नत चितवन
> अधरो म चिर नीरव रोदन
> युग युग के तम से विषण्ण मन
> वह अपने घर मे प्रवासिनी!

छायावादी छन्द मे पन्त जी ने नवीन भावनाओ को वाणी दी—

> कहाँ खोजने जाते हो, सुन्दरता औ आनन्द अपार।
> इस मासलता से है मूर्तित, अखिल भावनाओ का सार।

चिदम्बरा' मे पन्त जी ने कहा है कि "युगान्त तक मेरी भावना मे नवीन के प्रति एक आग्रह उत्पन्न हो चुका था"। उन्होंने "द्रुतझरो जगत् के जीर्णपत्र' और "गा कोकिल बरसा पावक कण' को उद्धृत भी किया है।

ग्राम्या के भावपक्ष मे—जिसे मैंने कोरी भावुकता से बचाकर सहानुभूतिपूर्वक, मान्यताओं के प्रकाश म सवारा है–लोक जीवन के कलुष पक को धोने के लिए नए मानव की अतर पुकार है। अर्थात ग्राम्या मे प्रचार नहीं है। किन्तु युगवाणी मे अवश्य पन्त जी ने प्रचार को स्वीकार किया है। पन्त जी ने बताया है कि मार्क्सवाद का जटिल पक्ष उनके भाई स्वर्गीय देवीदत्त पन्त से उन्होंने समझा और पूरनचन्द जोशी और देवीदत्त के प्रभाव से उन्होंने अपनी ढीठ कल्पना के सहारे मार्क्सवाद के गहन कान्तार को पार किया। पन्त जी ने लिखा है कि तब हिन्दी म सम्भवत इस प्रकार की कविता का जन्म भी नही हुआ था जो पीछे प्रगतिशील कहलाई। युगवाणी की रचनाएँ ३७ ३८ मे लिखी गई ग्राम्या की रचनाए ३९ ४० की हैं। इस प्रकार पन्त जी का प्रगतिवाद को योगदान स्पष्ट है।

निराला के अन्धभक्तो ने पन्त जी द्वारा प्रगतिशील आन्दोलन को जो उनकी देन थी उसे कम करके आँका है। इस पर खीझते हुए पन्त जी ने ठीक ही लिखा है छायावाद त्रयी या चतुष्टय से केवल मैं ही अप्रगतिशील लगता हू और वे सब प्रगतिशील लगते है सम्भवत तब युगदायित्व के प्रति पूर्णत प्रबुद्ध भी न थे तो मैं उनका प्रतिवाद नहीं करता।

कुत्सित समाजशास्त्र पर पन्त जी का यह प्रहार सही है।

यह भी उल्लेखनीय है कि पन्त जी प्रगतिवाद को छायावाद का ही विकसित रूप मानते हैं। छायावाद की मानववादी धारा ही आगे चल कर प्रगतिवाद का रूप धारण करने लगी और छायावाद का शिल्पप्रियता प्रयोगवाद मे। इसका अर्थ यही लेना चाहिए कि प्रगतिवाद की विचारधारा नवीन थी परन्तु उसके लिए आधार प्रस्तुत हो चुका था। (रश्मिबन्ध की भूमिका)

पन्त जी की युगवाणी युगान्त और ग्राम्या म सकलित रचनाओ मे प्रगतिवाद के विचार प्रधान तथा चित्रणात्मक दोनो रूप मिलते हैं। विचार प्रधान कविताओ म आवेश कम विश्लेषण अधिक है जैसे मार्क्स के प्रति गान्धी जी के प्रति तथा ग्रामदेवता आदि रचनाओ म विश्लेषण की प्रवृत्ति अधिक है। शैली अभिधा प्रधान है परन्तु विचारो की नवीनता के कारण रचनाकार म य रचनाएँ जनप्रिय हुई। ताज जैसी रचनाओ को दृष्टिकोण की नवीनता और किंचित आवेश के कारण अच्छा सम्मान मिला आज भी वह प्रभावित करती हैं। ग्राम जीवन के चित्रण म पन्तजी ने अपनी सौन्दर्यवादी दृष्टि का प्रयोग किया है अन लोक जीवन के आकर्षक पक्ष प्रस्तुत किए गए जिनमे

प्रचार हरगिज नही है लोकश्री की मार्मिक झाकियाँ हैं। घननाद जैसी रचना म मावगीत की ध्वनि है। प्रकृति को देखकर मानवीय जीवन के प्रति करुणात्मक भावनाओ को भी वाणी दी गई है—

> प्राप्त नहा मानव जग को यह मर्मोज्वल उल्लास।
> जो कि तुम्हारी डाल डाल पर करता सहज विलास[1]

यह दुख का विषय है कि पतजी अपने प्रारम्भिक सस्कारवश पुन अध्यात्मवाद की ओर लौट पड और पुन मृयु नीलिमा गहन गगन की ओर ताकने लगे। पुन पगम्बरी मुद्रा धारण करने वाली परिस्थिति सन ४० के बाद थी नही अत उनका अरविन्दवाद जो विदेशी साम्राज्यवाद के समय देशी सस्कृति के प्रचार के रूप मे प्रगतिशील बन सकता था अपनी शक्ति खो बठा वह केवल रहस्यवादि प्रिय पाठको तक ही सीमित रह गया।

पत जी की उक्त तीन कृतियो के विषय मे प्रगतिवादी आलोचको म मतभेद रहा है। शिवदानसिह चौहान ने लिखा था आधुनिक हिन्दी काव्य साहित्य में यह विकास बेजोड है[1] शिवदानसिह चौहान भगवतीचरण वर्मा दिनकर और नवीन के काय के ध्वसवाद की निन्दा करते हुए पत जी के उक्त क्रान्ति की आकाक्षा से युक्त काव्य की अधिक प्रशसा करते हैं। किन्तु डा० रामविलास शर्मा पत जी के इस काव्य को उतना महत्त्व नही देते। पत जी ने *रश्मिबन्ध की भूमिका मे प्रगतिवाद की सीमाओ पर अच्छा लिखा है*— काव्य की दृष्टि से उसका (प्रगतिवाद का) सौदयबोध पूँजीवादी तथा *मध्यवर्गीय भावना की प्रतिक्रियाओ* से पीडित रहा। उसका भावोद्वेग किसी जनवादी यथाथ तथा जीवन सौन्दय को वाणी देने के बदले केवल धनपतिया तथा मध्यवृत्ति वालो के प्रति विद्वेष और विक्षोभ उगलता रहा।

वस्तुत इस प्रगतिवाद म वीर रस और करुण रस तथा रौद्ररस स सम्बन्धित वाणी ही प्रारम्भ म अधिक दिखाई पडी और इसे बबर विशेष कह कर उपेक्षित नही किया जा सकता किन्तु पन्त जी के कथन मे इतना सत्य अवश्य है कि प्रगतिवाद ने जीवन के सौन्दय का चित्रण प्रारम्भ मे कम किया किन्तु प्रगतिवादी कविताओ म आगे चल कर जीवन सौन्दय का भी चित्रण हुआ है जसा कि हम देखेंगे।

---

१ सुमित्रानन्दन पन्त—युगवाणी और ग्राम्या साहित्यानुशीलन, पृष्ठ १८१।

बहरहाल दिनकर अचल नरेन्द्र नवीन आदि के रुद्र स्वर के साथ साथ पन्त जी की जीवन सौन्दर्यात्मक वाणी भी सुनाई पडी। जीवप्रसू भारत *माता मे वस्तुत यही दृष्टि मिलती है। यही दृष्टि ग्राम्या की अधिकतर* रचनाओ से मिलती है। आगे चलकर प्रगतिवादी सौन्दय-बोध का इसी परम्परा मे विकास हुआ। कहना न होगा कि इन दोनो दृष्टियो की आवश्यकता थी स्वय पन्त जी मे गा कोकिल बरसा पावक कण की परम्परा और ग्रामश्री अकित करने की परम्परा—साथ साथ चली है। अत ध्वस और निर्माण अभावात्मक और भावात्मक—दोनो स्वर प्रारम्भ मे भी सुनाई पड परन्तु प्रारम्भ मे समग्रत रौद्रता और उत्साह अधिक था।

पन्तजी स्वप्नदर्शी कवि हैं अत ग्राम्या की प्रथम कविता मे ही वग हीन राज्य का स्वरूप अकित है। यह स्वप्न ऐतिहासिक दृष्टि से सम्भव होने *के कारण ज्योत्स्ना के स्वग से बहुत अधिक प्रगतिशील है। पन्त जी ने ग्राम* जीवन की दुदशा का चित्रण अभिधावादी शैली मे ग्रामचित्र मे किया है—

> झाड फूस के विवर—यही क्या जीवन शिल्पी के घर ?
> कीडो से रगते कौन ये ? बुद्धि प्राण नारी नर !

किन्तु *ग्रामयुवती म* उन्होने रोमानी दृष्टि से *ग्रामीण सौन्दय* को देखा है जिस पर महादेवी ने व्यग्य किया था कि प्रगतिवादी कवि जायका बदलने के लिए ग्रामीण तारुण्य का वणन करते हैं—

> खीचती उबहनी वह बरबस
> चोली से उभर उभर कसमस
> खिचते सग युग रस भरे कलश
> जल छलकाती रस बरसाती
> बलखाती वह घर को जाती !

फिर भी छायावाद से इस मादक चित्रण म अन्तर यह है कि इस कविता क अन्त मे कवि दु खो के कारण इस सौन्दय के नष्ट हो जाने का भी वणन करता है—

> रे दो दिन का उसका यौवन !
> सपना छिन का रहता न स्मरण !
> दु खों से पिस दुर्दिन म घिस
> जजर हो जाता उसका तन !

नारी मे भी कवि ने ो को वह शोभा पात्र नही कुसमादपि मृदुल नैसर्गिक जीवन सम्र चालित कहा है अत ग्राम्या' मे छायावाद ी भावना का अवशप रहन पर भी कवि का दृष्टिकोण यथाथ को स्वीकृति ा है। यह दृष्टि ग्रामवधू मे अधिक स्पष्ट है जिसम ग्रामीणा की विदा का दृश्य अंकित है। आधुनिका मे कवि ने आधुनिक नितलियो पर कठोर व्यग्य किया है।

ग्राम्या ग्राम-जीवन की दुदशा और उसकी छवियो का दपण है।

ग्राम्या म भी कवि पूणत मार्क्सवाद को स्वीकार नही कर सका वह गाधी के आदश और भारतीय अध्यात्मवाद और मार्क्सवाद के समन्वय पर भी बल देता है'— अय साम्य भी मिटा न सकता मानव जीवन के दु ख मे यही ध्वनि है। किन्तु समग्रत ग्राम्या प्रगतिवादी काव्य का उज्ज्वल स्तम्भ है।

पन्तजी के नवीन काव्य मे लक्षणात्मक भाषा के स्थान पर अभिधा का प्रयोग अधिक हुआ है। सस्कृत की तत्सम शब्दावली की मात्रा कम हुई है और उपमान विधान विश्लिष्ट और सरल है। 'रेखाचित्रात्मक काव्य प्रवृत्ति ग्राम्या की विशेषता है। जो प्रगतिवाद को प्रचार कहते हैं उन्ह ग्राम्या का शान्ति से अध्ययन करना चाहिए।

निराला मार्क्स से प्रभावित हुए थे यह हम कह चुके हैं। निराला ने प्रसाद की तरह यथार्थवादी परम्परा को अपनाया था और काव्य के क्षत्र मे अणिमा बेला नए पत्त और कुकुरमुत्ता जैसी रचनाएँ प्रस्तुत की जिनमे नए प्रयोगो म प्रगतिवादी भावनाओ को वाणी मिली है। निराला ने परिमल' तुलसीदास और राम की शक्ति पूजा की सश्लिष्ट पदावली के स्थान पर इन उक्त रचनाओ म सरल बोलचाल की व्यावहारिक भाषा का प्रयोग किया है। कल्पनाएँ जहा प्रतीकात्मक हैं यथा कुकुरमुत्ता मे वहा भी सरलता है। रूपविधान परिवर्तित कर देने पर भी निराला ने वण्यतत्त्व की प्रगतिशीलता को अक्षुण्ण रखा है। काश[1] यह प्रवृत्ति ही आगे विकसित हुई होती। यह विचित्र तथ्य है कि अज्ञेय की प्रारम्भिक कविताओ मे भी रूपतत्त्व प्रयोगात्मक और वण्यतत्त्व प्रगतिशील है अर्थात निराला अज्ञय पन्त नवीन भगवतीचरण वर्मा बच्चन अचल नरेन्द्र रामविलास शर्मा दिनकर आदि समान भूमि पर

---

१ द्रष्टव्य—पन्त जी का नूतन काव्य और दशन—विश्वम्भरनाथ उपाध्याय

स्थित दिखाई पडते हैं किन्तु आगे चल कर अज्ञेय ने प्रयोगवाद के रूप मे वण वस्तु—विचार या दृष्टिकोण बदल दिया और जनवादी भावो के स्थान पर आत्मकेंद्रित तत्वो को वाणी मिलने लगी इसी से तथाकथित प्रयोगवाद प्रगतिवादी प्रयोगवाद से अलग हो गया। इस प्रगतिवादी प्रयोगवाद के सव प्रथम दशन निराला के काव्य म होते हैं। इस प्रकार प्रगतिवाद और प्रयोग वाद मे जिस व्यग्यकाव्य का विकास हुआ है उसका पिछला छोर कुकुरमुत्ता के साथ जुडा हुआ है। कुकरमुत्ता की भाषा भी बोलचाल की भाषा है। गुलाब से जब अकडकर कुकुरमुत्ता बोलता है तो लगता है नया युग पुराने युग को ललकार रहा हो।

अबे सुन बे गुलाब
भूल मत जो पाई खुशबू रगो आब
खून चूसा स्वाद का तूने अशिष्ट
डाल पर इतराता है कैपीटलिस्ट
बहुतो का बनाया है तूने गुलाम
माली कर रक्खा खिलाया जाडा घाम।

× × × × ×

देख मुझको मैं बढा
डढ बालिश्त और ऊँच पर चढा
और अपने से उगा मैं नहीं दाना पर चुगा मैं।

कुकुरमुत्ता अपने युग पर कठोर व्यग्य है। व्यजना का चमत्कार इस काव्य की विशषता है। अभिधावादी शली प्रगतिवाद म सवत्र नहीं है, निराला का काव्य इसका प्रमाण है।

बेला म भी निराला ने पूजीवाद क विरुद्ध आक्रोश प्रकट किया है— देश को मिल जाय जो पूँजी तुम्हार मिल म है।

नए पत्त म कवि ने समाज के प्रति आलोचनात्मक दृष्टि अपनाई है। पन्त जी म जनजीवन की छवियाँ परवर्ती छायावादियो म दृगार और निराला म प्राप्त व्यग्य से प्रगतिवाद के तीन पक्ष स्पष्टत सम्मुख आते हैं। चौथा स्वरूप प्रकृतिचित्रण स सम्बधित ह जो इन सभी कवियो म मिलता है।

नये पत्त की रानी और कानी म कृषक जीवन का वास्तविक चित्रण मिलता है। ग्राम्या म पन्त जी के यथार्थवाद म रोमानी दृष्टि सम्प्रक्त

है किन्तु निराला को ग्राम्य जीवन का वास्तविक ज्ञान है अतः कृषक-जीवन की स्थिति उनमे अत्यधिक स्पष्ट है—

लोग बैठे लेते हैं जमुहाई, ठंडी,ठंडी चलती है पुरवाई।
खरीफ निराई जा चुकी है, नही करने को रहा काम कहीं।
सावन मे भतीजा होने को हुआ, पहले से बुला लाई गई बुआ।

ऐसी रचनाओ मे छायावाद के बाद एक 'ताजगी' अवश्य दिखाई पडती है।

''मास्को डायलॉग' म एक समाजवादी नेता के दम्भ का पर्दाफाश किया गया है। निराला ने पन्तजी की तरह ऐतिहासिक दृष्टि से भी समाज को देखा है जैसा कि पन्त जी के 'ग्राम देवता मे—

वेदो के बाद जाति चार भागो म बँटी, यही रामराज है।
वाल्मीकि ने पहले वेदो की लीक छोडी।
छन्दो मे गीत रचे, मत्रो को छोडकर।
मानव को मान लिया, धरती की प्यारी लडकी
सीता के गाने गाये।

× × × ×

जनता पर जादू चला, राजे के समाज का।
लोक नारियो के लिए, रानियाँ आदर्श हुईं।
धर्म का बढावा रहा, धोखे से भरा हुआ।
लोहा बजा धम पर, सभ्यता के नाम पर
खून की नदी बही!

'ग्राम देवता' मे तथा अन्यत्र भी पन्तजी ने 'ग्राम्या' मे युगान्त और युगवाणी की तरह सैद्धान्तिक भाषा का अधिक प्रयोग किया है। यह सिद्धान्तवादी शब्दावली प्रारम्भिक प्रगतिवाद म बहुत मिलती है। इसके विपरीत निराला सहज ढग से विश्लेषण करत हैं।

निराला ने ग्राम-जीवन के 'प्रमसम्बन्धो पर भी लिखा है और मुक्त होकर ग्राम्यप्रम को वाणी दी है—

बाम्हन का लडका मैं उसको प्यार करता हूँ।
जात की कहारिन वह, मेरे घर की पनिहारिन वह।
आते ही तडका, उसके पीछे मैं मरता हूँ।

फिर भी यह मानना होगा कि प्रगतिवाद मे ग्रामीण जीवन के अन्य अनेक मानवीय सम्बंधों को वाणी नहीं मिली जैसा कि उपन्यास-क्षेत्र में सम्भव हो सका।

निराला ने ग्रामीण जीवन के अंकन को कुण्ठा-नाशक बताया है। प्रकृति वर्णन करते समय एक स्थान पर उन्होंने लिखा है—

नव पल्लवित वसंत धरा पर आया सुखकर।
फूली तुम नवकिसलय दल से वृंत वृंत पर।
कूजित पिक उर मधुर कण्ठ कुण्ठा सब टूटी।

निराला ने सन ४६ मे शहीद छात्रों की मृत्यु पर एक करुण कविता लिखी है। खेद है कि सन ४२ की जनक्रान्ति पर बहुत कम रचनाएँ प्रस्तुत हुई। कवियों की इस उपेक्षा का कारण अस्पष्ट है।

महगू मँहगा रहा मे निराला ने नेहरू जवाहरलाल पर मार्मिक व्यंग्य किया है—वर्ग संघर्ष को निराला जी खूब समझते है—नेहरू जी जनता के भी मित्र हैं और जमींदार और सेठों के भी—*पूँजीवादी नेतृत्व की इस* प्रवृत्ति पर निराला ने कशाघात किया है—

बड़ी जमींदारों को आखों तले रखे हुए।
मिलो के मुनाफा खाने वालों के अभिन्न मित्र।
देश के किसानों मजदूरों के भी अपने सगे।
विलायती राष्ट्र से समझौता करने के लिए।
गले का चढाव बोजआजी का नहीं गया।

नेहरू जी पर बहुत सी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं किन्तु निराला द्वारा उनका विश्लेषण आकर्षक है। यह खेद का विषय है कि आज के प्रगतिवादी काव्य में राजनैतिक चेतना को वाणी देने की प्रवृत्ति कम होती जा रही है। *प्रयोगवाद और अध्यात्मवाद के प्रचार का ही यह फल है—राजनीति साहित्य* मे न आ जाए इसके लिए इधर बहुत प्रयत्न हो रहे है किन्तु साहित्य मनुष्य का समग्र चित्रण है यह मानते हुए भी और साथ ही स्वयं गांधीवादी और अमरिकावादी राजनीति अपनाकर भी और उसके लिए साहित्यिक और सांस्कृतिक मंचों की स्थापना करके भी प्रगतिवादियों का इस प्रकार के प्रयत्नों से अलग रहने का प्रचार किया जा रहा है।

भावुकता, उग्रता और अतिक्रान्तिवाद—भगवतीचरण वर्मा की भैंसागाडी को लोग प्राय विशिष्ट प्रगतिवादी रचना मानते हैं। इस कविता

मे वर्ग सघर्ष अत्यधिक तीव्रता के साथ व्यक्त हुआ था परन्तु उसमे परिस्थति का सश्लिष्ट चित्रण नही था। सपाट चित्रण वर्माजी की प्रगतिवादी कविताओ की विशेषता है—

देखो वैभव से लदी हुई, विस्तृत विशाल बाजार यहाँ।
देखो मरघट पर पड हुए, भिखमगो के बाजार यहा।

'ट्राम' शीर्षक कविता मे भी भैसागाडी की तरह ही सपाट चित्रण हैं—

फिर चौराहे पर ट्राम रुकी, अब चढी एक बुढिया जजर।
थी शिथिल पिंडलिया काप रही, थी हाँप रही था उसको ज्वर।
वे सभ्य और मनचले लोग, चुप बैठ थे बनकर पत्थर!

वस्तुत काव्य मे रेखाचित्र प्रस्तुत करने म ही वमा जी अधिक सफल हुए हैं। मानस की गहराइयो म उतरकर उन्होने जनता का चित्रण नही किया किन्तु उनके काव्यमय रेखाचित्र प्रचलित अधिक हुए।

प्रगतिवादी कवियो मे भाव ज्वार दिनकर, अचल और नरेन्द्र म अधिक दिखाई पडा। छायावाद के अतिम रूप को इन कवियो म अतिम दो ने अपने अहवाद से ही पुष्ट किया था किन्तु इन कवियो पर भी प्रगतिवाद का प्रभाव पडा अत उनका 'अहवाद' उग्रक्रान्तिवाद के रूप मे परिणित हो गया। प्रमावेश ने क्रान्ति के आवश का स्थान ले लिया। अचल मे भाव ज्वार की मात्रा बहुत अधिक है—

माता बनी दूध भर आया किन्तु न भरता पापी पेट।
जननी बन कर भी पशुओ के आगे नग्न सकेंगी लेट?

तथा

क्रान्ति का तूफान जब विश्व को हिलायेगा
य बाजार की असस्कृता निलज्जा नारियाँ
जो कि न योनिमात्र रहकर बनेंगी प्रदीप्त
उगलेंगी ज्वालामुखी। (किरण वेला)

बालकृष्ण शर्मा नवीन के 'कुमकुम' काव्यसग्रह मे यही 'अति उग्रवाद' मिलता है, समाज के विरुद्ध भीषण असतोष ही, 'कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ जिससे उथल-पुथल मच जाए' म व्यक्त हुआ है। दिनकर' मे भी यही 'अतिक्रान्तिवाद है पौरुष की व्यजना उनकी विशेषता है। किन्तु

वह प्राय दिशाहीन होता है अर्थात सिद्धांतत दिनकर के काव्य म कमिया हैं परन्तु उसमे आधी जैसा रोष है जिसका हिन्दी मे एक स्कूल ही चल पडा है। हुकार मे इस प्रकार की अनेक रचनाएँ है। हाहाकार कविता म विषमता का करुण चित्रण है—

> हटी व्योम के मेघपन्थ से स्वग लूटने हम जाते हैं।
> दूध दूध ओ वत्स ! तुम्हारा दूध खोजने हम जाते हैं।

आवेश और उग्रता का तुमुल कोलाहल ही उस काल म प्रगतिवादी कविका का चिह्न बन गया—

नवीन जी की तरह दिनकर ने हाहाकार म छायावादी सौ दयवादिता की मोहकता को स्वीकार करके भी उसके खोखलेपन पर प्रहार किया है—

> जनारण्य से दूर स्वप्न मे मैं भी निज ससार बसाऊ।
> जग का आत्तनाद सुन अपना हृदय फाडने से बच जाऊँ ?
> पर नभ म न कुटी बन पाती मैंने कितनी शक्ति लगाई।
> जठ हो कि हो पूस हमारे कृषकों को आराम नही है।
> छुट बैल से सग कभी जीवन म ऐसा याम नही है।
> मुख म जीभ शक्ति भुज म जीवन म सुख का नाम नही है।
> वसन कहा सूखी रोटी भी मिलती दोनो शाम नही है।

एसी कविताओ को प्रारम्भ म अत्यधिक सम्मान मिला क्योकि छायावाद के कुहास स इन सरल रचनाओ म कोटि-कोटि जनो की वास्तविक भावनाओ का इनम वणन रहता था। अभिधावाद के कारण इह समझने म सुविधा होती थी और यह हकीकत है कि काव्य का दृष्टि से इनम भावुकता की प्रधानता होन पर भी जनआन्दोलन क लिए ऐसी रचनाओ का महत्त्व अधिक था। कवि सम्मेलनो और जनता क विराट समूहो म भी एसी रचनाए अधिक कारगर होती थी और तालो की गडगडाहट स जनता अपना अनुमोदन भी व्यक्त करती थी। किन्तु जिस प्रकार इनम स्टाक शब्दावली चल पडी और पिष्टपषण स वह नीरस लगने लगी उसी तरह इस प्रकार की रचनाए प्रारम्भ म आज उत्पन्न करन म समथ होकर धीरे धीरे अपनी प्राणवत्ता खोने लगी क्योकि इनम कला का अभाव था अर्थात् आवेग आवश्यकता स अधिक था। भावो क वणन क लिए तारतम्य का भी एक अश म आवश्यकता होती है वह इन कवियो म न था अत हल्का है प्रोपगण्डा है इस प्रकार की प्रतिक्रिया श्रोताओ म भी उत्पन्न होने लगी। किन्तु जसा कि कहा जा चुका

है, इस देश मे आज भी करोडो जन ऐसे हैं जिन्हें ये रचनाएँ आज भी प्रभावित करती हैं। श्रोताओ के स्तर अनेक हैं। कम शिक्षित जनता जब सफेदपोशो के मुख से अपने हृदय की बात सुनती है तो वह प्रभावित हो जाती है, जिस प्रकार छायावाद के बाद शिक्षित जनता इन कविताओ को पढकर और सुन कर प्रभावित होती थी। अत काल की दृष्टि से इन रचनाओ का कम महत्त्व नही है। दूसरे इन रचनाओ ने छायावाद के समानान्तर अपना प्रभाव-क्षेत्र बनाया और जनता से अपना सम्पर्क कवि-समाजो के द्वारा बनाए रखा। इमी जनता के बल पर ये कवि प्रौढ काव्य के स्रष्टाओ को कलावादी कहते रहे।

ओ प्रकाश के पिंड ! क्यारवाँ अन्धकार का बढता।
अपनी बाती आप जला कर तुम न मिटो एकाकी।
कोटि कोटि मिट्टी के ये कोरे पुतले हैं बाकी।
किन्तु तुम्हारी लौ युग युग के दलित वर्ग की वाणी।
जिसकी हुङ्कृति मे तनते चिर शोषित शापित प्राणी।

—अचल

वर्ग-चेतना—इस जीर्ण जगत पतझर मे, अभिशप्त तुम्हारा कवि जीवन !
तुम मध्य वर्ग के पोषित शिशु, अपने सपने मे खडे रहे !
युग बढा, दिये दो डग आगे, काँपी धरणी, सिहरा अम्बर !
उगले हिमगिरि ने अगारे, उन्नत प्रासाद हुए खडहर,
तुम भी वातायन से झाँके, बोले कोरी भौतिकता है !
अपनी कायरतावश, कल्पित, स्वप्नो मे लीन हुए सत्वर !
ऊपर पूँजीवादी समाज, नीचे शोषित जनता का स्वर।
तुम आँखें ऊपर कर चलते, मिट्टी जाती है खिसक इधर।
इस तरह प्रतिक्रिया और क्रान्ति दोनो के बीच त्रिशकु बने।
तुम बना मिटाया करते हो, अपनी आशाओ के खँडहर !

यहाँ मध्यवर्ग का शुद्ध वैज्ञानिक विश्लेषण है किन्तु तथ्यकथन या निबन्ध की प्रतिक्रिया को कविता मे उतार देना कविता नही है अत कला की दृष्टि से यह कृति साधारण है परन्तु जैसा कहा गया है कि पहली बार सही विश्लेपण का प्रभाव जनता पर विद्युत जैसा हुआ था अत निबन्ध-प्रक्रिया होते पर भी यह काव्य व्यापक क्षेत्र में जनप्रिय हुआ है।

नरेंद्र शर्मा को भी पूँजीवाद समाज का अच्छा ज्ञान है। अत उनमे भी वगचेतना *अत्यधिक मात्रा मे मुखर हुई है।*—

सदियो के अगार विपले बुझते बुझते भडकगे!
बहुत शोर होगा कैदी के कठिन हथकड तडकेंगे।
देश देश के जन जागेंगे वगस्वाय असि चमकेगी!
दोनो ओर अहम्मद गुम्मट जल बुल्ला से टूटेंगे।

नरेंद्र ने भी निगनिगत की वेदी पर महाकाल की चिर ज्वाला द्वारा माननीय इतिहास यन मे विचारो की आहुति दी है।

आशावाद—भविष्य के प्रति आशा प्रगतिवाद की विशेषता है। सभी कवियो ने भविष्य के चित्र खीचे हैं—

धरा यह सुखदा बनेगी स्वग भी लुट जाय जिस पर।
देव दलि वलि जाय जिन पर मनुज वह मानव बनेंग!
बुद्धि के कारण जहाँ से मनुज निष्कासित हुआ था।
खोज लेंगे लोक वह फिर हाथ से जाने न देंगे।

सन ४६ मे लिखी हुई नरेंद्र शर्मा की कायर मत बन कविता मानो आज के निराशावाद के प्रति व्यग्य है।—

कायर मत बन।
ठोकर मार पटक मत माथा तेरी राह रोकते पाहन!
ले देकर जीना क्या जीना? कब तक गम के आँसू पीना?
मानवता ने सीचा तुझको बहा युगो तक खून-पसीना।
कुछ न करेगा? जिया करेगा रे मनुष्य बस कातर क्रन्दन?
कायर मत बन!

आचलिकता—प्रगतिवादी काव्य के इतिहास म रूपाभ का प्रकाशन (सन १९३८ ई०) एक घटना क रूप म स्मरण किया जाता है। रूपाभ के सम्पादक सुमित्रानन्दन पत का निराला जी का भी सहयोग मिला। निराला आदि की रचनाओ पर चौव बनारसीदास जी ने घासलेटी साहित्य का आरोप लगाया था जिसका उत्तर रूपाभ ने दिया था। डा० रामविलास शर्मा निराला जी पर आक्षप होते देखकर ही आलोचक बने।

रूपाभ म निराला पत जी के अतिरिक्त रामविलास शर्मा की भी कविताए प्रकाशित हुई थी। आप की रचनाओ म आचलिकता अथवा स्थानीयता बहुत अधिक मिलती है जो काव्य म एक ताजगी ला देती है। छायावाद

के बाद यह प्रवृत्ति वास्तविक जनछवि की ओर पाठकों को प्रवृत्त करती थी। कल्पना के झिलमिल सौंदर्य के स्थान पर इन रचनाओं में वर्ण्य पदार्थ या दृश्य के अपने सौंदर्य की प्रतिष्ठा का प्रयत्न अधिक है। अलंकृति से बचकर ग्रामीण दृश्यों का यथावत चित्रण डा० शर्मा की कविताओं की विशेषता है। ग्रामीण छविअंकन के साथ साथ कवि यत्र-तत्र समाज की दुर्दशा की ओर भी ध्यान आकर्षित करता चलता है इससे चित्रण प्रायः करुणा के स्पर्श से मार्मिक बनता चलता है किन्तु कहीं-कहीं वह या तो विवरणात्मक ही हो गया है या प्रचारात्मक परन्तु समग्रत ऐसी रचनाएँ हिन्दी काव्य में एक नवीन क्षेत्र की सूचना देती हैं और भारतवर्ष में यह क्षेत्र ७ लाख गावों में फैला हुआ है।

द्विवेदीयुग से ही कवियों ने ग्रामीण जीवन का चित्रण किया है। ग्राम्या की तरह गोपालशरणसिंह ने ग्रामिका' लिखी (१६५१ ई०) जिसमें ग्रामीण जीवन का विस्तृत चित्रण है किन्तु प्रगतिवादी दृष्टि से लिखी गई डा० शर्मा की रचनाओं में एक विशिष्ट क्रान्ति की आहट सुनाई पड़ती है। जनता के मन की पीड़ा के साथ कवि अपने मन को एक करता हुआ चला है अत ग्राम्या में कवि और जनता के मन में जो दूरी दिखाई पड़ती है वह इन रचनाओं में नहीं दिखाई पड़ती। परन्तु यह साफ लगता है कि ग्राम्या का कवि अधिक परिष्कृत और अभ्यस्त है जब कि डा० शर्मा में अनगढ़ता प्रायः मिलती है यद्यपि यह अनगढ़ता ग्रामीण दृश्यों के अंकन में अधिक खटकती नहीं है।

प्रत्यूष के पूर्व (१६३८) कतकी (१६३८) सिलहार (१६३८) कुहरे के बादल (१६३७) बैसवाड़ा (१६४७) जनमऊ में गंगा (१६४७) आदि रचनाओं में उक्त प्रवृत्ति स्पष्टत देखी जा सकती है।[1] प्रकृति वर्णन के बीच बीच मानव समाज के शोषण की स्मृति दिला कर कवि चित्र के सौंदर्य को अधिक मानवीय बना देता है—

> आया वसन्त
> शिव के तप की पावन धरती पर पग रखता।
> सौरभ से पुलकित करता दिग्दिगन्त
> आया मन्मथ भी संग संग पूनो की शशि का छत्र लगाय।

---

१ 'रूपतरंग' में संकलित कविताएं।

किंशुक की धनुही खींचे
यह कुसुम-पात्र मे पीता है निज भृगी के सग मधुद्विरेफ
उस अधनिमीलित नयनो वाली हरिणी को
सहलाता है सीगो से प्रमी कृष्णसार
फूले कमलो से भरा ताल
चकवा चकई दोनो सँग खाते है मृणाल।
इस बलाभी भाई का ही जो खून पिये
क्या होगा ऐसा भी दानव?

अतिम दो पंक्तियो मे प्रकृति सौंदय मे मग्न पाठक को सहसा यथाथ की ओर उन्मुख कर देने से दो परस्पर विरोधी मानसिक स्थितियो की टकराहट से मार्मिकता बढ जाती है। इसी तरह बतकी मे अंकित पंक्तियो मे यही विधि अपनाई गई है—

गला गला कर हाफ रही गुफना लिए।
दाने चुगती हुई गलरियो को खडी
सोने से भी निखरा जिसका रग है।
भरी जवानी जिसकी पक कर चुक गई।

विवरण प्रधानता होने पर भी छायावाद के बाद जीवन के आयाम की नवीनता के कारण डा० शर्मा की रचनाएँ प्रिय लगती हैं—

पूरी हुई कटाई अब खलिहान मे '
पीपल के नीचे है राशि सुची हुई।
दाना भरी पकी बालो वाले बड
फूलो पर फूलो के लगे अरभ हैं।
बिगही बरहे दीख पड अब खेत म
छोटे-छोटे ठूठ ठूठ ही रह गए।
अभी दुपहरी मे पर जब आकाश को
चाँदी का सा पात किये है तप रहा।

कवि ने किसान-जीवन को वाल्मीकि के नेत्रा से देखा है अत अन्न के दाने उसे वज्र हड्डिया से बने दिखाई पडते हैं वह मनुष्य के हृदय को ईर्ष्या, घृणा, मत्सर और मन के कम्पन को स्वाभाविक मानता है परन्तु निराश नहीं होना चाहता। अखिलव्यापी शोषण से जीवन की कातरता

पर कवि की करुण दृष्टि जहां पडती है वही वह रोने को मचल उठती है परन्तु वह कृतसकल्प है कि वह रुदन को छिपाएगा—

जीवन की इस मरण व्यथा को सहना होगा।

अतर मे यह व्यथा छिपाये रहना होगा।

यह आश्चर्य का विषय है कि प्रथम तार-सप्तक मे डा० शर्मा की कविताओ को लोग 'प्रयोगवादी' मानते हैं। हम कह चुके हैं कि प्रगतिवाद के प्रारम्भ मे ही अर्थात सन् ३७, ३८ मे ही नए-नए रूप और कथन विधियो को अपनाया जाने लगा था किन्तु "वर्ण्य तत्त्व" प्रगतिशील रहता था अत 'प्रगतिवादी प्रयोगवाद' छायावाद के ही अचल से फूटता हुआ दिखाई पडता है। डा० शर्मा मे व्यक्तिवाद या अहवाद नही मिलता जो प्रयोगवाद के लिए आवश्यक है।

अकाल—द्वितीय-युद्धकाल मे हिन्दी कविता यथार्थ के पथ पर ही प्रधावित रही क्योकि युद्ध ने कवियो को सोचने, समझने के लिए विवश किया था। "बगाल के अकाल" ने तो महादेवी और बच्चन तक को आत्मकेन्द्रित स्थिति से बाहर निकाला। 'रागेयराघव' ने अकाल पर रिपोर्ताज लिखे। 'रूपतरग' म भी एक कविता बगाल के अकाल पर है जिसमे प्रचार न होकर मर्मस्पर्शी करुणा है। 'बच्चन ने करुण स्वर मे कोकिला से पूछा था—

कोकिले! पर यह तेरा राग
हमारे नग्न बुभुक्षित देश के लिए लाया क्या सदेश?
साथ प्रकृति के बदलेगा इस दीन देश का भाग?

क्या यह प्रचार मात्र है? यह सही है कि अकाल पर लिखी गई बच्चन की रचना मे आवेश की अधिकता है और इससे भावनाओ की निविडता के स्थान पर चित्रण सपाट हो गया है परन्तु आवेश मे एक अद्भुत शक्ति और प्रवाह भी है जो प्रगतिवाद के अतिरिक्त अन्यत्र कम मिलता है। 'प्रवाह' मे भी एक अपना 'सौन्दर्य' होता है। इसके सिवा आवेश कभी-कभी अप्रत्याशित भावखण्डो को उसी तरह खीच लाता है जिस तरह वायु के साथ मेघखण्ड स्वत घिसटते चले आते हैं। यह गुण प्रगतिवादी आवेग प्रधान काव्य मे कई स्थानो पर मिलता है। 'मथन' से ही जैसे दूध नवनीत को छोडता है वैसे ही मन के आवेग से अप्रत्याशित भावखण्ड, चित्र समूह ही नही, नवीन शब्द तक चेतना मे नवनीत की तरह ऊपर उभर आते हैं।

बगाल के अकाल को देखकर बच्चन का मन कभी तो पेरिस की ग्लानि के सम्मुख आता है तो कभी उन नेता की ओर भागता है जिन्होंने बगाल को शान्ति और सताप का पाठ पढ़ाया था। कभी कवि बगाल के महापुरुषों का स्मरण करता है—

जननी श्री गोविंद गीत के तन्मय गायक रसिक विनायक
कवि नृप श्री जयदेव भक्त की।
बँगला वाणी जीवन दानी।
कवि कुल-कोकिल चण्डिदास की
औ पदमापति पद अनुरागी

श्री चैतन्यदेव की जिनकी भक्ति-ज्वार में विगलित होकर
हृदय बग का कभी ढला था!

अतः केवल अकाल के वीभत्स चित्र ही यहाँ अकित नहीं है अपितु बगाल की जनता में क्षोभ भरने का भी प्रयत्न है। वीर रस की परम्परा में य अश स्मरणीय रहेंगे या अकाल के विनाश का भी वर्णन सर्वथा प्रचार नहीं है—

बगभूमि अब शस्त्रहीन है
भरणी आज हो गई हरणी।
जल दे फल दे और अन्न दे
जो करती थी जीवन दान।
मरघट सा अब रूप बनाकर
अजगर सा अब मुँह फैलाकर
खा लेती अपनी सन्तान!

गाधीवादी कवियों में यद्यपि वह वैज्ञानिक दृष्टि नहीं है जो प्रगतिवादी कवियों में मिलती है परन्तु गाधीवाद में मनुष्य के प्रति प्यार बहुत अधिक मिलता है इतना अधिक कि वह शोषक वर्गों तक की हानि नहीं करना चाहता उनके हृदय-परिवर्तन पर ही बल देता है। समाज के विकास की वह वर्गसघर्षात्मक भूमिका नहीं मानता। गाधीवादी कवियों ने ग्रामीण जीवन के प्रति अत्यधिक सहानुभूति प्रदर्शित की है। स्वय गाधी जी सर्वप्रथम गावों की जनता को व्यापक स्तर पर सगठित करने की ओर बड़े उत्साह से उन्मुख हुए थे अत सोहनलाल द्विवेदी सियाराम गुप्त बघुआ आदि ने ग्रामीण जीवन की दुरावस्था का मार्मिक वर्णन किया है। काव्य के इस रूप में

प्रगतिवाद और गांधीवाद एक हो जाता है क्योंकि दोनों में मानवता की मुक्ति की प्यास है। प्रगतिवाद क्रान्ति का मार्ग अपना कर चला है और गांधीवाद हृदय परिवर्तन का।

सोहनलाल द्विवेदी की कविताएँ— है अपना हिन्दुस्तान कहाँ, वह बसा हमारे गाँवों में' 'महलों को भूला प्यारे अब झोंपड़ियों की ओर चलो' आदि रचनाएँ प्रचलित हैं और जनप्रिय हुईं। इनमें परिस्थिति का सपाट चित्रण ही मिलता है परन्तु छायावाद की अत्यधिक संश्लिष्ट शैली के बाद इन रचनाओं को अधिक महत्त्व मिला—

ये नभ चुम्बी प्रासाद भवन
जिनमें मंडित मोहक कंचन
ये चित्रकला-कौशल दर्शन
ये सिंहपौर, तोरन, वंदन
गृह टकराते जिनसे विमान
गृह जिसका सब आतंक मान
सिर झुका समन्त धन्य प्राण
ये मान बान, ये सभी शान
वह तेरी दौलत पर किसान!
वह तेरी मेहनत पर किसान!
वह तेरी हिम्मत पर किसान!
वह तेरी ताकत पर किसान!

ग्राम्य जीवन की दुरावस्था के ये सीधे, सादे चित्रण जिनमें किसानों के आजीवन श्रम आजीवन शोषण और आजीवन आँसुओं का वर्णन है, प्रगतिवादी काव्य के महत्त्वपूर्ण अध्याय हैं, यह स्मरणीय है।

नूतन मानवतावाद—प्रगतिवाद ने हमें वास्तविक मानवतावाद दिया जो विषमता के नाश और समता पर आधारित है। यह मानवतावाद अध्यात्मवादी मानवतावाद नहीं है, जिसमें विश्वबंधुत्व की पुकार होने पर भी, प्रत्येक प्रकार प्रकार की वर्ण, वर्ग, जाति व सम्प्रदायगत विषमता का पोषण होता है। छायावाद के बाद यह "नयामानवमूल्य" था जिसकी अभिव्यञ्जना प्रगतिवाद में हुई है। इसे "सर्वहारा-मानववाद" भी कहा जाता है। यह नवनिर्माण के लिए 'वर्ग संघर्ष' को स्वीकार करता है साधन रूप में, साध्य तो मानवता का हित है जो कतिपय वर्गों को अपदस्थ करने पर ही स्थापित हो सकता है। फलतः

रागेयराघव 'पिघलते पत्थर' नामक काव्य संग्रह में युगों से चले आते हुए अपमान से व्याकुल मानव के अंतस को वाणी देते हैं। रागेयराघव में उद्गार नहीं उमस भी है कल्पना भी है और उपयुक्त शब्द भी। मानवता के अतीत वर्तमान और भविष्य को स्पष्टतः देखने की दृष्टि (Vision) भी है अतः 'पिघलते पत्थर' की रचनाओं में आवेग भी है और कल्पना द्वारा आनीत चित्र भी।

> है भटक रहा यह कौन आज सम्राटों का गजराज भीम !
> क्यों धूलि पटकता है सिर पर अपने ही खोकर आज लाज !
> इसको रे दुःख कैसा असीम ?

छायावादी छंद में नूतन भावना कितनी सफलता से व्यक्त हुई है यह द्रष्टव्य है ! कवि इसे 'प्रचार' नहीं मानता और विरोधियों को उत्तर देता है—

> यह सड़ा गला निर्बल समाज
> कहता यदि हम करते प्रचार !
> तो यह प्रचार ही सही सतत
> यदि इसमें जीवन की पुकार
> मुखरित होती है बार बार !

यानी प्रगतिवादी 'प्रचार काव्य' यदि 'प्रचार' है तो उसमें जीवन अवश्य है जब कि विरोधियों का प्रचार जीवनहीन है !

> यदि अंधकार पर नखत बने
> जड़ते हैं हम निज शब्द दीप्त
> यह रनिवासों के दीप नहीं
> सह सकते यह तूफान घोर
> तो कहो कि प्रहरी का स्वर सुन
> कब ठहर सके हैं क्लीब चोर ?

प्रगतिवादी कवि प्रशंसा का भिक्षुक और दीन दास नहीं होता। वह 'रक्त शोषकों' को अपनी कला ज्योति समर्पित नहीं करता—यही स्वाभिमान उसे जीवित रखता है। वह उस महानता से दूर रहता है जिसका आधार छल होता है—

> हम महानता से सुदूर जिसमें छल भी आधार एक।

डा० रांगेयराघव ने 'साम्राज्यवाद' के प्रति एक लम्बी कविता लिखी है जिसमे साम्राज्यवाद युगो के विलास-वैभव और विजय का रोमाचक वर्णन है—

आर्यो का भीषण रौद्रनाद
शक हूणो का वह सिंहनाद
यूनानी जीतो की पुकार
मुगलो के मद का अहंकार
रुस्तुम पृथ्वी दहलाता था
वह कण फेंकता रथ महान।

छायावाद मे जो भक्तिपरक स्तवन मिलते हैं उनके स्थानो पर नई प्रार्थनाएँ देखिए—

जो नाक बन हल की सतत चट्टान को भी तोड दें।
जो दासता के शीश को इतिहास म ही गोड दें।
आओ जगाने सुप्त को, मुक्त हृदय के गीत लो।

प्रगतिवाद पर रूस के स्तवन का आरोप प्राय लगाया जाता है किन्तु रूस को नूतन जनवादी शक्ति के प्रतीक रूप म ही अपनाया गया था। विश्वभर के श्रमिक एक हो, यह महान सदेश ही इन कवियो को प्रेरित करता था—

महादेशो से विभाजित सिन्धु फिर भी सम्मिलित है।
अगन लहरें ज्योति की यह
खिलखिला कर मिल उठगी
और ऐसी ज्योति होगी
मनुज की ससृति सुहागिन
चिर समान दुलार देती
हँस उठगी।

कवि केवल समाज से ही नही, प्रकृति का चित्रण कर उससे भी प्ररणा लेता है—

एक गिरि उन्नत दीर्घाकार
सामने तू उसके चुपचाप
सोचता है क्या यह जलधार
गिर रही जो विभक्त हो आज

नगी हो सकती मिल कर एक ?
मघ क झरन पर क्या दुख
कि यर जायगी ऊमस ताप
और पृथ्वी पर गिर कर वारि
खड हो जायगा साकार ?

इसी प्रकार कवि न पुन' को मानव के अगाध श्रम का माध्यम माना है।

रागय राघव इतिहास स प्ररणा अधिक तत हैं और आधुनिक प्रश्नो के कवित्व पूण उत्तर दत हैं—

तू समझता है कि हम पशुमात्र ?
नहीं हम म प्यार की अनुभूति
भूख स व्याकुल पड़ा किस सुन्दरी का
आमकी आभूषणो की याद ?
जब उदित उस पूर्णिमा क चद्र को तू
हा रहा अवनाक कर या मग्न
खाचने ध हम तभी गाड़ी युके तरी दया क पात्र
और कहता था कि इनके हैं नहीं
दो आँख ?
चाँद औ रोगी इन्हे है एक !

उच्चवर्गीय विलास की अमानवीयता का कितना सार्थक व्यंग्य है !

रागयराघव की रचनाओ म वक्तव्यता (Oratory) अधिक आ जाती है परन्तु वह सवत्र नहीं है। प्रगतिवादी सिद्धात और जीवन—दोनो के विषय म दृष्टि निभ्रान्त होन स उनकी रचनाएँ शुद्ध प्रगतिवाद का प्रतिनिधित्व करती हैं।

अज्ञय और प्रगतिवाद —इत्यलम म सग्रहीत रचनाओ स स्पष्ट है कि अज्ञय भग्नदूत (१६३३ ई०) की रचनाओ म छायावाद से प्रभावित थ। इत्यलम म भग्नदूत की चुनी हुई रचनाएँ प्रकाशित हैं किन्तु अज्ञय की अभिव्यक्ति कुछ अलग ही है। सगीतात्मक भाषा का प्रयोग न कर कवि न छद अपना कर भी व्यावहारिक भाषा का प्रयोग अधिक किया है। अज्ञय की विशषता यह रही है कि वह अपन युग क मुख्य प्रवाह स अलग रह कर अपना माग अलग बनात हैं अत सबस अलग दिखाइ पड़न का गुण उनकी भग्नदूत'

की भी कविताओं म है परन्तु उनका वण्य अटपटा नही है म आती है और कही-कही हृदय भी भीग उठता है यथा द वी राखी शीपक कविताओ मे—

> कठिन हथकडी जिस कर का करती थी कंकन मण्डित
> वह ही इस कामल बधन से क्यो हो उठता कम्पित ?
> जाने क्या क्या रक्तकाण्ड देखे थे जिन आँखो से—
> रख रक्षा को क्या आँसू भर भर आते हैं उनमे ?

यदि अब तक वर्णित कवियो की उदधृत रचनाएँ प्रचार है तो क्या ये पक्तिया प्रचार नहा है ? किन्तु प्रगतिवाद के विरोधियो को प्रचार कवल प्रगतिवाद म ही मिलता है ? अज्ञय रणक्षत्र म जाने स पहले सैनिक से कहते हैं—

> एक लपेट—धधकती ज्वाला
> धूम्रकेतु फिर काला
> शोणित स्वेद कीच मे भर
> जायगा जीवन प्याला
> अभी अभी पावन बूँदो स
> हृदय पटल को धो लो !
> सैनिक जी भर रो लो !

बन्दीस्वप्न शीपक कविताओ म भी मानवीय हृदय को वाणी दी गई है। इनम एक कविता है घृणा का गान जो वग सघप को व्यक्त करती है—

> सुनो तुम्हे ललकार रहा हूँ सुनो घृणा का गान ?
> तुम जो भाई को अछूत कह वस्त्र बचा कर भागे,
> तुम जो बहिन छाड बिलखती बढ जा रहे आगे
> रुक कर उत्तर दो मेरा है अप्रतिहत आह्वान
> तुम बड बड गद्दो पर ऊँची दूकानो म
> उन्हे कोसते हो जो भूखे मरते हैं खानो मे
> तुम जो रक्त चूसकर ठठरी को देते हो जलदान !

अज्ञेय का यह रूप कितना स्पष्ट कितना सजीव और जनता के निकट था।

लो यह मेरी ज्योति दिवाकर !
उषा बधू के अवगुण्ठन सा है लालिम गगनाम्बर
मैं मिट्टी हूं मुझ बिखरने दो मिट्टी मे मिलकर !
लो यह मेरी ज्योति दिवाकर !

कितनी नम्रता है कितनी स्पृहणीय बलिदान भावना है। अज्ञेय के शिष्यो को अज्ञय के दुगुण ही पसन्द आए आश्चर्य है।

इत्यलम की स्मरणीय कविता है— रक्तस्नात वह मेरा साकी। इस रचना मे कवि की कल्पना और देशभक्ति की कलात्मक व्यंजना देखते ही बनती है—यह रचना शुद्ध प्रगतिवादी है और अज्ञय की है अत कम से कम इस पर तो प्रचारवाद का आरोप लग नही सकता !

इसमे कोई व्यक्ति मदिरापान के लिए साकी को बुलाता है। एक हाथ मे सुरापात्र लकर और एक हाथ से घूघट थामे हुए एक बाला आती है युवक मदिरापान के साथ साथ मधुबाला दर्शन भी करना चाहता है—मधुबाला प्याला आगे बढा देती है। युवक उस प्याले को थाम लेता है और उसमे युवक देखता है—

मैंने देखा केवल अपने रूखे केशो से अवगुण्ठित !
वहाँ करोडा मधुबालाए खडी विवसना और अकुण्ठित !
द्राक्षा कुचले गुच्छे सी मर्माहत वे झुकी हुई थी।
और रक्त उनके हृदयो का होता एक कुण्ड म सचित।
मैंने देखा वहाँ करोडो भभको म फिर उफन उफन कर।
भस्मीभूत अस्थियो के अनगिन स्तर की छलनी म छन कर
एक मनोमोहक उन्मादक झिलमिल निझर रूप ग्रहण कर
वही रक्त बढता आता था मेरी मोहन मदिरा बन कर !
मैंने सुना कहो कभी मधुबाला की मधुमयी कथा है।
अट्टाहास म उस विद्रूप भरा था कितना उग्र भयानक।
क्या ? कडवी है ? क्या इतना इसका जग साकी ही विधवा है !
फट जाय आज धरित्री ! मेरी दुस्सह लज्जा आन मिटा दे।
रक्तस्नात वह मेरा साकी मेरी दुखिया भारत मा है !

अभिधामूला प्रगतिवादी कविता म उक्त व्यजनापरक कविता अपना एक विशिष्ट स्थान रखती है। उद्गार उफान चीत्कार हुंकार से मुक्त रचनाओ स इस रचना का प्रभाव अधिक स्थायी रहेगा। प्रसगलावण्य के साथ-साथ ध्वनि का चमत्कार यहाँ अधिक है।

माखनलाल चतुर्वेदी की तरह अज्ञेय की उन रचनाओ म भी पर्याप्त रस है जो कारागार के विषय म लिखी गई है—

दूरवासी गीत मेरे।
पहुँच क्या तुम तक सकेंगे काँपते ये गीत मेरे ?

हियहारिल शीर्षक रचनाओ म प्रथम रचना रहस्यवाद शीर्षक है जिसम कवि वक्तव्यवाद को अपनाता है लगता है कोई सिद्धान्तशास्त्री बोल रहा हो। काव्य का सूक्तीकरण करने की प्रवृत्ति यहाँ दिखाई पडने लगती है—

असीम का नगापन ही सीमा है
रहस्यमयता वह आवरण है जिससे ढककर हम उसे
असीम बना देते हैं।
सात कहता है कि जो आवृत है उससे मिलन नही हो सकता

यहाँ गद्यमयता आगई है जो प्रयोगवाद का आगे चलकर विशेषता बन गई है। विरोधाभास अलकार द्वारा चमत्कार की सृष्टि की प्रवृत्ति भी दिखाई पडती है—

क्या कि जान लेना तो अलग हो जाना है
बिना विभेद के ज्ञान कहाँ है ?
और मिलना है भूल मत जाना,
जिज्ञासा की झिल्ली को फाडकर
स्वीकृति के रस मे डूब जाना
जान लेने की इच्छा को भी मिटा देना
मेरी माँग स्वय अपना खण्डन है
क्या कि वह माँग है दान नही है !

इसे गद्य की तरह सीधा लिख देने पर इसे गद्यकाव्य कोई भले ही कह दे इसको काव्य हरगिज नही कह सकता क्योंकि इसमे लय आवेग छन्द आदि म एक भी तत्त्व शेष नही है। जैनेन्द्र के उपन्यासो म ऐसे स्थल पग-पग पर मिलेंगे जिनका अर्थ कर लेने पर कोई चमत्कार नही रह जाता केवल कथन शैली की विरोधमूलक भगिमा ही आकर्षित करती है। जैनेन्द्र पुराने दर्शन को नए ढग से रखते हैं अज्ञेय नए दर्शन को गद्यकाव्य की पुरानी शैली रखते हैं। प्रगतिवाद की भावुकतामयी या उद्गारयुक्त सपाट शैली के विरोध म यह शैली अधिक आकर्षक लगती है क्योंकि उसम व्यजना अधिक मिलती है

कि तु अपनी गद्यमयता और स्थिर आवेगहीन शैली के कारण ऊब भी पदा करती है।

अनय पर प्रगतिवाद और फ्रायड के मनोविज्ञान का प्रभाव एक साथ दिखाई प॰ता है। स्वय पतजी प्रगतिवादी रचनाआ मे फ्रायड से प्रभावित रचनाए प्रस्तुत कर चुके थे। उ होने एक जगह यह शिकायत भी की थी मनुष्य समाज की जडता के कारण प्रिया के अधरो पर निश्छल चुम्बन नही रख पाता। वस्तुत फायडवादी यह भूल गए कि समाज का उतना भय नही जितना कि अपने ही शिशुआ का भय है। और जब तक अपने बच्चे नही होते तो दूसरो के बच्चो के बिगडन का भय रहता है। सभ्यता के विकास के लिए इतना आत्मसयम आवश्यक है अ यथा सब सबके सम्मुख निश्छल चुम्बनो की बौछार करने लगगे। वस्तुत फ्रायड के मनोविज्ञान से प्ररित होकर लेखको ने अत्य धिक नग्नता और घटन का विरोध किया और इससे प्रगतिवाद को सहायता ही मिली। काडवेल ने भी ईसाईयत के विरोध मे मनोविज्ञान का योगदान स्वीकार किया है। मानवीय सम्ब घ सामाजिक हैं आध्यात्मिक नही इस तथ्य पर मनोविनान ने भी प्रकाश डाला है अत अनय की यह रचना प त जी की ही परम्परा मे आती है। कबूतरो की क्रीडा को देख कर अज्ञय कहते हैं—

खग युगल ! करो सम्पन्न प्रणय
क्षण के जीवन मे हो त मय
हो अखिल अवनि ही निभृत निलय।
हाय तुम्हारी नैसर्गिकता ! मानव नियम निराला है !
वह तो अपने ही से अपना प्रणय छिपाने वाला है !

मनोविनान का यह प्रभाव क्रमश अनय पर बढता गया है। अज्ञय प्रगतिवाद में कहीं मार्क्स के ऊपर और कही मार्क्स के पाश्व मे फ्रायड का आसीन कर दिया है और कही मार्क्स को अपदस्थ कर फ्रायड को बैठाया है। इ यलम के प्रकाशन स पूव शेखर प्रथम भाग (सन १९४१ ई०) और प्रथम तार सप्तक (१९४३) प्रकाशित हो चुके थे अत वचना के दुग ' म कवि अधिक आम केंद्रित दिखाई पडता है। और भोगतृष्णा स्पष्टत व्यक्त होने लगती है। कारागार से सम्बन्धित रचनाओ मे प्रम का जा पावन रूप मिलता है वह यहाँ नही मिलता—

घिर गया नभ उमड आए मेघ काले
भूमि क कम्पित उरोजा पर झुका सा

विशद श्वासाहत चिरातुर !
वासना के पक सी फैली हुई थी
धारयित्री सत्य सी निलज्ज नगी औ समर्पित !

किन्तु साथ ही आह्वान रचना मे कवि अपने व्यक्तिवाद को कोसता भी जाता है। लगता है अपने से ही कवि उलझ रहा हो और फ्रायड और मार्क्स मे द्वन्द्व चल रहा हो। आह्वान कविता मे स्पष्टत प्रगतिवादी स्वर सुनाई पडता है—

ठहर-ठहर आततायी ! जरा सुन ले
मेरे क्रुद्ध वीय की पुकार आज सुन जा !
कौन हू मैं !
तरा दीन दुखी पददलित पराजित
आज जो कि क्रुद्ध सप सा अतीत को जगा
मैं से हम हो गया !
मैं के झूठ अहकार ने हराया मुझ
तेरे आगे विवश झुकाया मुझ !

इस रचना मे कवि का स्वर समष्टिवादी है परन्तु अहकार प्रबल होता हुआ दिखाई पडता है। अभद्र उपमाओ और कुरूप चित्रो की शुरुआत भी यही होती है—

आदि हीन शेषहीन पथ वह
जिस पर एक दृढ पर का ही स्थान है।
और वह दृढ पैर मेरा है
गुरु स्थिर स्थाणु सा गडा हुआ
तेरी प्राण पीठिका पै लिंग सा खडा हुआ !

अज्ञेय का अहवाद धीरे धीरे प्रगतिवाद को निगल कर मन्द गति से विश्राम की मुद्रा म जुगाली करने लगता है। जुगाली के समय जैसे पशु आँखें बन्द कर लेता है वैसे ही तथाकथित प्रयोगवादी चारो ओर न देख कर केवल अपने मन को देखता है उसे 'उष काल मे कुत्तो की रिरियाहट मुल्ला की पुकार भिक्षक की आवाज स्वतत्र अस्तित्व वाली नही प्रतीत होती उनका अस्तित्व अज्ञेय को अपने अस्तित्व के कारण ही प्रतीत होता है लगता है बकले' बोल रहा हो—

मैं ही हूँ वह पदाक्रान्त रिरियाता कुत्ता
मैं ही हू वह मीनार शिखर का प्रार्थी मुल्ला
मैं वह छप्पर तल का अहत्रीन शिशु भिक्षुक—
मैं हू ये सब ये सब मुझमे जीवित—
मेरे कारण अवगत—मेरे नेत्र मे अस्तित्व प्राप्त।

बकले कहता था कि जगत् इसलिए है कि मैं हूँ। प्रत्येक पदार्थ के ज्ञान मे मेरा मैं छिपा रहता है यही तथ्य अज्ञेय कह रहे है। मार्क्सवाद मानता है कि पदार्थों की सत्ता व्यक्ति की चेतना पर निर्भर नही है वह स्वतन्त्र है अज्ञेय कह रहे हैं कि पदार्थों का अस्तित्व मेरे ऊपर निर्भर है।

कुरूपता दर्शन—प्राय लोग कुरूपता को प्रगतिवाद के साथ सम्बद्ध कर देते हैं। प्रगतिवाद सत्य का प्रतिष्ठापक है वह कुरूपता का वर्णन समाज को यह दिखाने के लिए करता है कि यह कुरूपता अवांछनीय है इसे दूर करो। किन्तु अज्ञेय को शिशिर की राका निशा वचना प्रतीत होती है और अकारण! कवि यह नही बताता कि अतत उसे राका निशा क्यो सुन्दर नही लगती? असतुष्ट दुखी व्यक्ति को राका निशा विषैली लगती है किन्तु अज्ञेय नही बताते कि वह समाज के दुख से दुखी हैं। फिर भी चूंकि राजरवि चारण भक्त और छायावादी राकानिशा को सुन्दर कहता रहा है अत उसे असुन्दर कहने से नवीनता उत्पन्न होगी।

वचना है चाँदनी सित
झूठ यह आकाश का निरवधि गहन विस्तार!
इधर—केवल झलमलाते चेतहर दुधर कुहासे की हलाहल—
स्निग्ध मुट्ठी म सिहरते से पगु टुड
नग्न बुच्चे दईमारे पेड!
निकटतर—धँसती हुई छत आड म निवद
मूत्र सिंचित वृत्तिका के वृत्त मे
तीन टाँगो पर खडा नतग्रीव धयधन गदहा!

स्पष्टत कवि की रुग्ण मानसिक स्थिति का ही यह फल है—इसको प्रगतिवाद स सम्बन्ध जोडना गलत है।

प्रथम तार सप्तक इत्यत्तम की रचनाओ आदि से कवियो का ध्यान प्रयोगो की ओर आकर्पित हुआ। नवीनउपमानविधान के प्रति रुचि इधर के

कवियो की विशेषता है। तार सप्तक के नए मुक्त छद और नई उपमाओ ने सभी का ध्यान आकर्षित किया किन्तु उसके सम्पादक के विचार पक्ष की घोर आलोचना हुई। प्रगतिवादी कवियो ने इस उक्त कुरूपता को न अपनाकर छदो मे अधिक सतुलन से काम लिया और तथा कथित प्रयोगवादी कवियो के निराशावाद और अहवाद को स्वीकार न कर स्वस्थ मानसिक स्थितियो का वर्णन किया किन्तु उपमान विधान की ओर वह अधिक जागरूक हुए इसमे सदेह नही अत प्रारम्भिक उद्गारात्मक शैली के स्थान पर चित्रणात्मक शैली की ओर कवि प्रवृत्त हुए।

चित्रण म नवीन अप्रस्तुत विधान प्रस्तुत करते समय भी प्रगतिवादी कवि अपनी सदइच्छाओ को नही भूलता। उसकी दृष्टि तथा कथित प्रयोग वादी से भिन्न होता है उसका ध्यान बराबर समाज पर रहता है समाज की असगतियो पर। वह अपने स्व का विश्लेपण भी करता है परन्तु स्व के माध्यम से सामाजिक जागरूकता का परिचय देता है।

प्रकृति और समाज—तामस के शासन का प्रतीक
बुझता है वह अतिम प्रदीप
अन्तिम तारा
तमगढ क ढहत भारी कोट कँगूरो से।
वह प्रथम प्रदोप निमिप है नये उजेले का।
जीवन के नये जागरण का।
अब युग की अँधियारी रजनी भिन्न को है
जब रवि का अग्र प्रकाश चरण।
अकित हो रह धरा के मैले आचल पर।
जिसमे मानवता छिपी धूप बन जाती है।[१]

सामाजिक दुरावस्था को ध्यान म रखकर ही यहा प्रवृत्ति का चित्रण हुआ है यहा न तो दमित वासना है न आत्मघाती व्यक्तिवाद है।

यथावत चित्रण—सौदर्य केवल सुन्दर पदार्थो म ही नही है अपितु प्रकृति मात्र सुदर है। छायावाद मे सुदरतम वस्तुओ पर ही अधिक लिखा गया किन्तु ऊपर हम रामविलास शर्मा द्वारा विवरणात्मक आचलिक सौन्दय की ओर सकेत कर चुके हैं। गिरिजाकुमार ने अपेक्षाकृत अधिक सश्लिष्टता

---

१ धूप के धान—गिरिजाकुमार माथुर (१९४५ की रचना)

और परिस्थिति के साथ 'धरती' के सौन्दर्य की ओर देखा है। इस दृष्टि से हमे लाभ यह होता है कि हम जीवन को उसके प्रकृत रूप मे अपनाना सीखते हैं केवल 'मधु और मोहकता' की ओर ही आकर्षित नही होते—

ये धूसर, सावर, मटयाली, काली धरती
फैली है कोसो आसमान के घेरे मे
रूखो छाये नाले के हैं तिरछे ढलान
फिर हरे भरे लम्बे चढाव
झरबेरी, ढाक, कास से पूरित टीलो तक
गढबाटो की रेखा गहरी, ये सोंधी घास ढकी रूँदें
हैं धूप बुझी ह्रारें भूरी
उत ताल वृक्ष के झौरों के आगे दिखती
नीली पहाडियो की झाईं
जो लटे पसारे हुए जगलो से मिलकर
है एक हुईं।

इस धूसर सावल धरती की सौंधी उसास पडती ठडन है प्रानो मे।

गिरिजाकुमार माथुर की शाम की धूप (१९४७), दो चित्र (१९४७) सायकाल (१९४८) बरफ का चिराग (१९४८), धूप का ऊन (१९४९), नये साल की साँझ आदि ऐसी ही रचनाएँ हैं। छायावाद की सौन्दर्य भावना से, *कोमलता तथा प्रगतिवादी जीवनदृष्टि तीनो के सामञ्जस्य से* ये रचनाएँ प्रगतिवाद के उद्वेगपरक, उत्तेजनात्मक तथा फूत्कारात्मक पक्ष से भिन्न स्वरूप को प्रस्तुत करती हैं प्रकृति से कवि सौन्दर्य ही नही ग्रहण करता है प्रेरणा भी लेता है। उसकी भाषा सरल है और उपमाएँ अनूठी—

आज इसान हो गया है कैद
पर न मन हार मान सकता है।
क्योकि विश्राम की इस वेला मे
यह थकी, अनमनी सुनहरी धूप
दिन के सघर्ष स जो तप तप कर
उजले सोने सी निखर आई है
साँझ की मीठी बाँह चढ़ती है।

नवीन मानवीकरण—छायावाद मे प्रकृति का नारीकरण अधिक हुआ था। इस पद्धति से प्रगतिवादी कवि भी लाभ उठाता है किन्तु उसका रूप वास्तविक अधिक है मादक कम—

बज रहे ठडी सुबह के आठ
दिन भी चढ गया है
उतरती आती छतो से
सदियो की धूप
धुले मुख सी धूप यह गृहिणी सरीखी
मद पग धर आगई है
चाय की लघु टेबिलो पर
कभी बनती केतली की
प्यालियो की भाप मीठी
कभी बनती स्वय ही रसधार ताज दूध की।

यहा नवीन शैली का उतना आनन्द नही जितना वर्ण्य वस्तु के अपने सौन्दर्य का आनन्द है। प्रगतिवाद जीवन और प्रकृति को सौन्दर्य का स्रोत मानता है मात्र शैली कुछ नहा कर सकती।

प्रेम—गिरिजाकुमार माथुर की एक रचना है प्रौढ रोमास जो प्रगतिवादी प्रेमभावना को बहुत स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करती है। यह प्रेमभाव ले चल मुझ भुलावा देकर मेरे नाविक धीरे धीरे वाली मादकता और पलायन से परे है। प्रेम मे भी वास्तविकता का अविस्मरण इसकी विशेषता है—

मेरे विरही युवा मित्रवर तुम जिस दुख से परेशान हो
वह सचमुच है दुख नही कोई जीवन मे
असली दुख हैं और बहुत से
तुम जिसको हो समझ रहे भारी पहाड सा
वह तो कागज सा हलका है।
यह रह रह कर निकल रही ज्यो ठडी सासें
यह हवाइयाँ मुँह के ऊपर
खोई खोई चाल।
तुम इस जीवन का निचोड जिसको कहते हो
यह सारा वेन्दात फलसफा

काव्यकला की मधुर कल्पना
केवल शारीरिक है !
जब दैनिक जीवन की भट्टी मे
गल जाएँगे सिक्के सारे मन के
तब जानोगे इन आदर्शों की सच्चाई।

यहाँ प्रम मे वास्तविकता को स्मरण रखने पर बल दिया गया है। उधर गीतकारनुमा कवि प्रम के सयोग और वियोग पक्ष के सारे आकषणो का वणन करते हुए भी और इस दृष्टि से छायावाद की परम्परा म ही विकसित होते हुए भी प्रम को प्ररणास्रोत भी बनाते हैं और व्यक्तित्व के विकास के लिए प्रम को अनिवाय मानते हैं अत प्रम और सौदय प्रगतिवाद मे वायवी या अतीद्रिय नही दिखाई पडता उसका रूप भौतिक' है उसके आकषण का कारण भौतिक है प्रमपात्र का दैवीकरण उसके भौतिक सौदय का सूक्ष्मीकरण प्रगतिवाद म नहीं आपाया हा छायावादी प्रम की पावनता और शिवत्व की भावना अवश्य आगे बढी है परन्तु वह भौतिक आधार पर ही विकसित हुई है यहा शिवत्व ब्रह्म का पर्याय नही है जीवन की उन्नति—भौतिक और मानसिक उन्नति से ही सम्बधित है—

कुछ बात दिल की कह सकू उपहास जग का सह सकू।
सुख दुख मे सम रह सकूँ इतना मुझ अधिकार दो
मुझको न सुख ससार दो ![1]

प्रम का यह रूप नए गीतकारो मे बराबर पल्लवित हुआ है। उनमे एक ओर तो क्यो काप उठ प्रासाद धवल भिखमगो की हुँकारो से क्या निकले ज्वालामुखी फूट ककालो से अम्बारो से जसे भैरवगान हैं तो दूसरी ओर मधुर लय मे प्रम का सुहाना चित्रण जिसे जीवन और समाज के आधार के रूप म स्वीकार किया गया है, उसे डूब मरने का साधन नहा बनाया गया। यह प्रथम रूप इधर के प्रगतिवादी कवियो मे अशात त्रिपाठी और महेन्द्र भटनागर की रचनाओ म अधिक मिलता है और दूसरा रूप नीरज वीरेन्द्र मिश्र रामावतार त्यागी आदि गतिकारो म अधिक मिलता है।

प्रमजनात्मक काव्य—प्रारम्भिक प्रगतिवाद म शान्ति का जो विकट घोष मिलता है वह नवीनतम कविता म भी मिलता है। महेन्द्र भटनागर की

---

१ हिल्लोल—शिवमगलसिह सुमन'

'हुँकार' जो "टूटती शृंखलाएँ" मे संकलित है तथा "अभियान" (१९५४) आदि रचनाओं मे तथा अशान्त त्रिपाठी के "चेतना के गीत" (१९५६) तथा अन्य प्रगतिवादी कवियो की 'स्फुट' रचनाओं मे 'क्रान्तिवाद' अधिक मिलता है। इन रचनाओं मे 'भाव' को सूक्ष्म प्रणाली पर व्यजित करने की प्रवृत्ति कम और उद्गारात्मक प्रवृत्ति अधिक मिलती है—

(१) आज तो हुंकार का स्वर, जोर से ललकार का स्वर
जागरण-वीणा बजा उन्मुक्त भैरव-राग से,
मैं गीत गाना चाहता हूँ।

(२) मैं शिव बन कर सारी जर्जर, सृष्टि भस्म करने को आया
धधक उठी लपटे धू-धू कर, मेरे एक मात्र इंगित से।
जब मिट जाएगी दुनिया से, शोषक वर्गों की छल छाया
नष्टभ्रष्ट कर सारे बन्धन, लाया नवजीवन ज्वाला हूँ।

(३) आ रहा तूफान है, जीत का वरदान है
शक्ति का ही गान है, स्वत्व का सग्राम है
आज कब विश्राम है, युद्ध जब प्रतियाम है ?[१]

(४) शैतान के साम्राज्य मे तूफान आया है
जो जिन्दगी को मुक्ति का पैगाम लाया है
इसान की तकदीर को बदलो, भयभीत हर
तसवीर को बदलो
हमारे सगठित बल की यही ललकार है।[२]

यह नही है कि भटनागर जी के काव्य मे केवल यही प्रवृत्ति है, उन्होंने प्रकृति और प्रेम पर भी जनवादी दृष्टिकोण से लिखा है, यथा मधुरिमा' की रचनाएं कवि के कोमल रूप को व्यक्त करती हैं। अशान्त त्रिपाठी के स्वर मे भी वक्तव्यता अधिक है परन्तु उसमे ईमानदारी है अत उसकी अभिधावादी सरल शैली मे एक प्रकार का प्रवाह और आत्मक ध्वनि उत्पन्न हो जाती है।

(१) प्रलय के चिर निशानो की कही झकार सुनता हूँ।

---

१. अभियान।
२. नई चेतना।

(२) तडप कर बोल पडती हैं किसी मजदूर की आहे।
धरा पर जन्म लेते ही उसे वरदान मिलता
भभक कर क्षार बनने का उस बलिदान मिलता।

(३) भभक रही है अग्नि अवनि पर, वायु तीव्र गति से चलती।

अशान्त कहते हैं 'झोपडी मे, साधना के द्वार पर बैठा हुआ हूँ, नवल युग की चेतना के गीत गाय जा रहा हूँ।" स्पष्टत इस प्रकार का काव्य कला की दृष्टि से अत्यधिक उत्कृष्ट न होकर भी आज के असतुष्ट समाज की प्रतिक्रिया को उग्रभाषा मे अवश्य प्रकट करता है उसमे बाढ मे बिफरे महानद जैसा वेग अवश्य मिलता है और उसकी ललकार जनता के दुश्मनो के कानो तक टकरा-टकरा कर व्यर्थ होकर लौट ही नही अपितु वह तीव्र लहरो की तरह उन्हे काटती भी है जैसे लहरें तट को काटती हैं। इस प्रकार की रचनाऐं हिन्दी मे बहुत है, और हिन्दी के 'जनप्रिय' काव्य का रूप इनमे सुरक्षित है, किसी भी कवि सम्मेलन मे प्राय प्रम, हास्य अथवा प्रभजनात्मक कविताए ही अधिक सुनने को मिलती हैं। घनश्याम अस्थाना की *'काश्मीर' शीर्षक कविता, डा० कमलेश की 'मुक्त हुआ है हिन्द" तथा* इन पक्तियो के लेखक की हमने देखा[1] आदि रचनाएँ इसी परम्परा की रचनाएँ हैं। उर्दू म भी ऐसी रचनाएँ अनेक हैं जिन्हे हम यथा स्थान देखेंगे। इनमें 'कला' कम और भावोच्छ्वास इतना अधिक है कि लगता है कि इस देश का

---

१ हमने देखा बनते जाते प्रासाद बडे,
घोंसले घास के किन्तु बिखरते जाते हैं।
कुछ लुडकाते शरबत, शराब, फेंकते दूध,
कुछ कीचड का पानी पीकर रह जाते हैं।
झोली कितनों मुँह फाड देखती रह जातीं,
झुकते न रक्त पर ये जीवित रहने वाले।
हैं कौन देश के नेता जो सारे धन को,
खद्दर के खोंचों मे भर भर ढोने वाले।
देखो हमने होलियाँ उदर मे जलती हैं,
पर दीप जले समझौता और सुधारों पर
गिर रही बर्छियों के बदले लो ऊपर से,
मालाएँ फूलों की पापी, हत्यारों पर।

हृदय सामाजिक विषमता को देखकर तिलमिला उठा हो उसकी चुनौती इन कविताओ के माध्यम से सुनाई पड रही हो।[1] किसी भी देश मे इस प्रकार के काव्य के बिना सामाजिक क्रांति सम्भव नही क्योंकि पाप के प्रति उग्रता और घृणा जब तक अनन्त आवेग के साथ प्रकट नही होती तब तक सामान्य जनता उससे प्रभावित नही होती अत इनकी प्रचारात्मकता भी प्रशंसनीय है। जो इनमे महान काव्य खोजते हैं वे भूल करते हैं और उनसे भी अधिक वे भूल करते है जो इन्हे मात्र प्रचारात्मक कहते हैं।

प्रस्तुत युग की इस चित्तवृत्ति को और भी कलात्मकरूप मे व्यक्त करने की आवश्यकता है। नवीन युग ध्वस और निर्माण दोनो पहियो पर ही चलता है। हमारी पुरानी वीरचेतना इसी काव्य म सुरक्षित रह सकती है। स्वाधीन-भारत के अन्तर्विरोधो पर जयनाथ नलिन की एक प्रभजनात्मक रचना द्रष्टव्य है—

स्वाधीन वतन—रयत की कमर झुकी हुजूर सलाम वही
स्वाधीन वतन—पालिस के मुँह पर पर साल नमकहराम वही।
पी तिरस्कार मैं तो हूँ आज गुलाम वही
स्वाधीन वतन—पजर पर सूखी खाल और है काम वही।
स्वाधीन वतन—काले मुँह काले धन वाले स्वाधीन बने
स्वाधीन वतन फुटपाथो पर बिखरी नारी की लाज आज!
बन गया तुम्हारा राम राज्य अहें आसू बेवसी आज।
बापू बोर रे लवल अहिंसा के निबल अवतार।
अरे बता क्या रामराज्य का यह सपना साकार?
आज ब्यालीस की कुर्बानी पूछ रही
जलन वालो की करवट ले—
राख दिवानी पूछ रही
पूछ रही सूनी मार्गे। क्या सचमुच हम आजाद?[1]

क्या इन भावनाओ को कुठा कहा जा सकता है क्या इनम करोडो हृदयो की प्रतिध्वनि नही सुनाई पडती है। यदि इनम सामूहिक भाव को आवेगमय शैली म व्यक्त किया गया है तो इन रचनाओ का उचित मूल्याकन होना चाहिए।

---

१ धरती के बोल—(१६५८ ई०)

नय प्रगतिवादी कवि केवल सिंहनाद' ही नही करते, मनुष्य के व्यक्तित्व के चतुर्मुखी विकास क लिए हृदय के कोमल अश को भी वाणी देत हैं। वैविध्य इनकी विशषता है। सामूहिक भावनाएँ और निजी राग, विराग की अभिव्यक्ति म ये कोई विरोध मानकर नही चलते अत 'धरती के बोल" म जयनाथ नलिन अपने 'सौन्दय बोध' का भी परिचय देत हैं। उन्होने बिना किसी सकोच के छायावादी सौन्दय प्रियता को स्वीकार किया है अत रूप, रस, सुगधि आदि ऐंद्रिक सवदना का भी वाणी देते हैं, क्योकि काव्य मनुष्य के व्यक्तित्व का पूण शोधन है, वह किसी एक पक्ष का उदात्तीकरण करके नहीं रह जाता। प्रगतिवाद को इसीलिए केवल राजनैतिक चेतना' तक सीमित कर देना गलत है अत नलिन जैसे कवि मनुष्य के कामल पक्ष का भी वाणी दते हैं। *किन्तु इसम न तो छायावाद की तरह आध्यात्मिकता भरते हैं और न पलायन* के स्वर ही छन्न है। सौन्दय, प्रकृति क वरदान के रूप म और प्रम' को सामाजिक भाव के रूप म व ग्रहण करत हैं। 'सौन्दर्य' का आकपण इसी भौतिक जीवन का आकपण है उसका वणन पाप नही किन्तु इस 'सौन्दय' मे ही जीवन को सीमित न कर व जीवन क अन्य पक्षा का भी चित्रण करते हैं।

सुमित्रानन्दन पन्त का नूतन काव्य और प्रगतिवाद—युगवाणी, युगान्त और ग्राम्या क बाद पन्तजी अरविन्द-दशन से प्रभावित हुए हैं। पन्तजी की प्रगतिवादी रचनाओ म भी मार्क्सवाद को पूणत स्वीकार नहीं किया गया था क्योकि पन्तजी क अध्यात्मवादी सस्कार उसम बाधक थे अत वह मार्क्सवाद अर्थात् भौतिकवाद और अध्यात्मवाद के समन्वय की चर्चा करते रह। अरविन्द-दशन म उन्हें इस 'समन्वय' का एक रूप बना बनाया मिल गया अत उन्हें लगा कि जैस अरविन्द न उनकी सारी शकाओ को ध्वस्त कर दिया है और वह अध्यात्मवाद और भौतिकवाद के समन्वय पर लिखने लगे। इधर *की कविताओ म इसी 'समन्वय' पर उन्होन बल दिया है और वह मार्क्सवाद* तथा मध्यकालीन अध्यात्मवाद की सीमाओ को अपन काव्य म आलोचना कर रहे हैं। मैंने 'पन्तजी क नूतन काव्य और दर्शन'[1] म विस्तार स पन्तजी के काव्य म व्यक्त अरविन्द दशन और मार्क्सवाद पर विचार किया है और साथ ही उनक नूतनकाव्य का अध्ययन भी प्रस्तुत किया है। मरी उक्त पुस्तक म स्वर्णकिरण, स्वर्णधूलि युगान्तर उत्तरा, शिल्पी रजतशिखर, अतिमा तथा काव्यरूपका का विश्लेषण है इधर सौवण, 'कला और बूढ़ा चाद' आदि

---

१ साहित्यरत्न भडार, आगरा, (१६५६)

कृतियाँ और प्रकाशित हुई हैं किन्तु ये रचनाएँ भी 'स्वर्णकाव्य' की ही परम्परा में है।

आधुनिक काव्य म विचारपक्ष अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हो गया है। मध्यकाल म भी वह महत्त्वपूर्ण था परन्तु उतना नही कि जितना आज है। तब कवि स्थायी भावा की व्यजना पर अधिक बल देते थे। इधर यह तथ्य महत्त्वपूर्ण हो गया है कि कवि समाज के विषय म क्या सोचता है। समाजशास्त्र इतिहास और विज्ञान न मनुष्य के दृष्टिकोण को दो भागो मे बाँट दिया है—एक पूँजीवादी तथा मध्यकालीन सामतवादी दृष्टिकोण है और दूसरा शुद्ध वैज्ञानिक समाजवादी अथवा मार्क्सवादी दृष्टिकोण। प्रथम किसी न किसी रूप मे किसी अलक्षित सत्ता का हस्तक्षेप मानवीय समाज के विकास तथा जगत् के विकास म आवश्यक मानता है और दूसरा चेतना को भूततत्त्व का गुणात्मक परिवर्तन मानता है जैसाकि पीछे हम दिखा चुके हैं. चाहे अरविन्द हो या पन्त या अन्य कोई विचारक यदि वह जगत् और मानवीय समाज के विकास मे 'समन्वय' के नाम पर किसी 'अचिन्त्यसत्ता' को अकारण ही प्रविष्ट कर देता है तो तत्वदर्शन की दृष्टि से उसका विरोध अनिवार्य है। इसलिए नही कि हम अपने देश के महान विचारक अरविन्द या महाकवि पन्त का अनादर करते हैं या "उनके मुँह लगकर बचकाना हरकत" करना चाहते हैं अपितु इसलिए कि हमारा 'सत्य' के प्रति आग्रह है। 'सत्य' के निर्णय मे अन्य बाता का विचार नही होता। हमारे यहाँ परम्परा यह रही है कि गुरुजन भी ग़लती करें तो नम्रतापूर्वक उनका विरोध करना चाहिए क्योंकि 'सत्य' से ही समाज की स्थिति सम्भव है।

अरविन्द एक साधक थे और उन पर शक्तिवाद का प्रभाव था। शक्तिदर्शन भूततत्त्व को चेतना का ही रूपान्तरण मानता है। वह शाकर वेदान्त की तरह जगत् को मिथ्या नही मानता। किन्तु सभी अध्यात्मवादी-दर्शनो की तरह शैव शाक्त दर्शन भी चेतना को 'प्रथम' तत्त्व मानता है, भूततत्त्व तो उसी का रूपान्तरण मात्र है। अत अरविन्द ने शाकर वेदान्त का विरोध कर शाक्ताद्वैतवाद के आधार पर चेतना को प्रथम तत्त्वमानकर, भूततत्त्व को 'सर्वम् खलु इदम् ब्रह्म' की सहायता से उसी पूर्वस्थित चेतनतत्त्व का अभिव्यक्त रूप माना है। यह शक्ति-दर्शन का आधुनिक रूप है। चूँकि मार्क्सवाद का भौतिकवाद पूर्णत पन्तजी को प्रिय नही लगा, क्योंकि पन्तजी भूततत्त्व से चेतना के विकास के सिद्धान्त को गले नही उतार सके, अत पन्तजी ने अरविन्दवाद को स्वत ही स्वीकार कर लिया।। भौतिकवाद को उन्होंने 'समतल' का विकास कहा और आध्यात्मिक

विकास का 'ऊर्ध्व विकास —दोनों का समन्वय उन्होंने आवश्यक माना। इस प्रकार भौतिक उन्नति की भी अवहेलना नहीं हुई और पन्तजी के प्रिय 'रहस्यवाद' के लिए भी क्षेत्र खुल गया जिसमें बुद्धि को नहीं स्वयंप्रकाश्य ज्ञान को ही महत्त्व दिया जाता है अतः यह आवश्यक है कि आज के वैज्ञानिक युग में इस नवीन 'रहस्यवाद' का विरोध किया जाय मैंने अपनी पुस्तक में वही किया है किन्तु साथ ही उसमें जो भौतिकवादी अंश था उसको भी अलग करके उसकी प्रशंसा भी की है। काव्य में व्यक्त कवि की सदिच्छा, युद्ध का विरोध, मानवीय गुणों का विकास, कल्पना का लालित्य, शब्द-शिल्प आदि तत्त्वों की भी मैंने प्रशंसा की है यद्यपि यह भी सिद्ध किया है कि पन्तजी के नए काव्य में पूर्वकाव्य की तुलना में ह्रास दिखाई पड़ता है क्योंकि वे सिद्धान्तों की घोषणाएँ अधिक करने लगे हैं। मैंने पन्तजी की पूर्व और नवीन काव्य-कला के प्रति निषेधवादी दृष्टिकोण रखकर आलोचना लिखने वालों में प्रमुखतम डा० रामविलास शर्मा के दृष्टिकोण पर भी विचार किया है क्योंकि यह दृष्टिकोण अग्रहणीय है उसे भी छोड़ देता है। यदि कोई कवि पूर्णतः मार्क्सवादी नहीं है तो यह बताना भी आवश्यक है कि उसके विचार कहाँ तक किस प्रकार मार्क्सवाद के पक्ष या विपक्ष में पड़ते हैं और साथ ही यह बताना भी आवश्यक है कि बावजूद अपनी मीमांसा के उस विचारक में कौन-कौन से तत्त्व ग्रहणीय हैं। यह दृष्टि पन्तजी के स्वर्णकाव्य पर लिखे हुए डा० शर्मा के निबंध में नहीं मिलती। यह निबंध शचीरानी गुर्टू द्वारा सम्पादित 'सुमित्रानन्दन पन्त' नामक पुस्तक में संकलित है।

डा० शर्मा के उक्त निबंध में निश्चित रूप से संकीर्णता है किन्तु मार्क्सवाद को संकीर्ण बताना एक बात है और उस तात्त्विक चर्चा में छोड़ बैठना सर्वथा दूसरी बात है। मैंने जब भाई शिवदानसिंह चौहान से 'पन्तजी के नूतन काव्य और दर्शन' की भूमिका लिखने के लिए अनुरोध किया था तब मेरे मस्तिष्क उनकी पूर्व रचनाएँ थीं। उनसे संकीर्णतावाद के विरुद्ध विरोध मिला था किन्तु यह नहीं मिला कि वह मार्क्सवाद को पूर्णतः सत्य न मानकर उसे अनेक वादों में से एक वाद मात्र मानते हैं किन्तु जब श्री चौहान की भूमिका मेरे पास आई तो मुझे अत्यधिक दुःख हुआ और हिन्दी में प्रगतिवाद के एक प्रमुख विचारक की सिद्धान्तअस्थिरता को देखकर मैं चकित रह गया। मैंने भूमिका को अपनी पुस्तक के साथ प्रकाशित करना इसलिए उचित नहीं समझा कि भूमिका लेखक के साथ मेरा सैद्धांतिक मतभेद है। यदि भाई चौहान केवल यह लिखते कि उपाध्याय की पुस्तक में संकीर्णता का विरोध

करते पर पर भी सर्वाणता या कुत्सित समाजशास्त्र अवशिष्ट है, तब मुझ कोई आपत्ति न होती किन्तु उन्होंने तो स्वय मार्क्सवाद पर ही प्रहार किया अत मैंने चितन के मूलाधार के प्रति असहमति देखकर श्री चौहान की भूमिका वापस कर दी। उन्होंने कृपा कर युग चेतना म उसे प्रकाशित कर दिया और अब उनके निबन्ध-सकलन आलोचना के मान म वह निबन्ध पन्त-काव्य का मूल्याकन शीर्षक से प्रकाशित हुआ है। श्री चौहान लिखते हैं ?

प्रश्न उठता है कि क्या मार्क्सवाद को वैज्ञानिक या वस्तुवादी मानते ही अन्य सभी सिद्धान्तों का अबुद्धिवादी अवैज्ञानिक तथा अन्तत प्रतिक्रियावादी घोषित कर देना अनिवार्य हो जाता है ?

इसका सीधा उत्तर यह है कि मार्क्सवाद का वैज्ञानिक मानने पर अन्य चिंतन-पद्धतियों को अवैज्ञानिक मानना ही होगा। वैज्ञानिक दृष्टिकोण और रहस्यवाद म समन्वय सम्भव ही नहीं है दोनों म से एक को चुनना होगा।

श्री चौहान का दूसरा प्रश्न है क्या मार्क्सवादी दृष्टिकोण मन पर ऐसे असहिष्णु तथा एकाधिकारी प्रभाव डालता है कि मानव-चेतना की अब तक की सभी महान सास्कृतिक तथा कलात्मक उपलब्धियाँ एक क्षण म ही तुच्छ नगण्य और वर्गस्वार्थ प्ररित नजर आने लगती हैं ?

मार्क्सवाद असहिष्णु नहीं है यदि वह ऐसा होता तो युगविशेष म विकसित विचार और कला की प्रगतिशीलता और प्रतिक्रियावादिता को कैसे निश्चित कर पाता ? षड्दर्शन अपने युग म महान थे विकास की दृष्टि से मानवीय चेतना की उन्नति म उनका महान योग है परन्तु क्या आज उन्हे सहिष्णुता के नाम पर पूर्णत स्वीकार किया जाएगा ? कौन कहता है कि षडदर्शन नगण्य हैं तुच्छ हैं ? कहना यह है उनम जो भौतिकवादी तत्त्व हैं व ही सही हैं उनका आदर्शवाद सही नहीं है क्योंकि आज के विज्ञान से उनका खडन हो जाता है। वैशेषिक का अणुवाद अपने युग म महान था आज वह आदिम प्रमाणित होता है, क्या किया जाय विवशता है। सहिष्णुता का तात्पर्य यह नहीं है कि मिथ्या को सत्य कहा जाय।

श्री चौहान लिखते हैं क्या मन म यह सस्कार जड पकड लेता है कि जो 'हमसे (तत्कालीन मार्क्सवादी प्रवक्ताओं से) अक्षरश सहमत नहीं हैं व व्यक्ति या विचारधाराएँ लाजमी तौर पर प्रतिक्रियावादी और जन विरोधी हैं ?

इसका उत्तर यह है कि सहमति या असहमति का प्रश्न सत्य से सम्बन्धित है मुझसे और आपसे सम्बन्धित नहीं है। सत्य क्या है प्रश्न यह है। यदि भौतिकवाद सत्य है तो आत्मवाद या अन्य कोई भी मत हो उसे सत्य कैसे कहा जाएगा ? यदि कहें कि अन्य मतों में आंशिक सत्य हो सकता है तो मैंने पंत जी के नूतन काव्य और दर्शन में पन्त और अरविन्द के चिंतन के भौतिकवादी अंश को स्वीकार किया है और उसकी अनेक स्थानों पर प्रशंसा की है। चिंतन में समन्वयवाद से असहमत होते हुए भी चिंतन के पीछे पंतजी की सदिच्छा की प्रशंसा की है। इसलिए नहीं कि पंतजी की स्तुति करना चाहिए बल्कि इसलिए कि यह एक तथ्य है अतः जो मार्क्सवादी नहीं है उसे मार्क्सवादी वैज्ञानिक दृष्टि रखने वाला पूर्णतः कैसे स्वीकार करेगा ? अरविन्द-दर्शन आज के वैज्ञानिक युग में अंशतः प्रतिक्रियावादी नहीं तो और क्या है ?

श्री चौहान पुनः प्रश्न करते हैं—क्या अध्यात्मवाद और भौतिकवाद की दार्शनिक विचारधाराओं के ऐतिहासिक संघर्ष का अंतिम फैसला हो गया है अर्थात् क्या जीवन जगत सम्बन्धी अंतिम और निरपेक्ष सत्य मनुष्य ने पा लिया है कि हम अध्यात्मवादी दर्शनों को बंजर (अबुद्धिवादी और अवैज्ञानिक) युग की निशानी के रूप में उठाकर म्यूजियम के तहखाने में बन्द कर दें और यदि कोई आज भी उनमें थोड़ी सी आस्था प्रकट करे तो उसे समाज द्रोही घोषित करके समाज के रचनात्मक-जीवन से बहिष्कृत कर दें ?

पश्चिम-वैज्ञानिकों तथा मार्क्स एंगिल्स पावलव एवम् अन्य विचारकों के बाद अंतिम फैसला इतिहास और पदार्थ विज्ञान के विषय में तो हमारे सम्मुख आ है। रही बात चेतना और मूलतत्त्व में कौन प्रथम है यह फैसला बुद्धि के आधार पर तो हो चुका है क्योंकि यदि हम चेतना को मूलतत्त्व से पहले मानते हैं तो वही पुराना प्रश्न उठता है कि अनन्त चैतन्य क्या यह सृष्टि करता है क्या वह मूलतत्त्व में विकसित होता है? और पुराना दर्शन इन प्रश्नों का उत्तर कभी नहीं देता। काँट को भी मानना पड़ा था कि बुद्धि से ईश्वर सिद्ध नहीं होता विश्वास से होता है। इसके सिवा अंतिम फैसले के लिए यदि पश्चिम विज्ञान और मनोविज्ञान (पावलव) यदि अभी तक सभी प्रश्नों के उत्तर नहीं दे पाते तो इसका अर्थ यह नहीं कि वैज्ञानिक पद्धति छोड़कर 'स्वयंप्रकाश्यज्ञान' को बोध का आधार मान लिया जाय। चूंकि अरविन्द और पंत जी इसी 'स्वयंप्रकाश्यज्ञान' को आधार मानकर चले हैं अतः इसे

अबुद्धिवादी' कहना ही पडेगा हाँ 'बर्बर' शब्द का प्रयोग मैंने अपनी पुस्तक मे नहीं किया। एगिल्स ने एक स्थान पर अवश्य लिखा है कि 'सामाजिक व्यवस्था, बदल जाती है किन्तु पुराने विश्वास चलते रहते हैं किन्तु उन्होंने 'बवर की जगह उस पुराने विश्वास को'आदिम मूर्खता (Primitive Nonsense) कहा है।[१] अध्यात्मवादियों को 'समाजद्रोही' कह कर निकाल दिया जाय यह कोई नही कहता क्योंकि अध्यात्मवाद म केवल 'तत्वचर्चा' ही नही है, उसमे मानवता के प्रति प्रेम भी है, उसमे परसेवा, त्याग, तितिक्षा, शाति और कर्त्तव्यप्रियता की भी क्रियाएँ हैं। ये गुण पन्त जी के काव्य मे भी हैं। पन्त जी को इसीलिए मैंने 'मानवतावादी' माना है, और 'मानवतावादी' आदरणीय हाता है किन्तु जब वह 'मानवतावादी' अपने तत्त्वज्ञान को समाज के सम्मुख प्रस्तुत करता है तब उसकी भ्रान्तियों पर अपना दृष्टिकोण रख देना क्या चौहान साहब अपराध समझते हैं ?

श्री चौहान कहते हैं—"आज बुद्धि जीवियो मे मार्क्सवाद के प्रति जो शकाएँ पैदा हो गई हैं, वे इस कारण नहीं कि कुत्सित समाज शास्त्रियो ने मार्क्सवाद को सकीर्ण बना दिया है, बल्कि इसलिए कि जो अपने को कुत्सित समाज शास्त्रियों का विरोधी कहते हैं, वे भी व्यवहारत इन सकीर्णताओ से मुक्त नही हैं।"

यानी सारा अपराध "पन्त जी नूतन काव्य और दर्शन" तथा उसके लेखक का है। असलियत यह है कि मार्क्सवाद को जितनी सकीर्णतावाद से हानि हुई है, *उतनी ही चौहान साहब के इस दृष्टिकोण से भी हुई है* कि 'मार्क्सवाद' एकागी है। मैं चौहान साहब का आभारी हूँ कि उन्होंने स्पष्ट शब्दो मे मार्क्सवाद की एकागिता स्वीकार कर यह सिद्ध कर दिया है कि वह पूर्णत 'मार्क्सवादी' नहीं हैं, यानी 'प्रगतिवादी' नही हैं, प्रगतिशील अवश्य हैं—

"फिर भी इतना कहना जरूरी है कि भौतिकवाद (मार्क्सवाद) जो भूत (मैटर) की सत्ता को प्रमुख मानता है और अध्यात्मवाद जो मन या चेतन सत्ता की सत्ता को प्रमुख मानता है—ये दोनों ही एकागी हैं"

---

1. Selected works, Vol II, Page 449.

विनोद का विषय यह है कि श्री चौहान मार्क्सवाद की—इस एकांगिता को मान कर भी मार्क्सवाद के ही विरोधी तत्वों की अन्विति (यूनिटी आफ अपोजिटस) के सिद्धांत का गलत प्रयोग करते हैं। हम देख चुके हैं कि *मार्क्सवाद भूततत्त्व के ही भीतर विरोधी तत्वों के संघर्ष से पदार्थों और* चेतना का विकास मानता है। भूततत्त्व के अलावा उसके बाहर किसी चेतना को नहीं मानता किंतु फिर भी चौहान साहब विरोधों की अन्विति के सिद्धांत का प्रयोग कर रहे हैं और साफ कहते हैं कि— हमें दोनों (यानी चेतना और मैटर की अलग अलग) की सत्ता को स्वीकार करना होगा किंतु इससे वही उलझन खड़ी होगी जो चैतन्य का पूर्ववर्ती मान लेने पर हुई थी। सांख्य का इसीलिए भयंकर विरोध हुआ था कि वह दोनों को एक साथ *मानता था।*

भाई शिवदानसिंह जी ने प्रयाग से प्रकाशित आस्था अंक में जो लेख लिखा था वह भी आलोचना के मान में संकलित है। इसमें भी स्पष्टतः आपने अपनी आस्था के विषय में कहा है—

इस लम्बी यात्रा में गांधीवाद के दायरे में से निकलते ही द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद से मेरा साक्षात हुआ। मुझे लगा कि शायद सत्य की कुंजी यही है और मैं मार्क्सवादी बन गया। मार्क्सवादी मैं *आज भी हूँ* क्योंकि *द्वन्द्वात्मकता का सिद्धांत प्रकृति और जीवन की विकास प्रक्रिया का भौतिक ज्ञान की सीमा* तक सच्चा आइनादार है। लेकिन किसी वाद का वादी होने से दृष्टि के आगे जो *सीमा रेखा अनिवार्यतः* खिंच जाती है उससे *अपरिचित नहीं हूँ*। इसलिए सोचने में द्वन्द्वात्मक प्रणाली को अपनाते हुए भी मैं मार्क्सवादी सीमाओं में ही चक्कर काट कर पुनः आद्यबिंदु पर लौट आने का आदी नहीं हूँ। सत्य वास्तविकता या जीवन किसी भी वाद में बड़े हैं असंख्य रूपा हैं और इनके रहस्यद्वार तक पहुँचने के अनेक मार्ग हो सकते हैं—इस यात्रा में कम से कम इतनी उपलब्धि तो हो ही चुकी है। (पृष्ठ ५७)

यह उपलब्धि अभिनन्दनीय है किंतु सृष्टि के पूर्व चेतना और मैटर को *अलग-अलग मान लेने पर द्वन्द्वात्मक सिद्धांतों की प्रामाणिकता भी समाप्त हो* जाएगी। मार्क्सवाद अद्वैतवाद के बिना चल नहीं सकता। आदर्शवादियों में भी 'चेतनाद्वयवाद ही सफल हो सका। द्वैतवाद को न भारत में और न यूरोप में महत्त्व मिल सका। अरविंद और पंत जी भी अद्वैतवादी' हैं द्वैतवादी नहीं किन्तु भाई चौहान जी द्वैतवाद का समर्थन कर रहे हैं आश्चर्य है।

जब चेतना, मैटर से स्वतन्त्र रूप मे पूर्व से ही विद्यमान थी तब भूततत्त्व के साथ उसका संयोग क्यों हुआ ? द्वन्द्व क्या शुरू हुआ ? सामञ्जस्य क्या यहां मान लिया जाता ? चेतना जब स्वतन्त्र है तब परिस्थितियों का उस पर थोड़ा बहुत प्रभाव तो आदर्शवादी भी मानते हैं तब आप स्पष्टतः क्या नहीं घोषित करते कि मैं मार्क्सवाद को तिलांजलि देता हूँ ?

वास्तविकता यह है कि मानवता की मुक्ति के लिए पूर्ण सदिच्छा व्यक्त करते भी पन्तजी के नवनवकाव्य में नूतन रहस्यवाद की ही अभिव्यक्ति हुई है और विचार की दृष्टि से इसका विरोध अनिवार्य है। इस रहस्यवाद के कारण कवि पन्त का काव्य अत्यधिक कल्पनाशील और भाव-ऊष्मा से रहित हो गया है स्वयं अरविन्द अपने काव्य को स्वयंप्रकाश्यात्मक कहते और भाव के स्तर पर लिखे गए काव्य को मध्यम कोटि का मानते थे।[1] कला अरविन्द के अनुसार भावात्मक या बौद्धिक नहीं स्वयंप्रकाश्यात्मक अथवा 'इन्ट्यूटिव' ही हो सकती है जिसका कार्य 'ईश्वर' का साक्षात्कार करना है अथवा आतंरिक प्रकाश का दर्शन ही कला है। पन्त जी के नवीन काव्य मे इसी ऊपर से छन छन कर आने वाले प्रकाश का मुग्ध हो होकर वर्णन किया गया है अतः विचारतः यह रहस्यवाद है प्रगतिवाद नहीं। 'प्रतिमा के बाद सौवर्ण' और 'कला और बूढ़ा चांद' में भी यही प्रवृत्ति है।

यह आश्चर्य का विषय है कि नूतन काव्य मे 'सदिच्छा के' बावजूद मे मार्क्सवाद का भयंकर विरोध करने पर भी श्री चौहान जी ने कुछ भी नहीं कहा। यानी डा० शर्मा ने पन्त जी का विरोध किया उस पर तो वह रुद्ररूप धारण करते हैं किन्तु पन्तजी द्वारा 'प्रगतिवाद' के स्थान पर 'रहस्यवाद' की प्रतिष्ठा के विरुद्ध वह कुछ नहीं कहना चाहते। यह भी सुना गया है कि पन्तजी अरविन्दवाद की अनुकृति को अस्वीकार करते हैं किन्तु कोई भी तटस्थ दृष्टि से अरविन्द और पन्तजी की विचारधारा मे साम्य देख सकता है। मैंने पूर्वाग्रहों के आधार पर नहीं दोनों विचारकों की रचनाओं के विश्लेषण के आधार पर यह तथ्य प्रमाणित किया है कि पन्तजी अरविन्द से केवल प्रेरणा नहीं लेते वे अरविन्द के विचारों के हिन्दी मे अक्षरशः प्रचारक हैं और अरविन्दवाद प्रगतिवाद विरोधी दर्शन है जो स्पष्ट घोषणा करता है कि 'बुद्धि' पर आधारित होने के कारण भौतिकवाद का पतन निश्चित है क्योंकि 'बुद्धि' विभाजन करती है जब कि सत्य को केवल 'आत्मा' के द्वारा ही देखा जा सकता है।

---

१ द्रष्टव्य—Future Poetry

चिदम्बरा मे पन्त जी ने विस्तार से यथार्थवादियो की भर्त्सना की है और अपने रहस्यवाद को स्वीकृति दिलाने के लिए महान श्रम किया है। इधर दर्शन और कला के क्षेत्र म अध्यात्मवाद और रहस्यवाद को भी यथार्थ कहने की प्रवृत्ति चल पडी है। पन्तजी समतल (भौतिक उन्नति) और ऊर्ध्व तल (अध्यात्म) का समन्वय चाहते है और उसे ही यथार्थ मानते है किन्तु इस ऊर्ध्वतल के चक्र मे न तो समतल की उन्नति होगी और न ऊर्ध्वतल की साधना का ही पन्त जी की भावी पीढी को अवसर मिल सकेगा। पन्तजी पृथ्वी पर स्वर्गिक शिखरो का वैभव लुटा रहे हैं। कला की दृष्टि से मधुर स्वप्नो और सदिच्छाओ का भी सीमित महत्त्व है परन्तु आज यह सब दम्भ लगता है। कोटि-कोटि जनता के सम्मुख जीवन और मरण का प्रश्न है उसे स्वर्गिक वैभव न देकर उसके मन की वास्तविक भावनाओ और जीवन-दशाओ को चित्रण करने की आवश्यकता है न कि ऊर्ध्वस्तरो से उतरने वाले किसी अज्ञात रहस्य की। यह स्मरणीय है कि पन्त जी के समन्वय के नारे ने बहुत अधिक भ्रम फैलाया है।

विचार की दृष्टि से पन्तजी का चिन्तन रहस्यवादी होने पर भी प्रत्येक रहस्यवादी की तरह पन्त जी मानव कल्याण के समर्थक हैं। उनके काव्य मे शान्ति सहानुभूति आशा और आस्था के स्वर प्रबल हैं। विश्व युद्ध का पन्त जी ने दृढ शब्दो मे विरोध किया है। प्रयोगवाद के द्वारा प्रचारित हिन्दी मे अनास्था कुण्ठा पस्तहिम्मती तथा अवसाद के स्वरो के विरुद्ध पन्तजी भावी मानवता के विजय के गायक हैं। वह कुरूपता के स्थान पर सौन्दर्य और स्वप्नो के चितेरे है। वह मनुष्य की निम्न वृत्तियो के निन्दक और सात्त्विक वृत्तियो को कला मे मूर्तित करने वाले कवि हैं। वह निर्माण के प्रबल समर्थक और उसके प्रति आशावान हैं। पन्त जी के काव्य म प्रगति के ये स्वर अभिनन्दनीय हैं। यह स्मरणीय है कि पन्त जी के इस पक्ष की मैंने पन्त जी के नूतन काव्य और दर्शन म बार-बार प्रशसा की है और प्रयोगवाद से उनके काव्य को समग्रत अधिक प्रगतिशील सिद्ध किया है किन्तु भाई शिवदानसिंह ने इस तथ्य की भी उपेक्षा की है। अस्तु।

पन्तजी के नूतन काव्य मे प्रगतिशील स्वर —

विश्व-युद्ध का विरोध—दौड रहे शत प्रलय धरा का वक्ष चीरते।
रौंद रही लपटें पावक के भूधर पगधर।
टूट पड शत नरक बरसते रुड मुड हत,

टूट गए रौरव के भूत पिशाच प्रेत हो।
कड कड करते क्रुद्ध वज्र, फट फट पडते सिर,
रक्त मास मज्जा उडते क्षण धूम भाप बन।
फूट गया पृथ्वी के भीषण पापो का घट।
लुंज पुंज मासल तन पल मे होते ओझल।
चटक अस्थि पजर क्षण में मिटते भूरज मे।
ततु जाल सी त्वचा सिहरती झुलस ताप से।
छिन्न पसलियाँ छितर टहनियो सी पतझर की।
चरमर जल उठती पल मे शत होम शिखा सी।

'ध्वसशेष' मे युद्ध का भीषण वर्णन करके पन्तजी ने युद्ध का विरोध किया है। ऐसे स्थलो पर कवि का स्वर अत्यधिक मानव-प्रेमी हो उठता है। कला की दृष्टि से कामायनी के प्रलय-वर्णन जैसी सशक्त काव्यकला के दर्शन यहाँ होते हैं। क्योकि यहाँ कवि 'यथार्थ' की भूमि पर है।

मध्ययुगीन अध्यात्मवाद की तुलना मे प्रगतिशील अध्यात्मवाद—पन्तजी ने 'चिदम्बरा' की भूमिका मे कहा है, कि यह काव्य नूतन अध्यात्मवाद है, जिसमे मध्यकालीन अध्यात्मवाद की तरह धरती के जीवन की उपेक्षा नही है। शाकर वेदान्त, ससार को मिथ्या मानता है, अरविन्दवाद जगत् को सत्य मानता है। वेदान्त 'व्यक्ति' पर ही विचार करता है। अरविन्दवाद जगत् की भी उपेक्षा नही करता। पन्त जी इसीलिए आध्यात्मिक प्रकाश के साथ-साथ 'धरती' की भी उपेक्षा नही करते। धरती के प्रति प्यार उनकी नयी कविता मे सबसे अधिक कलात्मक ढग से "यह धरती कितना देती है" शीर्षक कविता मे व्यक्त हुआ है। कवि मिट्टी मे पैसे बोता है किन्तु वे फलते-फूलते नही। फिर वह 'सेम' के बीज बोता है तो वे फलते-फूलते हैं, नए पौधो का कितना सुन्दर वर्णन है—

देखा, आँगन मे कोने मे कई नवागत
छोटी छोटी छाता ताने खडे हुए हैं।
या हथेलियाँ खोले थे वे नन्ही प्यारी
पख मार कर उडने को उत्सुक लगते थे
डिम्ब तोड कर निकले चिडियो केबच्चो से!
अनगिनती पत्तो से लद, भर गई झाडियाँ
हरे भरे टँग गए कई मखमली चँदोवे!

हरे हरे सो परने फूल पड ऊपर की—
मैं अवाक रह गया वश कैसे बनता है !

जहाँ जहाँ कवि ने इस तरह जीवन को देखा है उसकी कला मे दम घोट ऊब्वता कम हो गई है। उनकी प्रतीकात्मक कविताएँ भूप्रमी चन्द्रोदय द्वाभुपर्णा हरीतिमा आदि से उक्त रचना अधिक प्रभावित करती है। अत्यधिक आतरिकता के कारण रहस्यवादी काव्य तथा अत्यधिक सैद्धान्तिक घोषणाओं के कारण पत जी का उपदेशपरक काव्य नीरस हो गया है परन्तु जहा जहाँ उसका सम्बन्ध वास्तविक जीवन परिस्थितियो से है वहा काव्य मार्मिक हो गया है।

प्रकृति चित्रण—प्रकृति चित्रण मे पत जी पूर्वकाव्य म अपना एक विशिष्ट स्थान रखते हैं। प्रगतिवाद के इस युग म यद्यपि पत जी के नूतन काव्य मे प्रकृति रहस्यवेष्टित होकर ही कवि के सम्मुख उपस्थित होती है वह चेतना के ऊर्ध्वस्तरो पर बैठकर ही प्रकृति का निरीक्षण करता है परन्तु लक्ष्य करने योग्य तथ्य है कि प्रकृति की सुपमा को चित्रित करने की प्रवृत्ति नूतन काव्य मे भी है। कुरूपता की ओर तो कवि दृष्टिपात करता ही नही। वह कौवे मे भी सौन्दर्य खोजता है ! छायावाद की मानवीकरण पद्धति इन नए काव्य मे बराबर प्रयुक्त हुई है —

ओ रँभाती नदियो बेसुध कहा भागी हो ?
वशीरव तुम्हारे ही भीतर है !
ओ फन गुच्छ लहरो की पूँछ उठाए
दौडती नदियो इस पार उस पार भी देखो—
जहाँ फूला के फूल
सुनहले धान के खेत हैं
कलकल छलछल अपनी ही विरह कथा
प्रीति कथा कहते मत चली जाओ !
ओ दूध धार टपकाती शुभ्र प्ररणा धनओ !

अथवा

शरद आ गई !
श्वेत शुभ्र बलाका की मन्दिर चितवन लिए
स्वच्छ जल नील नभ उमी का वक्ष है

कांसों की दूध फेन सेज पर चदिरा सोई है।
गौर पद्म सरोवर, उठता, गिरता, उसी का वक्ष है।[१]

पन्तजी के नवीन काव्य मे भारतवर्ष की स्वर्गिक सुषमा का चित्रण सौम्यता और सुघराई से अंकित है। हिन्दी के नवीनतम काव्य मे इस काव्य मे मानवीय मन को सुरुचिपूर्ण बनाने की शक्ति अवश्य है, अधिकतर प्रकृति-वर्णनो मे कवि आध्यात्मिक रहस्य का स्पर्श भर देता है तथापि उसमे बहुत सा अंश ऐसा भी है जो स्वतंत्र रूप से भी प्रभावित करता है।

मानवता के प्रति सदिच्छा—कवि के चिन्तन से पूर्णत सहमत न होने पर भी कवि की सदिच्छा पन्त जी के नूतन काव्य मे सभी को प्रभावित करती है। पूर्ण ईमानदारी से वह विश्वास करता है कि नूतन मानवता का युग आ रहा है। मनुष्य की दुरावस्था देखकर कवि का मन विह्वल हो उठता है, उसका समाधान चाहे विचारत गलत हो किन्तु उसकी नवयुगनिर्माण की इच्छा प्रशसनीय है। 'चिदम्बरा' की भूमिका मे कवि ने 'कला' और मानवमगल की एकता स्थापित की है। प्रयोगवादी कहते हैं कि ये बडी-बडी बातें हैं किन्तु इतिहास गवाह है कि मनुष्य की बडी-बडी बातो अर्थात् महान सकल्प ने ही जातियों की इच्छा शक्ति दृढ की है।

आज जीवनोदधि के तट पर, खडा अवाछित, क्षुब्ध, उपेक्षित
देख रहा मैं क्षुद्र अहम् की, शिखर लहरियां का रण कुत्सित।
सोच रहा किसके गौरव से, मेरा यह अतर जग निर्मित।
लगता, तब हे प्रिय हिमाद्रि, तुम मेरे शिक्षक रहे अपरिचित।

आशा—क्यो मानव यौवन वसत सा, हो न लोक जीवन मे कुसुमित
मधुर प्रीति हो सामाजिक सुख, प्राणभावना, आत्मसयमित।
भावी सतति को दे मानव, पुण्य चेतना की छवि दीपित।
हो मौलिक सस्कार वधू का, जागृत, कृत्रिमता से कुठित।

पुरुषार्थ—कभी न पीछे हटने वाले ही पाते जय।
बहिरतर के ऐश्वर्यों का करते सचय।
आकांक्षा—खोलो मा, फिर बादल सी निज कबरी श्यामल।
जन मन के शिखरो पर चमकें विद्युत के पल।

---

१. कला और बूढा चांद।

विचारा का इतना अधिक बाहुल्य है कि भाषा काफी नीरस और सांकेतिक बन गई है। लेकिन इन कविताओ में निबद्ध दार्शनिक वक्तव्य इतने चुस्त और गम्भीर हैं कि केवल पन्त की क्षमता का महाकवि ही उन्हें इतनी स्पष्ट और सश्लिष्ट अभिव्यक्ति दे सकता था। फिर भी उनकी किसी भी दार्शनिक कविता में मुक्त रागात्मकता का सर्वथा अभाव नही दीखता। (आलोचना के मान पृष्ठ १२५)

इन दोनो व्यक्तव्यो मे किसे सही माना जाय पन्त जी के नूतन काव्य का अनुशीलन ही इसका उत्तर दे सकेगा। धारणा बदल देना अपराध नही है अनुभव और अनुशीलन के बाद धारणाएँ बदलती ही हैं किन्तु भाई चौहान का हिन्दी-साहित्य के अस्सी वर्ष से आलोचना के मान तक आते-आते चार वर्ष हो गए किन्तु उन्होने यह स्पष्ट नही कहा कि पन्त के नूतनकाव्य के सम्बन्ध मे उनकी धारणा वह नही रही जो सन १९५४ मे हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष में थी।

मैं भाई शिवदानसिंह जी की पूर्व धारणा का समर्थक हूँ। कला और बूढा चाँद के बाद भी यह नही कहा जा सकता कि पन्त का नूतन-काव्य एब्सट्रैक्ट नही है। उसमे चिन्तन की घोषणा की अधिकता और जीवनगत मांसलता का अभाव है। कल्पना का चमत्कार और मानव कल्याण कामना तथा शब्दशिल्प के कारण उसमे आन्तर आकर्षण भी है परन्तु यह साफ झलकता है कि अब कवि दार्शनिक हो गया है और सिद्धान्तविषयक अमूर्त धारणाओ को जीवन के अनुभवो से वह अधिक महत्त्व देता है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रगतिवादियो की सिद्धान्तवादिता की आलोचना करते-करते प्रगतिवादियो के उस दोष को स्वय पन्त जी ने अपने ऊपर आरोपित कर लिया हो।

\+ \+ \+ \+

नवीन शैली—आज का प्रगतिवादी काव्य अभिव्यक्ति को परिष्कृत करने और उसे अधिकाधिक मार्मिक बनाने का प्रयत्न कर रहा है। यह मानना होगा कि कई प्रगतिवादी कवि प्रयोगवाद से प्रभावित हैं। किन्तु प्रयोगवादी शैली में वह वस्तुतः प्रगतिवादी चेतना की ही व्यजना करते हैं। यह प्रवृत्ति प्रशसनीय है। हम पीछे देख चुके हैं कि अब अत्यधिक उत्तेजनात्मक प्रति शोधात्मक क्षोभ-गर्जन-तर्जन युक्त प्रगतिवादी कविताए 'शिष्ट समाज' मे आदृत नही होती शिक्षित समाज व्यजना की सूक्ष्मता चाहता है अत अब अपने

दृष्टिकोण को कवि अवसाद को अधिक व्यक्त करते हैं। 'सिद्धान्तवमतवाद',
जो प्रारम्भिक प्रगतिवादी कविता का लक्षण हो गया है अब नहीं मिलता।
प्रकृति चित्रण में भी यही प्रवृत्ति है। हम गिरिजाकुमार माथुर द्वारा प्रयुक्त नवीन शैली के उदाहरण दे चुके हैं। जिस शैली में प्रगतिविरोधी कवि *अनास्था अवसाद और कुण्ठा को अभिव्यक्ति दे रहे हैं उसी शैली में प्रगतिशील* कवि आशा उत्साह विश्वशांति वर्गसंघर्ष, प्रेम और जागरण सम्बन्धी कविताएँ लिखता है। इसके अतिरिक्त पुराने काव्यरूप भी चल रहे हैं।

कुहनी टिकाए खुली भुज पर
शीश झुकाए हाथा पर
क्या अपनी पलको में डूब रहा ?
कुछ सपने टूटे शायद
रंगीन काँच के टुकडों से।
खिड़की के बाहर फेंक उन्हें।
स्मृतियाँ के बच्चे आकर उनको चुन लेंगे।
हैं स्वप्न टूटते उन्हें टूटता जाने दे।
तू बना रहा तो कितने स्वप्न बना लेगा।[1]

लगता है कि यह काव्य प्रयोगवादी' है परन्तु यह कविता शुद्ध जनवादी है। यहाँ टूटते हुए आदमी को प्रेरणा दी गई है कि उसे टूटना नहीं चाहिए, व्यक्तित्व को विशृंखल होने से बचाना चाहिए। सिद्धनाथकुमार का 'टूटा हुआ आदमी' प्रगतिवादी प्रयोगवाद का श्रेष्ठ उदाहरण है। अनन्त के पंछी जाग और लहरों में भी यही विशेषता है।

पत्थर पर पानी की बूँद करे टिप टिप्
जल पर करे छन छन
कानों की दाप या मन ही अयाना
कैसा है पानी का छन्द !
किनारे में ददरा का स्यागा कहामा
जँगल-बरखा से आग
तमकर भी मुसकर भी रेशम के परदा को
अपने हिया भर भिगाए।

---

1 'टूटा हुआ आदमी'—सिद्धनाथकुमार

तन की उदासी औ मन की बिरसता
पानी के संग संग घुली। (अनन्त)
थके मेघमुख शिखरा शिखरो
टूटे पहाड रिसत चौडा
पर इस बन्ध्या से नरने न झरे।
पगवट निपटी, हरी द्रोणियाँ
नदियाँ चाँदी की कमरधियाँ
सबने गति को वरा किन्तु हम सौ बार मरे।[१]

अन्तिम पंक्ति मे कवि किस प्रकार प्रगति विरोधियो पर व्यग्य करता है यह द्रष्टव्य है।

वर्गसघर्ष—सुविधाओ के अद्वितीय चश्मो से मुख देखने वाले नागरिको !
गुप्त ध्यान से देखो !
जबो चिल्लिया सब उतार मुख पहचानो
कुबड वृद्ध, कोढी दैत्य सा तुम्हारे
हाला, सेल्फो, ड्राअर या ड्रेसिंग टेबिल मे
छिपने वाला प्राणी मैं कौन हूँ
पहचाना मुझे पहचानो
मेरे इस कूबड को जरा पास से देखा।
हाँ यह तुम्हारे ही घृणित घाव की
बूढी गठरी है।
मेरी पिलपिली बाह अपने
दास्तानो से परे अँगुलियो से महसूस करो।
पता और गला और दागीला यह किसका चेहरा है
ये किसकी अधवार जीवी गीजडप्रसवा आँखें हैं
जोक और साफ भरे तालाब के सदृश
यह किसका माथा है ?
अपमानित नगरो के सम्मानित नागरिको
मुझको पहचानो ![२]

---

१ नरेश मेहता—'समवेत'।
२ श्रीकान्त वर्मा—समवेत

विषमताग्रस्त समाज पर नई कविता का कितना कठोर व्यंग्य है। कवि की 'करुणा' की कैसी आकर्षक व्यंजना है। इसमें व्यंजित उत्तेजना वही है जिसका दर्शन हम प्रारम्भिक प्रगतिवाद में कर चुके हैं किन्तु अब उसका रूप अधिक संश्लिष्ट और कलापूर्ण हो गया है।

जीवन के प्रति प्यार—बाँह दे दो मुझे अपनी

जहाँ छाती लगी पत्ती की तरह हिलता रहूँ मैं।
और जीवित बाँह में हिलता रहूँ मैं।
हर हवा के झोंके में हास में जीता रहूँ मैं।
धूप-सूरज की गरम से भी गरम पीता रहूँ मैं।
जुगनुओं की आग, अपने ओंठ से छूता रहूँ मैं।
और मछली की तरह छवि सिन्धु में डूबा रहूँ मैं।[1]

केदारनाथ अग्रवाल में छायावादी कवि की सौन्दर्य ग्राहिका शक्ति विद्यमान है किन्तु दृष्टि नवीन है। केदार प्रारम्भिक प्रगतिवाद से अब तक एक दीर्घ अवधि पार कर चुके हैं अतः उनमें वस्तुतत्त्व सर्वत्र प्रगतिवादी होने पर भी शैली के विविध रूप हैं राग के विविध स्वर हैं और यह प्रशंसनीय प्रवृत्ति है।

प्रगतिवादी काव्य में निराला और नागार्जुन का व्यंग्य प्रसिद्ध है। व्यंग्य काव्य का प्रगतिवादी प्रयोगवाद में और भी अधिक विकास हुआ है। प्रयोगवाद का विवेचन करते समय हम इस विस्तार से देखेंगे। नागार्जुन का व्यंग्य अनगढ़ अधिक होता है उसमें प्रायः 'अशिष्टता' भी रहती है यह प्रायः आरोप किया जाता है किन्तु सर्वत्र ऐसा नहीं है—

हाथी बस आँखें ही आँखें।
घनी-घनी तनी घनी भौंहें, नीची नसा वान ढक पपोट।
मयन विस्फारित काए कोरों जमा हुआ कीचड़
कुछ नहीं होना कुछ नहीं होना।
शाना बस आँखें ही आँखें।
चकरनीव वाचा का जगल
झुर्रियाँ भरा कुंचित ललाट

---

१ केदारनाथ अग्रवाल।

खिचडी दाढी का उजाड घोसला
कुछ नहीं होता, होती बस आखें ही आँखें।

नागार्जुन ने ग्राम श्री का वर्णन भी अच्छा किया है। ग्रामीण जीवन के प्रति कवि की आसक्ति दर्शनीय है—

बहुत दिनो के बाद, अबकी मैंने जी भर देखी
पकी सुनहली फसलो की मुस्कान !
अबकी मैंने जी भर सुन पाया
धान कूटती किशोरियो की *कोकिल कठी तान* !
अबकी मैं जी भर छू पाया
अपनी गँवई पगडण्डी की
चन्दनवर्णी धूल !
बहुत दिनो के बाद !

ग्राम श्री के प्रति केदारनाथ अग्रवाल मे भी यही दृष्टिकोण मिलता है—

आर पार चौडे खेतो मे, लाखो की अगणित सख्या मे
ऊँचा गेहूँ डटा खडा है।
ताकत से मुट्ठी बाँधे है, नौकीले भाले ताने है।

ज्वार खडी खेतो मे ऊँचे लहराती है।
कहती है मेरे यौवन को बढने देना
मेरी इच्छा है जीने की, जीने देना
जी भर मुझको दूध रुपहली पीने देना !

लोकसाहित्य से प्रेरणा—नागार्जुन और केदार की रचनाओ मे लोककाव्य के स्वर प्राय सुनाई पडते हैं। यह वास्तविकता है कि अभी तक लोककाव्य से जितनी प्रेरणा ग्रहण की जानी चाहिए, उतनी प्रेरणा ग्रहण नही की जा सकी है फिर भी छायावाद के बाद लोककाव्य का अध्ययन और लोककाव्य पर आधारित या प्रेरित काव्य पर्याप्त मात्रा मे लिखा गया है। कोई महाकवि ही लोककाव्य के मिठास, स्पष्टता, भावुकता और प्रत्यक्षपद्धति को अपनाकर, लोककाव्य की अनगढता को छोडकर, सूरदास की तरह खडीबोली मे वास्तविक 'नई कविता' की सृष्टि कर सकता है, अभी तक इस दिशा मे अनेक प्रयोग हुए हैं—

उनये उनये भादरे
बरखा की जल चादरें
फूल दीप से जले कि झरती पुरवैया सी याद रे
मन कुएँ के कोहरे सा रवि डूबे के बाद रे।[1]

अथवा

निमिया की छाँह तले निंदिया न आय।
दूर कहीं बैना के गीत लहराय।
झुर झुर बतास चले पात-पात सिहरें
जैसे पतंग अगिन आसमान निहरें
सुधिया की डोर कहीं दूर कहीं खींचे।
मन मेरा वंशी का मौन हुआ जाय।[2]

अथवा

भागे नखना के साजन भी आगए
भूरी सी कबरी सी, गऊएँ रम्भाएँ।
सानी चलान की जैसे बुलाएँ।
नील चँदोवे में, टूटी सी टिकिया सा
चाँद टँगा, जामुनों के नीचे से
बाँसों के पीछे, बाँसों के पीछे।
धरती के मुखड़े पर दूध गिरा।[3]

नेमिचन्द जैन की 'मेरा कहीं बाना' जैसी रचनाएँ, तथा त्रिलोचन शास्त्री की 'परदेशी के नाम पत्र' तथा ठाकुर प्रसादसिंह के 'संथाली चित्र'[4] आदि रचनाओं में लोक जीवन के प्रति आसक्ति 'ग्राम्या' की परम्परा में पुनः वेग से बढ़ रही है। प्रश्न, उनमें निराला 'कुत्ता' आदि को समाप्त करने का एक मात्र तरीका यह है कि कवि को भारतवर्ष का यह अंग देखना चाहिए जहाँ जीवन में कठोर संघर्ष, मुक्त वायु और अविभाज्य, अकृत्रिम चेतना है। जब तक इस ग्रामीण—चेतना का बहुमत है, निराला

---

१ नामवरसिंह—कविताएँ १९५७।
२ अघोर—वही।
३ अनन्त।
४ १९५७ की रचनाएँ।

के क्षणो मे कोई भी नवयुवक उत्साह, सहनशक्ति, मस्ती, जिजीविषा आदि महान मानवीय 'मूल्यों' के अक्षय कोष ग्रामो से प्रेरणा ले सकता है। अवसाद और कुठा का ज्वार बढने पर कवियों और दार्शनिकों को ग्राम्य-जीवन बिताने को कहा जाय, मैं समझता हूँ कि रुग्ण मानसिक स्थिति वाले कवियो के लिए यह सबसे अच्छा इलाज है। वहाँ वे यह देखेंगे कि मनुष्य मे कितनी जीवट है, कितनी कठिनाइयाँ सहते हुए भी आनन्द मे मग्न हो जाने की क्षमता है, जीवन के प्रति कितना प्रेम है। कविता मे आदमी नकाब उतार कर आता है किन्तु आज जो काव्य मे नकली चेहरे अधिक दिखाई पड रहे है, उसका कारण लोक-जीवन से हमारा असम्पृक्त रहना है। प्रगतिवादी कवियों मे लोक-जीवन के प्रति झुकाव पहले से ही रहा है, इधर ग्रामीण जीवन को प्रतीको के रूप मे भी चित्रित किया जा रहा है। गीतकारो ने भी लोक-जीवन को अपनाया है अतः यह प्रवृत्ति बढ रही है, यहाँ तक कि प्रयोगवादियों ने भी लोक काव्य लिखा है और अच्छा लिखा है। बात यह है कि सौन्दर्य म इतना अधिक आकर्षण होता है कि सौन्दर्य-दर्शन के समय मिथ्या धारणाएँ स्वय समाप्त हो जाती हैं। लोक-जीवन को मुग्ध होकर देखते समय प्रयोगवादी भी बदला हुआ दिखाई पडता है।

अभी तक लोक जीवन के चुने हुए पक्षो का ही चित्रण हुआ है। खेत, खलिहान, बहू, बेटी की विदा, पनघट, चांदनी रात, लोकप्रेम, नृत्य, उत्सव कतिपय वृक्ष, पशु, पक्षी, पुष्प आदि और कतिपय प्राकृतिक दृश्य। लोग 'मन के विश्लेषण' पर इधर बहुत बल देते है किन्तु 'लोक-जीवन के न जाने कितने पक्ष, अभी अछूते पडे हैं आप उनका चित्रण करें और साथ साथ अपने मनको भी समझते चलें किन्तु यदि हमे आपके मन की चीर-फाड पसन्द न भी आई तो भी आकर्षक दृश्य चित्रण के माध्यम से पाठक आपके मन की स्थिति के सिवा वे उन दृश्यो का आनन्द तो लेंगे ही अत 'सत्य बाहर नहीं, भीतर है अत पिण्ड मे देखो" यह प्रवृत्ति अनिवार्य तक नही पहुँचनी चाहिए। जब जब आतरिक अनुसधान काव्य मे अधिक बढा है, तब-तब सतुलन लाने के लिए 'लोकजीवन के अनन्त रूपों को सम्मुख लाया गया है। प्रसन्नता का विषय है कि कवि इस ओर प्रवृत्त हो रहे हैं।

उर्दू और प्रगतिवादी काव्य—हमने द्विवेदी युग के अन्तर्गत उर्दू के काव्य पर सक्षिप्त विचार किया है। छायावादी हिन्दी कवि जिस प्रकार पूँजीवाद के अभ्युदय-काल मे योरोप के रोमानी कवियों से प्रभावित हुए

उस प्रकार उर्दू के कवि प्रभावित नहीं हुए किन्तु फिर भी उर्दू के दो युद्धों के मध्य के काव्य में मध्ययुगीन चेतना के विरुद्ध उर्दू काव्य में स्पष्ट विद्रोह मिलता है। उर्दू काव्य म नवीन युग हाली, इकबाल और ब्रजनरायण चकबस्त मे बोलता है। इसके विरुद्ध पुरानी इश्किया शायरी जो रीतिकाल से साहश्य रखती है लखनऊ स्कूल के कतिपय शायरों और दाग स्कूल के शायरों मे मे दिखाई पडती है। यह परम्परा अब तक चल रही है, उसी प्रकार जिस प्रकार हिन्दी मे रीति कालीन कवि आज भी हैं।

१६ वी शताब्दी के अन्त मे दाग स्कूल का अत्यधिक प्रभाव दिखाई पडता है। दाग [१] राज्य क्रांति के बाद रामपुरा और हैदराबाद (सन् १८८८ मे आगमन) के नवाबों के दरबारो मे रौनक बढाते रहे। यहाँ उन्हे पुराने ढग के कलाम को मांजने मे अधिक सुविधा रही और उनके शिष्यों मे से अधिकतर इसी 'बाज़ारू प्रेम" के गीत गाते रहे। मानसिक, गम्भीर, मर्यादामय प्रम का इस स्कूल मे जैसे स्थान ही नही था। नारी का ऐसा असम्मान अन्यत्र कहाँ मिलेगा ?

किन्तु दाग के कई शिष्य नूतन युग के गायक भी बने। इकबाल जोश और सीमाब अकबरावादी ऐसे ही शायरों मे थे। सीमाब (१८८०—१९५१ ई०) ने आगरा से "शायर" नामक पत्र प्रकाशित किया और जीवन भर छायावादियों की तरह असाम्प्रदायिक काव्य लिखते रहे। सीमाब स्पष्टत पवित्र प्रेम के गायक कवि थे। उनकी चेतना छायावाद से मिलती है। व्यक्तिवाद भी इसमे मिलता है .—

इसी रफ्तारे आवारा से भटकेगा यहाँ कब तक ?
अमीरे-कारवाँ बन जा, गुबारे-कारवाँ कब तक ?

देशभक्ति द्विवेदी युग और छायावाद युग की विशेषता है। सीमाब देशभक्ति के पैगम्बर थे—

इसको क्या हक है कि वह खाके वतन म दफ्न न हो।
जिसके दिल मे अजमते खाके वतन कुछ भी नहो।

सीमाब काबा और बुतखाना (मन्दिर) को परदा और धोका कहा करते थे, वह हिन्दू-मुस्लिम एकता के गीत गाते हैं।

किन्तु सीमाब मे छायावादी वेदना नही मिलती। वह पुरुषार्थ-प्रिय कवि थे—

---

१. सन् १८३१—१९०५ ई०।

खामोश ऐ असीरे कफस ! यह फुगा, यह शोर ।
तौहीन कर रहा है निशाने बहार की !

छायावादी सववाद उदू काव्य मे भी मिलता है। यह सववाद मध्यकालीन सम्प्रदायवाद से मनुष्य को ऊपर उठाता था। इकबाल म भी यह सववाद खब मिलता है और सीमाब म भी—

बुत म भी देखता हूँ उसी खुदनुमा को मैं।
अब सजदा बिरहमन को करू या खुदा को मैं। (सीमाव)

मैं हूँ कलाम हिंद हिमालय है मेरा तूर।
है इन्तजारे दावत जलबागरी मुझ।

सीमाब के शेरे इंकिलाब तथा आलमे-आशोब' काव्य सग्रहो मे जनवादी दृष्टि प्रत्येक पक्ति म अंकित है। उदू का कवि गरीबी की तबाही और सरमाएदारी के खिलाफ लडना जानता है। हिंदी मे यह क्रिया अपेक्षाकृत कोमल रूप म प्रकट हुई है उदू मे पूर्ण उग्रता और स्पष्टता के साथ-साथ ही उदू की रचनाओं म कलापक्ष कभी उपेक्षित नही हुआ। और उसका कारण यह है कि उदू का कवि कहने का ढंग जानता है। जब इश्कोमुहब्बत के पिष्टपष्टित विषय पर उदू कवि कथन के न जाने कितने ढंग अपनाकर चला है तब नए विषय मिल जाने पर तो वह मुक्त पक्षी की तरह उडान भरता है। इसके अलावा उदू का कवि चन्द प्रतीकों द्वारा साकेतिक पद्धति पर अपनी बात कहने की परम्परा म पला है अत उसकी कथन-पद्धति और भी आकषक लगती है। उदू की परम्परा भी पुरानी है।

दाग की परम्परा म सीमाब इकबाल और जोश के अतिरिक्त पुरानी लीक ही पिटनी रही परन्तु यह स्मरणीय है कि गजलगो शायरो ने भी गरीबी प्रकृति वणन देशभक्ति आदि अन्य विषयो पर भी बराबर लिखा है। दाग के शिष्यो म नाश मलसियानी नातिक साइल आगा बेखुद नूह नसीम अहसान तैश फीरोज आदि कवियो म केवल दाग का ही अनुकरण नही है। उनक प्रेम का वणन भी नवीन है और तरजे अदा म भी फक है। फिर भी प्रगतिशील काव्य के लिए हाली इकबाल और चकबाल परम्परा को ही देखना चाहिए। चकबस्त (१८-२ १९२६) द्विवेदीयुगीन कवि थ। हाली के बाद का कदम चकबस्त म दिखाई पडता है। किन्तु चकबस्त म द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मक प्रवृत्ति नहा है। वह परिष्कृत शायर हैं—कहने की कला देखिए—

बागबाँ ने यह अनोखा सितम ईजाद किया।
आशियाँ फूँक के पानी को बहुत याद किया।,
दरे ज़िन्दा पै लिखा है किसी दीवाने ने
वही आज़ाद है जिसने इसे आबाद किया।

इकबाल बहक गए किन्तु उर्दू को उस साम्प्रदायिकता के कलंक से बचा कर और पूँजीवादीयुग की प्रारम्भिक चेतना की प्रगतिशील लौ को 'चकबस्त आगे ले चले।

जोश मलीहाबादी (जन्म सन १८६६ ई०) ने चकबस्त की तरह देशभक्ति की परम्परा को आगे बढाया। जोश वीररस के अवतार हैं—

इन बुज़दिलों के हुस्न पै शैदा किया है क्यों ?
नामर्द कौम मे मुझे पैदा किया है क्यों ?
इक हर्फ़ेग़म सुनते ही लौ दे उठा दिमाग़
हिंदोस्तान में वह शरारत कहाँ है जोश।

दारिद्रय का चित्रण —खेलने मे तिफलके गुलफाम था डूबा हुआ।
आई इतने मे गली से आमवाले की सदा
देखकर माँ भी उदासी हो गई पामाल यास
अँखड़ियों मे आमकी सुर्खी तबस्सुम मे मिठास।
होठ काँपे खुद ब खुद औ रह गए फिर काँप के।
दिल मे फिर चुभने लगे अगली ज़िदों के तजरबे।
आह ! ऐ हिंदोस्ताँ ! ऐ मुफ़लिसों की सरजमीं
इस क़ुरे पर कोई तेरा पूछने वाला नहीं
ताकुजा यह ख्वाब ? ऐ हिंदोस्ताँ आ होश मे।
आज भी हैं सैकड़ो अर्जुन तेरे आगोश म !

प्रगतिवाद के शत्रु कहते हैं कि सामाजिक विषयों पर श्रेष्ठ काव्य नहीं लिखा जा सकता। हिंदी मे अकाल (हड़ताल) और रूस की प्रशंसा में लिखी हुई रचनाओं को वे इस तथ्य के प्रमाण म पेश करते हैं किंतु जोश ने सन ३० म पुलिसद्वारा जनता पर जो लखनऊ मे गोली चलाई थी उस पर तथा गणतन्त्र [illegible] दिवसों की [illegible] मार्मिक लिखा है। इससे यह सिद्ध हुआ कि सामयिक और शाश्वत का द्वंद्व कवियों की अपनी कमज़ोरी का चिह्न है।

'किसान' शीर्षक रचना देखिए—

दौड़ती है रात को जिसकी नजर अफलाक पर ।
दिन को जिसकी अंगुलियाँ रहती हैं नब्जे खाक पर ।
खून जिसका दौड़ता है, नब्जे इस्तकबाल में ।
लोच भर देता है जो शहजादियों की चाल में ।
सोचता जाता है "किन आँखों से देखा जायगा
बेरिदा बीबी का सर, बच्चों का मुँह उतरा हुआ ।"

सोहनलाल द्विवेदी की 'किसान' कविता से 'जोश' का 'किसान' अधिक करुणा उत्पन्न करता है ।

परम्परा के प्रति विद्रोह—नौजवानो ! यह बड़े बूढ़े न मानेंगे कभी ।
सेहते अफकार से खाली है उनकी जिन्दगी ।
इनके शानों पर तो ऐसे सर हैं ऐ अहले निगाह ।
जिनका गूदा जल चुका है, जिनके खाने हैं सियाह ।
और वह खाने हैं जिन तक रोशनी जाती नहीं ।

पन्तजी के "द्रुतझरो जगत् के जीर्ण पत्र" की भावना कितने सशक्त ढंग से जोश ने व्यक्त की है !

ईश्वर को चुनौती—मजाके बन्दगीये असरे नौ की तुझको कसम
नये मिजाज का परवरदिगार पैदा कर ।
बहार में तो जमीं से बहार उगलती है ।
जो मर्द है तो खिजाँ से बहार पैदा कर ।

'जोश' वस्तुत. सहानुभूतिवश शोषित वर्ग के प्रति उन्मुख हुए थे परन्तु "अहसान बिन दानिश" (जन्म १६१० ई०) खुद मजदूर रहे है । दुर्भाग्यवश हिन्दी में ऐसे 'मजदूर कवि' बहुत कम हैं । यही कारण है कि मध्यवर्ग का कवि दूर से देखकर गरीबी का वर्णन करता है अथवा 'फैशन' के लिए वह वर्गसंघर्ष का चित्रण करदेता है और प्रेम के मादक गीतों में वह पूरी ईमानदारी प्रदर्शित करता है । एक अशिक्षित नारी का चित्रण देखिए और "ग्राम्या की युवती" से उसकी तुलना कीजिए—

शर्म से मामूर आँखें, बेकसी की नोहाख्वाँ ।
थरथराते लफ्ज, शरमाना बयाँ, रुकती जुबाँ ।
यह तो हालत और जालिम मुस्तरी नामानिगार ।
लिखते लिखते रोक लेता है कलम को बार बार ।

ताकि चश्मे बद से वोह इस नेकखू को देख ले।
दीदये बेआबरू से आबरू को देख ले।

क्रान्ति का स्वर—अहसान पूर्णत प्रगतिवादी कवि हैं, उनकी क्रान्ति 'प्रचार' नहीं बनती क्योंकि क्रान्ति के लिए वह चीखते, चिल्लाते नहीं, उस आदमी की तलाश करते हैं जो क्रान्ति के योग्य हो—

जिनको तूफाने तबाही मे नजर आए चमन।
जिनकी फितरत हो तड़पती बिजलिया पर खन्दाजन।
जिनकी ठोकर से रहे पामाल मैदाने अजल।
मकबरे जिनको नजर आते हो जन्नत के महल।
जिनके कदमो के तले रुककर चले पत्थर की नब्ज।

ऐसा लगता है कि बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ऐसी तान सुनाने की पुकार ही करते रह, जिससे हिलोरें उत्पन्न हो। ऐसी 'तानें' जोश और 'अहसान' के काव्य मे मिलती है।

एक मरते हुए मजदूर के मन मे क्या क्या भाव उत्पन्न होते हैं, इसे 'अहसान' ही समझते हैं—

मेरे बाद इन खस्ता जाना को परेशानी न हो।
यह न हो यह जाके फैलाएँ कहीं दस्तोसवाल।
यह न हो उतरे हुए चेहरे हो तसवीरेमलाल।
यह न हो ये फूल हमसायो की ठोकर मे रहें।
यह न हो ये जालिमो के जौरे बेपायाँ रहें।

नया इन्सान—सागर निजामी की सन् १९४४ की एक रचना है, 'सगतराश' का गीत'। इसम सामतवादी पूँजीवादी इसान की जगह एक नए आदमी को मूर्तित करने का प्रयत्न है।

हर एक जर्रे के दिल म इक जहन्नम सा दहकता है।
न जाने खाक को क्यस खुदा बनने का जज्बा है।
जो आँसू दिल के पर्दे म छिप है दिल का ग्म बनकर।
जो आँसू मेरे दामन पर गिरे है दिल का ग्म बनकर।
मैं उनसे ज़िन्दगी की इक नई दुनियाँ बसाऊँगा।
नया आदम बनाऊँगा नई हव्वा बनाऊँगा।

उर्दू की कविता फारसी उपमान-विधान को पीछे छोड़ चुकी है। बारीक बीनी, नजाकत, अतिशयोक्ति तथा गुलोबुलबुल के फसाने अब भारतीय उपमान-विधान को जगह देकर पीछे हट रहे हैं। उसमे सच्चाई को समझाने और उसे स्वाभाविक ढग से व्यक्त करने की चाह है। भाग्यवाद, उमरखैय्याम-वाद और परकीयावाद के स्थान पर इन्सान की इच्छाओ को समझने की प्रवृत्ति बढ रही है। हिन्दू, मुसलमान, काबा-बुतखाना, राम और रहीम के भेद गायब हो चुके हैं। पाकिस्तान बन जाने के बाद मजहब के नाम पर जो खूँरेजी हुई, उसका सबब भी शायर समझ चुका है, यह भी सरमायादारो, पुराने अधविश्वासी पडितो और मुल्लो की चाल थी—

बुलबुले नादाँ जरा रगे चमन से होशियार
फूल की सूरत बनाये सैंकडो सैयाद हैं।
आशियाँ वालो की अब गुलशन मे गुजायश नही
आज सहनेबाग मे या सैद या सैयाद हैं।[1]
बस एक नूर झलकता हुआ नजर आया।
फिर उसके बाद न जाने चमन पै क्या गुजरी।[2]

खबसे बातिन खदापरस्तो से, मजरे-आम परअगर लाएँ।
वाकिया है कि शर्मसारी से, मसजिदो के चिराग बुझ जाएँ।[3]

आजादी का वास्तविक स्वरूप—आज का प्रगतिशील कवि आजादी के आगमन पर खुश है परन्तु आजादी के बाद शासको की गद्दारी पर नाराज है। देश के बढते हुए असतोष को उर्दू का कवि एक तरफ रखकर, केवल अपने मन की गहराइयो मे उतर कर डूब नही मरता, वह हकीकत का सामना करता है किन्तु परिस्थिति का सश्लिष्ट और साकेतिक चित्रण उसकी विशेषता है—

बहार मे जानते थे साकी न बादे-मैखाना बन्द होगा
यह क्या खबर थी कि मैकसो को, शराब तिश्ना लबी मिलेगी। (जाबिर)
बडी उम्मीदे, बहुत पे अरमाँ कि होंगे सैरे-चमन से शादाँ।
बहार आदि तो क्या खबर थी कि हमको आशुफ्तगी मिलेगी। (मुफ्तू)

---

१ आनद नरायण।
२ जगन्नाथ आजाद।
३ अदम।

शगुफ्ता बर्गेहाय गुल की तह मे नोके-खार है
खिजां कहेगे फिर किसे अगर यही बहार है। (जोश)

फिजायें सोच रही है कि इब्ने आदम ने
खिरद गवा के जुनूं आजमा के क्या पाया ?
वही शिकस्ते-तमन्ना वही गमे ऐय्याम
निगाहे जीस्त ने सब कुछ लुटा के क्या पाया ? (साहिर)

तुमने फरदौस के बदले मे जहन्नुम देकर
कह दिया हमसे गुलिस्ता में बहार आई है (जाफरी)

काटे किसी के हक मे किसी को गुलो-समर
क्या खूब अहतमाये गुलिस्तां है आजकल ! (जिगर)

क्या गुलिस्ता है कि गुचे तो है लवतिश्नओ सद।
खार आसूद-ओ शादाब नजर आते है— (अख्तर)

बहार आई जरूर आई पर अपनी बस्ती से दूर आई।
वहा उगाये जमीन सब्ज जहां कोई दीदावर नही है। (शफीक)

यह जश्न जश्ने-मशरत नही तमाशा है।
नये लबास मे निकला है रहजनी का जुलूस। (साहिर)

उर्दू काव्य मे वास्तविक जनभावना को कवित्वपूर्ण पद्धति पर व्यक्त किया है। लक्ष्य करने योग्य तथ्य यह है कि पुराने उपमानो द्वारा नई भावना को कितनी सफाई और लावण्य से व्यक्त किया गया है। हिंदी के तथा कथित प्रयोगवादी माध्यम के प्रश्न पर उलझ हुएहैं जब कि उर्दू के कवि तथा हिंदी के अन्य कवियो के सम्मुख कोई उलझन नही दिखाई पड़ती। दोस्त और दुश्मन मे उन्हे पहचान है। देश के भविष्य का नक्शा उनके सम्मुख स्पष्ट है। मानवमूल्यो की खोज मे प्रयोगवादी कवि के हाथ मे मूल्य रह जाता है और मानव खो जाता है किंतु इन उक्त कवियो के काव्य म मानव के मन को समझने का प्रयत्न है अत मूल्य स्वत आ जाता है। मानवीय समाज के सुख दुख को न समझकर अपनी दिमागी बहक का ही वाणी देते रहने का नतीजा यह है कि मानवता म प्राण शक्ति समाप्त हो रही है चमत्कार बढ रहा है।

उर्दू-कविता पर आक्षेप यह है कि इसम इश्किया शायरी ही अधिक है और उसका आदर्श स्थिर होगया है। विशेषकर गजल पर यह आक्षेप

होता है किंतु असलियत यह है कि पुराने और प्रसिद्ध उपमानों के माध्यम से नूतन प्रगतिशील भावनाओं को उर्दू कवि इस लहजे मे कहता है कि ऊपर से देखने पर वह इश्किया' शायरी दिखाई पडती है परन्तु एक क्षण पश्चात ही इश्किया उपमान और प्रतीक केवल माध्यम मात्र रह जाते हैं और कवि का वास्तविक मतव्य मधुर माध्यमो द्वारा सीधा हृदय पर प्रहार करता है। अत नवीन से नवीन तथ्य और भाव को व्यक्त करने के लिए उर्दू ने माध्यम' के प्रश्न का सुलझा लिया है। आनन्दवर्धन और अभिनवगुप्त को बिना पढे हुए ही उर्दू कवि प्रवृत्तित यह मानता है कि काव्य का प्राण व्यजना है और व्यजना-व्यापार द्वारा किसी भाव को व्यजित करना ही श्रेष्ठ काव्यकला है। वह अलकारध्वनि और वस्तुध्वनि के क्षेत्र मे चमत्कार दिखाता है परन्तु भाव को काव्य का प्राण मानता है। नए उपमानो और नए प्रतीको का अनुसधान न कर वह प्रचलित प्रतीको द्वारा नूतन भाव को प्रकट करता है। यही कारण है कि उर्दू काव्य के सम्मुख जनता और उच्चकोटि के शिक्षित वर्ग के लिए अलग अलग काव्य नही दिखाई पडता जैसा कि हिन्दी म 'विश्व-विद्यालय काव्य (University poetry) तथा प्रचलित काव्य (Popular Poetry) अलग अलग विकसित हो रहा है। जिगर, जोश हफीज, साहिर आदि की वाणी इसीलिए जनसामान्य से लेकर विद्वानो तक—सभी को प्रभावित करती है। अत इन कवियो के सम्मुख साधारणी करण का प्रश्न नही उपस्थित होता। इधर हिन्दी म अज्ञेय और उनके शिष्य विशिष्ट वर्ग के लिए ही अपने काव्य के साधारणी करण को साधारणी करण कह रहे हैं यानी साधारणीकरण की परिभाषा ही बदल दी गई है।

उर्दू कवियो की सफलता का दूसरा [illegible] यह है कि जनता के मन की बात को पकने की ही वे अधिक कोशिश करते हैं। वे विशिष्ट और विचित्र मानसिक स्थितियो को वर्णित करने का काय 'विज्ञान' पर छोडकर प्राय उन्ही भावनाओ और मानसिक स्थितियो का वर्णन करते है जो औरो के मन म भी उत्पन्न होती हो। यह नही है कि उर्दू म मानसिक स्थितियो का विस्तार नही हुआ है परन्तु उसमे हिन्दी जैसा वैचित्र्य नही पाया। यह प्रसन्नता का विषय है कि हिन्दी का एक वर्ग तथाकथित प्रयोगवाद' ही इस दोष के लिए दोषी है अन्य गीतकार और कवि वैचित्र्य से बचते है। उर्दू म सर्वत्र प्रगतिवादी अथवा प्रगतिशील प्रयोगवाद ही मिलते हैं तथा कथित नववाद-विरोधी प्रयोगवाद उर्दू म प्रभावहीन है।[1] उर्दू' म प्रगतिशील लेखक सघ'

का वणन प्रगतिवादी से बाहर नही है। प्रम एक भाव है जो प्राकृतिक भूख है प्रकृति अपना उद्दश्यपूण करने के निए यह भूख उत्पन्न करती है किंतु सामाजिक परिस्थितियो के अनुरूप इस 'भूख का कही सयमित कही अमर्यादित और कही स्वच्छन्द रूप दिखाई पडता है अत इस प्राकृतिक प्रवृत्ति का समाजीकरण प्रगतिवाद का एक महानकाय है। मनुष्य पशु से इसीलिए भिन है कि उसने प्राकृतिक प्रवृत्तियो पर सयम स्थापित किया है। प्रगतिवाद दमन का विरोध करता है सयम का नही। अत प्रम मे यदि अनुत्तरदायित्व नही है तो एसे प्रम का वणन प्रगतिवाद ही है। इधर के काय मे प्रम का ऐसा ही वणन हो रहा है। गीतकारा मे यह प्रवृत्ति अधिक विकसित हुई अत इसे हम यथास्थान देखेंगे। गोदान की तरह काय के क्षत्र मे चू कि एक एसी कृति नही बताई जा सकती जो सभी दृष्टियो से पूण हो अत स्फुट उदाहरणा मे ही प्रम का उक्त स्वरूप मिल सकता है।

प्रगतिवाद की तीसरी उपलब्धि यह है कि उसमे अलकृत-काव्य के स्थान पर स्वाभावोक्ति प्रधान काव्य का अच्छा विकास हुआ है। पुराने बुजग इस सम्बध म आज के आलोचको से अधिक स्पष्ट हैं। काव्य के तीन रूप बताए गए हैं। वक्रोक्तिप्रधान काव्य अथवा अलकृत काव्य काव्य मे भाव वस्तु या विचार की अभिव्यक्ति के लिए ऐसी उक्तियो का प्रयोग होता है जिसमे कोई वचित्र्य कोई आकषण या वक्रता हो। साहश्यमूलक, विरोधमूलक तथा अन्य अर्थालकारो से युक्त उक्तियाँ इसी परम्परा मे आती है। दूसरा काव्य रसोक्तिप्रधान काव्य होता है इसमे भावोच्छवास अधिक होता है और अलकार रस का अग बनकर आता है। कही कही अलकार नही भी होता है अत रसोक्ति म भाव को सीधी अभिधावादी पद्धति पर भी व्यक्त किया जाता है। महान भावा की सरल अभिव्यक्ति भी आकषक होती है, क्योंकि ऐसे स्थाना पर सौन्दय का कारण भावो की उदात्तता या स्वाभाविकता रहती है यथा रामचरितमानस म लक्ष्मण को शक्ति लगने पर राम का विलाप अलकृत शली मे है फिर भी वह हमे रुला देता हैं अत रसोक्ति अनलकृत होकर भी प्रभावित करती है। कुशल कवि रसोक्ति मे अलकारा या उक्तिव चित्र्य का प्रयोग रस के सहायक उपादान क रूप म करते हैं यथा तुलसीदास द्वारा सीताहरण के पश्चात् रूपकातिशयोक्ति का प्रयोग। बिना रूपकातिशयोक्ति के राम को सीता के अगा के नाम लेने पडते और इससे औचित्यभग होता क्योंकि लक्ष्मण साथ ही थे।

काव्य का तीसरा रूप 'स्वाभावोक्ति' है। वस्तु जैसी है, उसका उसी रूप मे वर्णन स्वाभावोक्ति है किन्तु तब प्रत्येक 'तथ्यकथन' को काव्य मानना होगा अत *'वार्ता' से स्वाभावोक्ति को भिन्न बताया गया है—*

स्वाभावोक्तिरसौ चारु यथावद्वस्तु वर्णनम्—विद्यानाथ

अर्थात् वस्तु का यथावत् किन्तु सुन्दर वर्णन स्वाभावोक्ति है। बाण ने हर्ष-चरित मे स्वाभावोक्ति को "अग्राम्य" कहा है।[१] अर्थात् तथ्यकथन के लिए प्रयुक्त व्यावहारिक भाषा से वह भिन्न होती है।

छायावाद मे सूक्ष्मता का "अतिनिर्वाह" हुआ। अलकृति और सगीत चरमसीमा पर जा पहुँचा अत जिस प्रकार सस्कृत काव्य मे वाल्मीकि की स्वाभावोक्ति के बाद *दरबारी काव्य मे अलकृति और उक्तिवक्रता का अधिक* आदर बढा, उसी तरह द्विवेदीयुग की वार्तात्मक कविता के विरुद्ध वक्रोक्ति और अलकृति का आदर छायावाद मे बढा। फलत प्रगतिवादी काव्य मे पुन *स्वाभावोक्ति की ओर कवि उन्मुख हुए किन्तु द्विवेदीयुग की वार्तात्मक प्रवृत्ति* को प्रगतिवाद मे नही अपनाया गया। प्रगतिवाद मे, कृषको, मजदूरो, कारखानो, खेतो, खलिहानो के ही नही, प्रकृति चित्रण मे भी 'स्वाभावोक्ति' का ही आनन्द मिलता है। स्वाभावोक्ति लेखक वर्ण्यवस्तु मे सौन्दर्य की इतनी मात्रा मानता है कि वह समझता है कि वस्तु के गुण, क्रिया, द्रव्य और जाति का वर्णन *वस्तुस्थित सौन्दर्य द्वारा पाठको का ध्यान आकर्षित कर लेगा। यही कारण है* कि प्रगतिवाद ने 'छायावाद' के द्वारा चित्रित प्रकृति के कुछ निश्चित पदार्थो के स्थान पर नाना जीवन-पार्श्वों और प्रकृति के अछूते पक्षो की ओर भी देखा और *उनका अलकृत वर्णन न करके वस्तुस्थित सौन्दर्य की ओर पाठक का* ध्यान आकर्षित किया। यह नवीन सौन्दर्य दृष्टि थी, जो चाहती थी कि केवल अभिजात-मुख ही सुन्दर नही है, खेत निराती हुई, घास बीनती हुई खेत मे पानी देती हुई, एक ग्रामीणा मे भी अपना आकर्षण है। बेटी की विदा मे तपस्वी कण्व की तरह ग्रामीण वृद्ध की आँसुओ से भीगती दाढी मे भी एक 'सौन्दर्य' है। *अनग, अप्सरा,* लहरें, नक्षत्र और पल्लव ही सुन्दर नही हैं, मटमैले, गदबदे भोले कृषक-शिशुओ मे भी आकर्षण हैं, क्लब, की मदिरा और भोज तथा नृत्य मे ही सौन्दर्य नही है अपितु 'कहारो के नृत्य' व चमारो की 'भगत' मे भी जीवन की मस्त उमग दिखाई पडती हैं जो

---

१. "नवोऽर्थो जातिरग्राम्या"

प्राय शिक्षिता को सुलभ नही होती। अत जीवन और प्रकृति के अनलकृत किन्तु फिर भी चारु यथावतवर्णनो की प्रगतिवाद में कमी नही है। अत जब कोई यह कहे कि प्रगतिवाद मे काव्य कम है विवरण अधिक है तब समझना चाहिए कि ऐसा व्यक्ति स्वाभावोक्ति को पसन्द नही करता वह केवल अलकृत या उक्तिवचित्र्यमूलक काव्य को ही पसन्द करता है और काव्य के इतिहास मे प्राय ऐसा होता है कि सभी व्यक्ति एक ही प्रकार के काव्य को पसन्द नही कर पाते। रुचिवचित्र्य रहता ही है किन्तु विचारक की समस्या भिन्न होता है। वह प्रत्येक प्रकार के काव्य को तटस्थ दृष्टि से देखता है और प्रत्येक मे स्थित वास्तविक सौन्दय की व्याख्या करता है। प्रगतिवाद मे रसोक्ति और स्वाभावोक्ति का सौन्दय बराबर मिलता है।

प्रगतिवाद की चतुथ उपलब्धि यह है कि उसमे रसोक्ति और स्वाभावोक्ति के सिवा वक्रोक्ति का भी एक विशिष्ट रूप मिलता है। कथा साहित्य मे यह रूप अधिक मिलता है किन्तु प्रगतिवादी काव्य अपन व्यग्य (Satire) के लिए प्रसिद्ध है। जिस प्रकार भावोच्छवास के समय प्रगतिवाद कवि अभिधा को अपनाता है उसी प्रकार व्यग्य की स्थिति मे वह व्यजना विधि का प्रयाग करता है। 'कुकुरमुत्ता महँगू मँहगा रहा (निराला) रक्तम्नात वह मेरा साकी (अज्ञय) और इधर के प्रगतिवादी प्रयोगवाद म व्यजना या ध्वनि क कारण ही मार्मिकता की सृष्टि हुई है। उदगारात्मक उत्तिया म साकेतिकता का अभाव शीघ्र ही लोगा को खटकने लगा था अत व्यग्य का माग स्वत स्वीकृत हुआ। भावाकुल स्थिति सवत्र न होने पर अनाकुलस्थिति मे तटस्थ होकर व्यजना क पथ पर कवि चल पड।

आज भी प्रगतिवाद म रसोक्ति स्वाभावोक्ति और वक्रोक्ति का प्रयोग चल रहा है किन्तु इधर स्वाभावोक्ति का महत्त्व कम हो गया है और रसोक्ति क विरुद्ध तो अभियान ही छिडगया है। प्रारम्भिक प्रगतिवाद मे सूक्ष्म के स्थान पर स्थूल लक्षणा के स्थान पर अभिधा और समासप्रधान शली के स्थान पर सरल विश्लिष्ट शली का प्रचार था। अब पुन व्यजना का का माग स्वीकार कर लिया गया है किन्तु व्यजना अभिधामूला नहा है वह लक्षणामूला है। व्यजना तो रस-व्यजना भी होती है परन्तु अब मानसिक स्थितिया को सकेतित करने का प्रयत्न अधिक हो रहा है उन्हें अन्य मनोवैज्ञानिक मानसिक स्थितियाँ म पुन चेतना उत्पन्न पाठको को रमाने का प्रयत्न नहीं हो रहा। प्रगतिवाद के घोषणावादी आकुलतायुक्त पक्ष से यह

विकास अधिक कलापूर्ण है किन्तु काव्य पुन दुरूह हो रहा है, बौद्धिकता भी उसमे बढ रही है। किन्तु चिन्ता की बात नही बहुत शीघ्र पुन सरलता और सहृदयता की माँग बढेगी। विचार भूमि एक रहने पर भी प्रगतिवाद मे जो उक्ति' के स्वरूप पर मतभेद दिखाई पड रहा है उसका उद्देश्य यह है कि आज जिसे लोग पसन्द कर रहे हैं, उसी म तुम भी लिखो, कल जब ऊबकर लोग दूसरी माँग करगे, तब दूसरी तरह लिखना। मैं समझता हूँ भावभूमि और विचार-भूमि म यदि कवि प्रगतिशील है तब उक्तिया के नाना स्वरूपा म जो जिस चाहे, उसका प्रयोग करे। प्रश्न यही है कि क्या उसकी रचना प्रभावशालिनी है। प्रगतिवाद पुष्ट और प्रामाणिक जीवन दर्शन पर आधारित है अत उसकी उपलब्धि भी विकास के मार्ग पर है। किन्तु प्राय यह देखा गया है कि प्रगतिवाद की कमिया से लोग अधिक वाकिफ है, उसके गुणा की उपेक्षा ही होती रही है। यह बेबुनियाद प्रचार है कि प्रगतिवाद 'प्रचार के अलावा और' कुछ नही है।

प्रगतिवाद ने हिन्दी काव्य म वर्ण्यवस्तु का विस्तार किया। परम्परागत जीवन दर्शन के स्थान पर एक नवीन और वैज्ञानिक जीवन-दर्शन प्रस्तुत किया। प्रगतिवाद ने भारतीयसमाज की दुर्बलताओं का निर्ममता से विश्लेषण किया और उन बुराइया से लडने का मत्र दिया। प्रगतिवाद ने 'सामान्य व्यक्ति' को साहित्य और अन्य कलाआ का केन्द्र बना दिया अत समूचे सौन्दर्य-शास्त्र की धारणाआ म महान परिवर्तन हुआ। साहित्य और काव्य का उद्देश्य समाज मे परिवर्तन करना है यह 'नारा' गलत नही था। प्रथमबार शोषित जनता ने अपने दृष्टिकोण से हर चीज, हर इसानी रिश्ते और इसानी सस्थाआ को देखना शुरू किया। वाल्मीकि न जिस क्रौञ्च के प्रति ममता का वर्णन किया था, हिन्दी म कोटि कोटि क्रौञ्चो के व्यवस्थित वध की ओर प्रगतिवाद ने ही दृष्टि आकर्षित की। कविया और लेखका की यह कुठा या दम्भ नहीं था, न इसमे कोई अनुचित उद्देश्य छिपा हुआ था। वस्तुत प्राणी-मात्र के प्रति करुणा का सदेश नया न था, पुराना था अत यह मूलभारतीय सस्कृति से विपरीत भी नही था। प्रगतिवाद न केवल यह बताया कि दुख का वास्तविक कारण क्या है। इस दुख के दूरीकरण के लिए जो वास्तविक उपाय हैं, उनके लिए जनता को सगठित करना अपराध कैसे कहा जा सकता है? अत सवेदनशील हृदय दुख को देखकर दुख का उपाय करने के लिए यदि सचेष्ट नही होता तो उस साहित्य स लाभ क्या हुआ? साहित्य कोरा मनोरजन तो नही है। श्रेष्ठ मस्तिष्को की श्रेष्ठतम उपलब्धि ही काव्य है,

अत प्रगतिवाद मनुष्य के मन मे उन मानव मूल्यो की सृष्टि करना चाहता है, जिसके कारण मनुष्य एक ऐसे समाज की सृष्टि कर सके जिसमे वह सुख और शाति से रह सके। इसी महान भावना पर इसी मानवतावाद पर प्रगतिवाद की नीव टिकी हुई है। राजनीति साहित्य कला दशन समाजशास्त्र सब इसी इच्छा के पूरक मात्र हैं। मनुष्य आदिकाल से ही एक ऐसे समाज की सष्ठि के स्वप्न देखता रहा है। राजनीति इसके लिए क्रियात्मक रूप अपनाती है समाजशास्त्र दशन इतिहास तथा विज्ञान इसी इच्छा की पूर्ति के लिए ज्ञान का माग अपनाते हैं किन्तु काव्य और कला भावना का माग अपनाती हैं। लक्ष्य यही है कि मनुष्य अपनी दुबलताओ पर विजय पाए, विषय परिस्थितियो को अनुकूल बनाए माग के कटका को हटाए और अपने स्वप्न को पूरा करे। जब तक समाज की परिस्थितियाँ मनुष्य के अनुकूल नही होती तब तक 'प्रगतिवाद अजेय है। माग सीधा नही है प्रत्येक स्थान पर एक ही तरीका भी नही अपनाया जा सकता किन्तु प्रगतिवाद की पृष्ठभूमि मे जो व्यक्ति इन महान मानवमूल्यो को नही देखता वह प्रगतिवाद को व्यथ ही कलकित करता है। कम से कम अभी तक यह प्रमाणित नहीं हो सका कि प्रगतिवाद समाज व्यक्ति और उसकी सास्कृतिक उनति के लिए खतरनाक है। प्रगतिवाद की गलतियो से उसकी उपलब्धियाँ और सम्भावनाएँ अधिक महान हैं।

पंचम प्रवाह

नवगीत-प्रवाह

उक्त विभाजन 'विधा' को ध्यान मे रख कर हिन्दी में चल पडा है। वस्तुत गीतो की धारा को वर्ण्य-वस्तु के प्रति प्रगतिशील दृष्टिकोण के कारण इसे प्रगतिवादी काव्य-प्रवाह को ही एक धारा मानना चाहिए क्योकि गीतकारो मे अधिकतर गीतकारो का दृष्टिकोण प्रगतिशील है। उनकीदृष्टि 'प्रेम' के प्रति वही नही है जो छायावादियो की थी। 'प्रेम' इधर 'रूपलिप्सा' की अभिव्यक्ति मात्र न रहकर 'जीवन' के प्रति गीतकारो की सामान्य प्रतिक्रियाओ को प्रकट करने का माध्यम बन गया है। जिस प्रकार छायावाद का माध्यम "मैं" था, इसी तरह का इधर के गीतकारो का माध्यम 'प्रेयसी' है। वह 'प्रिय' या प्रिया' को सम्बोधित करके अपनी मानसिक स्थितियो की व्यजना करता है। युग के प्रति असतोष को व्यक्त करने की यह वही शैली है जो उर्दू गजल मे दिखाई पडती है, इससे असतोष ,सदेश, प्रेरणा आदि की व्यजना 'प्रेम' के प्रतीको के माध्यम से होती है, उसमे अप्रत्यक्षता और मधुरता का समावेश हो जाता है। इसके सिवा गीत छायावाद की गेय पदावली की परम्परा मे विकसित हो रहा है अत सगीत के मध्यम से उसकी उक्ति गुनगुनाने और गाने के काम की वस्तु बन रही है।

गीत मनुष्य की एक विशिष्ट मनोवैज्ञानिक आवश्यकता की पूर्ति करता है। 'काव्य' एक सम्पृक्त कला है, हम कह चुके हैं। उसमे अन्य कलाओ का भी प्रयोग होता है। सगीत और चित्रकला ने काव्य की सहायता प्रारम्भ से ही की है। सगीत से प्रेम पशुओ और पक्षियो तक को है, प्रयोगवादियो के काव्य मे सगीत के विरुद्ध आदोलन भी है। वे 'पाठ्यकाव्य' ही लिखने पढते हैं, श्रव्यकाव्य मुक्तछन्द मे भी प्रिय लगता है किन्तु सगीतात्मकता काव्य के शब्दो को

एक गति दे देती है। गति प्रवाह ध्वनि आवत्त आदि शब्द सौदय शास्त्र म सुदरना की सष्टि के लिए अनिवाय माने गए हैं। इधर बौद्धिक दुरूहना सगीता त्मकता का अभाव अतरिक्कति आदि तत्त्व प्रयोगवाद म वहुत बढ रहे है। लोगा म इसके विरुद्ध प्रतिक्रिया भी प्रारम्भ हा गई है। अतत टैम्प-बुक पाइण्टे को पढत समय जिस प्रकार बुद्धि पर भार डालना पडता है उसी प्रकार सामान्य पाठक और श्रोता अपने मन और बुद्धि पर क्या व्यय जार डालना चाहगा। बड बड विद्वान भी सहज काव्य की प्रशसा करत हैं। अथ की अस्फुटता अथवा *अथअनभिव्यक्ति दृष्ट और धष्ट पदावली का ही प्रयाग गति लय या गयता का* सवथा अभाव अर्थातिशय भरने की आकुलता व काव्य म गद्यमयता आदि तत्त्वा के अनिर्वाह को अधिक समय तक सहन नही किया जा सकता। वैसे ही जीवन गद्यमय हो गया है गद्य ही इधर अधिक लिखा गया है तब कभी कभी पाठक उससे ऊबकर ऐसे काव्य को भी चाहता है जिसम काव्य के अथ का ही आनन्द न हो अपितु कला के अन्य तत्वो का भी आनन्द मिले। काव्य मनुष्य की आह्लादक मन स्थिति की भी अभिव्यक्ति है अत उक्तिवैचित्र्य अथ गौरव, *कल्पना-लालित्य क साथ साथ वह सगीत की भी आकाक्षा करता है।* सरोवर सुदर होता है यहा तक कि उथल गहरे पोखर भी पसन्द आते हैं परन्तु सरिता का प्रवाह भी सुन्दर होता है अत छोटी बडी सरिता की तरह क्षिप्र गभीर गति से चलने वाला गय काव्य मनुष्य की एक आकाक्षा की पूर्ति करता है।

अतएव गीतकाव्य के प्रति उपेक्षात्मक दृष्टिकोण मनुष्य के मन की एक स्वभाविक और अब तक के गीतकाव्य के द्वारा सस्कृत स्थिति क प्रति विद्रोह है। *यदि गतिकाव्य म अथगौरव नहीं है यानी वह उथला या हलका* लगता है तो उस गभीर बनाने की माग जायज है किन्तु गीतमात्र को सवथा त्याज्य घोषित करने का अथ यही हो सकता है कि या तो आदमी इतना बदल गया है कि उसम गति और लय का आनन्द लेने की शक्ति ही नष्ट हो गई है अथवा उसम प्रतिभा का अभाव है जिसके कारण वह केवल गद्यमय मुक्तछन्द म ही अथगौरव भर सकता है। सगीतात्मक काव्य का विरोध यदि इस तक के द्वारा होता कि अन्य प्रकार का काव्य भी लिखा जाना चाहिए ता वैविध्य के आधार पर इस तक का स्वीकार किया जा सकता था किन्तु केवल गद्यमय काव्य ही काव्य है यह तक हेत्वाभास स युक्त है।

गीता की प्रगतिशीलता—पुराने गीतकार भी इधर सक्रिय रहे हैं। इनम अचल नरेन्द्र दिनकर और बच्चन के नाम उल्लेखनीय हैं। इन चारा

कवियो के नए गीतो का स्वर बदला हुआ प्रतीत होता है। अचल मे मासल-वाद की जगह जनमगतवाद और बच्चन म हालावाद की जगह धरती और जीवन के प्रति प्यार अब अधिक मिलता है। नरेन्द्र शमा तो प्रसिद्ध प्रगतिवादी विचारक हैं। दिनकर बावजूद अपने साम्यवाद विरोध के काव्य के क्षेत्र म समग्रत प्रगतिशील कवि हैं उनके गीता म नव निर्माण धरती के प्रति मोह और कुछ कर दिखाने की प्ररणा ओतप्रोत है—

दिनकर प्रेरणा के लिए गगनविहार को व्यर्थ समझते हैं—

सभी की जा चुकी नीचे यहाँ की वेदनाएँ
नव स्वर के लिए तू क्या गगन को छानता है!
धुआँ का देश है नादान! यह छलना बडी है।
नई अनुभूतियो की खान, वह नीचे पडी है।
मुसीबत से बिंधी जो जिन्दगी, रोशन हुई वह
किरण को ढूँढता लेकिन नहीं पहचानता है![1]

लेखक का दायित्व —तुम क्या लिखते हो? क्या अपने अतरतम को
औरो के अन्तरतम के साथ मिलाने को?
अथवा शब्दा की तह पर तह पोशाक पहन
जग की आँखा से अपना रूप छिपाने को?

दिनकर ने स्वतन्त्रता के बाद नवनिर्माण की प्ररणा से सम्बन्धित ओजस्वी गीत लिखे हैं, *साफ़ लगता है कि यह आज़ाद भारत का गीतकार है—*

नवनिर्माण—लोहे के पेड हरे होंगे, तू गान प्रम के गाता चल।
ज्वालामुखियो के कठा पर, कलकठी का आसन होगा।
जलदा से लदा गगन होगा, फूला स भरा भुवन होगा।
बेजान, यत्र विरचित गूँगी, मूर्त्तियाँ एक दिन बोलेंगी,
मुँह खोल खोल सबके भीतर, शिल्पी तू जीभ बिठाता चल।

'नीलकुसुम' की रचनाओ म यद्यपि कवि अपने को 'रीति' की दृष्टि से प्रयोगवादियो का पिछलगुआ कहता है परन्तु चेतना की दृष्टि से वह प्रयोगवादियो से आगे है। नई नई काव्यरीतियो का आविष्कार स्तुत्य प्रयत्न है किन्तु काव्य के कुछ स्थायी लक्षण होते हैं केवल बुद्धि की अधिकता कविता

१. धूप और धुआँ—दिनकर।

नही है, न केवल बारीकी ही कविता है, न केवल ,विशिष्ट क्षणो की पकड ही काव्य है। भामह के समय मे गौडी और वैदर्भी रीतियाँ प्रचलित थीं। कुछ लोग गौडी के प्रशसक थे, कुछ वैदर्भी के, उसी प्रकार जिस प्रकार कुछ प्रयोगवाद के प्रशसक हैं, कुछ गीत पद्धति के। किन्तु भामह ने कहा था कि रीति कोई भी हो, यदि उसमे अर्थ, न्यायत्व, अनाकुलता आदि का अभाव है तो कोई भी रीति हो, उसमे काव्य का अस्तित्व ही न होगा। बाण ने भी कहा है कि नवीन अर्थ, अग्राम्य यथावस्तुवर्णन, अक्लिष्टता और रसस्फुटता के बिना काव्य नही होता, चाहे 'रीति' कोई भी हो। प्रसन्नता का विषय यह है कि दिनकर 'नीलकुसुम' मे न तो प्रयोगवादी रीति का ही अनुकरण कर सके हैं और प्रयोगवाद की तरह उनमे अर्थातिशय भरने का चाव है, 'नीलकुसुम' का कवि न सगीत को छोडता है, न प्रगतिशील दृष्टिकोण को—

है कहाँ तिमिर, आगे भी ऐसा ही तम है
तुम नीलकुसुम के लिए कहाँ तक जाओगे ?
जो गया , आज तक नही कभी वह लौट सका
नादान मर्द ! क्यो अपनी जान गँवाओगे ?

प्रगतिशील प्रयोग—मैं न बोला, किन्तु मेरी रागिनी बोली
चाँद ! फिर से देख, मुझ को जानता है तू ?
स्वप्न मेरे बुलबुले हैं, है यही पानी ?
आग को भी क्या नही पहचानता है तू ?

दिनकर के काव्य मे आज भी 'पौरुष' है, दीप्ति उनके काव्य मे आज भी विद्यमान है। उसकी वाणी मे जनता की सामूहिक भावनाओ को समझाने की आज भी शक्ति है। इस आतरिक ऊष्मा के कारण कवि को अधिक अलकृति की आवश्यकता नही पडती—

काँपती है वज्र की दीवार
नीव मे से आ रहा है क्षीण हाहाकार !

ऐसा लगता है कि दिनकर यदि कभी अपने 'कैरियर' के लिए समझौता भी करना चाहे तो भी युग का प्रभाव उनकी पक्तियो म वास्तविक क्रान्ति-स्वर भर देता है—

सदियो की ठडी बुझी राख सुगबुगा उठी
मिट्टी सोने का ताज पहन इठलाती है !

दो राह समय के रथ का घघर-नाद सुनो
सिंहासन खाली करो कि जनता आती है।

यह कविता २६ जनवरी के जनतंत्रदिवस पर लिखी गई है किंतु कवि कांग्रेस की चाटुकारिता नहीं करता अपितु जनता की विजय का गीत सुनाता है। लगता है साम्राज्यवाद पूंजीवाद के विरुद्ध संघर्ष करने लिए वह अनजान में ही जनता का आवाहन कर रहा हो। दिनकर के काव्य का एक पटन बन गया है उससे कवि दूर जाना चाहता है परन्तु अब कम्बल बाबा जी को शायद ही छोड़ें और यह अच्छा ही है। अपनी अभ्यस्त रीति को ही अधिक सक्षम और व्यंजक बनाने के स्थान पर नए मार्गों की खोज में कम से कम पुरानी कलमा के लिए खतरा अवश्य है। रीति पर सबसे बड़े लेखक कुंतक का कथन था कि रीति का सम्बन्ध कवि के स्वभाव से है। दिनकर का स्वभाव दीप्ति और दर्प से युक्त काव्य के ही उपयुक्त है और आज के *निराशावाद के प्रचारकों के मध्य दीप्ति के दर्पस्वर भले लगते हैं।* श्रम में लगे देश के नवयुवकों के लिए उनका विशेष महत्त्व है। उत्साह के बिना कोई कौम उठ नहीं सकती अतः दिनकर के गीत और कविताएँ आज की आकांक्षा को सशक्त 'रीति' में ही व्यक्त करें तभी काव्य और समाज का कल्याण होगा। दिनकर में विसंवादी स्वर भी हैं जो उनके प्रति जनवादियों को सशंक कर देते हैं परन्तु वे सौभाग्यवश इतने प्रबल नहीं हैं कि उनके काव्य को समग्रतः प्रगतिशील न रहने दें। जो यह कहते हैं कि दिनकर में अर्थगौरव व अलंकृति का अभाव है वे भूलते हैं कि अभिधामूला व्यंजना का भी अपना आकर्षण है और रसवादी काव्य सर्वदा अभिधामूला व्यंजना पर ही आधारित रहता है। एक एक अक्षर में ठूंस ठूंस कर अर्थ को भरना सभी कवियों के लिए आवश्यक नहीं है। सभी के लिए सम्भव भी नहीं है।

दिनकर में दृष्टिकोणगत अधिक परिवर्तन नहीं हुआ किंतु बच्चन में महान परिवर्तन हुआ है। हालावाद के बाद के बच्चन सर्वथा भिन्न रूप में दिखाई पड़ते हैं। प्रयोगवाद के जनविरोधी दृष्टिकोण से सर्वथा अप्रभावित रहकर अपनी विशिष्ट और अभ्यस्त रीति के अतिरिक्त बच्चन ने अन्य प्रयोग भी किए हैं। अपनी अभ्यस्त शैली में भी लिखा है किंतु प्रायः सर्वत्र पुराने व्यक्तिवादी स्वरों के बावजूद समग्रतः बच्चन का इधर का काव्य जनवादी स्वरों से ओत प्रोत है। रीति की दृष्टि से बच्चन का स्पष्ट मत है—

इस उस कोने से आपको लोगों के ऐसे भी स्वर सुनाई देंगे कि अब

गीतों का युग बीत गया है। आप अचरज मत कीजिएगा यदि ये लोग कल कहते सुने जाय कि अब हसन रोने का प्रम करने का सघपरत हान का युग बीत गया है ! [१]

बच्चन इधर नए हिंद की नई जिंदगी नई जवानी की ताकत मस्ती हस्ती के गायक बन गए हैं। गजगरिमा अपना कर भूकते हुए श्वानो की चिन्ता न करके वह बढे जा रहे है !

आरती और अगार मे वेदो की स्वर्गीय गिरा के गायक तमसा तट के कवि उज्जयिनी के वाक् जयी कविराज जयदेव पन्तिराज जगनाथ रासो रचनाकर चदवरदायी मिथिला के रसमय मधुवन के पिक विद्यापति कबीर जायस के एकनयन कवि जायसी तुलसीदास सूर केशव रहीम भारतेदु मथिलीशरण मीर गालिब इकबाल यीटस साची और अजता के कलाकार आदि कृती जनो का बच्चन ने स्तवन किया है। इधर कवियो प्रतिष्ठित नेताओ आदि पर स्तवन काव्य बहुत लिखा गया है। खादी के फूल म बच्चन ने गाधीजी पर बहुत लिखा है। निराला गाधी जवाहर आदि पर सुदर गीत और कविताए लिखी गई हैं। परम्परा के अध विरोधी प्रयोगवादियो के विरुद्ध यह स्तवन-काव्य परम्परा के उज्जवल अश के प्रति अपना आभार प्रकट करता है जसे वह प्रयोगवादियो की कृतघ्नता पर व्यग्य कर रहा हो !

इनमे बच्चन के गीत स्तवनमात्र नही हैं उनमे एक निमल दृष्टि है आज की परिस्थिति पर व्यग्य है और प्रयोगवाद पर प्रहार है। गालिब पर स्तवनगीत की ये पक्तिया दखिए—

> शायर के दिल म इन्कलाब जब आता है
> उसकी चर्चा कब होती छापखाना म।
> पर भावो का सलाब उठा करता है जब
> महदूद नही वह रहता है दीवाना म
> उन सब कविताओं को म मरी समझता हू
> एरिएल यान का जिनको नहीं पकडना है।
> रेडियो जबाँ का जिन्ह नहा फलाता है
> उनका हर अमर कृमि-कीटा का कौर बन।

---

१ आरती और अगारे—बच्चन।

आज के 'पाठ्यकाव्य' या गद्यकाव्य पर कितना चुभता हुआ व्यग्य है !

गीत मे ही यह गुण है कि कानो के "एरियल" को फौरन पकडता है और जीभ के रेडियो से शीघ्र ही फैल जाता है, बशर्ते 'भामह' के शब्दो मे केवल "श्रुतिपेशलत्व" न हो, उसमे कोइ अनुभूति भी हो और कथन मे आकर्षण हो ! 'बच्चन' की बहुत सी पक्तियाँ जीभ के रेडियो से अवश्य फैलेंगी, क्योकि वह दूसरो के मन की बात कहते हैं और कितनी सादा जुबान मे—

दिल्ली आया हूँ, उठता आज सवाल नही
हम दिल्ली मे रहे, मगर खायेंगे क्या ?
नेहरू की दिल्ली का यह सबसे बडा प्रश्न
हम दिल्ली मे तो रहें मगर गाएँगे क्या ?

जब कुछ नया कहने को होता है, तो उसे यथावत् गद्य मे प्रकट कर देने से ही वह काव्य नही बनता अपितु उसे एक 'कथनभगिमा" देनी पडती है, इसीलिए काव्य को "भणिति भगिमा" कहा गया है, छन्द से यह भगिमा अशरीरी, अनुशासनविहीन, इधर उधर यो ही फैली हुई सी न रहकर उसी प्रकार व्यक्तित्वमयी हो जाती है जैसे चेतना मे सुन्दर शरीर मे साकार होती है। अलकार्य और अभिव्यक्ति के एकता-स्थापना मे छन्द इसीलिए सहायक बताया गया है। मात्र 'अर्थ' अपने मे 'लय' नही प्रकट कर सकता, अर्थ अपनी 'अभिव्यक्ति' और वास्तविकता से ही आकर्षित कर सकता है यदि 'अर्थ' अपने मे काव्य होना तो पतजलि का 'महाभाष्य' और आर्य-भट्ट के ग्रन्थो को भी काव्य मानना पडेगा। अर्थ का चमत्कार दार्शनिक पुस्तको मे भी कम नही है जिन्हें पढकर आज का बडे से बडा बुद्धिवादी बौना दिखाई पडता है, किन्तु नागार्जुन की "मध्यमा प्रतिपदा" को किसी ने काव्य नही कहा अत. 'छन्द' नूतन अर्थ को कानो के एरियल तक पहुँचाने मे अधिक सक्षम प्रमाणित होता है !

प्रेम का नया रूप—बच्चन अब 'प्रेम' को जीवन का सम्बल मानते हैं। वस्तुत यह दृष्टि अशत पहले भी मिलती है। प्रेम व्याधि नही है, जीवन का आकर्षण और गीत के लिए प्रेरणा भी प्रेम से मिल सकती है—

जीवन के पथ पर है कोई चलने वाला
बीते दिन की कुछ सुधियाँ जिसके साथ नही !
जो फिर फिर उठकर अतर को मथती रहती
घिर जो रहने देती क्षण भर को माथ नही।

मिट्टी का चोला जो घर कर के आया है—
उसको मिट्टी का धम निभाना होगा ही
शीतल छाया मे बैठ थके मादे पैरो
को सुस्ता लेने देना है अपराध नही ।

प्रम यहा शीतल विश्राम के रूप मे अकित है जीवन का सम्बल ! हालावादी दृष्टि और इस दृष्टि मे कितना अतर है ?

गीत धरती का शृगार—केवल वग सघप को वाणी देना ही जनवाद नही है । जनवाद ध्वस को विवशता मे स्वीकार करता है क्योकि निर्माण ही उसका लक्ष्य है । धरती पर चतुर्दिक सौदय के दशन तब तक नही हो सकते जब तक मनुष्य के द्वारा निर्मित इस कुण्ठगलित समाज का पुनर्निर्माण न हो इसीलिए ध्वस मे भी सौदय देखा जाता है । बच्चन ध्वस के पक्ष पर कम लिखते है परतु निर्माण के पक्ष पर उनका लेखन जनवाद के पक्ष को प्रबल करता है—

एक गीत ऐसा मैं गाऊँ भूमि लगे स्वर्गों से प्यारी !
रूपमती रजित रसवती गधमयी यह भूमि हमारी !
लेकिन फिर भी स्वर्ग प्रशसित स्वप्न कल्पना की बलिहारी !
आज दूर का ढोल निकट ही बीन बज दोनो चकृत हो !
धनी सदा से जो आई है मानव की गर्वीली याती ।
तरसा करती जिसको पाने को देवो की वध्या छाती !
नेती है अवतार अमरता जिसके अदर से धरती पर !
एक पीर ऐसी अपनाऊ भूमि लगे स्वर्गों से प्यारी !

धरती के प्रति यह दृष्टि जनवादी दृष्टि है। उपमाना के यत्र तत्र ही प्रयोग होने पर भी मार्मिक काव्य की सृष्टि हो सकती है। माध्यम से विना जूझ हुए भी वास्तविक काव्य बन सकता है। ईस्पायन कवि को व्यथ के प्रयोगो के विना भी अपनी अभिव्यक्ति का जौहर दिखाने म सफलता मिल सकती है। गाढ़बध के अभाव मे भी विशिष्ट पदावली अनुभूति का भार झल सकती है बच्चन का काव्य इसका प्रमाण है।

बच्चन के गीतो म मनुष्य के लिए अद्भुत प्रेरणा मिलती है वन कोकिल का कठ मुक्त दो बधो को पवत के पर दो किन्तु मैं आह्वान करने जा रहा हूँ एक मिट्टी के ढेले से गम लोहा पीट ठडा पीटने को वक्त

वहुतेरा पडा है" "पीठ पर घर बोझ अपनी राह नापूँ या किसी कलिकुज मे रम गीत गाऊँ ?" "धार पैनी देख उस पर फेरने को हाथ मे वेजार होता" आदि गीतो की पक्तियो से ही स्पष्ट है कि प्रसादता और ऋजुता से युक्त इस नव-गीतलहरी मे मनुष्य का कौन सा रूप चित्रित हो रहा है ?—

सख्त पजा, नस-कसी चौडी कलाई
और बल्लेदार बाँहें ।
और आँखें लाल चिन्गारी सरीखी
चुस्त औ तीखी निगाह
हाथ मे घन और दो लाहे निहाई
पर घरे तो, देखता क्या ?
गर्म लोहा पीट, ठडा पीटने को वक्त वहुतेरा पडा है ।

व्यजना का यह रूप कितना सरल है ! आज की परिस्थिति मे 'निर्माण' की भावना को किस सीधी श्रद्धा के साथ व्यक्त किया गया है । 'सामूहिक भावो को पहचान कर उन्हें इस प्रकार व्यक्त करने मे जो 'काव्य' नही मानते,' उनकी 'बुद्धि' और सहृदयता पर दया आती है ।

अज्ञेय के 'सात्री' की तरह बच्चन के एक गीत में भी 'अकस्मात आघात' देने वाली एक व्यजना है—"एक बावली नायिका घूमती फिरती थी, काकुलें उसके भाल पर छिटकी हुई थीं, चमचमाती उसकी आँख थीं, जगत् ने जिन ककडो को कूडा समझकर फेंक दिया था, उन्हें वह चुनती जा रही थी । उसने लाल पानी का एक कटोरा निकाला, एक ककड उस कटोरे मे डाला, उसे निकाल कर जब हाथ पर रखा तो वह माणिक्य बन गया था, मैंने प्रश्न किया—

हो क्षमा मेरी ढिठाई
क्या बताओगी कि माणिक मे समाई
कौन से द्रव की ललाई ?
कान मे उसने बताया 'इस कटोरे मे भरा है सिर्फ़ कवि का रक्त' !
बावली थी घूमती थी वह, उसे मैं देखते ही हो गया आसक्त !!

प्रेम का बलिदान ही नही, बलिदान मात्र की महत्ता को यहाँ व्यजित किया गया है और 'गीत' म भी यह व्यजना सफल हुई है ।

समाज की निष्ठुरता—प्रयोगवाद मे क्षणविशेष के अनुभव को पकडने

की बडी ताक झाँक रहती है। मछवे की तरह विशिष्ट क्षण मे प्राप्त अनुभूति रूपी मछलियो की शिकार मे प्रयोगवादी कवि बुद्धि का काँटा लिए बैठा रहता है किन्तु गतिकार भी क्षण-विशिष्ट की अनुभूति को पकडता है और उसे अधिक कलापूर्ण ढग से व्यक्त करता है जिसे पढकर ही सतोप न हो जाय अपितु बाद मे भी गुनगुनाया जा सकता है—

न तुम सो रही हो न मैं सो रहा हूँ
मगर यामिनी बीच मे ढल रही है।
उधर तुम, इधर मैं, खडी बीच दुनिया
हरे राम, कितनी बडी बीच दुनिया
किये पार मैंने सहज ही मरुस्थल
सहज ही दिए चीर मैदान-जगल
मगर माप मे चार बीते बमुश्किल,
यही एक मजिल मुझे, खल रही है!

इसी तरह "मैंने गीतो को रचकर ये भी देख लिया" मे एक विशिष्ट मानसिक स्थिति की व्यजना है परन्तु न उसकी घोषणा की गई है और न केवल उसे ही देखने की जिद की गई है। मानवीय जीवन के सुखद, दुखद क्षणो मे होने वाले अनुभवों को सरल भाषा मे, वक्रता के बिना भी व्यजित कर सकने मे बच्चन सफल कवि हैं। जिन्दगी पर ही कवि का ध्यान केन्द्रित रहता है, वह पन्त जी की तरह पैगम्बरी मुद्रा नही बनाता, न वह दार्शनिक सिद्धान्तो के अनुकूल मानसिक स्थिति गढ कर तब दुनियाँ को देखता है। जीवन स्वय इतना विलक्षण है, प्रकृति इतनी विविधतापूर्ण और अद्भुत है कि उन पर किसी आरोपित जीवन-दर्शन का प्रकाश डालकर बच्चन उनके चित्रण को आवश्यक नही समझते। इसीलिए पन्तजी के नूतन काव्य की गहराई आरोपित साधना की 'गहराई' है, जिसकी विचार भूमि, जिस पर वह साधना कल्पित की गई है, सशय से युक्त है। हिन्दी काव्य मे 'पिण्ड' के भीतर चमत्कार देखने वाले कवि मध्यकाल मे भी हुए है उनमे कवित्व भी है परन्तु बाह्य जीवन की उपेक्षा करना अथवा बाह्य जीवन और आतरिक जीवन मे तालमेल न बिठा सकना अथवा उस तालमेल के लिए कल्पित सिद्धान्तवाद को अपने ऊपर आरोपित कर लेने के कारण पन्तजी का नूतन काव्य या तो बहुत ऊँचे आकाश पर उडते लगता है अथवा चेतना के कल्पित क्षितिजों को पार करता हुआ, मन की निगूढ कोठरियो की पडताल करता हुआ प्रतीत होता

है बच्चन के काव्य म यह दोष नही है अत वह जीवन के अधिक निकट प्रतीत होता है। उसकी अधिक जनप्रियता का भी यही कारण है। बच्चन पैग़म्बर की तरह अद्भुत और अनोखा नहीं दिखाते। जो बार बार बहुतो द्वारा अनुभव किया जा रहा है उसे ही सम्मुख ला रखते हैं और पाठक मुग्ध होकर कह उठता है अरे! यह तो मेरे ही मन की बात कही है।

अचल के नए गीतो मे प्रम का असामाजिक स्वर बहुत कम मिलता हैं अब रूपलिप्सा की जगह रूप का आकर्षण मात्र वर्णित होता है और प्रम वृति के चक्र की परिधि विस्तृत हो रही है उस परिधि मे जीवन के अन्य पक्षा के साथ प्रमवृत्ति सम्पृक्त होकर वर्णित होती है। प्रकृति-वर्णन मे कवि की चित्तवृत्ति निजी प्रम का विस्तार अधिक करने लगी है—प्रम विस्तृत होकर सारे ज़माने को अपनी परिधि म समेट लेता है—

> इक तपज मुहब्बत का बस ये ही फसाना है।
> *सिमिटे तो मिले आशिक फैले तो ज़माना है।*

यह प्रवृत्ति अन्य गीतकारो मे भी दिखाई पड रही है—

> जा रहे आलोकपथ से मन्दगति वर्षा त के बादल
> है सलिलि प्लावित नदी नद ताल पोखर
> वन विह्वल झर रहे गिरि स्रोत निर्झर!
> देखत अकुरित नूतन फुल्ल खेत!
> छोड उत्सुक बधुआ के नेत्रो का प्यार!
> छाड लघु पौध व्यथातुर शस्य शालि अपार
> खोह अजन की कहा वहा गुरु गहन
> आगार वह विस्राम मुग्ध विराम की
> जारहे जिसम चले ये थके वन्यपशु से।

इस मुक्त छन्द म प्रयोगवादियो जैसी अनवस्था नही है इसमे छायावादी मुक्त छन्द की लयात्मक गति है। चित्रण म बादल को वन्यपशु बनाकर नया उपमान दिया गया है परन्तु भाव की उपेक्षा नही है।

अचल का प्रमनिवेदन इधर पहले के प्रम से अधिक पवित्र और *स्वाभाविक दिखाई पडता है शिष्टता और मधुरिमा से युक्त यह प्रम अभि*नन्दनीय है—

> तृप्ति को मधु मोहिनी का एक कण दे दो न मुझको!
> एक कण दे दो न मुझको!

तुम मुझ देखो न देखो प्रम की तो बात ही क्या
साझ की बदली न जब मुझ को मिलन की रात ही क्या
दान के तुम सिधु मुझ को हो भना यह ज्ञात ही क्या
दाह म बोले न जो उसको तुम्हे प्रणिपात ही क्या
छाह की ममता भरी श्यामल शरण दे दो न मुझको !
एक कण दे दो न मुझको !

अचल का प्रम प्रारम्भ से ही लौकिक रहा है किन्तु जहाँ छाया वादियो का प्रम अत्यधिक आलौकिकता से ग्रस्त हो जाता था वही अचल का प्रम कुत्सित लौकिकता से ग्रस्त हो जाता था। अचल न अब वास्तविक लौकिकता को पहचाना है।

नए गीतकारा म अनेक गीतकार हैं हम अलग अलग इन पर विचार नहीं कर सकते अत विचार तत्व कल्पना भाव और अभिव्यक्ति आदि कोटियो मे विभाजित कर इनका विहगावलोकन मात्र प्रस्तुत कर रहे हैं।

विवेक तत्त्व—गीतकारो के विषय मे हमारी धारणा कुछ ऐसी बन गई है कि उसम कोई जीवन-दशन नही होता। वह प्रम का गायक कवि होता है। अत उसका भेदक लक्षण प्रम और गीत मान लिया गया है। कवि सम्मेलनो और कवि गोष्ठियो मे इन गायक कवियो की चद्र गीतियो को ही बार बार सुन पाने से यह धारणा और भी बलवती हो गई है। इसके सिवा श्रोतागण ऐसे सम्मलना मे आनद और प्रमोद के लिए अथवा हास्य के लिए एकत्र होते हैं। वे कोई बहुत गम्भीर और उच्च कला नही चाहते अत प्रम के गीता को ही अथवा हास्यरस की रचनाओ को ही अधिक पसद किया जाता है। इसलिए यह धारणा बन गई है कि गीतकार एक सामाय प्रम या प्रकृति का गायक कवि है वह व्यापक प्रश्ना पर नही सोचता न उसका कोई विशिष्ट सिद्धात होता है।

किन्तु बात ऐसी नहीं है। दाशनिक भाषा म इन्हे हम किसी एक जीवन दशन का अनुयायी भले ही न कह सक किन्तु वस्तुत इनम एक दृष्टि अवश्य मिलती है। इनकी प्रथम विशेषता यह है कि ये प्रतिक्रियावाद के विरोधी हैं। भावात्मक रूप मे य जीवन को वग वण जाति और सम्प्रदाय से रहित देखना चाहते हैं। दूसरे शान्ति के पक्ष म इनका स्वर प्रबल है। तीसरे समाज के पुराने जड बधना के य विरोधी हैं। चौथे युद्ध कालाबाजारी घूस खसोट शोषण आदि का इन्होने बार बार विरोध किया है। पाचवे राष्ट्रभक्ति इनकी

वैयक्तिक भावनाओं का आधार है परन्तु उग्रराष्ट्रवाद और उग्रक्रान्तिवाद जो 'नवीन', और 'दिनकर' में मिलता था, वह इन कवियों में नहीं मिलता। एक शब्द में नए गीतकार मानवतावादी कवि हैं किन्तु यह 'मानवतावाद' आदर्शवादी मानवतावाद नहीं, जिनकी पृष्ठभूमि में कुछ अलौकिक तत्त्वों में विश्वास काम कर रहा था, यह मानवतावाद पूर्णत प्रगतिवादी न होकर भी समग्रत 'प्रगतिशील-मानवतावाद' है। इसका मुख्य लक्षण 'मानवप्रेम' है और वह प्रगतिशील इसलिए है कि इसमें बाधक वर्गों को वे पहचानते हैं, उनका विरोध करते हैं, पूर्णत प्रगतिवाद इसलिए नहीं है कि उनके गीतों में यत्र तत्र समझौते के स्वर हैं कहीं पुराने आदर्शवादी सिद्धान्त भी चिपके हुए हैं कहीं भटकाव भी है।

विकास के मार्ग पर गतिमान इन गायकों का स्वर कभी कभी विषवादी स्वरों से आक्रान्त हो उठता है, यह स्वाभाविक भी है। वैयक्तिक अहंकार और मिथ्या दम्भ भी कहीं बाधक बनता दीखता है जो उत्तरकालीन छायावाद की विशेषता थी। कहीं कहीं अपनी मानसिक स्थितियों को ही सत्य समझकर ये उनका साधारणीकरण (जनरला इजेशन) करते हुए नए सिद्धान्त-वादी बनते दिखाई पड़ते हैं। जीवन के प्रति इनकी दृष्टि, फिर भी, समग्रत प्रगतिशील है क्योंकि सामाजिक परिवर्तन की प्यास इनमें उग्र होती जा रही है।

आशावाद—तू सिसकती शाम सा गमगीन है, आ तुझे खिलती किरण तक ले चलूँ।[1]

ओ प्राण अभाग रोता क्या ?
झरना यदि फूलों का सच है, खिलना क्या उनका सत्य नहीं।
बिछुड़न यदि जीवन का सच है, मिलना क्या जीवन सत्य नहीं।

('क्षेम')

इसमें रोने धोने की क्या बात है, हार-जीत तो दुनियाँ भर के साथ है।

(मुकट० सरोज०)

प्रेम से प्रेरणा-ग्रहण—जो जीने को ही जीते हैं, उनके लिए समस्या मैं हूँ।
जो विष पीने को जीते हैं, उनके लिए तपस्या मैं हूँ।

---

1 लेखनी-बेला—वीरेन्द्र मिश्र।

जो भ्रम मे तटस्थ चुप रहते, उनकी दृष्टि अर्द्ध अधी है।
गिरने लगूं बांह दे देना, बुझने लगू, स्नेह दे देना![1]

जिस झकोरे को कहो दुश्मन बना लूँ, जिस अंगारे को कहो सीने लगा लूँ।
किन्तु मेरी शर्त है या जिद समझ लो, चांद मेरे पास होना चाहिए।[2]
धूल जीवनकी चढ़ाकर माथ पर, जन्मदिन मैंने मनाया प्यार का
आदमी का मन बहुत करुणा भरा है, प्यार की प्यासी बहुत मेरी धरा है।
सूरज की अगवानी मे ससार खडा है, मैं बुझते दीपक के सिरहाने बैठा हूँ।[3]

चलते चलते रुक जाता हूँ राह मे, पर इसका मतलब यह नही,
तम के हाथो बेच दिया ईमान किसी के प्यार का।
एक तृण भी पा सके नव प्राण तो सावन सफल है।
एक मुख भी कर सके शृगार तो दर्पण सफल है
मान पाया यदि नही कवि विश्व मुझको तो हुआ क्या
यह मुझे विश्वास, मेरे गीत तुमको भा रहे हैं।
प्यार हुआ क्या तुमसे मेरा, सारे जग से प्यार हो गया।
एक तुम्हारी छवि का दर्पण, यह सारा ससार हो गया।[4]

शोषितो के प्रति सहानुभूति—

उजड गई बस्तियाँ कि जिनकी, झुलस झुलस भूख की चिता मे।
निगाह रोई, रहे न आँसू, नयन मरुस्थल बने व्यथा मे।
अधर पियासे रहे, अधूरी रही आरजू, लुटे श्रमो की।
मिट्टी से फसलो का सोना देने वाला देवता
नई अलावें जला रहा है, गाँवो की चौपाल मे।

(वीरेन्द्र)

जितने गीत रचे हैं मैंने, इस लम्बी बीमार उमर मे
उन सबको बेचूँ तो शायद, आधा कफन मुझे मिल जाए

(त्यागी)

---

१ वही।
२ रामावतार त्यागी।
३ वही।
४. राही, बाल स्वरूप।

जागो देह की सीमाओं से, भूचालों से हो सावधान !
धुआँ धुआँ की भूखी ज्वाल लिए, आता है विध्वंसक विमान—

(प्रभुदयाल अग्निहोत्री)

बन्द दिन भर जो रहे सूम की मुट्ठी की तरह
खुल गये मील के फाटक हैं वे काल काले
भरती जाती है सड़क स्याह स्याह चेहरा से,
शायद इनमें भी कभी चाँदनी नजर आन

(नीरज)

राष्ट्र-प्रेम—इसकी मिट्टी में है गर्मी काल की।
इसमें ताकत है उठन भूचाल की।
श्यामघटा बिजली बरखा मनभावनी।
रिमझिम बूँद-फुहार बदरियाँ सावनी।
आल्हा की हुँकार, रामायन की कथा।[1]
मिट्टी वतन की पूछती वह कौन है, वह कौन है ?
इतिहास जिस पर मौन है।[2]

शान्ति के स्वर—लेकिन यह क्या होती है आवाज क्या
धुआँ, आग, चीत्कार, ध्वंस है राज क्या ?
देश में होती है खींचातान क्यों
शीतयुद्ध से दुनियाँ है हैरान क्या ?
मैंने खींची लक्ष्मणरेखा कोई पाँव बढ़ाए ना। (वीरेन्द्र)

भारत के नभ में उड़ने वाले आ पंछी
नीचे लहलिया तरकश तीर सन्धान हैं।
हर सपनों की दुनियाँ पर खूनी आँखें
उपवन से हर नीड़ उजाड़न वाले हैं।
चाँदनी भिखारिन होन वाली है पल में
छिनने वाली चुम्बन मणिमाला चन्दा की (सुयोगी)

जिन्दगी सिर्फ है खुराक टैन्क तोपों की
औ यह इन्सान है इक कारतूस गोली का

---

१ वीरेन्द्र।
२ हंसकुमार तिवारी।

सभ्यता घूमती लाशों की इक नुमायश है
और है रग नया खून नयी होली का।[1]

समाज के प्रति असतोष—

गगा मैया तेरे तट पर बस कर भी मैं रहा पिपासित
अपने प्यासे अधर दिखाकर सागर से यह बात कहूँगा।
(आठवांस्वर, त्यागी)

जो समुन्दर की सतह पर तैरती है बाल खोले
अब उसी बागी लहर के हाथ का कगन बनूँगा।
(वही)

मेरे पीछे इसीलिए तो धोकर हाथ पड़ी है दुनिया
मैंने किसी नुमायश घर मे सजने से इन्कार कर दिया।
(वही)

व्यर्थ नही जाता है बोया हुआ पसीना अलबत्ता उगने मे देर भले ही होजाए।
एक न एक रोज सुनवाई होगी श्रम की मौजूदा युग मे अँधेर भले ही हो जाए।
अगर तुम्हारी फसल रही निर्दोष बादलो का विरोध क्या ?
सागर खुद क्यारी क्यारी भर देगा अपने आप एक दिन।
कानपुर! तूने मुझे इतनी उमर तो दे दी
किन्तु रहन को तीन गज जमीन दे न सका।
पोछ लूं जिससे मैं अपने ये सुलगते आँसू
मेरे गीतो को एक आस्तीन दे न सका (नीरज)

नूतन समाज निर्माण—

अब होने ही वाला है पूरब लाल
पहरए जगना थोड़ी देर और।
अब नही रजत की मूरत को श्रम शीश झुकाएगा
विश्वास करो, इसान स्वर्ग धरती पर लाएगा
(मुकुट० सराज)

जीवन की व्याख्या—जीवन एक है अभिशाप, पर वरदान भी तो है।
जिसका पन म है मूना उसका मरग कितना पून

---

१ नीरज—'नील की बेटी' भी द्रष्टव्य है।

जीवन है उसी का नाम, कहते हैं जिसे हम भूल
कहते हैं जिसे दु:खराग, वह मधुगान भी तो है।
(शम्भुनाथ सिंह)

जीवन तो वह जो चलता है
जो कभी नहीं झुकता नीचे, जो कभी नहीं मुड़ता पीछे।
जो फलता निजन के तरु सा आदर जतनो से बिन सींचे
सौ वातो की जो बात छोड़, आगे ही सदा निकलता है।

अगारो का नीड, बिजलियों की जमघट
हर सुबह शाम इक नई अदा से जमता है।
आवारा अलकें, कशिश भरी आवाजो मे
चट्टानो के मस्जिद पर मेला जुड़ता है
अपनी किस्मत की हँसी उड़ाता हूँ जब मैं
तब, स्वाभिमान तिरछी नजरो से तकता है।
नित नये रक्त का फूल उगलता चलता है

(सुयोगी)

इन कतिपय उद्धरणो से गीतकारो का समाज के प्रति दृष्टिकोण स्पष्ट है। अन्य बहुत से गीतकार हैं किन्तु अन्यो मे भी कमोवेश यही नजरिया मिलता है। इसीलिए मैं गीतकारो को 'प्रगतिवादी' कहता हूँ। कला की दृष्टि से ये छायावाद और उर्दू की गजल से प्रभावित प्रतीत होते हैं। किन्तु दृष्टिकोण इनका नवीन है। इनका प्यार, इनका दर्द, इनकी मनुहार, और इनकी हाहाकार "सर्वथा व्यक्तिगत" कहीं नहीं है। इनके प्यार मे उत्तरदायित्व है, आध्यात्मिकता नही, इनके दर्द मे स्वाभाविकता है, साम्प्रदायिकता नही, इनकी दृष्टि मे केवल प्रेयसी नहीं, सारा विश्व है और इनके हृदय मे केवल अपनी ही नहीं, दूसरो की भी खोज खबर है। 'प्रेम' इनके लिए वासना का शोधन और दो आत्माओ की परस्पर प्रीति का नाम है। न इनमे छायावादियो जैसी अदेखे के प्रति रति है न हालावादियो जैसी घरफूँक मस्ती, न मांसलवादियो जैसी केवल 'स्थूल रति' और न सभोग की मात्र लालसा। इनमे प्रयोगवादियो जैसी ओपधिरहित अनास्था, अनावस्थाग्रस्त निराशा, व्यर्थ की शकाओ के प्रति अनुचित लालसा, और आरोपित लघुता भी नहीं मिलती। सिद्धान्तवादियो जैसी जड घोषणाएँ भी इनमे नहीं हैं, न पैगम्बरी मुद्रा बनाकर ये कोरे सदेश देते हैं, आज के समाज की विषमता, परम्पराग्रस्तता, बेकारी, भूख, रोग

और अनिश्चतता के ये नवयुवक स्वय शिकार रहे हैं अत इनम कटुता है किन्तु हताश क्रन्दन नही है इनमे तलखी और तिलमिलाहट है किन्तु टट कर तार तार हो जान की प्रवृत्ति नहा है। इनमे शारीरिक मानसिक और प्राकृतिक सौ दय तथा आकषणो के प्रति आसक्ति है किन्तु उसम आवश्यक तटस्थता भी है। ऐसा नही लगता कि य कवि केवल रूप लिप्सा तक ही अपने को सीमित रखना चाहते हैं। कठोर वग सघष को स्वीकार करते हुए भी शोषित और शोषक की स्पष्ट पहचान होने पर भी ये कवि जीवन के अन्य पक्षो का भी चित्रण करते हैं। प्रारम्भिक प्रगतिवादियो की तरह व्यक्तिगत प्रम और सामाजिक दायित्व के बीच द्वन्द्व न मानकर ये इन्हे एक दूसरे का पूरक मानते हैं। इन्हे प्रयोगवादियो की तरह यह भय नहीं है कि वगरहित समाज की स्थापना असम्भव है या यह कि स्वातन्त्र्य की भावना निरपेक्ष मानवमूल्य है। वगभुक्त भारतीय समाज मे आजकल हमारी स्वतन्त्रता की भावना पर किस प्रकार पग पग पर प्रहार होता है किस प्रकार ऊपर से स्वत न्तता की प्रतीति होने पर भी व्यवहार म स्वतन्त्रता बन्धन का पयाय बन जाती है इस हकीकत से य वाकिफ हैं अत मानवमूल्यो की दृष्टि से ये कवि समाज के मूलाधार को बदलना चाहते हैं और अधिकार विहीन विराट जनसमूह के लिए सघष करने के लिए निम्नमध्यवग के य प्रतिनिधि कटिबद्ध दिखाई पडते हैं अत इनके गीता मे महानकला का म अभी अभाव होने पर भी जिस सन्दभ मे इनका उदय हुआ हैं उस सन्दभ की दृष्टि से इनका विवेक और उससे प्रेरित कला कम प्रशसनीय नही है। इनकी दृष्टि स्वच्छ है अत कला' अभी और भी विकसित होगी। सतदृष्टि से सही माग की खोज होती है पुन गति मे त्वरा 'सौन्दय आदि तत्त्व स्वत आते हैं। छायावाद की दृष्टि की स्वच्छता और नवीनता ने ही महान कला दी थी। कामायनी के पीछे उदात्त जीवन दृष्टि ही काम कर रही है अत मैं जब इन गीता की अधिक प्रशसा करता हू तो सम्भावना की दृष्टि से भी ऐसा करता हूं। किन्तु कुछ प्रगतिवादी विशषत कहते हैं कि यह प्रयोगवाद से भी खतरनाक प्रवृत्ति है। यानी स्वय प्रयोगवाद से व इसलिए क्रुद्ध हैं क्योकि प्रयोगवाद के कण्टेण्ट — कथ्य के प्रति वे सहमत नही हैं और जब वही कथ्य गीतकारा म मिलता है तो कलागत श्रेष्ठता की कुछ कमी होने पर भी उस कथ्य की भी प्रशसा नहा करना चाहते। यह दिग्भ्रम ही कहा जाएगा। सवश्रेष्ठ काव्य एक दिन म नही बनता फिर गतिकारा म एक विशिष्टता है। यदि सभी गीतकारा के चुने हुए गीता का एक सकलन

प्रस्तुत किया जाय तो नये गीतों मे कलागत श्रेष्ठता भी मिल सकती है। प्रकाशित व्यक्तिगत सकलनो मे अभी कला की दृष्टि से अच्छे, बुरे सभी प्रकार के गीत शामिल कर लिए गए हैं। गीतकारो की चुनी हुई रचनाओ मे कलागत उपलब्धि उपेक्षणीय नही है, यह निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है। प्रसाद, पन्त, निराला जैसे महाकवियो का रूप अभी भविष्य के गर्भ मे है !

विचार की दृष्टि से 'नीरज' मे 'मृत्युवाद' की बहुत चर्चा हुई है। मृत्यु 'प्रकृति' का अनिवार्य धर्म है, यह दृष्टि वैज्ञानिक है किन्तु सवेदनशील कवि के लिए 'मृत्यु' एक चुनौती के रूप मे प्रतीत होती है। मृत्यु से मनुष्य की आशा, आकाक्षा, स्वप्न, निर्माण आदि तत्त्व अवश्य 'कडीशड' होते हैं, 'प्रेम' में मृत्यु की अनुभूति 'प्रेम' को एक उपहास का रूप देती है, सौन्दर्य क्षणिक और भ्रम सा प्रतीत होने लगता है, "अन्य सामाजिक सम्बन्धो से मैं बिछुड जाऊँगा"—यह अनुभूति तीव्र होकर कहने के लिए विवश करती है, यह 'मृत्युवाद' नही है। मृत्युवाद वह है जो सर्वत्र मृत्यु के दर्शन करे और 'मुक्ति' का उपाय न दिखाई पडे। 'आशा' मृत्यु पर विजय का दूसरा नाम है। इसके सिवा 'मृत्यु' जीवन का नाश नहीं करती, नवीन के जन्म की आवश्यक शक्ति भी बनती है। पिता-माता अपनी मृत्यु नए जीवन के लिए स्वीकार करते हैं, पुष्प फल के लिए अपना जीवन दान करता है अतः प्रकृति मृत्यु के बावजूद 'चिर नवीना' बनी रहती है, यह दृष्टिकोण यदि कवि मे नही मिलता तो वह अवश्य मृत्युवादी है। नीरज मे कतिपय स्थलो पर मृत्युवाद के स्वर अवश्य हैं परन्तु क्रमश उसमे 'जीवनवाद' का विकास भी हुआ है। विज्ञान जब तक 'मृत्यु' पर विजय नही पा लेता, तब तक प्रियजनो की मृत्यु पर और अपनी मरणोन्मुख जीवन गति देखकर उत्पन्न होने वाली अनुभूतियो का वर्णन अवश्यम्भावी है, क्योकि यह अनुभूति आरोपित नही, वास्तविक है। इसी प्रकार विवेकशील कवि मृत्यु पर जीवन का जयनाद भी घोषित करते रहेंगे, नीरज मे भी यह 'जयनाद' मिलता है।[1]

मुझे अन्य गीतिकारो मे विसवादी स्वर बहुत कम दिखाई पड़ते हैं और यह प्रसन्नता का विषय है।

---

१ मृत्युवाद—जन्म है यहाँ मरण त्यौहार,
दबा लकड़ियों के नीचे पुरुषार्थ पार्थ का सारा।
अरे कृष्ण पर क्षुद्र बधिक का तीर व्यंग्य सा करता।

भाव प्रक्रिया—*गीतकारों के गीत शुद्ध रसवादी परम्परा के काव्य में* आते हैं। रसवाद का लक्षण यह है कि उसमें किसी एक स्थायी भाव को अन्य नाना भावनाओं से सपुष्ट करके चित्त को लय करने का प्रयत्न किया जाता है। कल्पना दुर्बल होने तथा शब्द शक्ति पर अधिकार न होने से रसवादी काव्य भावुकता-आतिशय्य (Sentimentalism) में बदल जाता है। किन्तु रस समाहित चित्तवृत्ति कल्पना और अभिव्यक्ति कुशलता से सपुष्ट होकर उच्च कोटि के काव्य की सृष्टि करती है।

गीतकारों पर भावुकताआतिशय्य पुनरावृत्ति वद्धितत्व के अभाव और कल्पना की दुर्बलता का आरोप लगाया जाता है। यह सत्य है कि अनेक गीतकारों में छिछलापन मिलता है चित्तवृत्ति का गाम्भीर्य सभी में सम्भव भी नहीं है। एक ही गीतकार के कई गीतों में यह दोष मिलता है किन्तु बहुत से गीतों में सफल काव्य भी मिलता है। डा० देवराज ने धरती और स्वर्ग नामक अपने काव्य सग्रह की भूमिका में लिखा है कि आज का काव्य मूल वासनाओं से दूर पड़ता जा रहा है। प्रयोगवाद के विषय में यह आपत्ति ठीक है किन्तु गीतों के विषय में यह आरोप सही नहीं है। गीत आज भी मूल प्रवृत्ति से जुड़ा हुआ है देखना यह है कि उसकी अभिव्यञ्जना में उपयुक्त कौशल है या नहीं अथवा भावमग्नता की स्थिति में कवि जीवन की अन्य—*दशाओं के साथ उस मूल प्रवृत्ति का सम्बद्ध कर पाता है या नहीं।*

स्वयं डा० देवराज की मां को देखूँ मैं या शिशु को में वात्सल्य रति की व्यंजना मार्मिक हुई है यद्यपि अभिव्यक्ति स्वाभावोक्तिपरक है।

हाय राम का शव सरयू में नहा तर रहा है।
सीता का सिन्दूर अवध में करता हाहाकार।
(विभावरी)

जीवनवाद—बद कूलों में समुन्दर का शरीर।
किन्तु सागर कूल का बन्धन नहीं है।

रुके न जब तक साँस न पथ पर रुकना थके बटोही।

मैं तूफानों में चलने का आदी हूँ
तुम मत मेरी मंजिल आसान करो।

मैं अकम्पित दीप प्राणों का लिए
यह तिमिर तूफान मेरा क्या करेगा।
(वही)

विश्व-शान्ति पर लिखी हुई गीतकारो द्वारा कविताओ मे
रति का चित्रण मोहक हुआ है। कही-कही अप्रस्तुत-विधान
की सरलता और उनकी निश्छल मुस्कान का वर्णन है परन्तु गीतो
रस 'शृङ्गार' ही है। कही वह माध्यम के रूप मे है और कही साध्य के रूप मे। गीतकार छायावाद की परम्परा मे प्रेयसी के शारीरिक सौन्दर्य का वर्णन करता है अन्तर सिर्फ यह है कि वह किसी परोक्ष-सत्ता के साथ उस सौन्दर्य का सम्बन्ध नही जोडता। सौन्दर्य की मोहकता का वर्णन कही तटस्थता के साथ है, कही प्रेयसी के सौन्दर्य मे प्रेमी की आसक्ति भी सम्पृक्त होकर चली है, कही-कही यह आसक्ति 'रमणेच्छा' अथवा 'रिरिंसा' का रूप धारण कर लेती है जो अचल के परवर्ती छायावाद की विशेषता थी। 'धर्मवीर भारती' की कतिपय रचानओ मे यह 'रिरिंसा' सबसे अधिक मिलती है। छायावाद के बाद इसे 'पतनोन्मुख' अथवा 'डिकेडेण्ट' भी कहा गया है—

> तुम्हारे स्पर्श के ही जुल्म से, सयम न टिक पाता !
> इन फीरोजी होठो पर, बरबाद मेरी जिन्दगी !
> तुम्हारे स्पर्श की बादल घुली कचनार नरमाई।
> तुम्हारे वक्ष की जादूभरी मदहोश पुरवाई।
> तुम्हे आदिम गुनाहो का अजब सा इन्द्रधनुषी स्वाद ?

"भारती" मे सौन्दर्य रीतिकालीन उत्तेजक विलास का रूप धारण करता दिखाई पडता है।

इसके विपरीत जगनाथ नलिन के धरती वे बोल मे तटस्थ दृष्टि से सौन्दर्य-अकन किया जाता है—

> आरही नर्तकी क्षिप्त-चरण गुजरित विमल।
> जड तुहिन-तिमिर विचलित प्रेरित,
> आलात-चक्र सा घूम रहा व्याकुल अधीर।
> झीनी सी पीली ज्योति अमर
> छटपटा रही कृष-तन्वी सी तम-वक्ष चीर।

नवीन गीतकारो मे "त्यागी" मे सौन्दर्य-चित्रण का अभाव मिलता है, उनमे अपने मन की प्रतिक्रिया, जमाने से शिकायत आदि का वर्णन अधिक है। 'राहो' मे यत्र तत्र चित्रण मिलता है परन्तु नहीत चित्रण संश्लिष्ट नही है कवि जम कर चित्रण नही करता—

> कुछ वैसे ही लोचन, लोचन का सूनापन,
> झुकी-झुकी सी पलक, निगाहे उन्मन-उन्मन।

बिलकुल वैसी ही बिखरी बिखरी सी अलकें
विकुल वसा ही अधरो का मान्न कम्पन ।

वीरेन्द्र मिश्र ने भी सौदय का चित्रण यत्र तत्र ही किया है। नीरज म भी अपने मन की प्रतिक्रियाओ का वणन ही अधिक है। शम्भूनाथसिह ने यत्र-तत्र मोहक चित्र खीचे हैं और उनमे तटस्थता भी है सौदय की महत्ता पर भी ध्यान है—

कम्प सा तन तुम शरद की धूप सी
प्रश्न सा मन तुम विराट स्वरूप सी
लाजवन्ती आख तुम कर का परस
हिमशिला मैं तुम लपट के स्तूप सी। (माध्यम मैं)

परन्तु ऐसे चित्रण यत्र तत्र ही हैं। घनश्याम अस्थाना के भोर के सपन मे कतिपय मोहक चित्र है। यह विचित्र तथ्य है कि प्रम मे आकठ निमग्न होने की घोषणा करने वाले कवि भी सौंदय का चित्रण नही करते। शिवमगलसिह सुमन क काव्य सग्रह का शीषक है पर आख नही भरी परन्तु शरद सी तुम कर रही होगी वही शृगार को छोडकर सौदय का चित्रण कही नही है।

अत नवीन गीतो मे विप्रलम्भ का चित्रण अधिक हुआ है और यह भी कुछ नए ढग का है। गीतकार उर्दू के कवियो की तरह इधर अपनी बीती का वणन अधिक करता है। अर्थात गीतकार अपन मन की प्रतिक्रिया को विरहानुभूति से कभी कभी अधिक महत्त्व दे जाता है इससे एक लाभ यह है कि प्रत्येक कवि की भिन्न भिन्न प्रतिक्रियाए भिन्न भिन्न उपालम्भ भिन्न भिन्न प्रम की परिभाषाए और भिन्न भिन्न जीवन सत्य मिलते है। जीवन के प्रति कवियो का दृष्टिकोण भी ऐसे ही स्थलो पर व्यक्त होता है अत नवीन गीतो के विरह मे व्यक्तिगत तत्त्व अधिक मिलता है परन्तु वह इतना विचित्र नहा होता कि सामान्य पाठक उसक साथ तालमेल न बिठा सके। जहा मन की प्रतिक्रियाओ का सामान्य जीवन सत्य बना बना कर कहने की प्रवृत्ति है वहाँ काव्य कौशल अधिक होने पर भी रस दशा नही आपाती त्यागी के गीतो मे यही प्रवृत्ति दिखाई पडती है और इसके विपरीत नीरज मे यत्र-तत्र किसी अनुभूति म पाठक को रमाने की प्रवृत्ति अधिक है नीरज म भावोच्छवास अधिक है—

काँपता तम थरथराती लौ रही
आज अपनी भी न जाती थी कही।

लग रहा था कल्प सा हर एक पल
बन गई थी सिसकियां सासें निकल
पर न जाने क्यो उमर की डोर मे
प्राण बाध तिल तिल सदा गलता रहा।

यहाँ भाव मे डूबने की प्रवृति है। इसी तरह त्यागी के जैसे कोई बनजारा लुट जाए ऐसा खोया खोया है मन मे भी यही एक भाव म रमने की प्रवृत्ति है किन्तु अधिकाश गीतो मे त्यागी प्रमिका या जमाने की शिकायत अधिक करते हैं। मेरे होठो को ताला पहना कर तुमने पावो का बन्धन तोड दिया मुझ पर इतना अहसान तुम्हारा है अथवा मैं उम्र पिलाकर भी तुमको तुमसे खुश हूँ तुम जहर पिलाकर भी मुझ से नाराज मगर अथवा मुझ क्षमा कर दो जगवालो अब न कभी मन बहलाऊँगा अथवा *स्वप्न सा बोलो अयाचक कौन होगा मर गया मागा न दुनिया से कफन भी* जैसी गीतियो मे यही प्रवृत्ति है। अत त्यागी म एक अनुभूति विदग्धता के साथ व्यक्त होती है किन्तु वह एक हल्का सा आघात कर समाप्त हो जाती है। अनुभूति म निमग्न कर देना जैसे कवि को इष्ट नही है अत रस के स्थान पर भावाभिव्यक्ति की प्रवृत्ति त्यागी राही रग जैसे कवियो मे अधिक दिखाई पडती है। वैदग्ध्य के अभाव होने पर परम्परागत अनुभूति छिछली हो जाती है किन्तु त्यागी अन्य गतिकारो से अधिक इसीलिए होनहार दिखाई पडते हैं कि उनम उक्ति को आकर्षक बनाने की कला अधिक है—

अतृप्ति—गगा मैया तेरे तट पर बस कर भी मैं रहा पिपासित
अपने प्यासे अधर दिखाकर सागर से यह बात कहूँगा !

आतरिक गुणो पर रीझ—मन की उजली किरना से बाध मुझ
काजल की डोरी पर विश्वास न कर !
शब्दो के इतने बाण नही साधो
आँसू की हलकी चोट बहुत होगी।

फिर इस गुणप्रियता को आगे कवि व्यक्त नही करता सामान्य सत्यो या परिभाषाओ मे फँस जाता है—

जीवन सपने की कल्पित काया है
चेतनता केवल माटी का भ्रम है
पायल जिसको हँसकर दोहराती है
वह पग की *मजबूरी का सरगम* है !

राग या विराग मे जब तक कवि मग्न होकर मग्न बना नही रहता उस मग्नता को अन्य अनुभूतियो से पुष्ट नही करता तब तक तल्लीनता उत्पन्न नही हो सकती। उक्त सभी कवियो मे अभी यह कमी है। हलकेपन का यह भी एक कारण है। अपेक्षाकृत नीरज मे निमग्नता अधिक है अभी न जाओ प्राण प्राण मे प्यास शेष है अथवा आज मेरी गोद मे शरमा रहा कोई चाद से कह दो नही वह मुस्कराए अथवा एक गीत गा रही है जि दगी में एक ही धारणा अथवा अनुभव को दूर तक चित्रित करने की प्रवत्ति है।

नाना गीतो मे इतना आसू और दरद का इजहार होने पर भी अपि ग्रावा रोदति वाली गम्भीर सवेदना की कमी का कारण है कि गीतकार ठहर कर एक अनुभव को अन्य नाना अनुभवो से पुष्ट नही करना चाहते। कला की यह पुरानी किन्तु श्रेष्ठ पद्धति थी इधर इसका ह्रास हो रहा है फिर भी गीतकारो मे भाव को ही काव्य का प्राण माना जाता है विचारणा को उसका अग माना गया है अत वह सीधी रस-काव्य के माग पर चलती दिखाई पडती है।

यदि हम कालिदास पन्त निराला आदि को ध्यान मे रखकर न देख तो इधर के गीतकारो में लघु भाव-खण्डो की आकषक अभि यक्ति हुई है। प्रयोगवादियो का यह आरोप मिथ्या है कि गीतकार प्रवत्तियो से ऊपर उठना नही चाहते। प्रम का जो रूप इधर वर्णित हुआ है वह सामान्य है उसमे वयक्तिकता यक्तिवचित्र्य नही बन गई और न प्रम को व्याधि के रूप मे स्वीकार किया गया है। अन्य जो कुछ कवियो को कहना है उर्दू वालो की तरह वे प्रम के माध्यम से कह गए हैं अत उसमे उपदेशवाद नही आ पाया। इसके सिवा इन गीतकारो का प्रम आरोपित नही लगता है। जीवन सघष की कठोर धूप से प्रम के वक्ष को हरा भरा रखने का साहस इन कवियो मे अवश्य है वह प्रम जीवन का एक अग है अगी वह कही नही बन पाता यह भी इधर के गीतो की विशेषता है।

कल्पना प्रकृति और अभिव्यक्ति प्रक्रिया —बार-बार यह कहा जाता है कि गीतकार का स्तर गिर गया है वह गायक अधिक है कवि कम। अशत यह आरोप सही है। कविता को जन प्रिय बनाने के लिए प्रौढता म कमी अवश्य आई है। छायावादी स्तर अब नहीं दिखाई पडता है। सश्लिष्टता के स्थान पर विश्लिष्टता इधर बनी है। प्रसाद गुण बढा है परन्तु स्तर भी गिरा है परन्तु सवत्र सब गीतो म ऐसा नही है। तालियो का ध्यान रखकर गीत भी

लिखे गए हैं जो कवि के मुख से प्रिय लगते हैं किन्तु प्रकाशित होने के बाद पढ़ने समय वे 'हलके' लगते हैं किन्तु ऐसे गीत भी अनेक हैं जो सरल भी हैं और मार्मिक भी और पढ़ते समय भी आनन्द देते हैं।

कल्पना का काम चित्रण है। गीतों में भावसवलित चित्रण अधिक हैं। प्रेयसी के शारीरिक सौंदर्य का चित्रण कम है परन्तु प्रकृति और अपनी भावनाओं को मूर्ति देने की प्रवृत्ति अधिक है। प्रगतिवाद की 'स्वभावोक्ति' न अपनाकर गीतकार 'समाधि गुण' अधिक अपनाकर चले हैं। 'समाधि गुण' वहाँ होता है, जहाँ एक वस्तु के धर्म से दूसरी वस्तु को युक्त कर दिया जाय। छायावाद इसीलिए सुन्दर था क्योंकि उसने 'समाधि गुण' से जड़ प्रकृति और अशरीरी भावनाओं पर चेतन जीव की चेष्टाओं का आरोप किया था अतः काव्य की वास्तविक भाषा का निर्माण हो सका। यह विधि गीतकार भी अपनाते हैं।

विजलियों के चीर पहने थी दिशा
आंधियों के पर लगाये थी निशा
पर्वतों की बाँह पकड़े था पवन
सिंधु को सर पर उठाये था गगन
नील सर में नाव की नीली लहर
खोजती है पार का तट रात भर (नीरज)

बूंदों की तकदीर थी गई, ये कैसी जल भरी घटाएँ।
कोकिल का संगीत डस लिया, कलियाँ हैं या विषकन्याएँ।

आँख में काजल लगाए चाँद जिसको
तारकों के गाँव घर घर खोजता है —(त्यागी)

यह प्रक्रिया जड़ को चेतना और अमूर्त को मूर्त करने की कल्पना-शक्ति पर आधारित है। छायावाद जैसी प्रौढ़ता अभी गीतकारों में नहीं है परन्तु उनमें 'शक्ति' है और उसका विकास हो रहा है। दूसरे नवीनता के नाम पर व्यर्थ आपाधापी गीतिकारों में नहीं है। वे अनुभूति पर अधिक बल देते हैं, सामान्य अनुभूति पर [1] अप्रस्तुतों का नित नया अनुसंधान कल्पना के हाथों अपने को बेच देना है। इसका अर्थ यह नहीं कि उनमें परम्परागत उपमान ही हैं। परन्तु "नवीन" की उनकी अनुचित भरमार नहीं है।

"शब्दस्वर वाला दुराहा, सिसकती शाम सा गमगीन, अपूजितमूर्ति सा चुपचाप, फागुन की आँखों में सावन, (वीरेन्द्र मिश्र), खारे सागर से यमुना की

भाँवर, चहकती डयौढी जैसे कोई बनजारा लुट जाए ऐसा खोया-खोया है मन, पतझर की सूखी अलकें, आवारा बादल, सभ्य सितारे, (त्यागी) कोयले की खान की मजदूरिनी सी साव परकीया सी सडक गीले इधन से सुलगते प्राण (नलिन) बालविधवा सी बरसती आख (सरोज)।

इस प्रकार के अनेक नए उपमान गीतो म मिलते हैं परन्तु नए उपमानों के लिए गीत नहीं लिख जाते। कोरा अप्रस्तुत विधान चमत्कारवाद है। जहाँ अलकार अनुभूति को व्यक्त करने के लिए सहायक नही बनता अथवा अनुभूति से ध्यान हटकर वहा अप्रस्तुतो की चकाचौंध म मन फँस जाता है वहाँ उच्चकोटि का काव्य नही माना जा सकता। चित्रण-शक्ति का चमत्कार वस्तु व्यजना मे स्वतत्र रूप अवश्य धारणा कर लेता है किन्तु वहा भी वण्यवस्तु के गुण कम द्रव्य आदि से ध्यान अधिक नही हटना चाहिए। अत गीतकारा मे कल्पना वैभव कम मिलता है भाव-वैभव अधिक है। कल्पना भाव की सहायक रूप मे ही गीता म दिखाई पडती है।

प्रकृति कल्पना के नेत्रा से देखने पर ही सुन्दर दिखाइ पडती है अन्यथा वह जड और नीरस रहती है। कल्पना ही जीवन और प्रकृति की खाई को भरती है। गीतो मे प्रकृति न तो कवि के लिए शरणस्थली है न प्रकृति पुरुष (ब्रह्म) के दशन का माध्यम है जैसा कि छायावाद मे होता था। प्रकृति प्ररणा का स्रोत सौदय का आधार और प्रम की परिधि के अतिम छोर सी प्रतीत होती है। सुमन ने प्रकृति का प्रिया पर सुन्दर आरोप किया हैं काश ! ऐसी रचनाए और अधिक होती—

> शरद सी तुम कर रही होगी कही शृगार।
> कास सी मेरी व्यथा बिखरी चतुर्दिक
> बाढ सा उमडा हृदयगत प्यार।
> आ रही होगी उडाती नील-अचल
> लोल लहरो का प्रशात प्रसार
> देखने को नयन-खजन विकल चचल
> वक्ष की धडकन उभार-उतार !
> कब ढलेगी दूधिया मुस्कान गगानीर !
>
> (पर आँखें नही भरीं)

प्रकृति मे मन का प्रतिबिम्ब—

> तुम प्रतीची के पगा म चू पडा निष्प्राण फल सा पीत दिनकर।
> जड तुहिन-पु जित सघन तड़ित कुहासा रेंगता आता भयकर

तारिकाएँ चकित, बीहड में भ्रमित मन, कल्पना का पथ सकुल !
दबे कठ कठोर तम की चुटकियो मे, चीखता व्याकुल कराकुल !
छटपटाता मुक्ति का सघर्ष, पर बेकार !
उतर आयी सांझ, तम के मौन पख पसार ! (नलिन)

नीरज ने प्रचलित प्रतीकों को ही प्रकृति से चुना है, दीपक, शलभ भ्रमर आदि। उर्दू का भी यह प्रभाव है। हम पीछे दिखा चुके हैं कि उर्दू का कवि कतिपय प्रतीकों द्वारा ही गहन अनुभूतियो को व्यक्त कर लेता है। अत "कांपता तल थरथराती लौ रही" जैसी प्रचलित पक्तियाँ ही नीरज मे अधिक हैं, मानवीकरण से कुछ वैचिच्य अवश्य उत्पन्न कर दिया गया है।

प्रकृति : अभिव्यक्ति का माध्यम—सूर्य पी रहा समुद्र की उमर
और चांद बूँद-बूँद हो रहा।
बूँद गोद मे लिए अँगार है।
ओठ पर अँगार के बहार है !
सूर्य उठाए हुए चांद की अर्थी निज कन्धो पर।
और कली के सम्मुख उपवन का कंकाल पडा है !

नीरज मे पिष्टपेषण अधिक मिलता है, मुरझाए हुए प्रकृति के उपकरणो का प्रयोग गीत को 'हलका' कर देता है—

अगार अधर पर धर मैं मुस्कया हूँ।
मैं मरघट से जिन्दगी बुला लाया हूँ।
अथवा
बन्द मेरी पुतलियो मे रात है।
हास बन बिखरा अधर पर प्रात है।
जिन्दगी का नाम ही बरसात है।

नीरज इसी 'नक़ल' से इधर कुछ अप्रिय होने जा रहे हैं, उनमें *ताजगी* की जगह 'बासी' उक्तियो और "बासी प्रकृति चित्रण" बहुत मिलते हैं।

'त्यागी' मे भी प्रकृति का स्वतन्त्र स्वरूप नही है, 'प्रेम' का वह माध्यम भर है, अपने मन को मूर्तित करने का सहारा मात्र—

जो समुन्दर की सतह पर तैरती है बाल खोले—
अब उसी बागी लहर के हाथ का कगन बनूँगा।
बिजलियो की बेरहम चेतावनी पर
मुस्करा भर दूँ, अगर, वे रो पड़ेंगे

क्योंकि सौन्दर्य-दर्शन हमारी प्रवृत्तियों के परिष्कार की एकमात्र औषधि है मानवता मे जो अपरिपक्वता और पंकिलता रहती है उसका शोधन सौन्दर्य ही करता है।

अभिव्यक्ति कुशलता पर प्रगतिवाद के बाद बहुत बल दिया गया है। प्रगतिवाद मे सरलता की झोंक मे काव्य प्रकृति वर्णन के क्षेत्र मे वस्तुपरिगणन भावों के वर्णन म छिछला भावोद्गार और विचारों के वमन मे पद्यबद्ध समाचारपत्रीयत्व से संयुक्त होने लगा था अत दोस्तों और दुश्मनों दोनों ने प्रगतिवाद की इस कमी पर प्रहार किए। फलत उक्ति को आकर्षक बनाने पर बल दिया जाने लगा। अश्क के चांदनी रात और अजगर मे यह प्रवृत्ति स्पष्ट दिखाई पड़ती है कि कवि कथन प्रणाली को आकर्षक बनाने मे दत्तचित्त है। भाव अपने मे मनोविज्ञान का विषय है और विचार शास्त्र का विषय है किन्तु जब ये काव्य बनते हैं तब इन्हे आकर्षक उक्ति का माध्यम स्वीकार करना पड़ता है अन्यथा उनकी सत्ता काव्य न होकर मनोविज्ञान या दर्शन होगी। इसीलिए हमारे यहाँ विशिष्ट उक्ति को ही काव्य कहा गया था। प्रत्येक उक्ति यदि काव्य होगी तो हे राजा! घृतसूप समन्वित भोजन दो इसे भी काव्य मान लिया गया होता।

गीतकारों का ध्यान इसीलिए इधर उक्तिकौशल पर अधिक दिखाई पड़ता है सीधा भावोद्गार अब पसन्द नहीं किया जाता। प्रगल्भता' का इसी कारण त्यागी मे अधिक विकास दिखाई पड़ता है। नीरज मे प्रगल्भता की मात्रा पर्याप्त है। नलिन मे रस और व्यंग्य तो है परन्तु लाक्षणिक वैचित्र्य कम है अत धरती के बोल चर्चा का विषय नहीं बन सका। डा० कमलेश कविसम्मेलनों मे खूब पढ़ते है परन्तु वह पीछे पड गए हैं क्योंकि उनमे विदग्धता का अभाव है। भावोद्गार मात्र को इधर कम महत्त्व मिल रहा है। अभिधा' आउट आफ डेट होती जा रही है। द्विवेदीयुग के अनेक कवि अभी जीवित है हरीशंकर शर्मा की कविताएँ अब क्यों पिछड़ी हुई मानी जाती हैं? क्योंकि इनमे वैदग्ध्य नहीं है नई कल्पना और नया अप्रस्तुत विधान नहीं है। यह हर कवि जानता है कि साहित्य बिक्री की वस्तु बन गया है किन्तु गीत फरोश शीर्षक कविता मे भवानी० मिश्र ने जिस ढंग से व्यंग किया है उस ढंग से अन्य कोई कवि प्रस्तुत नहीं कर सका अत गीत फरोश हिन्दी संसार मे बहुत आदृत हुई यदि इसमे सीधा उद्गार होता या कोरी हुंकार होती तब यह प्रभाव न रह पाता।

कतिपय गीतकारो ने इसके लिए पुरानी व्यजना न अपनाकर उर्दू की वक्रोक्ति अधिक अपनाई है। नीरज पर इसका सबसे अधिक प्रभाव है परन्तु त्यागी और राही की जोडी पर भी इसका प्रभाव स्पष्ट है किन्तु हर जगह मौलिकता की रक्षा नही की जा सकी न पिष्टपेषण से बचा जा सका है यद्यपि बहुत स्थानो पर मौलिक विदग्धता भी है—

सम्भावना की विलक्षणता—

आने पर मेरे बिजली सी कौंधी सिर्फ तुम्हारे दृग मे—
लगता है जाने पर मेरे सब से अधिक तुम्ही रोओगे !
मैं आया तो चारण जैसा गाने लगा तुम्हारे आँगन !
हसता द्वार चहकती डयोढी तुम चुपचाप खडे किस कारण !
मुझको द्वारे तक पहुचाने सब तो आए तुम्ही न आए !
लगता है एकाकी पथ पर मेरे साथ तुम्ही होओगे !

यहा उक्ति का चमत्कार विरोध पर आधारित किया गया है। यह विरोध त्यागी का अपना अस्त्र है।

सिन्धु को घर खीच लाओ तृप्ति को दासी बनाओ !
किन्तु ये घर से नयन बिकते नही हैं।

यहा भी सिन्धु और बिन्दु मे विरोध देखकर ही आसुओ को समुद्र के सम्मुख खडा किया गया है।

इसी तरह कचनकलश और खारे आँसू यज्ञ और गीत शोर मचाने वाली आधी और मौन बने तूफान शूल और मुस्कान उम्र और जहर जीवन की धूल और जन्मदिन सूरज की अगवानी मे मग्न ससार और बुझते दीपक के सिरहाने बैठा कवि आदि परस्पर विरोधी वस्तुओ तथ्यो धारणाओ प्रतीको अथवा भावनाओ को सम्मुख लाकर कवि चमत्कृत करना चाहता है। अपनी सवेदना की सच्चाई के कारण वह अपने कार्य मे सफल होता है।

राही मे यह कौशल उस मात्रा मे नही है अत कही कही वह सनीमा के स्तर पर उतरते प्रतीत होते हैं —

गाऊ जब तक गीत मीत तुम जगते रहना !
इसके बाद अभिधा मे तथ्यो का कथन—
तुम मूदोगे पलक तमिस्रा घिर आएगी।
गीतो के चन्दा पर बिजली घिर आएगी !

इस शैली से गीत शिथिल लगने लगता है। अतः 'राही' में अभी बचपना बना हुआ है। वीरेन्द्र मे भी यही प्रवृत्ति है। वीरेन्द्र समग्रत 'कठकवि' हैं अत उनके मुख से जो गीत प्रिय लगते हैं, वही पढने मे हलके लगते हैं। प्रेरणा भरने के लिए सीधा मार्ग उपदेशक का होता है, कवि का नहीं—

तू सिसकती शाम सा गमगीन है
आ तुझे खिलती किरन तक ले चलूं
गीत के रूपम गगन तक ले चलूं।
स्वप्न तेरे उड गए आकाश से
तू पुजा तो आंसुओ के हार से

एकदम पिष्टपेष्टित उक्ति है। इसी तरह "आज मुझसे कहा गीत ने, मन किसी रूप का जीतने मौज से हार जा" अथवा "तुम्हारे प्यार की देहली बुलाती है मुझे, इसी से मैं तुम्हारे द्वार आया करता हूँ" आदि पंक्तियाँ बेदम प्रतीत होती हैं। नीरज उर्दू वालो के पगचिन्हो पर चलते हैं और कभी कभी चुपचाप उर्दू कवियो का अनुकरण भी कर डालते हैं अन वैलक्षण्य का निर्वाह उनमे अधिक है—

जो उठे शायद शलभ इस आस मे, रात भर रो रो दिया जलता रहा।
रूप की इस कांपती लौ के तले, यह हमारा प्यार कितने दिन चलेगा।
मत करो प्रिय! रूप का अभिमान, कब्र है धरती, कफन है आस्मान!

नीरज की लम्बी रचनाओ मे, यथा नील की बेटी के नाम, कानपुर के नाम, पाकिस्तान के नाम आदि रचनाओ मे भी मौलिकता और मार्मिकता दिखाई पडती है। नीरज की उर्दू की हमजोली हिन्दी को न पढकर उर्दू ही पढ लेंगे, ऐसी इच्छा बार-बार मन मे उठती है। वस्तुत दोनो शैलियो का अपना-अपना आनन्द है, अपनी-अपनी सुगधि और कला। इसीलिए ही नीरज की रुबाइयां सफल नहीं हो सकीं और आचार्य कमलेश की रुबाइयां प्रभावित कम करती हैं मनोरजन अधिक करती हैं। "स्ट्राइकिंग" और अप्रत्याशित गिरान से युक्त अतिम पक्ति के बिना रुबाई कामयाब हो नहीं सकती।

नवकवियो की सूची विस्तृत है, यहाँ कतिपय गीतकारो पर ही विचार किया गया है किन्तु इससे गीतकारो की सामान्य उपलब्धि और कमियो का एक अन्दाज हो सकता है। नवीनतम गीतकारो मे जगत्प्रकाश चतुर्वेदी, देवेन्द्रशर्मा इन्द्र, त्रिलोकीप्रसाद शर्मा, कुन्दन, बृजेन्द्र राकेश, सच्चिदानन्द

तिवारी, गोपेश, क्षेम, सुधा, रसाल, शांति, पद्मा सुधि, कैलाश बाजपेयी, पाषाण, सुरेश अवस्थी, कीर्ति चौधरी, रामकुमार चतुर्वेदी, शेष, सोम आदि गीतकार और कवि गीतो मे भी नए-नए प्रयोग कर रहे हैं। पुराने गीतकारो मे हसकुमार तिवारी, माखनलाल चतुर्वेदी, जानकीवल्लभ शास्त्री, गगाप्रसाद पाडेय, बलबीर सिंह रग, सुमन आदि अब भी सक्रिय हैं। अचल और बच्चन तो नवगीतकारो से भी अधिक कार्यरत दिखाई पड़ते हैं।

इस प्रकार गीतकारो की एक अच्छी टोली हिन्दी मे कार्य कर रही है। आज काव्य जब एक वर्ग द्वारा अधिक गद्यमय और विचार-बोझिल बनाया जा रहा है तब गीतकारो द्वारा प्रसाद, माधुर्य, सगीत और छन्द की रक्षा करना एक महत्त्वपूर्ण कार्य लगता है। कवियो मे विचार तत्त्व की दृष्टि से स्वच्छन्दतावाद और मानवतावाद के स्वर इतने अधिक प्रबल हैं कि 'प्रेम' के मधुर अनुभव वर्णनो द्वारा ये कवि 'तुमुल कोलाहल' मे हृदय की बात कहते प्रतीत होते हैं, और साथ ही समाज की विषमता के भी ये विकट विरोधी हैं अर्थात् क्रान्ति के जय-घोष और मधुर प्रेम के कोमल पक्ष के उद्घाटन द्वारा ये गीतकार हिन्दी की जनवादी परम्परा का भार सँभाले हुए हैं। भाषा सरल होने और दूसरो के मन की बात कहने के कारण ये गीत-कवि अधिक जनप्रिय हैं। इनका भयकर विरोध केवल प्रयोगवादी कर रहे है क्योकि इनकी जनप्रियता उन्हे खटकती है। कवि सम्मेलनो और कवि गोष्ठियो द्वारा गीतकारो ने हिन्दी के प्रचार मे अत्यधिक योग दिया है। बहुत से केवल कण्ठ कवि ही हैं, वे सीख रहे हैं, बहुत से कवि सम्मेलनो के लिए 'पौप्युलर' गीत लिखकर प्रौढ गीत और कविताएँ भी लिखते हैं। कुछ गीतकार कवि सम्मेलनो के पेशेवर कवि नही बनना चाहते। उनके गीत केवल प्रकाशित ही होते हैं किन्तु इससे उन्हें अपना एक स्तर सुरक्षित रखने मे सुविधा भी रही है। कवि सम्मेलनो मे उर्दू की नक्ल बहुत होने लगी हैं, यहाँ तक कि कवि सम्मेलनो मे 'मयखाना' और 'साकी' के बिना अब काम नही चलता दीखता। हिन्दी के नवयुवक कवियो की इस प्रवृत्ति से हिन्दी बदनाम होगी, वैसे ही चारो ओर से उस पर प्रहार हो रहे हैं अत छायावादियो ने जैसे अपना स्तर कायम किया था, वैसे ही गीतकार को नैतिकता और साहित्यकता के स्तर से पतित नही होना चाहिए। इसके सिवा 'गीतिकार' का अध्ययन प्राय पिछडा हुआ माना जाता है। यह धारणा कुछ गलत भी है परन्तु इस आरोप मे सत्य का अश भी है। स्वच्छन्दतावादी कवि शेली, बायरन, गेटे, प्रसाद, रवीन्द्रनाथ आदि कवियो का अध्ययन कितना गभीर था। तभी वे मनुष्य की मूल समस्याओ

का समाधान अपने काव्य द्वारा कर सके। जो दृष्टि आपकी है, जो रुचि आपकी है, उसके अलावा भी बहुत सी दृष्टियाँ और रुचियाँ हैं, इन सबसे परिचय होने पर ही अपनी दृष्टि का विस्तार होगा और रुचि का परिष्कार।

यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है समग्रत: हिन्दी का नया गीत-काव्य केवल प्रगति के पथ पर ही नहीं है, वह एक मजिल पूरी भी कर चुका है। इन यात्रियों मे अभी कोई 'प्रसाद', 'निराला' या 'रवीन्द्र' नहीं दिखाई पडता परन्तु परिमाण से ही गुण का विकास होता है, इन शत शत सहयात्रियो मे बहुत से 'प्रसाद' छिपे होंगे, ऐसी आशा प्रकट करने मे कोई आत्मप्रवचना नहीं प्रतीत होती।

षष्ठ प्रवाह

प्रयोगवाद

समाज को बदलने के लिए जिस प्रकार समाजवादी शक्तियां संघर्ष कर रही हैं उसी प्रकार आज साहित्य मे प्रगतिवाद संघर्ष कर रहा है। समाजवादियों मे अनेक भेद हैं किन्तु इनमे वैज्ञानिक समाजवाद केवल साम्यवाद को माना जाता है। समाजवादी जनतन्त्र मे विकास करते हैं अनेक राजनतिक दलों की आवश्यकता मानते हैं और ससद व्यवस्था को अधिक आवश्यक मानते हैं। साम्यवादी देशो मे एक ही राजनतिक दल है और सर्वहारा की तानाशाही वहां स्थापित है। समाजवादी दल जसे लोहियापार्टी व पी० एस० पी० इसे वैयक्तिक स्वतन्त्रता का हनन कहते हैं क्योंकि एक दल के द्वारा जनता की आवाज दब जाती है। साम्यवादी भी सामजिक क्रान्ति के लिए जनतान्त्रिक व्यवस्था को स्वीकार करते हैं। भारतीय साम्यवादी दल अब वैधानिक तरीकों से ही क्रान्ति को सम्भव मानता है। यशपाल के नवीनतम उपन्यास 'झूठा और सच' मे यही विचार अव्यक्त हुआ है। किन्तु 'साधना के सम्बन्ध मे मतभेद होने पर भी सभी समाजवादी यह मानते हैं कि वर्ग रहित समाज के निर्माण के लिए निजी पूंजी पर जनता का अधिकार होना चाहिए। प्रतियोगिता के स्थान पर सहयोग के आधार पर उत्पादन-व्यवस्था आधारित होनी चाहिए। हमारी राष्ट्रीय सरकार ने भी लक्ष्य के रूप मे समाजवादी व्यस्था को ही स्वीकार किया है। साधना के सम्बन्ध म मतभद अवश्य है परन्तु लक्ष्य के विषय मे कोई मतभद नही है।

इसके विरुद्ध राजनीति म पूंजीवादी चिन्तन भी चल रहा है जो प्रतियोगिता को ही विकास का आधार मानत हैं। ऐसे लोग समाज म परिवर्तन के हामी न होकर व्यक्तिगत आज़ादी पर अधिक बल दत है।

ये समाज में एक राजनैतिक दल को स्वतन्त्रता का नाशक मानते हैं किन्तु समाज पर कतिपय व्यक्तियों का आर्थिक सर्वाधिकार का समर्थन करते हैं यद्यपि उसे स्पष्ट कहते नहीं हैं। अमेरिका का फ्रीइण्टर प्राइज' या स्वच्छन्द उत्पादन और उद्योग का सिद्धान्त इन्हें अधिक पसन्द है फलत रूस और चीन आदि साम्यवादी देशों की प्रत्येक बात से ये लोग घृणा करते हैं। साहित्य में यही प्रवृत्ति प्रयोगवाद के रूप में प्रचलित हुई जो प्रगतिवादी मान्यताओं के विरुद्ध मान्यताओं और मानव-मूल्यों का प्रचार कर रही है। जिस प्रकार प्रगतिवादियों में कुछ उग्रवामपंथी कुछ जनतन्त्रवादी कुछ मध्यम मार्गमतावलम्बी हैं उसी तरह प्रयोगवादियों में भी कुछ साम्यवाद और समाजवाद के चरम शत्रु हैं कुछ नरम नीति अपनाते हैं और कुछ योरोप के उन कवियों और विचारकों के अनुगामी हैं जो समाजवाद विरोधी हैं जैसे इलियट जीनपाल सार्त्र आदि। किन्तु यह स्मरणीय है कि प्रारम्भ में प्रयोगवाद एक साहित्यिक विधा (Form) अथवा रीति के रूप में ही प्रचलित हुआ था अत बहुत से प्रगतिवादी केवल विधा के अनुगमन-कर्ता बनकर सम्मुख आए ये भी प्रयोगवादी कहलाते हैं किन्तु ये केवल शैली की दृष्टि से ही प्रयोगवादी हैं विचार की दृष्टि से ये प्रगतिवादी हैं। सामान्य पाठक इस अन्तर को नहीं समझ पाता परन्तु विचारतत्त्व की दृष्टि से प्रगतिवादी प्रयोगवाद और प्रगतिवाद विरोधी प्रयोगवाद—ये दो रूप स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं।

सन १९४३ ई० में तार सप्तक के प्रकाशन से हिंदी में प्रयोगवाद का प्रारम्भ माना जाता है। अज्ञेय जी ने वस्तुत विधा के आधार पर विभिन्न विचारधाराओं के कवियों की नई शैली की कविताओं को तारसप्तक' में संकलित किया था। इन कवियों में डा० रामविलास शर्मा नेमिचन्द जैन भारतभूषण अग्रवाल और गजानन मुक्तिबोध जैसे प्रगतिवादी विचारक भी थे। प्रभाकर माचवे भी तब साम्यवाद से प्रभावित थे और गिरिजाकुमार माथुर साम्यवाद के विरोधी नहीं थे प्रगतिशील थे। इन समाजवादियों को भी प्रयोगवादी केवल शैली के कारण ही कहा जाना चाहिए वस्तुत इनकी रचनाएं प्रगतिवादी प्रयोगवाद के अंतर्गत प्रतिष्ठित की जानी चाहिए।

अज्ञेय ने तारसप्तक की भूमिका में कहा था और उसे द्वितीय सप्तक की भूमिका में दुहराया भी कि प्रयोगवाद कोई वाद नहीं है। किन्तु प्रयोगवाद वस्तुत वाद के रूप में प्रचलित हो गया और प्रारम्भ में अज्ञेय

की भूमिकाओ तथा कविताओ मे समाजवाद-विरोधी विचारधारा तथा बाद मे इलाहाबाद के कवियो द्वारा समाजवाद-विरोधी विचारधारा से 'प्रयोगवाद' वस्तुत एक 'वाद' के रूप मे प्रचलित हुआ। "नयी कविता के प्रतिमान" जैसी पुस्तको, स्फुट लेखो, 'नयी कविता' की भूमिकाओ तथा कवियो की घोषणाओ मे प्रगतिवाद-विरोधी जीवन-दृष्टि का रूप स्पष्ट हो गया। "नँए मानव मूल्य," 'अधिकार और दायित्व," आदि पर "आलोचना" नामक मासिक-पत्र मे प्रकाशित लेखो (तब, जब 'आलोचना' के सम्पादक धर्मवीर भारती, 'साही' जगदीश गुप्त आदि थे) तथा निकष' जैसे "सकलनो" मे प्रकाशित रचनाओ द्वारा भी प्रयोगवादी सिद्धान्त सम्मुख आए—जीवन, जगत् के प्रति तथाकथित इस 'नये' दृष्टिकोण से हिन्दी मे 'प्रयोगवाद' स्पष्ट हुआ।

'वाद' का अर्थ सिद्धान्त-विशेष है। समाज और जगत् के प्रति सिद्धान्त की विशिष्टता के कारण 'वाद' शब्द का प्रयोग किया जाता है। यद्यपि 'प्रयोगवाद' के पास गम्भीर जीवन दर्शन नही है, वह 'प्रगतिवाद' या 'अध्यात्मवाद' की तरह सभी तत्वो (Phenomena) की व्याख्या नही कर सकता परन्तु फिर भी प्रयोगवाद की कुछ मान्यताएँ हैं, जिन पर विचार आवश्यक है क्योकि 'काव्य' का यही "वर्ण्य तत्व" है।

यहाँ यह कह रखना आवश्यक है कि नलिन विलोचन शर्मा, केसरी-कुमार और नरेश ने अपने नामो के आदि अक्षर को लेकर "नकेनवाद" चलाया, यह वस्तुत केवल शैलीगत 'वाद' था और शैली मे भी परम्परा का पूर्ण बहिष्कार चाहता था अत इन तीन कवियो के साथ ही, यह 'वाद' सम्बद्ध है, हिन्दी मे इसका प्रचार नही हो सका। प्रत्येक शब्द प्रयोग मे नवीनता लाना ही इसका लक्ष्य था। अत 'नकेनवाद' की वैचारिक पृष्ठभूमि प्रस्तुत करने की यहाँ आवश्यकता नही है।

प्रयोगवादी विचारधारा—हम कह चुके हैं कि हिन्दी-काव्य-सृजन मुख्यत नए युग मे निम्नमध्यवर्ग अथवा मध्यवर्ग के शिक्षित व्यक्तियो द्वारा हुआ है। सन् ३६ के बाद प्रगतिवादी विचारधारा के साथ तादात्म्य करने वाले कवि 'प्रगतिवाद' का पथ अपना कर चले। और प्रारम्भ मे प्रगतिवाद से प्रभावित होने वाले किन्तु उसके साथ तादात्म्य न कर सकने वाले कतिपय नवयुवक क्रमश इसके विरोधी होते गए। प्रारम्भ मे प्रगतिवाद को परम्परा-वादियो का विरोध सहन करना पडा और बाद मे प्रयोगवादियो का। प्रयोग-वादियो ने असतुलित और अपरिपक्व चिंतन के परिणामस्वरूप आज परम्परावादी

और प्रगतिवादी दोनो उसका विरोध कर रहे हैं। और यह विरोध शैली का विरोध नहीं है मान्यताओ का विरोध है। शैली का विरोध इस देश मे कभी भी नही चल सका। कवियो के स्वभाव के अनुसार अनेक रीतिया हो सकती हैं इसका निर्णय कुन्तक के समय मे ही हो चुका था—

'कविस्वभाव भेद निबन्धनत्वेन काव्यप्रस्थानभेद समञ्जसता गाहते

किन्तु काव्य केवल रीति मात्र नही है उसमे कवि के दृष्टिकोण का महत्वपूर्ण स्थान है। विवेक भाव का लक्ष्य निर्धारित करता है अत विवेक युगधर्म के विपरीत होने पर उच्चकोटि के काव्य का शत्रु साबित होता है। विवेक भाव की सृष्टि भी करता है यह भी स्मरणीय है।

चिन्तन का विकास—प्रभाकर माचवे के अनुसार छायावाद आत्मरति मृत्यु प्रेम और स्वप्नपूर्ति से ग्रस्त था। और प्रगतिवाद प्रदर्शन प्रियता औद्धत्य परपीडन प्रेम और प्रचारवाद से।

हम देख चुके हैं कि यह आरोप अंशत ही सत्य है अत इस पर हम विचार नही करना चाहते।

'माचवे के विचार केवल काव्य से सम्बन्धित हैं इसी प्रकार अज्ञेय के विचार तारसप्तक मे केवल काव्य से ही सम्बन्धित हैं —

(१) कवि की सबसे बडी समस्या है काव्य विषय की सामाजिक उत्तरदायित्व की सवेदना के पुन सस्कार की।

(२) मुख्य समस्या है साधारणीकरण की और कवि की प्रयोगशीलता की ओर प्रेरित करने वाली सबसे बडी शक्ति यही है।

(३) प्रयोगवादी शब्दो के साधारण अर्थ मे बडा अर्थ भरना चाहता है।

(४) नए क्षत्रो का अन्वेषण करना चाहिए।

(५) प्रयोगवादी भाषा को अपर्याप्त मानकर विराम सकेतो से सीधी तिरछी लकीरो से छोटे बडे टायप से सीधे या उलटे अर्थों से लोगो और स्थानो के नामो से अधूरे वाक्यो से उलझी हुई सवेदना की सृष्टि को पाठको तक अक्षुण्ण पहुँचाना है।

(६) साधारणीकरण की प्रणालिया कम कर रुद्ध हो गई हैं।

(७) जो व्यक्ति का अनुभूत है उसे समष्टि तक कसे पहुचाया जाय यही पहली समस्या है जो प्रयोगशीलता को ललकारती है।

यहाँ सामाजिक दायित्व शब्द को छोडकर शेष सब अभिव्यक्ति के विषय मे ही कहा गया है। नए प्रयोगो का सभी स्वागत करेंगे प्राचीन शलियो का ही अनुकरण किया जाय यह कौन कहेगा किन्तु उक्त तर्कों मे न० ५ महत्वपूण है। इसने हिन्दी मे घोर असतुलन को जन्म दिया है। सवेदना कभी-कभी उलझी हुई भी होती है परस्पर विरोधी विचारो की टकराहट हम सब महसूस करते हैं कभी-कभी एक अस्पष्ट अनुभूति प्रवाह भी चलता है उसे यथावत प्रस्तुत करने मे आडी तिरछी लकीरो आदि से शायद सहायता मिल जाए ऐसी आशा भी हो सकती है परन्तु इस न० ५ का इतना अधिक दुरुपयोग हुआ कि कविता करना बहुत सहज सा होगया। जो कुछ मन मे आय उसे उलटा सीधा मोटा पतला लिख देना ही कविता कहलाने लगा। अज्ञय जी इससे इन्कार नही कर सकते। दूसरे सुलझी हुई सवेदना को व्यक्त करना प्राचीनतावाद माना जाने लगा। ऐसा लगने लगा कि स्पष्ट चिन्तन करने की शक्ति रखनेवाला कवि ही नहीं हो सकता।

साधारणीकरण पर हम आगे विचार करेंगे।

किन्तु अज्ञय की विचारधारा मे स्पष्ट प्रगतिविरोधी तत्त्व प्रारम्भ से ही थे। तारसप्तक म उन्होने फ्रायडवाद' का ही हिन्दी में अनुवाद किया है यो उसमे थोडा सा प्रगतिवाद भी मिला हुआ है। उनके अनुसार आज का व्यक्ति यौन वजनाओ का पुञ्ज है। मानव का मन यौन-कल्पनाओ से लदा हुआ है। इस आतरिक सघष के ऊपर एक वाह्य सघष भी बठा है व्यक्ति और श्रेणियो का सघष ! आज उसकी अनुभूतियाँ तीव्रतर हैं तो वजनाएँ कठोरतर हैं परिणाम है *व्यजनाभीरु नेत्रो का विस्फार जो अश्लील इसलिए* है कि भावनाओ और वजनाओ के सघष को सहसा सामने लाता है और प्रम एक थका माँदा पक्षी जो साँझ फिरती देख आनन्द भी भरता है और साहस सचित कर लडता भी जा रहा है।[१]

---

१ वजनाग्रस्त काव्य का उदाहरण—

फिर गया नभ, उमड आए मेघ काले
भूमि के कम्पित, उरोजों पर झुका सा
विशद, चिरातुर
छागया इन्द्र का नील वृक्ष
वज्र सा यदि तडित से झुलसा हुआ तन।

छायावाद भी वजना के विरुद्ध विद्रोह था किन्तु तब शायद कवियो की सवेदना उलझी हुई नही थी। अज्ञय जो स्पष्टत फ्राइड और मार्क्स को मिलाकर देखने का प्रयत्न सन ४३ मे कर रहे थे अत जो इस 'समन्वय' को पैवदक मानते थे उनकी सवेदनाएँ नही उलझी। जो फ्राइड से ऊपर उठकर भारतीय योगदर्शन की ओर दौड उन अरविन्द और पत की सवेदनाओ मे भी वजना नही मिली परन्तु स्वय अज्ञय मे सवेदनाएँ अवश्य उलझी हुई मिलती हैं। अज्ञय ने सवदा अपने मन की स्थिति का साधारणीकरण करके उसे ही युगसत्य घोषित किया है।

जिस प्रकार फ्रायड के प्रभाव से फ्रायड के विश्लेषण को मन मे भर कर पात्रो की कल्पनाए की गईं उसी तरह कविता मे उलझी हुई सवेदना के नारे ने स्पष्ट चितन को अयोग्यता और अनुभूतिहीनता सिद्ध करना शुरू कर दिया। फलत हिन्दी-कविता मे विशिष्ट मानसिक स्थितियो को ही आडी सीधी रेखाओ के साथ व्यक्त किया जाने लगा। यह भुला दिया गया कि सवेदना के सुलझे क्षणो को भी व्यक्त करते चलना चाहिए अत जो विशिष्ट कविता बनी मुलझ हुए लोगो को वह उतनी पसन्द नही आई जितनी उन्हे कालिदास शक्सपियर तुलसी सूर और प्रसाद आदि की कविता पसन्द आती थी फलत इनको आधुनिकता से रहित पुराणपथी घोषित कर दिया गया।

हिन्दी मे इस असतुलन की घोर निन्दा हुई। फलत अज्ञय ने प्रतिवादियो की शकाओ के उत्तर द्वितीय सप्तक की भूमिका मे दिए हैं। ऊपर की विवेचना से स्पष्ट है कि अज्ञय स्पष्टत प्रतिक्रियावादी स्वरो का समथन सन १९४३ मे ही करने लगे थे। वह प्रगतिवाद विरोधी योरोपीय लेखको से भी प्रभावित थे।

द्वितीय सप्तक के तर्क—अज्ञय की भूमिका के तक इस प्रकार हैं—

(१) प्रयोग कोइ वाद नही है। वह साधना है अपने आप मे इष्ट नही। प्रयोग निरन्तर होते आए हैं।

(२) प्रयोगवादी साधारणीकरण को नही मानते यह गलत है किन्तु जैसे-जैसे बाह्य वास्तविकता बदलती है, वैसे-वसे हमारे उससे रागात्मक सम्बन्ध जोडने की प्रणालियाँ भी बदलती हैं और अगर नही बदलती तो उस बाह्य वास्तविकता से हमारा सम्बन्ध टूट जाता है। साधारणीकरण की इसलिए नई समस्याएँ पैदा हो गई हैं। प्राचीन काल में ज्ञान का क्षेत्र सीमित था साधारणीकरण की समस्या दूसरे प्रकार की थी। अब ऐसी कोई भाषा नही है

जिसे सब समझते हो, सब बोलते हो, ऐसी स्थिति मे जो कवि एक क्षेत्र का सीमित सत्य, उसी क्षेत्र मे नही, उससे बाहर अभिव्यक्त करना चाहता है, उसके सामने बडी समस्या है। "शब्द का जब चमत्कारिक अर्थ मर जाता है (यथा 'गुलाबी' शब्द कभी चमत्कारक रहा होगा, अब वह अभिधेय मात्र रह गया है) तब उस शब्द कभी रागोत्तेजक शक्ति भी क्षीण हो जाती है। उस अर्थ से रागात्मक सम्बन्ध स्थापित नही होता। कवि तब उस अर्थ की प्रतिपत्ति करता है जिससे पुन राग का सचार हो, पुन रागात्मक सम्बन्ध स्थापित हो, साधारणीकरण का अर्थ भी यही है।

अज्ञेय ने यहाँ भी 'कथ्य' की नवीनता पर नही लिखा अपितु साधारणीकरण पर लिखा है। 'द्वितीय सप्तक' में भी वह 'प्रयोग' को साधन मानते हैं। साधारणीकरण की आवाज़ प्रयोगवाद के विरुद्ध इसलिए उठी थी कि प्रयोगवादी रचनाओ मे दुरूहता थी। उनमे 'अर्थव्यक्ति' नामक 'गुण' का प्राय अभाव था। अज्ञेय ने इसके लिए कवियो को ध्यान देने के लिए न कहकर उस 'अस्पष्टता' और "अनर्थ-व्यक्ति" को चरितार्थ करना चाहा है। यह युग विशेषीकरण का अवश्य है, किन्तु 'चित्रकला' का उदाहरण 'काव्य' में नही चल सकता। अज्ञेय जी यह तो मानते ही हैं कि लोगो का ज्ञान अधिक बढा है अत साधारणीकरण की कठिनाई कम हो रही है। इसके बाद वह 'शब्दो' मे नया चमत्कारक अर्थ भरने को ही साधारणीकरण मान लेते हैं।

विश्वनाथ ने साधारणीकरण का अर्थ यह बताया है कि "जो सीता आदि आलम्बन विभाव और वनवास आदि उद्दीपन विभाव काव्यादि मे निबद्ध होते हैं, वे काव्यानुशीलन तथा नाटक दर्शन के समय श्रोता और द्रष्टाओ के साथ अपने को सम्बद्ध रूप से ही प्रकाशित करते हैं। यही साधारणीकरण है।" "साधारणीकरण या विभाजन व्यापार से उस समय प्रमाता अपने को समुद्र कूद जाने वाले हनुमानआदिको से अभिन्न समझने लगता है और अभेद-प्रतिपत्ति के कारण हनुमान की तरह सामाजिक को भी उत्साह होता है।"

कविकला के बल से विभावो का वर्णन इस प्रकार होता है कि विशिष्ट जन का 'भाव' सामाजिको को 'सामान्य' रूप मे प्रतीत होता है और उसका सभी आनन्द लेते हैं, साधारणीकरण यही है। अत अज्ञेय द्वारा 'साधारणीकरण' की व्याख्या गलत है। वह नवीन अवश्य है परन्तु प्रामाणिक नही है।

यह पुराने आचार्य भी कहते हैं कि पुनरावृत्ति होने से 'प्रयोग' रूढ

हो जाता है और उसका चमत्कार समाप्त हो जाता है। 'रूढ़-लक्षणा' को इसलिए महत्त्व नहीं मिला। नवनव अर्थशालिनी काव्य-प्रक्रिया की ही हमारे यहाँ प्रशंसा की गई है। 'नूतनरूपनिर्माण क्षमा" मानसिकशक्ति को ही 'प्रज्ञा' कहा गया है किन्तु 'भाव-वर्णन' करते समय यह बार-बार कहा गया है कि भाव विशेष अथवा अनुभूति विशेष में चित्तधारा को प्रवाहित करो, 'रससनाहितचित्तदशा' में नूतन रूपों या सादृश्यविधान को 'रस' का अंग बनाओ, अन्यथा पाठक या श्रोता का ध्यान मानसिक स्थिति से हटकर रूपों की नवीनता में ही ग्रस्त हो जायगा। 'माध्यम' की असली समस्या यही है। किन्तु अज्ञेय जी ने इस समस्या की उपेक्षा की है और अनुभूतिप्रवाह के स्थान पर 'अंग' मात्र नूतन-अप्रस्तुतविधान को ही सर्वाधिक महत्त्व दे दिया है। अतः हिन्दी में केवल अप्रस्तुत-विधान की नवीनता पर ही बल दिया जाने लगा है, 'वर्ण्यवस्तु' से ध्यान हटकर केवल रीति पर ही ध्यान केन्द्रित हो गया है।

अज्ञेय के विरोधियों ने 'साधारणीकरण' शब्द को सरलता के लिए भी प्रयुक्त किया था अर्थात् अधिक दुरूह, अस्पष्ट, अस्फुट काव्य सब नहीं समझ पाते अतः उसका आनन्द नहीं ले पाते। शिक्षित व्यक्ति भी प्रयोगवाद के अटपटेपन को महसूस करते हैं। इस बात को न समझ कर, "जो मेरी बात नहीं समझता, मैं उनके लिए नहीं लिखता"—यह नारा देना ग़लत है। कठिन से कठिन काव्य लिखा गया है किन्तु उसे सब समझ लेते हैं। श्रीहर्ष, केशव, प्रसाद, निराला, रवीन्द्र-सबको समझ लिया गया है तब यदि आपके काव्य में अस्फुटता न हो तो उसे समझने में क्या कठिनाई हो सकती है? सूक्ष्म से सूक्ष्म मानसिक स्थितियों को यदि 'स्फुट' आप नहीं कर सकते तो यह किसका दोष है?

अतएव अज्ञेय के काव्य-प्रक्रिया सम्बन्धी चिन्तन में दोष को गुण बताकर, उसे प्रमाणित करने का प्रयत्न अधिक है।

तृतीय सप्तक में अज्ञेय ने 'शिल्प' के सम्बन्ध में कुछ बातें कही हैं जिनमें एक बात अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। लगता है कि आलोचना का प्रभाव अज्ञेय पर पड़ा है और साधारणीकरण की वास्तविक समस्या पर द्वितीय सप्तक और तृतीय सप्तक के बीच की अवधि में उन्होंने विचार किया है—

"नये (या पुराने भी) विषय की, कवि की संवेदना पर प्रतिक्रिया, और उससे उत्पन्न सारे प्रभाव जो पाठक-श्रोता-ग्राहक पर पड़ते हैं और उन प्रभावों को सम्प्रेष्य बनाने में कवि का योग—मौलिकता की कसौटी का यही क्षेत्र है।"

यानी इधर सम्प्रेष्यता' पर अज्ञेय बल देने लगे हैं साधारणीकरण के समर्थकों की अज्ञय पर यह विजय है। अब वह आड़ी तिरछी लकीरो विराम चिह्नो आदि की उतनी चर्चा नही करते।

अज्ञय की भूमिकाओं में विचार धारा पर आग्रह नही प्रकट किया गया केवल रीति पर आग्रह प्रकट किया गया है। अज्ञय के बदलते हुए विचारो को यह देखकर यह आश्चर्य न होगा कि वह अचानक यह घोषणाकर उठें कि अब तक जो प्रयोगवाद ने किया है वह बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं है अब और कोई माध्यम खोजा जाय।

अज्ञय का विचारपक्ष उनकी कविताओं और निबन्धो में है अत हम अन्य प्रयोगवादियो के विचारपक्ष पर यहाँ विचार करते हैं।

अज्ञय से प्रभावित होकर जगदीश गुप्त ने नयी कविता के प्रथम अक में विशेषभावक वर्ग का नारा लगाया। हिन्दी-कविता की विकास की नई दिशाओं में न जाने कोन कवि विवेकशील प्रबुद्ध-चेता भावक को लक्ष्य करके अपनी बात कहता है। प्रयोगवादियो द्वारा सम्पादित आलोचना के सम्पादकीयो और तात्कालिक निबन्धो मे भी यही नारा दुहराया गया। अज्ञय ने सकेत से इन इलाहाबादियो को ही शायद नकारची कहा है।

डा० देवराज जो प्रगतिवाद के मानवमूल्यों के अग्रत समर्थक और अधिकाशत विरोधी हैं प्रयोगवाद की उक्त काव्य प्रक्रिया और काव्यसृजन के विषय मे कुछ दोष बतलाते हैं—

हिन्दी का प्रयोगवाद भी केवल युग से प्रभावित नही है—वह बहुत हद तक इलियट-पाउण्ड आदि की शैली के अनुकरण में उत्थित हुआ है। यह इसलिए कहना पडता है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारतीय कवि देश के निर्माण उसकी सृजनात्मक शक्तियो के पुनर्विकास के सशक्त स्वप्न भी देख सकते थे—नयी स्फूर्तिदायक जीवन दृष्टियो की परिकल्पनाएँ भी कर सकते थे। साम्प्रतिक प्रयोगवाद की तीन मुख्य कमियां हैं। एक कविगण नयी दृष्टि द्वारा नूतनता उत्पन्न न करके सिर्फ शब्दों तथा अलकारो की विलक्षणता द्वारा प्रभाव उत्पन्न करना चाहते हैं। हमारा अनुमान है कि किसी भी युग की सफल प्रयोगशील कविता सिर उठान उठान कर अपनी प्रयोगशीलता की घोषणा नहीं करती। किसी भी शैली की यथार्थ सफलता इस बात में है कि वह अपने को वक्तव्य की महत्ता म खो दे।

'प्रयोगवाद की दूसरी और ज्यादा बडी कमी जो प्रथम से सम्बद्ध है—कवियो मे व्यक्तित्व की कमी या अभाव। कवियो की साम्प्रदायिक जैसी दीखने वाली एक्ता, शैली अर्थात् मुहावरो चित्रो, लयविधान आदि की समानता जहाँ उन्हें सगठन का बल देती है, वहाँ उनके व्यक्तित्वो को अनिर्दिष्ट भी बना देती है।"

'तीसरे अधिकाश प्रयोगवादी कवियो की रचना म उस अनुशासन की कमी दिखाई पडती है जो विशिष्ट कविता या कृति को चुस्त सगठन एवम विशद ओज देता है। कम कवि इस बात को महसूस कर पाते हैं कि मुक्तछन्द लिखना छन्दबद्ध काव्यरचना से कही अधिक कडा अनुशासन माँगता है।"[1]

यदि यही बात कोई प्रगतिवादी कहता, तो वह प्रभाव नही होता जो डा० देवराज के कथन से होगा क्योकि वे 'समानधर्माओ' मे माने जाते हैं। अत अज्ञेय ने जहाँ 'नयी रीति' पर बल दिया वही अनुशासनहीनता के लिए भी प्रोत्साहित किया। जिस व्यक्तित्व की इतनी गुहार होती है और प्राय कहा जाता है कि प्रगतिवाद व्यक्तित्व का शत्रु था, उसी व्यक्तित्व के अभाव पर डा० देवराज की टिप्पणी कितनी यथार्थ बैठती है!

डा० रघुवश 'नयी कविता' की सामाजिक पृष्ठभूमि को सही सिद्ध करने वाले लेखको मे से हैं। उनके अनुसार नयी कविता पर 'असामाजिता' का आरोप लगाना गलत है, क्योकि "यह युग अध जडता का युग है जिसमे समस्त सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक तथा आर्थिक मान्यताएँ झूठी पड गई है! •• यह समाजव्यापी कुण्ठा, निराशा, अवसाद तथा 'अध आस्था' का परिणाम है कि हम इन सबके बावजूद व्यक्तिगत स्वार्थों, बेईमानी, घूसखोरी, चोर बाजारी, अकर्मण्यता से अपने को बचाने मे असमर्थ हैं। • आज की इस सामाजिक परिस्थिति ने कवि को सवेदित किया है। वह इस सर्वग्राही जडता और कुण्ठा का अनुभव अपने जीवन मे कर रहा है। यह कुण्ठा पलायनवादी न होकर परिस्थिति जन्य है। आज के कवि का सघर्ष, उसकी आशा निराशा-जन्य कुठाएँ व्यक्तिगत से अधिक सामाजिक हैं।"

डा० रघुवश यह क्यो नही कहते कि बावजूद सर्वग्राही जडता के उस जडता के समूल नाश के लिए भी प्रयत्न हो रहा है। निराशा के समानान्तर आशा और जडता के समानान्तर जागरूकता बढ रही है इसकी व्यजना,

---

1 नयी कविता अक २।

नयी कविता म क्यो नही हो रही है ? नयीकविता के लेखक क्या आखें खोलकर इतना भी नही देख सकते कि सामाजिक आदोलनो की गति तीव्र से तीव्रतर होती जा रही है यह क्या सकेत कर रहा है ? कु ठा को वणन करते समय कु ठा के कारणो की ओर पाठ का ध्यान क्यो नही आकर्पित किया जाता है ? कु ठा-सामाजिक परिस्थिति का परिणाम है अथवा यह कतिपय व्यक्तियो की मात्र सनक है ?

डा० जगदीशगुप्त के विचार भी आकषक हैं। नयी कविता अक तीन मे आप अलकार रीति रस और वक्रोक्ति आदि को विलासमूलक कौशलप्रिय मध्य-काल का फल मानते हैं। ध्वनिमत को प्राय तटस्थ मानते हैं यद्यपि वह उन्हें अथ चेतना की ओर गभीर सकेत करता हुआ भी प्रतीत होता है [1] जगदीश जी भावावेग को मध्यकालीन कह कर कविता से बहिष्कृत कर देना चाहते हैं। यानी प्राचीन काव्य म केवल आदिम सवेग मात्र है। 'आज के युग के बुद्धिजीवी मनुष्य के लिए सम्भव नही है कि वह यथाथ की उपेक्षा करदे या सवेग से परानित सौन्दय-बोध से पूरी तरह समझौता करले। '

अथात नयी कविता म बौद्धिकता का समावेश हाना चाहिए काव्य मे बुद्धितत्त्व को समावेश पर मध्यकालीन काव्य शास्त्र भी बल देता है। किन्तु बौद्धिक धारणाओ के लिए पुराने लोग दशन पढ़ते थे और आनन्द के लिए कविता [1] आज दोनो को एक करने का प्रयत्न किया जा सकता है परन्तु मनुष्य की ये दो अलग-अलग आवश्यकताए हैं। रही बात सतुलित समावेश की सो प्रयोगवादी कविताओ मे विचारो का वमन अधिक हुआ है।

जगदीश गुप्त ने प्रयोगवाद म लय के अभाव को उचित बताते हुए कहा है कि सगीतात्मक लय के स्थान पर प्रयोगवादी काव्य मे अथ की लय' रहती है। लय निश्चित रूप से गति और यति से उत्पन्न होती है। यदि गति म निश्चित स्थान पर विराम लगता चलता है तभी लय' पैदा होती

---

१ वदतोव्याघात जगदीश गुप्त मे सबसे अधिक है—भावावगमय कविता का विरोध करने के बाद इसी लेख मे आग यह कहते हैं—वह (कविता) मनुष्य के भावसवलित सवदनापूण एवम आवगयुक्त विशिष्ट क्षणों मे ही बीज रूप से जन्म लेती है।

अब इन परस्पर विरोधी मतों मे किसे लेखक का अपना मत माना जाय, यह जगदीश जी स्वय बताएं तो अधिक कल्याण हो।

अथलययुक्त मुक्तछन्द—आज तुम शब्द न दो न दो
कल भी मैं कहूँगा
तुम पर्वत हो अभ्रभेदी शिलाखण्डो के गरिष्ठ पुंज
चापे इस निर्झर को रहो रहो !

दोनो मे गूढाथ है और दोनो मे गति है। शब्दाथ को यहाँ निश्चित स्थान पर तोडा गया है ! ताकि पढने मे पद्यता आ जाय। यदि लय का अभाव है तो नीचे के उद्धरण की तीसरी लम्बी पक्ति मे। इसे खीचकर पढने पर ही लय पैदा की जा सकेगी किन्तु यह स्मरणीय है कि खीचकर अथवा गा गा कर गद्य को पढने पर भी लय पदा की जा सकती है परन्तु वहा लय आरोपित होती है प्रयोगवादी गद्य मे भी लय का आरोप ही अधिक रहता है। अत जगदीश का अथ-लय दशन भ्राति पर आधारित है।

जगदीश गुप्त का अथलयवाद अज्ञय के विरामचिह्न आडीसीधी लकीरवाद का ही दूसरा सस्करण है। काव्यमर्मज्ञ और सगीत का जरा भी ज्ञान रखने वाले जानते हैं कि काव्य मिश्रित कला है उसमे अथ का ही आनन्द नही है अपितु सगीतात्मक लय से सहायता लेकर उस अथ को प्रपणीय बनाया जाता है आनन्द पक्ष को अथपक्ष से निकाला नहीं जा सकता। सस्कृत ने तुक नहा मानी परन्तु गति लय प्रवाह रागहिल्लोल तरग आदि को अथ के साथ ही स्वीकार किया था। बाण ने काव्यपूर्णगद्य लिखा था किन्तु उसे गद्य ही कहा गया क्योकि उसमे गति या लय नहो है जहाँ प्रयोगवादी कविता मे गद्यमयता अधिक है उसे गद्य कहने मे कवि को अपमान अनुभव क्या होता है ? बाण ने स्पष्ट कहा था कि गद्य कवियो की कसौटी है। बाण को सभी कवि मानते हैं ! यह निश्चित है कि प्रयोगवादी गद्यमयता को स्वय प्रयोगवादी ही अधिक समय तक नही सभाल सकते क्योकि जिस प्रकार पद्य सुनते सुनते लोग ऊवकर मुक्तछन्द सुनना चाहते हैं उसी तरह मुक्तछन्द का व्यवसाय पि प्रयोगवादी-गद्य सुनकर भी लोग ऊबकर छदो बद्ध काव्य सुनना चाहते हैं दोना का आनन्द भिन्न है। घोर बुद्धिवादी भी गीत या शेर की कोई पक्ति गुनगुनाते हुए पाये जाते हैं और प्राय एक एक शेर म या छन्दोबद्ध पद्य मे गूढ अथ भी रहता है। जो बात बडी बडी पोथियो म कही जाती है उसे कवि एक उक्ति मे इस ढग से कह देता है कि बार-बार पढते और गुन गुनाते जी नहो भरता सगीत और अथ का एक साथ आनन्द मिलता है। आखिर सगीत से कविता मे ही चिढ क्यो है ?

सिर्फ नवीनता के लिए गद्यमय काव्य भी लिख डालिए, किन्तु केवल उसी की स्वीकृति के लिए इतना प्रपच क्या आवश्यक है ?

नयी कविता के अक चार की चर्चा हम "नयीकविता के प्रतिमान" की चर्चा के बाद करेंगे क्योकि जगदीश गुप्त लक्ष्मीकन्त वर्मा की मान्यताओ से सहमत नही हैं। असलियत यह है कि प्रयोगवाद के चिन्तक अपरिपक्व हैं। आवेगविरोधी होने पर भी उनमे आवेग ही अधिक लगता है। प्रगतिवाद के औद्धत्य की निन्दा करने पर भी उनमे औद्धत्य और सकीर्णता प्रगतिवाद से अधिक है। कटुता, खीझ, स्पर्धा, अपनी हर बात को स्वीकृति दिलाने के अधैर्य आदि के कारण किसी भी प्रश्न पर व्यवस्थित अध्ययन और मनन का इस सम्प्रदाय मे अभाव दिखाई पडता है। प्रगतिवाद मात्र सगठन पर आधारित नही था, उसकी भित्ति व्यापक और वैज्ञानिक थी किन्तु वैज्ञानिकता का नारा लगाकर भी वैज्ञानिक चिन्तन से सर्वथा रहित क्षुब्धचित्त ही प्रयोगवादी नवयुवको मे दिखाई पड रहा है। प्रयोगवाद की निषेधात्मकता की प्रवृत्ति पर प्रहार होने से लक्ष्मीकान्त वर्मा ने उक्त पुस्तक मे विस्तार से 'नये चिन्तन' को स्पष्ट किया है। हम उसे सक्षेप मे रख सकते हैं—

अस्पष्ट और निरपेक्ष चिन्तन—नई कविता की पृष्ठभूमि मे लक्ष्मीकान्त वर्मा ने समाज के मूलाधार का विवेचन नही किया, ऐसा लगता है कि ये आन्दोलन आकाश से टपक पड़े हो। विभिन्न आदोलनो का परिचय देते हुए वर्मा जी ने बताया है कि इन आन्दोलनो से क्या लाभ और क्या हानियाँ हुई। 'साम्यवाद की तुलना मे वर्मा जी की सहानुभूति समाजवादियो के साथ है क्योकि साम्यवादी-एकाधिपत्य के विरुद्ध समाजवाद ने देशकाल के माध्यम से बात चलाई। समाजवाद ने राष्ट्रीयता को भी स्वीकार किया। साम्यवादी आदोलन अनुदार था, समाजवादी उदार था। वर्मा जी के विवेचन का साराश यह है—

(१) प्रगतिवाद के विरोध मे साहित्यिक मान्यताओ के लिए सघर्ष हुआ क्योकि राजनैतिक पक्ष पर ही प्रगतिवादी बदल देते थे।

(२) मार्क्सवाद के विरोध मे व्यक्तिनिष्ठा पर बल दिया जाने लगा।

(३) राष्ट्रीयता का समर्थन किया गया क्योकि मार्क्सवादी अराष्ट्रीय थे।

(४) भावनाओ के प्रति ईमानदारी की ओर अधिक ध्यान दिया गया।

(५) अपने प्रति असतोष की भावना—अनास्था, भ्रम और अस्पष्टता का वर्णन सन् ४० से १६५० तक होता रहा !

(६) चमत्कार तृष्णा बढी हृदय का ह्रास हुआ !

(७) गीतो मे भी चमत्कार बढा।

(८) इस पृष्ठभूमि म 'नयी कविता' का विकास हुआ !

यानी सन् ५० के बाद 'नयी कविता' का जन्म हुआ क्योकि सन् ५० तक तो अपने प्रति असतोष और कुठा ही रही ! उधर यह भी कहा गया है कि आधुनिकता को अज्ञय' ने ही समझा था ! प्रथम सप्तक मे कवि प्रगतिवादी थे, इससे वर्मा जी को बडी व्यथा है किन्तु चार बातें उनमे भी काम की मिल गई। विषयवस्तु की नवीनता, स्वस्थ व्यक्तित्व और व्यजना के प्रति ईमानदारी बौद्धिक आधार और सर्वथा नवीन मायताओ के प्रति आग्रह !

यानी तार सप्तक के कवियो मे डा० रामविलास शर्मा मुक्तिबोध, *नेमीचन्द जैन आदि का व्यक्तित्व स्वस्थ था। तब साहित्य मे तानाशाही कौन* स्थापित कर रहा था ? पृष्ठ १८ पर लक्ष्मीकान्त लिख चुके हैं कि मुक्तिबोध और नेमीचन्द मे आक्रोशपूण, खीझभरी निराशा मिलती है ! और इन्ह स्वस्थ व्यक्तित्व वाला भी कहा गया है।

'वदतो व्याघात' को प्रयोगवादी आलोचना की विशेषता मान लिया जाए तो भी यह प्रश्न होगा कि छायावाद, प्रगतिवाद आदि परिस्थिति-सापेक्ष्य थे या केवल चन्द सिरफिरो की सनक मात्र थी ? मार्क्सवाद का भारत मे जो प्रयोग हुआ, उसमे मार्क्सवाद का दोष था या भारतीय मार्क्सवादियो का ? सब गलतियाँ प्रगतिवादियो ने ही कीं, कोई गलती समाजवादियो से भी हुई या नही ?, समाजवाद बावजूद अपन राष्ट्रीयतावाद के क्या अधिक सशक्त नही हुआ ? क्या अधविश्वासो को समाजवादियो से प्ररण नही मिली ? परम्परा के विरोधी लक्ष्मीकात न इन तथ्यो पर विचार नही किया क्योकि इससे समाजवादियो की दुरगी, समझौतावादी अमरिकावादी साम्यवादविरोधी नीति स्पष्ट हो जाती और यह बात कात जी चाहत नही। 'ईमानदार हैं न !

परिप्रेक्ष्य की नवीनता (न्यू पर्सपेक्टिव) —लक्ष्मीकात वर्मा ने नवीन दृष्टि निम्न तत्त्वो म बताई है य छहो तत्त्व 'नयीकविता में मिलते हैं—

(१) नयी परिपक्षणीयता (२) अनुभूतियों के नये रूपान्तरण, (३) सौन्दर्य-बोध के नय धरातल, (४) परम्परागत विकृत मूल्यो के परिष्करण

(५) मतवादी भ्रान्तियों से मुक्ति पाने की कामना (६) तन्मयतसत्य की वे परिधियां जिनमें हमारा रागात्मक बोध नये आयामों का अन्वेषण करने की सामर्थ्य पाता है।

इनमें यदि आप 'तदात्मयमत्य' का अर्थ न भी समझ हों तो भी वर्मा जी का मतलब तो स्पष्ट ही है। इनकी व्याख्या में आप 'आधुनिकता' का अर्थ समझाने लगते हैं 'आधुनिकता' वर्मा जी के अनुसार—

(१) बौद्धिक जागरूकता के आधार पर आधुनिकता रूढ़ियों के विरोध में है।

(२) वैज्ञानिक विश्लेषण में विश्वास आवश्यक है।

(३) विघटित मूल्यों का तिरस्कार और नये मानव मूल्यों की स्थापना आवश्यक है।

इनमें प्रथम और अंतिम तक एक ही हैं। और 'वैज्ञानिक' का अर्थ लक्ष्मीकान्त समझते नहीं। रूढ़ियों के विरोध का स्वागत है किन्तु इसी तर्क पर प्रत्येक प्रवृत्ति को 'रूढ़ि' कहकर विरोध किया जा सकता है। अध्यात्मवाद रूढ़ि है, छायावाद रूढ़ि है, प्रगतिवाद रूढ़ि है, छंदोबद्ध काव्य रूढ़ि है, अब तक प्रयुक्त भाषा रूढ़ि है, कान्त जी के लिए क्या रूढ़ि नहीं है?

वर्मा जी पुनः 'परिप्रेक्षण' को समझाते हैं—

(१) जीवन के निरपेक्ष मूल्यों की अपेक्षा उसकी सापेक्ष्य वस्तु स्थिति द्वारा व्यक्त मूल्यों के प्रति आस्था का नया स्तर निर्माण करो।

लक्ष्मीकान्त जी निरपेक्ष का अर्थ पता नहीं क्या समझते हैं? प्रयोगवादी जीवनदृष्टि परिस्थिति सापेक्ष न होने से स्वयं निरपेक्ष है। क्योंकि परिस्थिति की सापेक्षता और निरपेक्षता का निर्णय ऐतिहासिक दृष्टि से हो सकता है और इतिहास शब्द से कान्त जी को घृणा है अतः वर्मा जी की यह शब्दावली निरर्थक है।

(२) समूह और समाज के दायित्व को स्वीकार करते हुए वैयक्तिक स्वतन्त्रता को स्वीकार करो।

लक्ष्मीकान्त वस्तुतः वैयक्तिक स्वतन्त्रता के ही पक्षपाती हैं, समाज की उन्हें चिन्ता नहीं है अन्यथा जनतन्त्र में मिली स्वतन्त्रता और समाजवादी देशों में स्वतन्त्रता की तुलना करते और यह भी सोचते कि 'स्वतन्त्रता' समाज के स्वरूप पर निर्भर है। आपकी 'कल्पना' में जो स्वतन्त्रता का रूप

है उसके लिए समाज को बदलना होगा, आदमी को बदलना होगा और उसके लिए आप प्रस्तुत नही हैं केवल 'नारा' लगाना जानते हैं।

(३) जीवन के तदात्मसत्य को महत्त्वपूर्ण अनुभूत क्षण मे अवतरित करो। ईमानदारी और सहृदयता यही है।

मतलब यह कि अपने दृष्टिकोण से क्षण विशेष म कौंध जाने वाले अनुभव को पकडो और उसे व्यक्त करो।

स्पष्ट है कि प्रयोगवादी 'कला' को सकीर्ण बनाना चाहते हैं, क्योंकि जो अनुभव दीघअवधि तक आपका पीक्षा करे, जैसे भूख, अभाव, करुणा, अत्याचार के प्रति आक्रोश, पगपग पर होने वाले अपमान के विरुद्ध क्रोध आदि—शायद इनके लिए प्रयोगवाद मे कोई स्थान नही है, प्रगतिवाद सामूहिक अनुभव के आगे व्यक्तिगत अनुभव पर बल नहीं देता था और आप व्यक्तिगत अनुभव के आगे 'सामूहिक अनुभव" की पूर्ण उपेक्षा करते हैं, क्या यही 'परिप्रक्षण की नवीनता है! यह तो पुरानी बात हुई! यदि यह कहें कि आपका अनुभव अनमोल है तो 'सर्वथा व्यक्तिगत" होने से आपके द्वारा 'दायित्व" की घोषणा को क्या वह प्रमाणित करता है ?

(४) मानव जीवन के बदलते सन्दर्भों को नये मानदण्ड दो। 'कुण्ठा' और "अतिवादी सकीणता' का समावेश भी जीवन का सापेक्ष सत्य है!

आश्चर्य है! चाहे सामाजिक व्यवस्था मे अर्थात वास्तविक परिस्थिति मे कुछ भी परिवत्तन न हो परन्तु लक्ष्मीकान्त जी के लिए "सदर्भ' बडी जल्दी जल्दी बदल रहे हैं! 'कुण्ठा और 'अतिवादी सकीणता' को जीवन का *सापेक्ष सत्य मानने का अर्थ क्या है ? क्या कुण्ठा है यह मानवमूल्य है या* यह वास्तविक परिस्थिति की विषमता के कारण मनुष्य के मन मे उत्पन्न हो गई है ? इस दूर करने के लिए क्या करना होगा '

किसी भी प्रश्न पर निरपेक्षत विचार करना लक्ष्मीकान्त की विशेषता है। धरती पर उतर बिना, अपने द्वारा बनाई हुई अस्पष्टभाषा का प्रयाग करना, एक ही बात को घुमा फिरा कर कहना उनकी उपलब्धि है।

'असाम्प्रदायिक मानव', स्वानुभूति की दृष्टि, 'पूवग्रह का विरोध' आदि थोथे नारे हैं। *मतलब यह है कि* किसी बात पर ऐतिहासिक दृष्टि से विचार मत करो, केवल अपने मन की सनक पर विश्वास करो। सरहपा ने एक बडे पते की बात कही थी कि योगी जिसे स्वानुभूति' कहते हैं वह अत्यधिक दमन के कारण चित्त की प्रवचना स उत्पन्न हाती है ऐसी

स्वानुभूति का क्या विश्वास ? लगता है, लक्ष्मीकान्त जी का चित्त कुंठित हो गया है।

लक्ष्मीकान्त का 'नया परिप्रेक्षण' प्रगतिवाद के विरुद्ध अन्ध और अज्ञ प्रतिक्रिया मात्र है।

मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि—इस शीर्षक के अंतर्गत लक्ष्मीकान्त कहते हैं कि दो युद्धों की पृष्ठभूमि में रखकर देखने से मूल्यों और आस्थाओं की परम्परा आज के जीवन-वृत्त से बिल्कुल पृथक् हो गई हैं। कौन सी मान्यताएँ नष्ट हो रही हैं ? आगे लक्ष्मी जी स्पष्ट कहते हैं— आज यद्यपि एक ओर अतिवादी टोटलिटेरियनिज्म और पूर्व निश्चयवादी प्रवृत्तियों का ह्रास उन्मुख दिग्भ्रम-जनित अपवादों के साथ । अर्थात् लक्ष्मीकान्त मुख्यतः प्राचीन अध्यात्म वाद और साम्यवाद दोनों के विरोधी हैं। अध्यात्मवाद का विरोध स्तुत्य है परन्तु साम्यवाद के विरोध के लिए आपके पास कौन सी जीवन दृष्टि है ? न वैज्ञानिक भौतिकवाद, न अध्यात्मवाद, तब आप कहाँ हैं ? अपनी पुस्तक में यह बिन्दु कहीं भी लक्ष्मी जी स्पष्ट नहीं कर सके हैं ? अतः "आज के जीवन की पृष्ठभूमि में खण्डित मर्यादाएँ, टूटे मूल्यों की अस्त व्यस्त परम्परा, मानव आत्मा की बन्दी प्रताड़ित भावनायें, भौतिक द्वन्द्वों के साथ नयी भावनात्मक, रागात्मक अनुभूतियाँ—इन सबका सामूहिक प्रभाव हमारी कलाव्यंजना और अभिरुचि में निहित है" (पृष्ठ ४६)

स्पष्टतः प्रयोगवादी की मानसिक स्थिति संदेह, अनास्था, निषेधात्मकता और अवसाद से युक्त है, क्या कोई जागरूक राष्ट्र इस स्थिति को स्वीकार कर सकता है। 'दायित्व" की बातें करने वाले जिस आधार पर खड़े हैं, वह कितना कमजोर है ?

इस संकट से बचने के लिए वर्मा जी का 'उपचार' यह है—

'विद्रोहात्मक सक्रियता, अहम् की स्थापना, और उसकी मर्यादा में वैयक्तिक निष्ठा बौद्धिक जागरूकता" आदि का विकास करना चाहिए किन्तु ऐसा विद्रोह निश्चित जीवन दृष्टि के अभाव में 'अंध विद्रोह" ही होगा। जो अहं समाज के प्रवाह से अलग होकर अपनी घोषणा करता है, वह केवल 'प्रदर्शिनी' का विषय बनेगा, और बौद्धिक जागरूकता का कुछ अर्थ ही नहीं है क्योंकि बुद्धि का काम सत् असत् का विश्लेषण द्वारा किसी निश्चय पर पहुँचना है किन्तु जहाँ समाज के विश्लेषण, समाज के भावी रूप आदि प्रश्न आते हैं

प्रयोगवादी 'पूर्वग्रह" 'पूर्वग्रह" चिल्लाने लगता है, यह अजीब पूर्वग्रह है जो बुद्धि के प्रयोग से कतराता है किन्तु फिर भी 'बौद्धिक जागरूकता" का नारा लगाता है। जरा 'बौद्धिक जागरूकता" का एक नमूना देखिए—

आत्मविवेक और आत्म विवेचना किसी सापेक्ष अनुभव पर ही आधारित होती है। स्वार्थ और अधविश्वास आत्म अनुभव के आश्रित नही होते। उनका सारा बल परम्परा और उपयोगिता पर आधारित होता है। विवेक का औचित्य सदैव आत्मसत्य की प्रतिपालित भावना है।' (पृष्ठ ५१)

स्वार्थ और अधविश्वास आत्म अनुभव के आश्रित नही होते तो अध्यात्मवादी जिसे अनुभव कहते हैं, उसे वैज्ञानिकसत्य' क्यो नही माना जाता ? विवेक का औचित्य 'आत्मसत्य" की प्रतिपादित भावना नही है अपितु यह देखना है कि मेरा अपना 'अनुभव', अधविश्वास तो नही है ? मनुष्य अपने अनुभव की दूसरो के अनुभव के साथ तुलना करता है सामूहिक और व्यक्तिगत अनुभव की तुलना करता है, समाज के विकास के साथ उस 'अनुभव' के 'स्वरूप पर विचार करता है, तब पता चलता है कि विवेक क्या है ?

लक्ष्मीकात वर्मा की किताब मे ऐसे अनगल उपाख्यान अनेक हैं।

यथार्थ के नए धरातल—यथाथ क्या हैं ? इसका *लक्ष्मीकात* उत्तर देते हैं कि 'जीवन और उसके सत्य सबसे बडे यथाथ हैं।" यह अस्पष्ट है अत स्पष्ट करते हुए वह कहते हैं—

(१) जीवन निस्सार नही, जीने के लिए है, उसे जिया जा सकता है।

कितना बडा यथार्थ है ! कितनी नवीन बात लक्ष्मीकान्त कह रहे हैं ! यह किसने कहा कि जीवन को 'जिया" नही जा सकता।

(२) चमत्कार, रहस्य, ईश्वरत्व, आभा, उस पार का दिवास्वन— जीवन इन सबसे मुक्त और बाह्यमना है।

बहुत ठीक, हम यहाँ आपसे सहमत हैं। पर यह पहले भी बहुत लोगो ने कहा है।

किन्तु यह तो भूमिका मात्र है। लक्ष्मीकान्त कहना यह चाहते हैं कि 'जीवन मे वेदना, कुरूपता, विद्रूपता मृत्यु, प्रतारण इत्यादि उतने ही सशक्त सत्य हैं जितने कि आनन्द, सुख, शान्ति, सुन्दरता", आदि। अत छायावाद यदि 'आनन्द' पर बल देता है तो प्रयोगवाद 'निराशा' पर। यदि 'प्रगतिवाद' 'जीवन की संघर्ष और प्रवृत्ति की उदात्त भावना" पर बल देता है तो 'प्रयोगवाद' आदमी के बौने पन' पर। और मज़ा यह कि लक्ष्मीकान्त इन्हीं

के बीच मानवमूल्यों का विकास मानते है। इसका तो यही अर्थ हुआ कि उदात्तता को छोडकर पहले पशुता स्वीकार करो तभी मानवमूल्य विकसित होंगे ?

अध्यात्मवाद और वैज्ञानिक भौतिकवाद का विरोध—यह शीर्षक मेरा है लक्ष्मीकान्त का नहीं। लक्ष्मीकान्त ऐसे स्पष्ट शीर्षकों से घृणा करते हैं। उनकी विवेचना हेत्वाभासो पर आधारित है। वह मानते हैं कि ईश्वरवाद अंधविश्वास है ठीक है किन्तु वैज्ञानिक भौतिकवाद के विषय में वह कहते हैं कि इसमें मनुष्य को यंत्र माना जाता है। ईश्वरवाद जहा मनुष्य को ईश्वरग्रस्त प्राणी मानकर उसे केवल ईश्वरीय प्रेरणा से परिचालित होने वाला जीव मानता है वही मार्क्सवाद उसे केवल यन्त्रस्थ जीव मानता है जो ऐतिहासिक द्वन्द्व के कारण क्रियाशील होता है। यदि एक मनुष्य को नकारात्मक बनाकर छोड देता है तो दूसरा उसे केवल कठपुतली सा निर्जीव सिद्ध करता है ये दोनो मत भ्रामक हैं (पृष्ठ १०६)

मार्क्सवाद में व्यक्ति की अपनी इच्छाशक्ति और धारणाशक्ति को महत्त्व नहीं दिया गया यह बेबुनियाद बात है। लक्ष्मीकान्त के बहुत पूर्व प्लेखानव से भी ये प्रश्न हुए थे तब उसने एक पुस्तक लिखी— व्यक्ति का इतिहास मे योगदान (The Role of Individual in History)। लक्ष्मीकान्त और उनके सहधर्मियो को यह पुस्तक पढ लेनी चाहिए। इतिहास मे परिवर्तन मनुष्य ही करता है परन्तु यह परिवर्तन कुछ नियमो के अनुसार ही होता है देश काल निरपेक्ष क्रान्ति नही होती मार्क्सवाद का यह मतव्य है। किन्तु लक्ष्मीकान्त का प्रयोगवाद पूर्वग्रहो से इतना ग्रस्त है कि वह किसी की सुनना ही नहीं चाहता। बौद्धिक जागरूकता का क्या यही अर्थ है कि पूरी बात समझे बिना कुठार हाथ मे लेकर प्रहार करना शुरू करदे।

इलियट ने मार्क्सवाद का विरोध किया तो उसे धर्म मे शरण लेनी पडी। फ्रास के प्रतीकवादियो को भी अध्यात्म की शरण लेनी पडी। वैज्ञानिक भौतिकवाद अथवा अंधश्रद्धा पर आधारित अध्यात्मवाद—इन दो के अलावा और कोई गति नही है अत प्रयोगवादी नौजवान जब वास्तविक अध्ययन शुरू करेंगे तब इनमे से एक का आश्रय लेंगे विज्ञान और विश्वास दोनो का समन्वय करने वाले विचारक भी बढ रहे हैं परन्तु प्रयोगवादियो जैसे निषेधवाद से वे अधिक पुष्ट भूमि पर हैं।

मानवविशिष्टता और आत्मविश्वास के आधार नामक शीर्षक के

अतगत लक्ष्मीकात वर्मा प्रगतिवाद को समग्र जीवन का विरोधी मानते हैं यानी प्रगतिवाद ने मानवविशिष्टता पर ध्यान नही दिया है। यह सही है कि प्रगतिवादी काव्य मे समग्र जीवन का चित्रण काव्य मे नही हो सका किन्तु उपन्यासो मे हुआ है किन्तु लक्ष्मीकात कविता के बाहर प्रगतिवाद की सत्ता शायद मानते ही नही रूस मे भी उपन्यास मे ही प्रगतिवाद को अधिक सफलता मिली है। किन्तु काव्य की दृष्टि से ही विचार किया जाय तो यह कहना अधिक उचित होता कि मानव विशिष्टता पर भी बल देना चाहिए किन्तु यह न कह कर प्रयोगवाद केवल वयक्तिक अनुभूतियो के क्षत्र मे ही सिमिट गया अत क्षतिपूर्ति के लिए निकल कर वह स्वय अपनी क्षति करने लगा।

लघुतावाद—लक्ष्मीकान्त के अनुसार अध्यात्मवाद और प्रगतिवाद दोनो महामानव का रूप अपनाकर चले। प्रगतिवाद मे तानाशाही व्यक्ति पूजा का ही रूप थी। प्रयोगवाद मनुष्य की लघुता पर अधिक बल देता है क्योकि वही यथाथ है सुपरमन या अधिनायक को प्रयोगवाद नही मानता। ठीक। अब इस मत के विरुद्ध आचाय जगदीशगुप्त का वक्तव्य सुनिए — 'क्या लघुता की भावना स्वाभिमान की प्ररक हो सकती है? मेरे विचार से मानव स्वाभिमान तथा व्यक्तित्व से सम्पन्न मनुष्य अपने को लघु माने ही यह आवश्यक नही है। यदि लघुता को एक मानवमूल्य माना जाय तो यह निश्चित रूप से स्वाभिमान का विरोधी सिद्ध होगा। मेरे विचार से नयी कविता के प्रतिमानो की खोज म उत्साहवश लघुता पर अत्यधिक बल देना अनावश्यक है।'[1]

इस प्रकार लघुतावाद स्वय अन्य प्रयोगवादियो द्वारा स्वीकृत सत्य नही है।

मूल्यान्वेषण—प्रयोगवाद ने मूल्यो का प्रश्न बडी उग्रता के साथ उठाया है। लक्ष्मीकान्त के अनुसार सबसे बड मूल्य ये हैं—

(१) मानव विशिष्टता—अर्थात हम प्रत्येक स्थापित सत्य के प्रति भी विवेक और देशकाल की सापक्षता की दृष्टि विकसित करके उसे पुन स्थापित कर।

इस मूल्य का वास्तविक मतलब यह है कि अब तक विकसित

---

१ नयी कविता अक ४, पृष्ठ १५ १६।

विचारधाराओ को बिना समय बूझे उन्हें भ्रान्तरूप म उपस्थित कर उनका विरोध करें और अपने अहम् की घोषणा करते फिर।

(२) भोगने का साहस यह दूसरा मानवमूल्य है। अर्थात् शुभपक्ष को महत्त्व न देकर विकृतियो की अभिव्यजना कर— आज यदि हम जीवन के शुभ पक्ष को महत्त्वपूर्ण समझने का मिथ्या अभिनय करेंगे और यथार्थ के उस पक्ष को नहा देखेगे जो शुभ न होते हुए भी जीवन्त और महत्त्वपूर्ण है तो हम किसी भी उपलब्धि को नही प्राप्त कर सकेंगे। अत लक्ष्मीकात जुडने की जगह 'टूटन को आशा के स्थान पर निराशा को व्यापक के स्थान पर सकीर्णता को उदात्तता के स्थान पर लघुता को परिवत्तन के स्थान पर स्थिरता को और प्रगति के स्थान पर प्रतिक्रियावाद को ही वास्तविक मूल्य मानत हैं।

(३) आधुनिक' मानव के लिए तीसरा मूल्य 'लक्ष्मीकात क्षण को मानते हैं। क्षण केवल काल का विभाजित अश है जो देश और परिस्थिति द्वारा निर्धारित होता है जीवन के इन क्षणो का अपना महत्त्व है समय के विस्तार म न तो ये खो सकते हैं और न ही उनका विघटन होना आज के जीवन म सम्भव है।

यह क्षणवाद किसी क्षण विशेष म प्राप्त अनुभवो का पूर्वापर सम्बन्ध नही देखना चाहता। अनुभूति की सापेक्षता इस बात म है कि इस पर भी विचार किया जाय कि वह क्या उस क्षण विशेष म उत्पन्न होती है आगे के क्षण म जब नया अनुभव होता है तब पहले क्षण म प्राप्त अनुभव का रूप क्यो बदल जाता है वह कौनसा तत्त्व है जो स्थायी रहता है? स्थायी तत्त्व बाह्य वास्तविक परिस्थिति है वही व्यक्ति के मन म तरह-तरह के अनुभव उत्पन्न करती है उस परिस्थिति के विषय म मौन रहकर केवल उसके परिणाम मे ही मग्न रहना अधता है। वह कला अपूर्ण है जो केवल क्षण विशेष के अनुभव को ही व्यक्त करे क्षणो के प्रवाह से उत्पन्न अनुभवो का निषेध करदे। अनुभवो का आवर्त्त या भाव की हिल्लोर के अपमान का दूसरा नाम है प्रयोगवाद।

(४) सशयात्मक विनश्यति—लक्ष्मीकात कहते हैं मूल्य टूट गए हैं सवेदनाए बिखर गई हैं अनुभूतिया सैकडो उतार चढाव के बाद इतने तनावो म बनती और बिगडती है कि उनका रूप अथवा एक स्तर नही रह जाता समाज की चोट से घायल व्यक्ति आज समाज का विद्रोही भी हो सकता

है और आत्महत्या भी कर सकता है। विद्रोही होकर मरने वाले के प्रति श्रद्धावान होने की परम्परा साहित्य संस्कृति और इतिहास मे बराबर मिलती है किन्तु वह जो आज की व्यवस्था के सामने टूटता है उसका महत्त्व क्या कम है ? क्या उसका टूटना या विघटित होना भी सत्य नही है ? (पृष्ठ २६६)

पाठक देखे कि नए मानवमूल्य के नाम पर शोषण दमन और विषमता के इलाज की जगह उसी स्थिति मे आनन्द लेने की प्रवृत्ति लक्ष्मीकान्त मे कितनी अधिक है। समाज मे विद्रोह प्रशसनीय रहा है इससे लक्ष्मीकान्त को क्षोभ है। अब वह आत्महत्या या टूटने की प्रशसा चाहते हैं। इससे टूटने वालो की सख्या समाज मे बढेगी आत्महत्याए अधिक होगी। शापेनहावर बौद्ध-दर्शन से प्रभावित होकर जगत की नश्वरता का ऐसा खाका खीचता था कि जर्मनी मे अनेक नवयुवक आत्महत्या कर लेते थे। किन्तु शापेनहावर ने आत्महत्या नही की। सकडो को अपने दर्शन से मार कर भी वह जीवित रहा !! लक्ष्मीकान्त शापेनहावर के ही आधुनिक सस्करण प्रतीत होते हैं। व्यवस्था को बदलने के लिए उपाय सत्य हैं या केवल टूटते रहना। टूटते जाने का वर्णन करना सत्य है किन्तु साथ ही टूटने से बचने के लिए जुडने की प्रेरणा देने का कार्य भी आप क्या नही करते इससे आधुनिकता की क्या हानि होगी ?

(५) अन्त मे लक्ष्मीकान्त सक्रिय सहयोग और आदानप्रदान की भी बात करते हैं परन्तु वह सहयोग समाज के बदलने के काय मे नही है केवल आपस मे बैठकर रोने धोने मे ही सहयोग पर उन्होने बल दिया है।

(६) लघु परिवेश का चित्रण यह भी लक्ष्मीकान्त के लिए एक मूल्य है। लघुपरिवेश का समाज के व्यापक रूप के साथ सम्बद्ध करके चित्रण करना अवश्य एक मूल्य हो सकता है।

(७) भावुकता की अपेक्षा यथार्थ की कटुता का महत्त्व लक्ष्मीजी के लिए अधिक है। कोरी भावुकता का सभी विरोध करते हैं परन्तु कोरी अथवा केवल कटुता तक ही अपने को सीमित रखना सकीर्णता है। फिर कटुता का वर्णन कारण कार्य परम्परा से युक्त होना चाहिए परन्तु लक्ष्मीजी यह नही चाहते हैं।

लक्ष्मीकान्त सशयात्मकता से पीडित हैं और गीताकार ने स्पष्ट कहा है कि सशयात्मना विनश्यति ।

डा० देवराज ने सस्कृति का दार्शनिक विवेचन नामक पुस्तक मे

अधिक व्यवस्थित ढग से विचार किया है। उनका कहना यह है कि मार्क्सवाद वर्गमूलक चिन्तन है किन्तु सामाजिक सम्बन्ध केवल वर्गमूलक नहीं होते। "माता का अपने बच्चे से तथा प्रेमी का अपनी प्रेमिका से जो सम्बन्ध होता है, वह किसी भी प्रकार वर्ग का सम्बन्ध नहीं कहा जा सकता। यही बात मित्रों के आपसी सम्बन्ध पर लागू है। हमारी एक व्यक्ति से मैत्री हो सकती है, इसलिए नहीं कि मैं और वह एक ही वर्ग के हैं, अथवा हमारी सामान्य वर्गमूलक रुचियाँ हैं। मैं एक व्यक्ति को इसलिए भी पसन्द करता हूँ कि वह अच्छी गप करता है या एक अच्छा खिलाडी है अथवा कविता का प्रेमी है अथवा पहाडी यात्राओं में रुचि रखता है। यह भी लक्षित करने की बात है कि प्रेमी और मित्र, फिर वे चाहे किसी भी वर्ग के हो, अपनी भावना के विषय के सम्बन्ध में प्राय एक से आवेगों को ग्रहण करता है जो कालिदास के मेघदूत में यक्ष पर आरोपित किये गये हैं।" (पृष्ठ १५३)

अत डा० देवराज के अनुसार "मार्क्सवादी सामाजिक जीवन को एक सकीर्ण रूप में लेते हैं और उसे वर्ग-सम्बन्धों से समीकृत करते हैं जो उचित नहीं है।" (पृष्ठ १५४)

मार्क्सवाद सामाजिक विकास को 'वर्ग आधार' पर विकसित मानता है, किन्तु मार्क्सवाद ने "सामान्य विकास" (general development of Society) का इतिहास ही प्रस्तुत किया है। वह इसका निषेध नहीं करता कि वर्गयुक्त समाज में ऐसे सामाजिक सम्बन्ध नहीं दिखाई पडते जिनका आधार 'वर्ग' नहीं होता किन्तु साथ ही यह भी नहीं कहा जा सकता कि केवल यत्र तत्र वर्ग रहित सामाजिक सम्बन्धों का अस्तित्व उस समाज को "वर्ग रहित" प्रमाणित कर देता है। डा० देवराज ने इस बिन्दु पर विचार नहीं किया।

इसके सिवा मार्क्सवाद यह मानता है कि मनुष्य मूलत प्राकृतिक प्राणी है, उसे कुछ प्रवृत्तियाँ 'प्रकृति' से ही प्राप्त हुई हैं, भूख, प्रजनन-इच्छा, जिजीविषा आदि प्राकृतिक प्रवृत्तियाँ हैं, यद्यपि इनका भी विकास दिखाई पडता है। किन्तु मनुष्य जब समाज बनाता है, तब इन प्राकृतिक प्रवृत्तियों का रूप बदलता है, मात्रा और गुण में अन्तर आने लगता है अत 'कालिदास' के मेघदूत या 'अभिज्ञानशाकुन्तल' में 'प्रेम' का जहाँ तक प्रवृत्तिगत रूप है, वह आज भी हमारी 'वासना' से यथावत् सादृश्य रखता है अत. "तन्वी, श्यामा, शिखर दशना, पक्व बिम्बाधरोष्ठी, मध्ये क्षामा, चकित हरिणी" आदि वर्णनों में हम

आनन्द लेते हैं किन्तु साथ ही प्रेम का जो रूप कालिदास में चित्रित है उसका यथावत अनुकरण हमें पसन्द नहीं क्योंकि समाज का रूप भिन्न हो गया है। दुष्यन्त द्वारा शकुन्तला के अपमान पर हमें क्रोध आता है अप्सरा और विश्वामित्र के प्रेम के स्वरूप का हम आज अनुमोदन नहीं करते न दुर्वासा के अनुचित शाप का। इसी प्रकार गांधर्व विवाह को भी हम उस रूप में नहीं मानते अत प्रवृत्तिगत एकता रहने पर भी समाजगत भिन्नता आ जाने पर मूलप्रवृत्तियों का चित्रण युग युग के साहित्य में भिन्न भिन्न दिखाई पड़ता है। अत शम्बूकवध का वर्णन हमें अब बबर लगता है राजाओं के हरम का विलास वर्णन चमत्कार के बावजूद हमें प्रिय क्या नहीं लगता ? अत मूल मानव अभी बहुत नहीं बदला है परन्तु सामाजिक मानव बराबर बदलता आ रहा है और इसीलिए साहित्य के सामाजिक अध्ययन की पुकार मचती है।

एंगिल्स ने कहा था कि उन्होंने और मार्क्स ने आर्थिकपक्ष पर इसलिए अधिक बल दिया था कि विचारक उसे निर्णायक तत्व नहीं मानते थे किन्तु जीवन सकुल है सामाजिक सम्बन्ध भी सकुल होते हैं अत आर्थिक आधार का सर्वत्र प्रतिबिम्ब देखने की एंगिल्स ने निन्दा की है परन्तु इससे यह निर्णय ले लेना कि वर्ग मुक्त समाज की अंतिम व्याख्या में आर्थिक आधार निर्णायक नहीं होता गलत है।

डा० देवराज ने मार्क्सवाद को दार्शनिक दृष्टि से देखा है इसीलिए उन्हें संस्कृति का दार्शनिक आधार में इतना कष्ट हुआ है।

प्रयोगवादी चिन्तन अपरिपक्व चिन्तन है यह ऊपर के विवेचन से स्पष्ट है। इधर यह लगता है कि प्रयोगवादी अपने को अधिक उदार बना रहे हैं यह शुभप्रवृत्ति है अपने को बदलने में बुराई नहीं है आशा यही है कि भारतवर्ष जैसे प्रौढ देश में यह बचपना अधिक चल नहीं सकेगा।

प्रयोगवाद चिन्तन में समझ का विकास—भारती विजयदेवनारायण साही आदि प्रगतिवाद के विरोध में ही अधिक लिखते रहे किन्तु जगदीश गुप्त ने मूल समस्याओं पर अधिक सयत होकर विचार किया है। उनकी अर्थ की लय और रसानुभूति के स्थान पर सहानुभूति विषयक उलझन को अधिक महत्त्व देने की आवश्यकता नहीं उनके नयी कविता नये मनुष्य की प्रतिष्ठा शीर्षक निबन्ध का अधिक महत्त्व है।

नये मनुष्य की बात करना प्रमाद से भागना नहीं है। क्योंकि भावी युग के मानव की विविध सम्भावनाओं की चिन्ता करना आज के विश्वव्यापी

नैतिक सकट का स्वाभाविक परिणाम है। इस सकट के मूल मे पारस्परिक अनास्था और भय निहित है, मनुष्य के भीतर की बर्बरता कब बाह्यारोपित नैतिक बन्धनो को तोड कर महानाश की स्थिति उत्पन्न करदे, इसकी आशका छिपी है" (नयी कविता, अक ४, पृष्ठ ११)।

यहाँ मनुष्य के अस्तित्व की चिन्ता पर बल है, अनास्था और भय की निन्दा है। पुन आगे देखिए—

"यह इसलिए कि मनुष्य को मनुष्य के ही अन्दर स्थित सद्भाव के प्रति *अडिग, अकुण्ठ विश्वास नही रहा है समस्या का समाधान सम्भवत* इसी में है कि नए भावस्तर पर मनुष्य की मनुष्य के प्रति सहज आस्था जागरित हो—इतनी विशाल, इतनी प्रगाढ आस्था जिसे अन्तरिक्ष मे स्थित ग्रहो उपग्रहो की विजय का दर्प या इस पृथ्वी के विघात की भौतिक यात्रिक सामर्थ्य भी तोड न सके।"

सामान्य प्रयोगवादी निराशावाद और अनास्थावाद के यह स्वर विरुद्ध है *अत प्रशसनीय है। और* आगे पढिए—

"आस्था के इस नव जागरण म प्रत्येक देश के नये चिन्तक साहित्यकार या कलाकार का अपना योग होगा, यह असदिग्ध है क्योकि वह मानवमनो-*जगत का सूक्ष्म पर्यवेक्षक, सग्रहक, घटक या निर्माता* रहा है, • शेली ने यदि कवि को विधायक • की सज्ञा दी तो वह इसी अर्थ मे दी है" (वही)

यह स्वर लक्ष्मीकान्त के प्रलाप से भिन है, यह लक्ष्य करने योग्य तथ्य है। और आगे पढिए—

'नया मनुष्य रूढिग्रस्त चेतना से मुक्त, मानवमूल्य के रूप मे स्वातत्र्य के प्रति सजग, अपने भीतर अनारोपित सामाजिक दायित्व का स्वय अनुभव करने वाला, समाज को समस्त मानवता के हित मे परिवर्तित करके नया रूप देने के लिए कृतसकल्प, कुटिल स्वार्थ की भावना से विरत, मानवमात्र के प्रति स्वाभाविक सहअनुभूति से युक्त अपीडक, सत्यनिष्ठ और विवेकसम्पन्न होगा" (वही, पृष्ठ १२)

क्या इसी मानवमूर्ति की अभिव्यजना तथाकथित प्रयोगवाद मे हुई है? इसका स्पष्ट उत्तर यह है कि अब तक तो नहीं हुई, हां भविष्य मे जगदीश गुप्त के परिवर्तन को देखकर अवश्य आशा हो रही है।

रचना-प्रक्रिया—प्रयोगवादी चिंतन के सामान्य परिचय के बाद प्रयोग-वादी कवियो की मानसिक स्थितियो पर विचार करना चाहिए। 'बुद्धि के बाद मन' की परख करना उपयुक्त ही है। तारसप्तक, तथा द्वितीय सप्तक तथा अज्ञेय के इत्यलम् की परवर्ती रचनाओ से एक बात स्पष्ट है कि प्रयोगवाद छायावादी और प्रगतिवादी भावुकता का विरोधी है। प्रयोगवाद मे चिन्तन अथवा बौद्धिक धारणाओ को अधिक अभिव्यक्ति मिली है। एक वाक्य मे इस कविता मे डीइमोशनलाइजेशन अथवा 'भावविमुखतावाद' अधिक है। यो तो भाव का अस्तित्व किसी न किसी रूप मे प्रत्येक 'कल्पना' और यहाँ तक कि बौद्धिक धारणाओ (concepts) की पृष्ठभूमि मे यत्किंचित देखा जा सकता है किन्तु प्रधानता से निर्णय के सिद्धात के अनुसार प्रयोगवाद मे रस भाव भावशबलता आदि के स्थान पर 'चितनात्मकता' अधिक पाई जाती है। रसवादी काव्य मे जो तल्लीनता की अनुभूति होती है वह इस काव्य मे नही मिलती एक 'बौद्धिक जागरूकता" को रक्षा कवि सर्वत्र करते दिखाई पडते हैं। उसमे 'रसमग्न' करने के स्थान पर 'प्रभाव' डालने की प्रवृत्ति अधिक है। प्राचीन भाषा मे उसमे 'असलक्ष्यक्रमव्यग्यध्वनि' के स्थान पर 'सलक्ष्यक्रम व्यग्यध्वनि' अधिक है। उसमे 'भाव' से अधिक 'वस्तु व्यजना" अधिक हुई है कितु यह स्वाभावोक्ति' अथवा 'यथावस्तुवर्णन' के स्थान पर 'अविवक्षितवाच्यध्वनि तथा 'अत्यन्ततिरस्कृतवाच्यध्वनि" के रूप मे अधिक मिलती है। जब ध्वनिकार' ने भाव, वस्तु और अलकार इन तीन रूपो मे काव्य विषय को स्वीकार किया था, तब समस्या आज से कुछ मिलती जुलती थी। प्रश्न यह था कि उक्तिवैचित्र्य (वक्रोक्ति-सामान्य अर्थ मे), स्वभावोक्ति और भावात्मक उक्ति (रसोक्ति)—इन तीनो को काव्य माना जाय या नही। 'ध्वनिकार' ने इन तीनो को अलकारध्वनि, वस्तुध्वनि और 'रसध्वनि' के रूप मे स्वीकार कर लिया किन्तु अपनी ओर से यह स्पष्ट कहा कि 'रसध्वनि' ही श्रेष्ठ है क्योंकि उसमे चित पूर्णत द्रवित होता है और 'आनन्द' अधिक मिलता है।

'छायावाद और प्रगतिवाद के रूप मे 'रसवाद' विभिन्न रूपो मे जीवित रहा, गीतकारो और प्रबन्धकाव्यकारो की रचनाओ मे भी उसकी प्रधानता है कितु प्रयोगवाद' मे 'ध्वनि' के अन्य रूप ही अधिक मिलते हैं। 'अधिक' इसलिए कि प्रयोगवाद मे भी यत्रतत्र 'रसोक्तियाँ' मिल जाती हैं। रसवादी काव्य मे एक भाव को विभिन्न भावो से तबतक सपुष्ट किया जाता है, जबतक वह पाठक या श्रोता को तन्मय न करदे, यह हम कह चुके हैं। इस प्रवृत्ति के

स्थान पर 'प्रयोगवाद' मे तटस्थ होकर अपनी प्रत्येक मानसिक स्थिति को आँकने की प्रवृत्ति अधिक है। कभी यह 'अनुभूति' एक क्षण की ही होती है, कवि उसे आँककर फिर किसी ऐसे 'क्षण' की प्रतीक्षा करता है, जब उसे पुन कोई नयी अनुभूति मिले। कभी किसी विशिष्ट मानसिक स्थिति मे वह प्राकृतिक दृश्यों पर विचार करता है, कभी वह अपनी ही चेतना के सूत्र सुलझाने मे लग जाता है, कभी वह अपनी धारणाओ की घोषणा करता है, कभी प्रतिपक्षियो पर व्यग्य करता है, कभी वस्तुओ को इस दृष्टि से देखने का प्रयत्न करता है, जिस दृष्टि से अबतक न देखा गया हो। ये विभिन्न स्थितियाँ प्रयोगवाद मे मिलती हैं।

'इत्यलम्' मे बहुत सी रचनाएँ भाव के स्पर्श से आन्दोलित मिलती हैं, 'परम्परा से यह काव्य' अधिक दूर नही लगता—

क्षणभर सम्मोहन छा जाए
क्षणभर स्तम्भित होजाए यह, अधुनातन जीवन का सकुल।
ज्ञान रूढि की अनमिट लीकें, हृत्पट से पल भर जावें धुल।
मेरा यह आन्दोलित मानस, एक निमिष निश्चल होजाए !
क्षणभर सम्मोहन छा जाए !

"आज थका हिम हारिल मेरा", "ओ मेरे दिल", "उड चल हारिल", "जब-जब पीडा मन मे उमगी" आदि रचनाओ मे 'रस' अवश्य है। कोरे चमत्कार की ओर कवि की प्रवृत्ति नही प्रतीत होती। किन्तु 'वस्तु व्यजना' मे कवि नवीन दृष्टि का अवश्य प्रयोग करता है, यह 'दृष्टि' स्वस्थ नही है, वह स्पष्टत वर्जनाग्रस्त प्रतीत होती है, 'भूमि के कम्पित उरोजो' की चर्चा हो चुकी है। उपमाओ मे नग्नता 'इत्यलम्' मे स्पष्ट दिखाई पडती है—

वासना के पक सी फैली हुई थी,
धारयित्री सत्य सी निर्लज्ज, नगी औ समर्पित !

'इत्यलम्' की भाषा मे 'गद्यमयता' की प्रवृत्ति बहुत अधिक है, इसका कारण आवेग मे न बहकर कवि अत्यधिक 'तटस्थता' बरतता है—

"यद्यपि अधकार के जागरूक प्रहरी का दिनारम्भ मे अचेत होना ही जीवन की 'कृतसम्पूर्त्ति है।

और उप किरण के स्पर्श पर क्रौंच की एकाकिनी पुकार तो आगमिष्यत् के लिए आश्वासन की प्रेरणा आलोक की प्रशस्ति है।

यद्यपितु परम रहस्य के ससर्ग के उपरान्त समाधि उन्मेष है।"

यह प्रवत्ति गद्यकाव्य को जन्म देती है और बाद मे यह प्रवृत्ति अनय के अनुगामियो म बढती ही गई है। इससे साफ झलकता है, कि ये लोग विद्वान भले ही हो पर कवि नही हैं ये विद्वा स न कवय । काव्यभाषा की अत्यधिक अलकृति अर्थात भाषा मे उपचारवक्रता की अधिकता के बाद ऊबकर गद्यमयता भी कुछ समय तक प्रिय लग सकती है परन्तु परिष्कार का अभाव और काव्य म व्यावहारिक भाषा का प्रयोग चल नही सकता। वास्तविकता यह है कि काव्य की भाषा और गद्य की भाषा अलग ही रहती है हाँ गद्य म भी काव्य होता है होना चाहिए परन्तु उसके लिए काव्यभाषा की निन्दा व्यथ है।

वस्तु के सुन्दर असुन्दर सभी रूप—अपनी चेतना मे मग्न कवि एक चिन्तनात्मक स्थिति मे वस्तु का चित्रण करते समय अवधान मे आने वाले सभी रूपो को देखता है और तटस्थता से देखता है आवेग को अलग रखता है—यथा उष काल की भव्यशान्ति मे अनय एक अनाहूतकिरण ओस मीनारत्तोड से मुल्ला का आह्वान गली मे पिल्ले की रिरियाहट, छप्पर म शिशु का रदन नीलाकाश मे दो ग्रह आदि को देखता सुनता है और अन्त म सोचता है कि इन सब रूपो म उसी का अस्तित्त्व मूर्तित तो नही हो रहा है—

> मैं ही हू वह पदाक्रान्त रिरियाता कुत्ता
> मैं ही वह मीनार शिखर का प्रार्थी मुल्ला।

यहाँ पाठक किसी आवेग मे मग्न नही हो सकता अपितु वह कवि के साथ कवि के अनुभव मे अवश्य शरीक हो सकता है और फिर भी तटस्थ बना रह सकता है। वस्तु के सौन्दर्य म भी कवि पाठक को मग्न नही करना चाहता वह केवल अपने दृष्टिकोण से वस्तुस्थिति को देखने की उत्सुकता उत्पन्न करने का प्रयत्न करता है। इसलिए मैंने यह कहा कि प्रयोगवाद समप्रत' डीइमाशनलाइज करता है चिन्तक की मुद्रा म वह अधिक रहता है अथवा प्राकृतिक दृश्यो म वह चित्रकार बनता है।

यही प्रवत्ति शिशिर की राका निशा पाक की बेंच ककरीट का पोच आदि मे दिखाई पडती है। कहीं भाव का स्पश अधिक दिखाई पडता है यथा चहरा उदास आशी बीरबहू आदि म। कहा केवल किसी 'विचार' का ही चित्रण है यथा मिट्टी ही ईहा म। कहीं तथ्यकथन मात्र है विरोधाभास के ढग पर—

उड बगले चले सारस हरस छाया किसानो म।
वरस भर की नयी उम्मी‍ छायी है बरसने के तरानो में।

ऐसी रचनाओ को शायद ही प्रतिनिधि प्रयोगवादी रचना माना जाए यह शुद्ध प्रगतिवाद है।

शमशेर प्रगतिवादी हैं परन्तु शैली की नवीनता के वह प्रतिनिर्वाहक हैं अत उनमे भावविमुखतावाद अधिक मिलता है। शमशेर के चित्रण अधिक आकर्षक हैं अलकारध्वनि का बिम्बग्राही रूप उनमे अधिक है। शमशेर का प्रयत्न यह है कि हर चीज की एक अपनी भाषा होती है उसी का प्रयोग किया जाय। इस प्रयत्न में प्रत्येक भावना को प्रत्येक वस्तु को एक नयी भाषा देने से रूप विधान तो आकर्षक हो गया है किन्तु यह काव्य हृदय को आन्दोलित नही करता—

बात बोलेगी हम नही
भेद खोलेगी बात ही।
सत्य का मुख झूठ की आखें क्या देखें
सत्य का रुख समय का रुख है सत्य ही सुख है सत्य ही सुख।

जहा रूप चित्रण पर अधिक ध्यान दिया गया है वहाँ काव्य अपनी प्रकृत पद्धति पर चलता है—

मौन सन्ध्या का दिये टीका
रात काली आगयी
सामने ऊपर उठाये हाथ सा पथ बढ गया।

शमशेर ने नवीन शैली मे प्रगतिवादी भावनाओ को ही व्यक्त किया है अत उनका प्रयोगवाद प्रगतिवादी है वह क्षणमानसिक स्थितियो के कवि नही हैं। उन्होने अलग अलग ध्वनियो क्रियाओ भावो और चेष्टाओ के लिए एक नूतन भाषा का आविष्कार किया है इससे यह कला बडी बारीक होगई है परन्तु चित्रणो मे ही उन्हे सफलता मिली है भाव वर्णन म कम—

तरु गिरा
जा—
झुक गया था गहन
पर्याय लिए।

यहाँ प्रत्येक शब्द का प्रयोग स्वतन्त्र है और भिन्न भिन्न स्थितिया का बिम्ब उपस्थित करने का प्रयत्न करता प्रतीत हुआ। शमशेर इस नूतन शब्द कला में प्रवीणतम कवि माने जात हैं।

नरेशकुमार मेहता भी प्रगतिवादी प्रयोगवाद के अनुयायी हैं। चित्रण-शक्ति मेहता म खूब है नूतन उपमानविधान के साथ जन-जीवन को देखने की प्रवृत्ति भी उनमे अधिक है—

> गोमती तट दूर पासन रेख सा वह बास झुरमुट
> शरद दुपहर के कपोनो पर उडी वह धूप की लट
> जन के नग्न ठड वदन पर कुहरा झुका नहर पीना चाहता है।
> सामने के शीत नभ म आयरन ब्रिज की कमानी
> बाह मस्जिद की बिछी है।

मेहता की द्वितीय सप्तक की रचनाओ म छायावादी सौदय दृष्टि की परम्परा दिखाई पडती है। उनमे रिरियाते कुत्ता और मूर्तसिचित मृत्तिका के वक्ष म गदहा जसे दृश्या को न देखकर किरनधनुआ नीलमवर्णी म से कुकुम के स्वर झील मे बरसते स्वण आदि को अधिक देखा गया है। अलकारो के नए रूप पर मेहता ने अधिक ध्यान दिया यह कोई अनुचित बात नही—

> सोने की वह मेघ चील
> अपने चमकील पखा म ले अधकार अब बैठ गइ दिन क अडे पर।
> नदी वधू की नथ का मोती चील न गयी।
> गगन-नीड से सूरज ग्वाला हाक रहा है दिन की गायें।
> नभ का नीलासन चुप है। दिशि ने कधो पर सिरधर कर।

रूपक और मानवीकरण का ही यहाँ चमत्कार है। नरेश मेहता ने समयदेवता का उक्त प्रकृति चित्रण से प्रारम्भ कर लम्बी कविता लिखी है इसम यह प्रमाणित होता है कि मुक्तछन्द अलकृत शैली मे प्रगतिवाद अनय के हाथा ही सम्पादित हुआ है यह आश्चय का विषय है कि अनय फिर भी उसे 'मृत कहते हैं।

रघुवीरसहाय के प्रकृति चित्रणो मे अलकृतिकम किन्तु जन जीवन को देखने की प्रवृत्ति पर्याप्त है। किन्तु भला' कोणिा' और अनिश्चय शीषक रचनाआ म शैली का चमत्कार उत्पन्न करने का प्रयत्न अधिक है। अनिश्चय म दूर तक पाठक को यह आशा बँधाकर कि कवि कुछ कहने हो जा रहा है अन्त म सहसा कह उठता है—

> लो सुनो इतना ही कहना है सुनो
> तुम से मुझ
> किन्तु ठहरो तो शायद इससे भी अच्छी कोई बात याद आजाए।

यानी रघुवीर सहाय की रचनाओ मे भावविमुखता अधिक है।

भारती धमवीर म रोमानियत या रगीनी कम से कम द्वितीय सप्तक की रचनाओ म अधिक मिलती है। अत प्रयोगवाद की प्रतिनिधि रचनाए य नही है। अधायुग की रचनाए तथा ठण्डा लोहा की कतिपय रचनाए प्रयोगवादी मानसिक स्थिति का अधिक प्रतिनिधित्व करती है। भारती मे बहुत परिवत्तन हुए हैं कभी समाजवाद का दौर था शायद इसीलिए प्रगतिवाद का की अब विरोध उन्हे करना पडा। उनके जमाने म आलोचना प्रतिक्रियावाद का वे द्र बन गई थी। भारती की कविताओ मे इस तुमुल कोलाहल की ध्वनि भी है और कही कहीं अपने मन की गुनावी रगीनी का भी वणन है कही अनास्था टूट लघुता कुठा आदि की भी व्यजना है भारती मध्यवर्गीय द्वन्द्व ग्रस्त मनोवत्ति का भलीभाँति प्रतिनिधित्व करते हैं—

लघुता —मैं रथ का टूटा पहिया हू
लेकिन मुझे फेंको मत
क्या जाने इस दुरूह चक्रव्यूह मे
अक्षौहिणी सेनाओ को चनौती देता हुआ
कोई दुस्साहसी अभिम यु आकर घिर जाय
तब मे रथ का टूटा हुआ पहिया
उसके हाथो म ब्रह्मास्त्रो से लोहा ले सकता हूँ।

यह लघुता लक्ष्मीका त वमा के अनुसार नयी प्रवृत्ति है सौ दय बोध का नया स्तर। किन्तु भारती अभिमन्यु न बनकर रथ का टूटा पहिया क्या बनना चाहते हैं यह समझ म नही आता हाँ पूँजीवाद के विरोधी प्रगतिवाद के शत्रु बनकर वह यदि पूँजीवादी रथ के अश्व बनना चाहते तब बात अधिक सायक होती।

काव्य की दृष्टि से भारती मे भावोच्छ्वास अधिक मिलता है प्रयोगवादियो की प्रिय निराशा और टूटने की प्रक्रिया की व्यजना में भी आवेग भारती मे बराबर मिलता है—

ठण्डा लोहा ठण्डा लोहा ठण्डा लोहा।
मेरी दुखती हुई रगो पर ठण्डा लोहा।
मेरी स्वप्न भरी पलको पर
मेरे गीत भरे होठो पर
मेरी दर्द भरी आत्मा पर

स्वप्न नही अब गीत नही अब दर्द नही अब
एक पर्त्त ठण्डे लोहे की !

किन्तु 'भारती' इस उक्त आरोपित निराशा के साथ साथ 'सृजन की थकन भूल जा देवता' जैसी रचनाएँ भी प्रस्तुत करते हैं और 'नवनिर्माण' के लिए प्रेरणा देते हैं—

अभी तो पडी है धरा अधबनी
अभी तो पलक मे नही खिल सकी
अभी अधखिली ज्योत्स्ना की कली
नहीं जिन्दगी की सुरभि मे सनी !
अभी स्वर्ग की नीव का भी पता !
सृजन की थकन भूल जा देवता !

किन्तु 'ठण्डा लोहा' मे भारती की उन्ही रचनाओ मे 'कवित्व' निखरा है, जिनमे रोमानियत या 'रमणच्छा' अधिक व्यक्त हुई है प्रम का मादक रूप भारती को अधिक प्रिय है,—

आज छोड सब कामकाज तुम बैठो मेरे पास
आज खुदकशी करने पर आमादा है आकाश !

—

ये शरद के चांद से उजले धुले से पाँव मेरी गोद मे !
चुम्बना की पाखुरी के दो जवान गुलाब मेरी गोद मे !

—

तुम कितनी सुन्दर लगती हो जब तुम हो जाती हो उदास !
मिसरी के होठो पर सूखी किन अरमानो की विकल प्यास !

—

ऐसी रचनाओ मे परम्परागत रगीनी ही मिलती है, रचना प्रक्रिया म भी कोई नवीनता नही मिलती किन्तु इनमे कविता' अवश्य है।

प्रतिनिधि मानसिक स्थितियाँ और रचनाप्रक्रिया—लक्ष्मीकान्त वर्मा 'नयीकविता' के भाष्यकार हैं अत उनकी रचनाओ को ध्यान से देखना चाहिए। 'ठण्डा लोहा' की तरह वर्मा जी की 'छाती मे तेजधार वाले फौलाद की नोंक' गडी है—किन्तु 'फौलाद की छाती लिए वह कहते हैं कि वह जीवित हैं !

बिम्ब और व्यग्य—लक्ष्मीकात भावविमुखवादी कवि हैं वह चित्रण मे बिम्बो की सृष्टि का और इन धारणाओ की अभिव्यक्ति मे व्यग्य का प्रयोग अधिक करते हैं और इस पद्धति के प्रयोग मे किसी प्रकार का अनुशासन नही बरतते—कही प्रतीक पद्धति भी आजमाते हैं। इतिहास और कीडा शीर्षक उनकी कविता म प्रतीक का प्रयोग व्यग्य की सृष्टि के लिए किया गया है जो आवश्यक है — ए साइक्लोपेडिया के पन्नो मे एक जिस्म कि जिसमे दिल नही उस दिन अचानक पिस गया एक खून का धब्बा नेपोलियन के मस्तक पर रह गया यह सत्य कि जिसने उस किताब को खोला वह कोई फौजी जेनरल नही था और जो दबकर मर गया वह हृदयहीन कीडा था। (नयी कविता अक १)

बिम्बसृष्टि—मैं देख रहा हू दूर बहुत दूर
धूल में टायर की छाप सी उभर
एक गाढी काली जजीर मे
दो बादलो के टुकड फस गए हैं।

इसमे कोई नवीन काव्य प्रक्रिया नही है केवल उपमान विधान नवीन है जो प्रयोगवादी शैली की प्रमुख विशेषता है।

अनगिन बौनो की गठरी को सिर पर लादे
कधा पर बरसाती लम्बी हाथो मे बरसाती जूते
गाठ गाठ तक पण्ट उठाए कालर बांध बाँह सकेले
गठरी म से काले बौने मुक्त हो गए
चौंक गया मैं शोर शराबा
देखा नभ पर घिर आए थे काले बादल।

बूँदो को बौनो की उपमा चाहे जितनी भद्दी हो परन्तु उपमा तो है बिम्ब तो मन मे उतरता है और साथ ही वर्मा जी के लघुतावाद अथवा बौनावाद की भी शर्त पूरी होती है। उपमान विधान मे सादृश्य और साधर्म्य पर ध्यान न देने से वर्मा जी के चित्रण हास्यास्पद हो जाते हैं। व्यग्य करते हैं तो मजाक बन जाता है तिक्तता उभर नही पाती।

चीटी चारा और तीतर म चीटियो की चीनी डालने का वर्णन कर फिर तीतर छोडने का वर्णन करते हैं—

तीतर बाज उगा गद खूराक ढूँढते
एक तमाशा,

(वाह वाह वाह बेटा वाह।
एक चोट एक चोट और
युद्ध भ्रान्ति सत्रांति व्याप रहा है चित्त)

चीटी से जनता की ओर तीतर से युद्ध की ओर संकेत किया है परन्तु युद्ध-वादियो के प्रति घृणा पैदा नहीं हो सकी क्योंकि लक्ष्मीकान्त की ऐसी रचनाओ मे उनके द्वारा विज्ञापित तिक्तता या घृणा का वर्णन चुटकले जैसा बन जाता है। आत्मपरिचय मे भी व्यग्य है परन्तु वह भी हास्यास्पद हो गया है अत उसका अभिधापरक अर्थ जानबूझ कर ग्रहण किया गया है—

लक्ष्मीकान्त बाल बिखरे गाल पिचके
निष्प्रभ क्लात आदि से अन्त
केवल अतुकान्त।

यह कार्टूननुमा चित्रण आज के क्लांत नवयुवको के प्रति न तो सहानुभूति जगा पाता है न क्लांति के कारणों के प्रति बोध—लक्ष्मीकान्त की कविता म पत्रकारिता अधिक आ जाती है।

प्रतीकात्मकता—कही लक्ष्मीकान्त वर्मा किसी वस्तु के चित्रण मे रेखाचित्रात्मक पद्धति अपना कर चलते हैं और उस स्थिति मे अपने 'मन की दशा को संकेतित करने का प्रयत्न करते हैं। इस संकेत कार्य के लिए पूरी परिस्थिति या वर्ण्यवस्तु प्रतीक के रूप मे बदल जाती है। इस प्रकार तीन मोर्चों पर कवि एक साथ काम करता दीखता है वस्तु का रेखाचित्र, मन की दशा जिसमे इन्द्रियों पर पडने वाले प्रभावो से लेकर चेतना की आतरिक उलझन तिक्तता व्यथा आदि भी हैं तथा वस्तु को मन के सम्मुख प्रतीकात्मक रूप में प्रस्तुत करना। रेखाचित्र देते समय कवि की उपमाओ से साफ प्रतीत होता है कि कवि असतुष्ट है ऐसी रचनाओ को भी वस्तु ध्वनि के मापदण्ड पर परखा जा सकता है—

स्टोव आज ठण्डा है हल्के फीरोजी रग की चूडियो का साया,
धानिया चूनर मे लिपटी तुम्हारी काया लक्ष्मी सावित्री, दमयन्ती
बेटरहाफ।

इस प्रकार रेखाचित्र आगे बढता है फिर कवि अपने मन की स्थिति बताता है—

आज वह बीता रस पिया विष जिया दश
तरल हो गया कहो
क्योंकि महीने की आखिरी तारीख है हर दिन
ऐस्थमा के रोगी सा यह स्टोव

इस बीच कवि का पुत्र चिल्लाता है तो उसे भी यथावत चित्रित करने का प्रयत्न है

मा   चा ऽऽऽऽ की ऽऽऽऽ प्याली
पा   पा ऽऽऽ की ऽऽऽ जेब खाली
श   श   श
स्टोव आज ठण्डा है !

कविता के अत म पुन कवि अपने मन की गहराई मे डूबता है। ठण्डा स्टोव खाली चा का टिन तथा शराब की बोतल को वह प्रेरणादायक के रूप म ग्रहण करता है—

स्टोव यदि आज ठण्डा है
तो वही आच यह मन की
इतनी उर्वरा है दद को जन्म दे
जो दे जाती है सृजन सम्बोधन समपण मौनतपण !

प्रयागवाद राज व रोज की सामान्य और महत्वहीन वस्तुओ और मानसिक स्थितियो की ओर अधिक देखता है उन्हे प्रतीक के रूप म परिणत कर अपने मन की कुछ खास स्थितियो दद अस्तित्व की आशका कुण्ठा तिक्तता लक्ष्यहीन असतोष को सकेतित करता है भाव के उच्छवास को दबाता है भीतर जहाँ जो घमडन टटन उलझन उठती है उसकी ओर सकेत भर कर देना पर्याप्त मानता है।

प्रश्न होगा कि राज व रोज की चीजो को यदि प्रतीक रूप म ही ग्रहण किया जाय तो उनस आशा उत्साह आनन्द आत्मविश्वास लक्ष्ययुक्त असतोष आदि को भी ग्रहण किया जा सकता है किन्तु लक्ष्मीकान्त वर्मा जसे कवि इसे यथाथ के विरुद्ध मानते हैं। पुन प्रश्न होगा कि आशा यदि आज धूमिल भी होगइ है एसा भी यदि मान लिया जाय तो उक्त कविता को पढकर शोक या असतोष का भाव चित्त को द्रवित क्यो नहा कर पाता इसका उत्तर यह है कि कवि ध्वनी और उपमाना म पाठक क मन को ग्रस्त

कर लेते हैं, मूल अनुभूति चक्करदार क्रम से व्यजित होने के कारण पाठक तक पहुंचते हांफने लगती है। अत. यह काव्य-प्रक्रिया 'नवीन' अवश्य है, यो अंगरेजी मे यह बहुत पहले से ही प्रचलित है, परन्तु इससे पाठक को अत्यधिक अवधान का अपव्यय करना पडता है अत. ये रचनाएँ 'कौतुक' या 'प्रहेलिका' बनकर रह जाती हैं।

जगदीश गुप्त मे "उलझी हुई सवेदनाएँ" अपेक्षाकृत कम दिखाई पडती हैं। उनकी 'पहेली' सी लगने वाली रचनाओ मे भी 'ध्वनि' का रूप अधिक स्पष्ट है। वार्तालापात्मक शैली मे कवि मुट्ठियां बन्द कर प्रेमिका से पूछता है कि बताओ, इनमे क्या है ? बताया गया कि इनमे "दर्द" है ! कवि कामना करता है—"किसी दिन काश खुल जातीं, कही यह मुट्ठियां मेरी, लगा मजबूरियों को आग, ले आना तुम्हें मैं खींच अपनी जिन्दगी के पास" किन्तु कवि 'मजबूरी' मे ही कविता को समाप्त कर देता है—

> मुझे अब कुछ नही कहना
> कहूँ भी क्या, कि जब मजबूरियों के बीच ही रहना !

भले ही 'मजबूरी' आरोपित हो, परन्तु वह स्पष्टत. ध्वनित हुई है। यही स्पष्टता "एक क्षण को मान लो" मे एक 'सम्भावना' के चित्रण मे मिलती है। जगदीश गुप्त के "नाव के पाँव" नामक काव्यसग्रह मे प्रकृति चित्रणो मे भी प्रयोगवादी साम्प्रदायिकता अधिक नही मिलती, उपमानविधान मे सादृश्य और साधर्म्य का भी उन्होने अधिक ध्यान रखा है। 'व्यग्य' से कही अधिक सफलता उन्हे चित्रणो मे मिली है।

विजयदेवनारायण 'साही' की रचनाओ मे भाषण का पुट अधिक दिखाई पडता है, प्रगतिवाद का विरोध करने के कारण आपको अच्छी ख्याति सुलभ हुई है ! फिर भी 'साही' मे *'पिण्ड मे ब्रह्माण्डदर्शन' यानी अपनी गहराइयों* मे डूबकर जगत् को देखने की प्रवृत्ति बहुत कम है, जन-जीवन के चित्रण में उनमे पर्याप्त 'आब्जैक्टिविटी' मिलती है। "मैं आज सरल धरती का अभिलाषी" "रात मे गांव" आदि रचनाएँ प्रमाण हैं। जहां साम्प्रदायिक "दर्द" का वर्णन है, वहां 'स्पष्टता' और 'आवेग' दोनो मिलते हैं, अनबूझी शैली भी नही दिखाई पडती—

> अगर केवल 'दर्द' ही होता, तो उसे सह डालता !
> यह अतल आघात से भी तीव्र,
> यह अतीन्द्रिय आँधियों से भी अधिक उद्दाम, प्राणदायिन ज्वाल !

और कब तक धमनियों के कारा में धारे रहूँ यह दर्द की देवापगा ?
और कब तक मुक्ति प्यासी अस्थियों की चीख भी सुनता रहूँ ?
खोल दो मेरी शिराएँ खोल दो तोड़ दो मेरी परिधियाँ तोड़ दो।

यह पुरानी मुक्तछन्द वाली शैली है कहीं-कहीं सीधा भाषण है—

ओ महाप्रलय के बाद नये उगते शिखरो
है तुम्हें कसम इन ध्वस्त विन्ध्यमालाओं की
मत शीश झुकाना तुम अपना !

'हिमालय के आँसू' मे भी यही प्रवृत्ति है। 'संग-संग के गान' में गीतकारों का अनुसरण है। चित्रणों मे कल्पना का प्रयोग एकदम असयत और अस्फुट नहीं है—

सो रहा है गाँव खेतियां की अनगिनत मेड़ें
कि धरती के दुलारे वक्ष को उँगलियों से पकड़
बच्चों की सलोनी नींद मे सुकुमार
सो रहा है गाँव !

—

सोन मछली सा अधरा रात को पाता हुआ
जल रहा है किसी खँडहर के झरोखे पर चिराग।

जहाँ फ्रसी अथवा मन की किसी देश काल निरपेक्ष तरग का वर्णन है वहाँ भी अटपटापन नहीं है जो लक्ष्मीकान्त म हम देख चुके हैं—

इधर तीन दिनों से लेटते ही खाट पर तीव्र इच्छा होती है।
शून्य को पकड़ कर मुट्ठियों म भींच लूँ नारगी से चाँद को।
रसभरी से तारों को केवड़ म बसी हुई किरनों को
पजों म पकड़ कर कस कर निचोडूँ !

किन्तु यह साही का वास्तविक रूप नहीं है उनकी वास्तविक छवि भाषणपरक रचनाओं मे अधिक मिलती है अटपटापन कम होने पर भी 'साही' में कवि प्रतिभा का अश कम क्षुब्ध नेता का व्यक्तित्व अधिक दिखाई पड़ता है।

कुँअरनारायण म वविध्य अधिक मिलता है वह कवि को 'बहुरूपिया' मानते भी हैं। (तृतीय सप्तक की भूमिका)। कुँअर' पर 'बुद्धि' और गद्य का अथवा गद्यात्मक बुद्धि का अथवा बुद्ध्यात्मक गद्य का अधिक

प्रभाव है ! किन्तु "वृद्धि" और "गद्य" के आधिक्य से "अन्विति" की हानि देखकर पाठक विस्मित हो उठता है—

सत्य से कही अधिक स्वप्न वह गहरा था
प्राण जिन प्रपचो में एक नीद ठहरा था ।
भग्नावशेषो की दुर्व्यवस्थ छायाएँ
झुलसी हुई लपटो सी ईर्ष्यालु
जीवन के शुद्ध आकर्षण पर गुदी हुई
काल की समस्त माँग, बूढी दुनिया अपग !

अन्तिम पक्ति का अन्य पक्तियो से सम्बन्ध बैठाने मे स्पष्टत कठिनाई होगी, जिस 'प्रपच' या 'स्वप्न' का यहाँ चित्रण किया गया है, वह भी अस्फुट है—इसी तरह—

वस्तु का दर्पण उधर सुनसान
जो अपनो बिना वीरान,
इधर धूसर बुद्धि जो अति जिन्दगी के प्रति
उठाती स्वप्न की प्रतिध्वनि !

'वस्तु' को 'दर्पण' बनाना तो ठीक था परन्तु बाद मे पुन. अस्पष्टता आगई है किन्तु जहाँ यह दोष नही है, वहाँ कवित्व उभरता हुआ लगता है, जैसे "खामोशी" बनाम हलचल" के चित्रण मे । क्रोचे ने बडे पते की बात कही थी कि यदि अभिव्यक्ति मे अस्पष्टता या उलझन है तो समझना चाहिए कि कवि की अतश्चेतना मे अनुभूति स्पष्ट नही है । जब तक मन मे अनुभव या वस्तु का बिम्ब स्वच्छतः अवतरित न हो जाय तब तक लिखने की कोशिश करने का अर्थ है, सरस्वती के बिना आगमन के ही यह समझ बैठना कि वह आगई है । प्रत्येक नए अनुभव का उदय पहले कुहासे के साथ होता है, धूलि को बैठ जाने देना, जरूरी है अन्यथा राम से मिलने आए भरत के मुख पर निश्चित भाव क्या हैं कि यह कैसे स्पष्ट होगा !

अत धारणाओ की व्यजना मे 'कुँअर' जी को उतनी सफलता नही मिली, जितनी उन्हे चित्रणो मे मिली है । 'चित्रण' मे 'स्वाभावोक्ति' की पद्धति अपनाने से कवि "दायित्व" को अधिक पूरा कर सका है—"जाडो की एक सुबह" मे यही प्रवृति है ।

चाँदनी सित रात चितकबरी
उसे भूखण्ड की गन्दी सतह पर

खोह से खडहर कपालो मे घसा ज्यो रेंगता मनहूस अँधियारा !

रात चितकबरी की इन पक्तियो मे एद्रिक अनुभव को भलीभाति प्रकट किया है। कुँअर जी मे दद के कारण कुरूपता के दशन की प्रवत्ति अधिक है छायावाद के विरुद्ध चलने की प्रवत्ति का ही शायद यह परिणाम हो—कवि को चादनी ओढ हुए रात बूढी औरत सी लगती है आगे की कल्पना की कुरूपता देखिए यद्यपि है नवीन !

चाद से लुढकी पडी छाया घनी एक बूढी रात ओढ चादनी !
एक फीकी किरण सूजी लाश पर स्वप्न कोई हस रहा आकाश पर।

देह से कुल भूख गायब कुलबुलाती आँत !
खोपडी से देह गायब खिलखिलाते दाँत !

कही कही कवि व्याख्याता शली मे धारणाओ की घोषणा करने लगता है— हम शायद वतमान का असली रूप नही हम कुछ अतीत हैं !

जिस का भावी स्वप्न अभी घटने वाला
हम तुम परिचित हैं अपने लाखो सपनो से !

कुअर नारायण मे दुरूहता और अस्पष्टता उनके प्रशसक बाल कृष्णराव ने भी मानी है यह स्मरणीय है। (नयी कविता ३) निश्चित रूप से कुअर मे साही से अधिक प्रतिभा है ववविध्य भी उनमे अधिक है परतु प्रयोगवादी सकीण कथ्य अपनाए रहने से उनकी ऐसी इच्छाए अवश्य सहानुभूति के योग्य हैं —

पृथ्वी आकर्षित करती है अपनी जडताओ को
पर आकाश प्रकाश न मुक्को मरने देते
सरल मौत वृक्ष की !

समझ म नहीं आता कि ऐसी अभद्र उपमाओ से कवि अपने मन के दद को कसे प्रपणीय बना सकता है ? मानसिक स्थिति यदि गभीर है तो उपमा भी गभीर ही होनी चाहिए। हास्यरस की उपमाएँ प्रयोगवाद में शोक के वणन मे प्राय दे दी गई हैं फलत काव्य हास्यास्पद हो गया है। उपमा म गुण क्रिया रूप और द्रव्य इन सबका जितना अधिक साहश्य होगा बिम्बग्रहण उतना ही यथाथ और आकषक होगा। सौदय अधिकाधिक साहश्य से उत्पन्न होता है न्यूनतम साहश्य से तो प्रत्येक वस्तु से प्रत्येक वस्तु की उपमा दी जा सकती है ! कालिदास ने हिमालय के हिम को शकर के

अट्टहास से उपमा दी थी अब यदि नवीनता' के लिए 'हिम' की उपमा कारखाने मे सग्रहीत 'कुल्फी' से दी जाय तो यह हास्यास्पद होगा।

प्रशसनीय उपमा—इस गली के छोर पर बुनियाद डालो
कोठरी म दीप की लौ सेंकती ठडा सवेरा।
न्ही पता मे कही सोया हुआ है
रूप का गोरा सवेरा।

आशा यह है कि प्रयोगवादी सकीर्णता से कुअर जी ऊपर उठकर 'रूप का गोरा सवेरा' जसे चित्रण अधिक प्रस्तुत करेंगे।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना प्रयोगवाद के प्रतिनिधि कवियो मे शायद न माने जाएँ क्योकि उनम जगदीश गुप्त और लक्ष्मीकान्त वमा के चिन्तन का अस्तित्व नही मिलता। सर्वेश्वर म दद है पर वह व्यापक है वस्तुत उनका 'दद' आग बन कर शीघ्र भडक उठता है अत जो पुसत्वहीनता अन्य प्रयोगवादियो म मिलती है वह सर्वेश्वर मे नही मिलती। यही आग 'व्यग्य' बन कर उनके काव्य को व्यग्यपरक बना देती है। वस्तुत सर्वेश्वर प्रगतिवादी प्रयोगवाद के अनुगामी हैं उनकी सामाजिक दृष्टि स्वस्थ होने के कारण, उनके काव्य मे सवेदनाओ का उलझाव नही हैं—उनके सकेत सरल हैं उनम कलाकार कम कवि अधिक है—

आज पहली बार थकी शीतल हवा ने शीश मेरा उठा कर
चुपचाप अपनी गोद मे रखा और जलते हुए मस्तक पर
कांपता सा हाथ रखकर कहा
सुनो मैं भी पराजित हूँ
सुनो मैं भी बहुत भटकी हूँ
सुनो मेरा भी नही कोई
सुनो मैं भी कहीं अटकी हूँ
पर न जाने क्यो पराजय ने मुझे शीतल किया
और हर भटकाव ने गति दी नही कोई था
इसी से सब हो गये मेरे मैं स्वय को बाँटती ही फिरी।

प्रकृति से स्वस्थ प्ररणाएँ भी ली जा सकती हैं केवल चन्द्रमा को नकली रुपए जैसा देखते रहना अथवा पागल कुत्ते की मौत मरने की लालसा रुग्ण मानसिक स्थितियाँ हैं। सर्वेश्वर इस धारा के विपरीत प्रकृति से स्वस्थ प्ररणाएँ लेते हैं। नए साल की शुभकामनाएँ शीर्षक रचना मे कवि का

'जनवाद देखिए। वह खेतो की मेंडो पर धूल भरे पाँव' को 'कुहरे से लिपटे उस छोटे से गाँव को बैलो की चाल करघे, कोल्हू मछुओ के जाल पकती रोटी बच्चो के शोर सिगरेट की लाशा पर फूलो के ख्याल को', जूड के पूत को और ग्रीटिंग काड लिखने वालो को शुभकामनाए भेजता है, न यहाँ अस्तित्व की आशका है न लघुता की लालसा।

कल्पना के चमत्कार मे भी कवि अटपटी पद्धति न अपना कर केवल रूपविधान मे लोकस्पश भरकर भोर का कितना सरल रूप उतारता है—

सलमे सितारो की काम वाली नीली मखमल का खोल चढा
अम्बर का बडा सिंदौरा उलटा धरती पर नदियो के जल मे
गिरि तरु के शिखरो से ढर-ढर कर सब सेंदुर फैल गया।

इन्द्र नीलमणि महा चषक था सोम रहित उलटा लटका मे भाषा का गौरव अधिक है किन्तु रूप की दृष्टि से सर्वेश्वर हृदय के अधिक निकट प्रतीत होते हैं। कुपाई मारो दुलहिन मे लोक स्पश और भी अधिक है।

सर्वेश्वर के प्रतीक बहुपरिचित हैं जैसे प्रगतिशीलो पर व्यग्य के लिए सूखे पीले पत्तो का प्रतीक और सुबह से शाम तक में ऊँट।

दिखावटी सौन्दय-बोध पर सर्वेश्वर ने बडा कठोर व्यग्य किया है दद और दु ख चिल्लाने वालो की नपु सकता पर कवि कहता है—

भूखी बिल्ली की तरह अपनी गरदन मैं सँकरी हाडी फसाकर
हाथ पैर पटको दीवारो से टकराओ महज छटपटाते जाओ
शायद दया मिल जाय।

इसी तरह शान्ति के पक्ष मे कवि कलाकार और सिपाही की तुलना करता है कि एक तो वे कलाकार थे जो आत्मा की आज्ञा पर मानवता के लिए शिलाएँ, चट्टानें पवत काट काट कर मूर्तियाँ मन्दिर गुफाएँ बनाते थे और आज के ये सिपाही हैं जो नदियो पहाडो बियाबानो मे दूसरो की आना पर चन्द पसो के वास्ते शिलाएँ चट्टानें पवत काट कर रसद हथियार एम्बुलेंस मुर्दागाडियो के लिए सडक बनाते हैं।

सर्वेश्वर प्रमिका को अपने अह से बडी मानते हैं और प्लेटफाम का यथावत चित्रण करके अत मे कहते हैं—

लेकिन मुझ जागना है
क्योंकि आधी रात को कोई माल गाडी

नीद में झूमती, हचकोले खाती, शायद आकर ठहर जाय
सोते हुए अनगिन डिब्बो मे से शायद कोई खुले
शायद कुछ ऐसा मिले, जिसे कल सुबह होने पर-
दूसरो को देना हो !

आप कहेगे कि यह तो 'प्रचार' मात्र है, प्रोपेगेण्डा। यानी यदि इन्हीं शब्दो मे 'अस्तित्व', आशका, 'दर्द', लघुता, आदि की चर्चा होती तब तो यह काव्य होता और क्योंकि यहाँ, कवि मे दूसरो के लिए सोचने, समझने, कुछ करने की भावना है अत यह प्रचार हो गया ! 'प्रगतिवाद' के विरुद्ध अधिकतर तर्क ऐसे ही हैं !

लोग "काठ की घण्टियो" शीर्षक कविता का मर्म बिना समझे ही सर्वेश्वर पर तथाकथित प्रयोगवादी 'कथ्य' का आरोप लगाते हैं, 'काठ की घण्टियो' मे जागरण व्यंजित है, निराशा नही।

इसका अर्थ यह नही कि सर्वेश्वर मे 'दृश्यचित्रण शक्ति' का अभाव है, वह कल्पना का दुरारूढ प्रयोग कम करते हैं, किन्तु कहीं-कहीं कल्पना का चमत्कार चरम सीमा पर पहुँच गया है जैसे "कलरात" शीर्षक कविता मे। जिसमे 'विवेक' को "पेपरवेट", 'दर्द' की 'पृष्ठ' स्मृतियो को "काले कोट का कालर", आकाश को "पिनकुशन" और 'तारो' को 'आल्पीन' बनाकर कागज नत्थी करने की सारा क्रिया अपने मन पर आरोपित की गई हैं और यह अस्वाभाविक भी नही लगता।

अज्ञेय ने सर्वेश्वर के विषय मे लिखा है कि इस कवि मे आन्तरिक अनुशासन और तन्त्र कौशल की कमी है। 'लय' के बिना प्रायः उसकी कविताएँ 'गद्य' बन जाती हैं। परन्तु यह दोष पूरे प्रयोगवाद मे है। अब तो यह 'गद्यकाव्य' या 'पद्यकाव्य' चल ही पडा है अत अब इसे 'पाठ्यकाव्य' ही रहने दीजिए। लोग पढ लेंगे जिन्हे 'गुनगुनाना' होगा, ध्वनि और लय मे बहना होगा, वे गीतकारो की शरण मे जाएँगे ! फिर भी यह प्रसन्नता का विषय है कि अज्ञेय अब अन्विति, 'आन्तरिक अनुशासन' और 'लय' पर बल देने लगे हैं यो 'गद्यमयता' उनमे कम नहीं है। 'प्रवाह' या 'लय' को हिन्दी काव्य से 'अज्ञेय' ने ही छीना था, अब प्रायश्चित करना उचित ही है—

रोपै पेड बबूल को, आम कहाँ ते होय ?

'सर्वेश्वर' से ही कुछ मिलते जुलते 'मदन' वात्स्यायन हैं, जिन्होंने अपने गुरु 'अज्ञेय' के 'वात्स्यायन' नाम को स्वीकार कर लिया है, असली नाम

शायद लक्ष्मीनिवास सिंह है। मदन जी ने अपनी दिलचस्प भूमिका में प्रयोगवादी कविता के विषय मे कुछ बातें बडी रोचक कही हैं जिनमे सच्चाई भी है। मदन प्रयोगवा" के एक अश मे शब्दो के सकस निर्वेग बौद्धिकता और ऊब रस मानते हैं। मदन मज़ाक मे ऐसी रचनाओं को मायावादी कहते हैं। यही नही उन्होने धमवीर भारती की रगीनियत या रगीन नियत को कायावाद कहा है, यह ठीक ही है। मदन गद्यमयता शब्दो के अपव्यय आदि के विरोधी हैं परन्तु नूतन अप्रस्तुतविधान के प्रशसक हैं। मतलब यह कि प्रयोगवाद के विषय मे उनके विचार सतुलित है। मदन के उपमान बड दिलचस्प हैं एक दम जिन्दगी से चुने गए नवीन और गुणासादृश्य पर आधारित।

मदन उषा को जुए की एक बाजी और हारते समय ताश के पत्त से उपमा देते हैं यानी निराशा सम्प्रदाय से वह अलग हैं। वह सूरज को नया दूल्हा शुक्र तारा को नववधू सूरज को इन्जिन का हेडलाइट शुक्रतारा को गाड की रोशनी सा दूर की बनगाडी मे लालटेन सा और जनता के पीछ एम० एल० ए० सा कहते हैं ! !

आचाय शक्ल ने भी वज्ञानिक जगत से रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करने की प्ररणा कवि को दी थी मदन जी इसी परम्परा मे हैं परन्तु अभी जो उपमाओ मे थोडी बहुत अनुपयुक्तता है वह आगे धीरे धीरे कम हो जायगी।

अनुपयुक्तता अभी अवश्य है नायिका के हाथो से मुर्गियो के बच्चो से उपमा देना उचित नही कहा जा सकता। प्रमिका का हाथ हाथ मे हो तो क्या वही स्थिति होती है जो मुर्गी के डनो के नीचे चूजो की ! परन्तु मदन अभी विकास की स्थिति में हैं।

मदन मायावादी प्रयोगवादियो की तरह दाशनिकता नही बघारते यथाथ यथाय रट कर भी यथाय जीवन की उपेक्षा नही करते। सरकारी कारखाने मे कमचारी की ‸चिता शीषक रचना इसका प्रमाण है एक कमचारी वस्तुत क्या अनुभव करता है यह मदन ने भुक्तभोगी होने के नाते स्वय अनुभव किया है प्रत्येक कमचारी इस कविता मे अपनी धडकन पा सकता है—

अफसरो से भरा सरकारी कारखाना
सापो से भरी कोठरी है
आँखें नहीं झपकता

अप्सरा से भरा सरकारी कारखाना
पांव नही टसकते !

मदन' जैसे प्रयोवादियो का भविष्य उज्ज्वल है इसलिए कि वस्तुत मदन जैसे कवि तथाकथित प्रयोगवादी कवियो मे से नही है।

केदारनाथसिंह अपने को बिम्बवादी कवि कहते हैं समाज के प्रगति शील तत्वो और मानव के उच्चतर मूल्या की परख की भी केदार उपेक्षा नहीं करते अत उनके वक्तव्य म जडता नही मिलती। किसी अनुभव को मूर्त्तित करने का प्रयत्न उनकी कला का लक्ष्य है। अनागत का मानवीकरण करके उसे इस रूप म चित्रित किया गया है कि सडक पर निकलने के बाद आपको महसूस होगा कि अनागत कही पास ही है। बिम्बविधान के प्रति जागरूकता के कारण केदार की रचनाओ मे अनछूए तट धूपगन्धी पख टूटे आंधियो के पांव अनाम कूक बधती खुलती निष्काम मुटिठयाँ छनी से निकलते फूल आसू ऋचाएँ गिरे पालो की उदासी जल के आइनो मे कापता मूडोल चाय की प्यालियो मे तरता दिन बादला की टूक-टूक जिजीविषा शीशे के दूधिया धुआ सा व्यक्तित्व फूल सा कापता क्षण आदि बिम्ब प्रस्तुत करने वाले उपमान अधिक हैं। बिम्वविधान के प्रयत्न मे उनके काव्य मे सौदय का कोमल और शालीन रूप खूब निखरा है किन्तु उनकी रचनाओ मे भावोच्छवास की मात्रा अभी बहुत कम है उनमे कलाकार की तटस्थता तो है कवि का द्रवणत्व कम है। बिम्बविधान काव्य के लिए सहायक है किन्तु जिस तरह शमशेर म वह साध्य हो गया है उसी प्रकार यह सम्भव है कि केदारसिंह म भी वह कही साध्य न बन जाए। काव्य मे दिल की सच्चाई की भी आवश्यकता है केवल बिम्बग्रहण महान काव्य की सृष्टि नही करता। जिस मेघदूत को प्रयोगवादी अद्भुत प्रयोग कहते हैं उसमे बहुत सी उपमाए वाल्मीकि की रामायण मे भी हैं और रचना विधान प्रकृति चित्रण आदि का भी एक पटन कालिदास क पूव ही निश्चित हो चुका था किन्तु कालिदास ने पुराने रूपो को भी अपनाया है और नूतन का भी विधान किया है परन्तु मेघदूत की मार्मिकता यक्ष के हार्दिक भावा मे है यह शमशेर और केदार जसे कलाकार भूलते हैं। कला म जो इधर अन्त प्ररणा का अभाव बढा है, उसके लिए प्रयोगवाद उत्तरदायी है।

प्रयागनरायण त्रिपाठी प्रतिनिधि प्रयोगवादियो मे से नही है वह मुक्तहृदय क व्यक्ति हैं आरोपित मतवादो से रहित ! ऐसा व्यक्ति एक अंतरारी के शब्दा म समाज के लिए कम नुक्सानदह होता है।

स्वस्थ व्यक्तिवाद—मुझमे कुछ है, जो मेरा बिल्कुल अपना है।
जो मेरे क्षीरोज्जवल मन के मन्थन का कोमल मक्खन !

आत्म-विश्वास—जब तक मैं बिखरूँगा नही, मैं मरूँगा नही।
जब तक मेरा यह विश्वास—
कि समय की अनवरत तीव्रधारा मे
कही मैं ठहरूँगा, कही किनारा पाऊँगा
टूटेगा नही, टूटेगा नहीं !

प्रेम का प्राचीन उदात्त रूप—जाओ, साथी ! पथ पर तुमको
जावक-अंकित चरण तलो को
रहे देखता यह सुख मेरा
शतशत शखपुष्पियो सा दूबो में खिलकर
धारण करता रहे गर्व से दृढ चरणाङ्कन !
जाओ साथी ! शक्ति बने यह—हम दोनो की—
वर्षा में कोटर मे दुबके आहत खग की अपलक चितवन !

'कथ्य, की दृष्टि से त्रिपाठी का यह काव्य लक्ष्मीकान्त के अनुसार शायद ही "आधुनिक" माना जाय।

'कीर्ति चौधरी' और कु० रमासिंह भी प्रयोगवादी शिविर मे गिनी जाती हैं किन्तु इसमे वह 'आधुनिकता' यानी आरोपित 'दर्द', लघुता, अहकार, अस्तित्व का खतरा, कुठा, आदि तत्त्व बहुत कम मिलते हैं। फिर भी प्रयोगवादी सम्प्रदाय का प्रभाव अवश्य पडा है। 'कीर्त्ति' चौधरी की "आवाज", यानी इस शीर्षक कविता मे, 'अस्पष्टता' अवश्य है। किन्तु सर्वत्र नहीं। 'लता' शीर्षक कविता मे 'समर्पण' का सुखद और स्पष्ट चित्रण है। जो 'लता' वृक्ष पर चढने में अपनी सुषमा के विकास का अपमान समझती है, वह एक दिन देखती हैं, कि चुपचाप, अनजाने ही वृक्ष पर चढ गई है—

अग अग मुकुलित, शत कोमल करो को वढा
लता ने वृक्ष की दूरी सब नाप ली
पात, पात, डाल, डाल
सक्षम, दृढ तरु विशाल, लताकु ज आवृत था !
व्यर्थ शून्य अह, स्पर्धा आडम्बर है !

लता और वृक्ष के इस वर्णन मे 'नारी जीवन' की अश्लील स्वच्छन्दता पर व्यग्य है और समर्पिता नारी जीवन की प्रशसा है। ऐसे "मानव मूल्य"

प्रशंसनीय हैं। अभी तक 'कवयित्रियाँ' नए मूल्यो के लोभ मे मार्गच्युत नही हुईं, यह देखकर प्रसन्नता होती है।

'कीर्ति चौधरी' ने 'कार्यक्रम' मे 'कर्मण्यता' को, 'अनुभव' मे 'आशा' को, 'एकलव्य' मे 'प्रवचना' पर 'बोध' को, 'प्रस्तुत मे "निजी दु ख दर्दों" के प्रति घृणा, 'स्वयचेत' मे 'आशा', "दीठ न मिलाओ" मे 'नम्रता', "बदली का दिन" मे 'विश्वबधुत्व', जैसे "मूल्यो" को व्यजना दी है। स्पष्टतः 'कीर्ति' मे चमत्कार वादिता नही है, शब्दो का 'सर्कस' नही है, मायावाद नही है और यह उन्हे 'प्रगतिवादी-प्रयोगवाद' मे प्रतिष्ठित करता है।

'तीसरा सप्तक' के उक्त कवियो से यह आशा होती है कि आगे तथाकथित प्रयोगवादी चिन्तन के स्थान पर मगलमय मानव मूल्य निखरेंगे। 'तृतीय सप्तक' मे अटपटापन और भाषा का व्यर्थ प्रदर्शन कम हुआ है। कारण यह है कि इस संग्रह में प्रयोगवाद के नेताओ मे से कम कवि लिए गए हैं, नेताओ के बाद जो नई पीढी उभर रही है, उसकी मानसिक स्थिति अधिक स्वस्थ है, वह अपने दायित्व को अधिक पहचानती है। निश्चित रूप से 'प्रयोगवाद' की 'कठोर आलोचना का ही यह प्रभाव है कि अब कवि गैरजिम्मेदार रूख कम अपना रहे हैं। 'कला' मे अभी गद्यमयता अधिक है। 'लय' की ओर ध्यान कम है, उपमान-विधान मे अभी सतुलन का अभाव है, 'नवीनता' किसी भी मूल्य पर उत्पन्न करने की ओर चाव अधिक है। आतरिकप्रेरणा को कस कर दबाने की प्रवृत्ति अभी है, परन्तु वह कम हो रही है, यह शुभ लक्षण है।

कु० रमासिह पर भी प्रयोगवादी 'कथ्य' का प्रभाव कम है, पर है अवश्य। जीवन के राग विराग की अलकृत व्यजना अधिक है। 'रूपक' रमासिह को अधिक प्रिय है अत उनकी अभिव्यक्ति मे अटपटापन नही लगता। 'रूपक' द्वारा कवयित्री किसी कल्पना से प्राप्त 'विज़न' को मूर्त्तित अधिक करती है, किसी 'भाव' को कम—

नियति की बीन धरे ओठों पर, समय का सँपेरा यह
कैसी धुन बजाता है,
समाँ बँध जाता है, नागिन सी धरती यह, झूम झूम जाती है!
कैसा यह वशीकरण, कैसी तन्मयता है?

इसी प्रकार सुख को कचन-मृग, और मन को धनुर्धर बनाकर "शान्ति" के हरण का वर्णन किया गया है, यह जीवन के वास्तविक 'राग' का वर्णन है, जो प्रभावित करता है। प्रयोगवादी "उग्र रस" का वर्णन करते समय भी

भी रमासिंह इसलिए भी उदास होती हैं कि चन्द्रमा की पूर्णता क्षणिक है, इस प्रकार की उदासी समझ में आती है—

ज्योति का उजाला है
पूर्णिमा की रात यह, चन्द्रमा की पूर्णता पर
कल से ही टूटेगी
इसलिए उदास हूँ ।

रमासिंह यह महसूस करती हैं कि ऐसे अनेक प्रश्न हैं, जिनके उत्तर नहीं हैं, इस मात्रा में उलझन स्वाभाविक है, "प्रश्न तो बिखरे यहाँ सब ओर हैं, किन्तु मेरे पास कुछ उत्तर नहीं" ! 'रमासिंह' के बहुत से प्रश्न तो "शाश्वत" हैं, यथा क्षणभंगुरता का प्रश्न, और ऐसे स्थानों में कवयित्री की विनश्य पदार्थों के प्रति ममता देखते ही बनती है—

माटी के खिलौने बहुत सुन्दर हैं,
किन्तु यह टूटेंगे, किस तरह बचाऊं इन्हें ?

वही पुराना 'रहस्यवाद' भी मिल जाता है, यथा "अज्ञात की उलझन" में। 'निमत्रण' में पन्त जी के "मौननिमत्रण" और महादेवी के "कौन तुम मेरे हृदय में" जैसी 'भावना' प्रकट की गई है। रमासिंह के 'प्रतीक' सरल और स्पष्ट हैं। 'मोटर' गाड़ी' को जीवन का प्रतीक मानकर उसे सावधानी से चलाने की प्रेरणा "मोड" में दी गई है। इसी प्रकार की 'प्रेरणा' "धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्र" में है। "जिन्दगी के सफर" का पैटर्न 'नीरजनुमा' है। जीवन की दार्शनिक व्याख्या करने का लोभ अभी बहुत है। 'परिभाषा' में इसीलिए 'अकेलेपन' को जीवन की परिभाषा कहा गया है। परन्तु यह 'अकेलापन' वास्तविक है, साम्प्रदायिक नहीं—

यहाँ का मोह ममता से भरा आँगन
मगर यह साँस की पुतली, मगर कब साथ दे पाने, सगेस्नेही
बुलाती जब किसी अज्ञात की अँगुली !

यही प्रवृत्ति "एक दिन और बीता" नामक गीत में भी है। मौत के भय से रमासिंह 'नीरज' की तरह ही परेशान रहने लगी हैं अत जिन्दगी, सरिता, मौन-समुन्दर, श्वास-बाती और देह को सकोरा बनाकर 'मृत्यु' की आशका का वर्णन किया गया है, किन्तु यह विषय अब पिष्ट पेष्टित सा लगता है।

मे कुछ चीजें मन के अनकूल न पडने पर मध्यवर्ग का एक अश एक अजीब सदेह मे पड गया । वह समाज के कष्ट को तो महसूस करता है किन्तु किधर भी मार्ग नहीं देखता । भारतवर्ष मे जनवादी शक्तियो के प्रबल हो जाने पर ही यह स्थिति लुप्त होगी, क्योंकि मध्यवर्ग तब समस्या का समाधान स्पष्ट देख लेगा। अभी पूँजीवादी प्रचार से तथा अतरराष्ट्रीय साम्यवाद की कुछ गलतियो से वह बुरी तरह भड़का हुआ है । मध्यवर्ग को बदलते देर नही लगती किन्तु हिन्दी में निश्चित दिशा न पा सकने वाले मध्यवर्गीय कवि तब तक यही पर्याप्त समझते हैं कि मध्यवर्ग की इस शकाकुल स्थिति की हो व्यजना हो क्योकि जो 'वस्तु-स्थिति' है, उसका चित्रण भी होना ही चाहिए अतः भारतभूषण अग्रवाल जैसे "डिसीडेंट" प्रगतिवादी यह कहते हैं कि न वह सकीर्ण प्रगतिवादियो के साथ हैं और न अज्ञेय द्वारा "व्यक्तिवादी अहम्मन्यता की प्रतिष्ठा के हेतु नई सत्यों पर आधारित एक नए निकाय" के साथ !

वह अपने "विभक्त" व्यक्तित्व को स्वीकार करते हैं, क्योंकि वह ईमानदार कवि हैं, वस्तुत तथाकथित प्रयोगवाद मे व्यक्त सदेहवाद कवियो के व्यक्तित्व की "विभक्तता" को स्वयं स्पष्ट कर देता है । भारतभूषण इसलिए "आज के व्यथित क्षणो" को अपनी सहानुभूति का स्वर देना चाहते हैं । उनकी कविताओं मे उनका "सुख दु ख, घुटन, चीत्कार, दर्प-अपमान" ही व्यक्त हुआ है और यही स्थिति अन्य सदेहग्रस्त कवियो की है किन्तु भारतभूषण की घुटन, दु ख, दर्प आदि आरोपित नहीं लगते और उनमे साम्प्रदायिक 'निराशा' भी नही है, यह शुभ लक्षण है !

आशा— प्यार से सींचू तुझे ओ बीज मेरे !
एक दिन तू ही बनेगा फूल !

मध्यवर्ग की 'बन्दी' स्थिति—केले के पत्तो से मन पर आकांक्षाओ,
" अभिलाषाओ के ये पर्त······
पर्त पर पर्त
व्यूह से, कारा से, चट्टानो से।
कैसा छल है, कैसा दुराव, बधन का......।
मुक्ति के सूरमा ! ध्यान रहे !
जन भी बन्दी है, मन भी रहे !

प्रग. अनिश्चय 'अतर्मुखता' को जन्म देता है, यह 'अतर्मुखता' इधर की कविता मे बराबर बढी है अत. कवि "हृदय की गुप्त" के निरीक्षण में

संस्कार सी चट्टानें, ज्योति और वातहीन क्षुद्र परिधि में रेंगने, गिलगिले, मिट्टीखोर कैंचुए, सडी प्याज सी दुर्गंधि, आदि तत्त्व पाता है।

समाधान के लिए बेचैनी —रूखी, तपी, जलती हुई दोपहर के बाद

वह धूल भरी आँधी !
सब कुछ पर रेत जमी, मन तक ज्यो किसकिसा
रहा है !

यह सब किसलिए, क्या है इसका निदान ?
कब होगा अन्त इस जडता का, इस द्विधा का ?
कब आयगी वह वर्षा की एक बूंद, स्नेह की एक कनी ?
उत्तर मे किन्तु बस सिर पर वह आसमान—
और यह दरवाजे फटफटाती आँधी !

किन्तु सर्वत्र यह स्थिति नही है कवि 'नियति' को सशक्त स्वर मे ललकारता है, और यह भी कहता है कि यह देश कैसा है, जिसमे मुस्कराना भी मना है ! "शान्ति की अलकापुरी" को सदेश भेजने के लिए भी कवि चिंतित लगता है।

निश्चित रूप से भारतभूषण, 'अज्ञेय, लक्ष्मीकान्त वर्मा" वाली परम्परा से अलग दिखाई पडते हैं, वे सदेहग्रस्त किन्तु ईमानदार "प्रगतिवादी प्रयोगवादी" कवि हैं। 'कवि' की उलझन आरोपित नहीं है, वह किस प्रकार अपने 'मन' को समझाता है, यह देखते ही बनता है —

'गमन के क्षण, अब रुको मत ओ अप्रस्तुत मन !
चल दो, राह म लगी है आग, चलना है खेल नहीं
पर क्या सकोगे भाग, कर्म से बचोगे कही ?
बच्चा की भाँति यो मचलो मत भीरु मन ।
व्यर्थ शकाएँ न कर, व्यर्थ की दुष्कल्पनाओ से न हो कातर।
अभी जीवन मे बहुत कुछ है अनागत, बहुत बाकी है !

ऐसा काव्य प्रेरणाप्रद होता है, यहाँ 'मन' के 'अनुभव' पर ही ध्यान केन्द्रित किया गया है। शैली और उपमानविधान की व्यर्थ आपाधापी यहाँ नही है, इस दृष्टि से भी भारतभूषण अन्यो से अलग दिखाई पडते हैं। यह 'कला' "अपनी बीती कहने" से ही सम्बन्धित होने के कारण अकृत्रिम लगती है—

लौट जाओ चाँदनी की रात, मुझसे दूर हो !
एक युग से मैं विरस जीवन बिताता आरहा हूँ
सब तरफ लगता बड़ा सुनसान, कोई शब्द तक आता नहीं है !
गहनतम का पर्त मन पर छा गया है
मन के इस तिमिर को तुम बढ़ाओ मत !

वस्तुत भारतभूषण के मन मे निश्चय, अनिश्चय, आशा, दुराशा, उत्साह, निरुत्साह का एक द्वन्द्व दिखाई पडता है किन्तु यह भी साफ प्रतीत होता है कि कवि अपने आप से लडकर 'मुक्ति' पाने की तलाश मे है, वह उस आन्तरिक सघर्ष को लक्ष्य नहीं, एक विवशता मानता है, "चुक गया जब नेह' मे वह स्पष्ट कहता है—

व्यर्थ है ललकार, अनुनय व्यर्थ है !
पर न हिम्मत हार,
प्रज्वलित है प्राण मे अब भी व्यथा का दीप।

साथ ही वह अपने को यानी आज के मध्यवर्ग को "निरा विलायती स्पज" भी कहता है, और ठीक कहता है !

भारतभूषण मन की स्थितियों का ही सरलता से वर्णन नहीं करते, अपितु उनका अप्रस्तुतविधान और प्रतीक भी सरल और स्पष्ट है—

मार बिजली की कटारी, मर गए बादल
टपकती खून से धरती नहायी,
रँग गया लोहित क्षितिज का आसमान !
दीखने लग गई हीरो से जडी वह चाँद की कुर्सी !

'अज्ञेय' के 'प्रतीकों' का विरोध—हम नहीं हैं द्वीप जीवन की नदी के
वरन् जीवन से भरे निर्मल सरोवर !
नीर के भावुक मिलन की हम विमल सन्तान !
हम नहीं है, रेत के स्तूपे, अशुभ, अम्बार !

गाँव की भोली, सलोनी कामिनी के कलश के वरदान !
मन्द बुझती साँझ मे सोपान पर आसीन कवि के आर्द्र मिलनाह्वान।

'भारतभूषण' का 'व्यग्य' भी बड़ा तीखा होता है, प्रयोगवाद मे प्रकृति-चित्रण और व्यग्य, इन दो का विकास बहुत आश्चर्य हुआ है—इस कवि का 'व्यग्य' जनविरोधी परिस्थिति के ही विरुद्ध होता है—"कानूनो के जुलूस"

में युद्ध की निन्दा है और "टूटे सपनों का सपना" में वर्तमान संस्कृति की विचित्रता पर—

> रात मैंने स्वप्न देखा, मैंने देखा
> कि मेनका अस्पताल में नर्स होगई है।
> और विश्वामित्र ट्यूशन कर रहे हैं।
> उर्वशी ने डान्स स्कूल खोल लिया है!
> नारद गिटार सीख रहे हैं!

इसी तरह 'परम्परा प्रियता' पर कवि ने बड़ी चोट की है। वस्तुतः कवि ने भूमिका में जो वक्तव्य दिया है, उससे जितनी 'निराशा' व्यक्त होती है, उतनी उनकी रचनाओं में नहीं दिखाई पड़ती, 'भारतभूषण' का वास्तविक रूप यह है—

> नाचने लगे हैं मोर, गहराने लगी है आसमान की सजीली कोर।
> अब वर्षा आएगी, स्वाति की एक बूंद मोती बन जाएगी,
> छोटी सी सीप यह हमको सिखलाएगी,
> रस का सही ग्रहण कितनी बड़ी बात है!

और यही आज की वास्तविक समस्या भी है कि "रस" और विष को हम कैसे ग्रहण करें! घटनाएँ घट रही हैं, दल बन रहे हैं, संघर्ष हो रहा है, वातावरण में धमकियाँ हैं, शोषण है दबाव है, परन्तु क्या कोटि-कोटि जनता जब मुक्ति चाहती है, प्रत्येक अत्याचार से मुक्ति, तब इस 'इच्छा' को धार पर रखना ही क्या आज के कवि का कर्त्तव्य नहीं है? किंकर्त्तव्यविमूढ़ता से क्या लाभ होता है? जो भीमकाय शक्तियाँ दुर्दमनीय दिखाई पड़ रही हैं, क्या जनता की संगठित महाशक्ति के सम्मुख वे सफल हो सकती हैं? परन्तु 'कवि' जब 'हनुमान' की तरह अपना 'बल' भूल जाता है, तब 'शान्ति की सीता' की मुक्ति और भी टलने लगती है, 'भारतभूषण' जैसे कवि इस किंकर्त्तव्य विमूढ़ता की स्थिति को "क्षणभंगुर" मानते हैं परन्तु क्या अन्य तथाकथित प्रयोगवादी भी उनसे यह सीख लेंगे—

> यह नहीं है पाप अथवा नियति अपनी!
> किन्तु यह तो बस समय की धान
> क्षणभंगुर परिस्थिति।
> हो गए हों हम भले म्रियमाण
> पर समवाय के अभियान में मिल, एक होने के लिए आकुल हमारे प्राण

भारतभूषण मे गद्यात्मकता भी कम है और राग' या भाव की मात्रा भी अधिक है कहीं-कहीं गीत-पद्धति को भी अपनाया गया है।

दुष्यन्तकुमार राजेन्द्रकिशोर रामावतार चेतन कीर्ति चौधरी रमासिंह आदि प्रयोगवाद की नयी पीढ़ी के कवि हैं जो नेताओं के बाद उभर कर सम्मुख आरहे है।[1] इन कवियो मे भी निश्चय अनिश्चय निराशा आशा का एक द्वन्द्व दिखाई पड़ता है ढुलमुलयकीन मध्यवर्ग की वास्तविक प्रतिच्छवि इनकी रचनाओ मे देखी जा सकती है। अपनी इस स्थिति को जायज सिद्ध करने के लिए दुष्यन्तकुमार जमाने से मापदण्ड बदलने का अनुरोध करते हैं। कवि जुए के पत्त सा अभी अनिश्चित है ! किन्तु वह समझता है कि मानो नयी राह पर बढने के लिए इस प्रकार की खराद पर चढना आवश्यक है। चांद से तलुवो के फफोले पिंडरी की उभरी हुई नसें कवि को आशकाओ पर काबू पाने के लिए जसे चुनौती दे रही हैं यह शुभ लक्षण है—

मेरी प्रगति या अगति का यह मापदण्ड बदलो तुम
मैं अभी अनिश्चित हूँ।

प्रगति की सम्भावना मात्र होने और अभी अनिश्चय की स्थिति मे कवि अपने को कुण्ठाग्रस्त महसूस करता है जो रेशम के कीडो सी ताने बाने बुन रही है। प्रसन्नता का विषय यह है कि वह जानता है कि कुन्ती की यह कानीन सतान कुठा सदा कौरवो की ओर ही रहेगी और पुण्यपक्ष के विरुद्ध लडगी—

यह कुण्ठा का पुत्र हमेशा महाभारत सा जब जब युद्ध छिडगा
कौरवदल की ओर रहेगा और लडगा !

दुष्यन्तकुमार अब क्या होगा राम जसी आशका और पिंजड मे कैद परिन्दे की घुटन अनुभव कर रहे है किन्तु यह आशा अभी है—

हाँ जिस दिन पिंजड की सलाखें मोड लूगा मैं
उस दिन सहष जीण देह छोड दूगा मैं।

कवि हर छोट को बडा करना अपना धम मानता है अत प्रयोगवादी

---

१ सूय का स्वागत—दुष्यन्त कुमार।
२ स्थितियाँ अनुभव—राजेन्द्र किशोर।
३ चाँद से नीचे—रामावतार चेतन।

साम्प्रदायिक मानवमूल्यो में ग्रस्त होकर भी कवि उनसे बचने के उपाय में सलग्न प्रतीत होता है। क्योंकि वह महसूस करता है कि दिन निकलने के पूर्व पक्षियो की चीखें, कराहें, और टीन के कनस्तरो की बस्ती में, हृदय की शक्ल जैसी अँगीठियो से धुँआ का निकलना, स्वाभाविक ही है।

दुष्यन्त म नूतनतम, उपमान विधान की चाह अधिक है। रोज की चीजो को 'प्रतीक' रूप मे देखकर किसी मानसिक स्थिति को सकेतित करने की प्रवृत्ति है। "बिजली का लट्टू, कुरसी के टूटे हुए बेंत पर और खस्ता तिपाई पर व्यग्य करता सा कवि को दिखाई पडता है जैसे "कुरसी का बेंत" कोई "मिल ओनर" हो! "मोम का घोडा" में भी यही प्रवृत्ति है। "धूल" को 'आह', काफिले के लिए 'चाह', सामान के लिए "दर्द", अपने लिए "गर्दखोरा", विश्वास के लिए "उँगलियो मे मोडकर लपेटे हुए कुन्तल", जीवन के लिए, "ज्योतिषी के आगे फैले हुए हाथ" और अनिश्चित व्यक्ति के लिए "जुए के पत्ते से" उपमा देकर अपनी अप्रस्तुत विधान शक्ति को कवि प्रमाणित करता है।

चित्रण-शक्ति की दृष्टि से 'सूर्यास्त' मे कवि पुराने 'रूपक' को अपनाता है। "इनसे मिलिए" मे लक्ष्मीकान्त वर्मा का 'पैटर्न' अपनाया गया है, अथवा यह भी सम्भव है कि लक्ष्मीकान्त ने ही दुष्यन्त से यह सीखा हो! इस रेखा चित्र मे अपनी दुरावस्था का चित्रण कर कवि समाज की ओर सकेत करता है—

पांवो से सिर तक जैसे एक जनून
बेतरतीबी से बढ़े हुए नाखून
कुछ टेढे-मेढे बैंगे दाग़िल दाव
जैसे कोई एटम से उजडा गाँव
गद्दों सी जघाएँ, निष्प्राण मलीन
कटि, रीतिकाल की सुधियों से भी क्षीण!
कितने अजीब हैं इनके भी व्यापार
इनसे मिलिए ये हैं, दुष्यत कुमार!

किन्तु युग के स्पन्दन के साकेतिक वर्णनो मे ही कवि अधिक दिलचस्पी लेता है। वह वस्तुत 'भारतभूषण अग्रवाल' की तरह पहले युग के अवसाद का चित्रण करता है और फिर अन्त में उससे 'मुक्ति' की प्रेरणा भी देता है। आज की कविता के हालात को देखते हुए यह कम नही है। वह 'कुण्ठा' की स्थिति मे भी यह समझता है कि यह कुण्ठा दुर्योधन की ओर ले जाएगी। वस्तुत "शुभ क्षणो" में वह अपने को "आवर्तों के मध्य, अजगरो के मध्य, विषमयी फुंकारें

सहता हुआ 'कृष्ण समझता है जो साथियों की गेंद लाने के लिए कालियदह मे कूद पड़ा है। दुष्यंत में जो गर्भित आशावाद है, दबा हुआ पौरुष है युग को समझने की प्यास है वह उन्हें कृष्ण बना सकती है बशर्ते सम्प्रदाय से बचें। कृष्ण ही युग की गीता को जन्म दे सकता है।

दुष्यन्त म गद्यात्मकता की प्रवृत्ति अधिक है इससे बचना होगा, ममस्पर्शिता मे वह गद्य काव्य को पाठ्यक्रम तक ही सीमित कर देता है—'प्रश्न अभिव्यक्ति का है मित्र' शीर्षक कविता म कवि मन मे बुलबुलाते यान भावो को कसे प्रकट करे इस विषय म भी कवि अनिश्चित मुद्रा मे ही है।

दुष्यन्त में स्पष्टता है अनुभव करने मे भी और अभिव्यक्ति म भी किन्तु राजेन्द्रकिशोर मे महत्वाकाक्षा अधिक किन्तु उसकी पूर्ति के लिए आतरिक सयम का अभाव है। अत उनकी कला म उलझन और दुरूहता अधिक है। कामायनी की कथा को सकेतित करते हुए कवि ने युद्धोत्तरकाल मे मनुपुत्रो की प्रतिष्ठा का विज्ञन अंकित किया है किन्तु उसकी कविता एक रेडियो नाटक बन गई है वातावरण की सृष्टि करने का प्रयत्न किया गया है—

शोर उठा स्वर टकराए बिजली कौंधी बीच आकाश में चमकता हुआ सूरज एक भयानक विस्फोट के साथ गिरा!

रोशनी! अधरा!! अँ-धरा-रा!!!

मनु को आवेगरहित व्यक्तित्व दिया गया है वह बौराया अपनापन खोज रहा है! श्रद्धा को 'विवेकहीन' बताया गया है उसके अचल मे शव है! इड़ा के माध्यम से युग की बौद्धिक उलझनदार शैली मे व्यक्त किया गया है। फिर कवि मनुपुत्रो की स्थिति का वर्णन करता है व्यग्य की पद्धति पर—

> इन्हें आधा पेट दो और पूरा काम लो
> आदमी एक चीज़ है चीज़ यानी बिकाऊ—जसे प्याज!
> आदमियत प्याज का छिलका है!

सेर के भाव बिकता है खुदरा नही, खुदरा नही! इड़ा मनु-पुत्रो

को मनु की विभाजन पर आधारित व्यवस्था की कथा सुनाती है और उन्हें मनु के स्थान पर स्थापित कर देती है।[१]

'अस्पष्टता' के कारण और वाच्य' के अत्यधिक तिरस्कार के कारण राजेन्द्रकिशोर का यह 'खण्डकाव्य' कामायनी का 'विद्रूप' सा लगता है किन्तु बीच-बीच में कई चित्र आकर्षक हैं—

ओ अनदेखे परिजात के सौरभ, कैसे तुम्हें बताऊँ।
वीतराग की बँधी लता को, मैं किस अँगुली से सुलझाऊँ ?
एक विराम चिह्न सा मेरे मन में कठिन दर्द बैठा है।
निकल रही है धरती जल के महागर्भ से
चमक रहा है रेतीली साड़ी का सोना
पुलक रही हैं स्वय कवरी की नन्ही कलियाँ।

किन्तु ऐसे चित्र अपवाद ही हैं। कवि हांफती हुई शैली में इतनी त्वरा के साथ आगे बढ़ता है कि अभिप्राय पीछे रह जाता है और कविता आगे बढ़ती चली जाती है, जब होश आता है तब पीछे मुड़कर देखती है और फिर भागने लगती है —

बिजलियाँ कौंधीं अँगुलियों में, बाँहों में, तन में,
रोओं में, आत्मा की गहराइयों में, मन में।
प्रश्न आते हैं, रह रह कर जाने क्या-क्या,
सँम्हलने का वक्त नहीं है, न वैसी है प्रतिक्रिया—
सखि ! पिया ! सखि पिया ! सखि पिया !

इसी "शॉक शैली" का प्रयोग होने से पूरा काव्य पहेली सा बन गया है—

रूप ने प्रश्न किया, अरूप ने उत्तर दिया !
समस्या उलझ गई।
आस्था-अनास्था के एक ही मूलकेन्द्र से
दो रेखाएँ चलीं, वृत्त बन गया।
संकलन से द्वन्द्व पैदा हुआ, द्वन्द्व से अग्नि निकली······।

"अग्नि के अभाव" की इस काव्य में चरमसीमा दिखाई पड़ती है,

---

१ निकष—३ और ४।

एक वाक्य या दूसरे से सम्बन्ध नही दिखाई पडता। कवि यह भूलता है कि सकेतित करने के लिए पाठक के मन मे बात पूरी उतरनी चाहिए अन्यथा मनमाने सकेतो पर पाठक का मन उडगा । राजेन्द्रकिशोर का मन्वतर कामायनी की पैरोडी सा लगता है।

छोटी छोटी मानसिक स्थितिया के चित्रण म कवि को अपेक्षाकृत अधिक सफलता मिली है। किन्तु अन्विति का अभाव यहाँ भी है। एक स्थिति से कूद कर दूसरी स्थिति पर पहुच जाने की हनुमान कूद वाली प्रवृत्ति उसकी कला मे अभिव्यक्ति का अभाव भर देती है--

प्रस्तुत है उत्तर अनुत्तर नही है वे। वे विधायक हैं।

प्रत्येक अशुद्ध क्रम की व्याख्या तथा स्थापना के लिए नया विधान प्रस्तुत है।

अप्रस्तुत हूँ मैं--विधाता।
और विधाता से विधायक बडा है।

इसी अस्फुट शली का बाजार राजेन्द्रकिशोर मे अधिक है। परन्तु जहाँ कवि ने धीरता से काम लिया है वहाँ स्पष्टता भी है—

एक मानसिक स्थिति—कल जब शाम आई जाने कसा लगा।
उम्र घटते घटते दो पल रुक गई
जहाँ वह नीम की छतनार डाल झुक गयी।
और गधश्लथ हवा आयी दे गयी दगा।
तब भी तब भी जाने कैसा लगा।

निबन्ध लिखने की मुद्रा मे राजेन्द्रकिशोर कविताएँ अधिक लिखते हैं— यह जो प्रश्न चिन्ह मेरे अस्तित्व पर आकर बैठ गया है बस इसीलिए मैं बोल नही सकता और यो भी मैं अपने अभिभावको के मनोरजन की प्रक्रिया मे उन्ही के द्वारा उनके व्यक्तित्व से साधिकार सयुक्त अपनी ही भूमि से निष्कासित अजुन हू।

किस आलोचक अथवा पाठक म इतना बल है जो इसे कविता कह सके ? लगता है कि यह कवि अभी नयामुल्ला है अत प्रयोगवाद के दुगुणो को अधिक अपनाता है। उपमानविधान म पर्याय के नाम पर अश्लीलता भी इस कवि म अधिक है। बड बाबू की लडकियो की तरह उसकी इच्छाएँ ताक झाँक नही कर पाती परन्तु कम्मो की तरह कवि की

इच्छाएँ भी आखें लडाती हैं ! बडे बाबू की कुँआरी बत्तीससाला लड़की की नाइ उसकी इच्छाएँ किसी बतजात आवारा कुत्त के साथ भाग जाने को तत्पर हैं ! कमाल है !

उलटा सीधा लिखने के द्वारा विराम चिन्हो द्वारा और अज्ञय के अय लटको को भी कवि ने खूब आजमाया है परन्तु कविता तमाशा बन गई है—

यध आई !

आंख भरी उठी—
गिरी
बाहे
चाहे
हम
जितना उन्हे चाहे
गिरगी
ही
बाहे

ये लटके एजरापौंड और कमिंग्ज मे ही अच्छ लगत है हिन्दी मे कभी भी आगए अच्छा हुआ पर इनका आधिक्य 'बोर करता है।

राजेन्द्रकिशोर ने गीत अच्छे लिखे हैं तुम नही आइ पाती तुम्हें लिखू तो कसे प्रमाण हैं।

रामावतार चेतन म राजेन्द्रकिशोर जसा बचपन नही मिला। इस कवि मे अधिक सयम है। बोलचाल की भाषा मे हलकी फुलकी बात करते हुए अपने मन की स्थिति को कह जाना और उपमान विधान मे सादृश्य का अधिकाधिक ध्यान रखना उसकी विशेषता है जीवन के प्रति प्यार के कारण उसके उपमान और प्रतीक प्यारे लगते हैं—

याद आ रहा धीरे धीरे
जसे धूल के धब्बे तन मे दूर क्षितिज के धूल भरे आगन मे
वह मनमानी खेलकूद के बाद आ रहा धीरे धीरे !

मन स्थिति क चित्रण म भी चेतन प्रयोगवादी जडता का प्रदशन आवश्यक नही समझत। कवि पुष्पो को सराहता है और उन्हे कुचलना

चाहता है किन्तु अचानक वह उन पुष्पो के प्रति ममता का अनुभव करता है। 'पुष्प' प्रतीक बनकर मनुष्य के प्रति भी करुणा जगाता है। "मैं और तुम मे" कवि यह इच्छा करता है कि कुछ ऐसा करना चाहिए कि कष्ट मिट जाए—

आखिर सपने पूरे होंगे, जो आएँगे, अपने होंगे !
कुछ और अधिक सुन्दर धरती पर जो कल आने वाले हैं।
कुछ कर डालें ऐसा कि आज के पहिए मे,
कल नही घिसें, वे कोमल तलवे नहीं घिसें !

यही भावना कवि की कई रचनाओ मे व्यक्त हुई है। बड़े ही सहज ढग से कवि बडी बडी बातें कह जाता है। अलङ्कृत गद्य की सादगी देखिए—

ये रुपहले पृष्ठ, शादी के निमन्त्रण जैसे, जिन्दगी के पृष्ठ
जिन पर लाल-लाल उभर रहा, अनुराग का स्वीकार
ढाई प्रिंट जैसे अक्षरो मे, यह सहज उभरा नही है !

कवि के व्यग्या मे भी यही सादगी है—

कौन सी है मस्या कौन सी अतादमी
जहां बना करते हैं, कुत्ता छाप आदमी ?
सीने पर एक बडा, कुत्ता छपाए हुए
बनियायन धारी, दिखलाई पडा था पट्ठा
प्रश्न एक ऐसा, उठ आता स्वाभाविक था
कौन सी है सस्था……?

बातचीत के लहजे मे प्रयोगवाद मे बहुत सी रचनाएँ मिलती हैं, यह भी एक शुभ प्रवृत्ति है। इससे पाठक और कवि मे एक अजीब आत्मीयता सी उत्पन्न हो जाती है। अनन्तकुमार पाषाण के "बम्बई के क्लर्क", अजितकुमार के "मेले मे" अज्ञेय की "एक सम्भाव्य भूमिका" मे, गिरजाकुमार माथुर के "खत" मे, गिरधरगोपाल के "ओ मेरे भाई उठो" मे, हरिमोहन की "कांच की किरनें" मे (नयी कविता, अक २), दुष्यन्तकुमार के 'युगसत्य' में, सत्येन्द्र श्रीवास्तव के "तोडना-जोडना" मे, राजेन्द्रकिशोर के "तेईसवी वर्षगाँठ" में (नयी कविता, अक ३) जगदीश गुप्त की 'पहेली' आदि रचनाओ मे यह प्रवृत्ति देखी जा सकती है।

लोक-काव्य से प्रेरणा—गीतकारो ने ही नहीं, प्रयोगवादियों ने भी

लोकवाक्य से प्रेरणा ली है यह भी अतिप्रशंसनीय प्रवृत्ति है। अजय की "कांगडे की छोरियाँ" में यही प्रवृत्ति है—

कांगडे की छोरियाँ कुछ भोरिया, कुछ गोरिया
लालाजी जेवर बनवा दो खाली करो तिजोरियाँ।

नरेश मेहता का 'पीले फूल कनेर के' और भी मार्मिक हैं—

पीले फूल कनेर के!
पथ अगोरते, सिंदूरी बड़री अँखियन के,
फूले फूल दुपर के!

किन्तु अभी यह प्रवृत्ति प्रयोगवादी कविताओं में यत्र तत्र ही मिलती है। शम्भूनाथसिंह ने 'टेर रही प्रिया तुम कहाँ', 'बजता है ढोल कहीं पूजा के बोल' 'पिया न आए सामा मे आगया टिकोरा री' जैसे लोकधुनों पर बने हुए गीतों को 'माध्यम मैं' जैसे प्रयोगवादी संग्रह में प्रकाशित कराए हैं। इससे संतुलन रहता है और बौद्धिकता और रूक्षता के क्षण में प्राप्त अनुभूतियों के साथ साथ कुछ लोक का भी स्पर्श मिल जाता है।

कतिपय गीतकारों की प्रयोगवादी रचनाएँ—शम्भूनाथसिंह के 'माध्यम मैं' से लगता है कि गीतकार ने अपना स्वर बदलने का प्रयत्न किया है। नीरज की भी कतिपय ऐसी रचनाएँ प्रकाशित हुई है परन्तु उनमें केवल मुक्तछन्द का ही प्रयोग उनमें प्रयोगवाद की भ्रान्ति उत्पन्न करता है। 'कैलाश वाजपेयी नीरज के अच्छे शिष्यों में माने जाने लगे थे किन्तु ऊबो और उदास बनो' तथा 'कविताएँ १९५७ में प्रकाशित ढाई अक्षर' कविता से लगता है कि वह इधर भी कोशिश कर रहे हैं। यह बुरी बात नहीं है। शैली का वैविध्य रहना ही चाहिए। त्रिलोकीप्रसाद शर्मा ने कुछ प्रयोगवादी रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। 'घनश्याम अस्थाना' ने 'ताज की छाया' में नयी शैली को अपनाया है। मधुर और करुण गीत लेखक देवेन्द्र शर्मा इन्द्र ने भी इधर कोशिश की है। बच्चन ने भी नयी शैली में कविताएँ लिखी हैं। 'माखनलाल चतुर्वेदी की कतिपय नयी शैली की रचनाओं को 'नयी कविता' के सम्पादकों ने ही प्रकाशित किया है। राघवराघव, राजनारायण बिसारिया, सुमन, सुरेन्द्र तिवारी आदि प्रसिद्ध और कम प्रसिद्ध गीतकारों ने 'नए प्रयोग' किए हैं। इन पंक्तियों के लेखक ने भी यह धृष्टता की है किन्तु गीतकारों की इस परिणति की अपनी विशेषताएँ हैं जो तथाकथित प्रयोगवाद से उन्हें अलग करती है। केवल शैलीगत साम्य अवश्य मिलता है और जब कोई

शली चल पडती है और इसका श्रय अज्ञय निराला तथा प्रथम सप्तक के कवियो को देना चाहिए तो उसे सभी कवि थोडा बहुत आजमाने लगते है कितु काय की आमा मे अतर दृष्टि और भाव से पडता है जो इन नये प्रयोक्ताओ मे भिन है।

शम्भूनाथसिह जी के माध्यम में मे सौन्य के मगलपक्ष पर अधिक ध्यान दिया गया है। छायावादी आमा के प्रभाव के कारण कुरूप चित्र उनकी कपना मे नही आते। बिम्ब विधान की यह मगलमयता शम्भूनाथ मे शायद सबसे अधिक मिलती है—

> कनखिया ये सीप कयाए उनीदे द्वार
> गगा यमुन धारा सी गिरी अपना सी पुरी !
> चौखट पास मगलघट बना !
> अनुच्चारित ऋचा अधर मे कपी !
> सास के कचे हलद धागे हिले गोरोचना मुस्कान !
> नभ से तिरी !
> ओ उषा की नतकी अविकचस्तनी
> मुस्कान औषधि दूध धोई !

कितु शम्भूनाथसिह तथाकथित कुण्ठा का भी बदी प्राण मे वणन करते हैं और नाद उन्हे कुञ्जी रहित ताले और प्राण कयाकाक्षी शिशु से नगने नगते हैं ! कही कही विचित्र अनुभव भी वर्णित हैं जसे अनस्तित्व की खोज मे लगता है अवचेतनग्रस्त मानसिक स्थिति का चित्रण कवि कर रहा है—

> ओ तुम जा नही हो कभी-कभी तन्तुआ मे बजते हो
> अस्थिया को छूते हुए म जा म रगने हो !
> जम हुए सागर पर स्लज दौडता हुआ दूर दूर जाता हू।
> टूटी हुई बफ के गहर म सागर के तल म
> जो शाक सा झाकता है !

अनस्तित्व की रेती पर निरवलम्ब खडा होने की अनुभूति मे यह मधुर गीतकार जसे चेतना की गर्तों म सरस्वती को बद कर रहा हो। किन्तु कवि रूपातर में उस रूप को अभी भूला नही है जिसम इच्छाए रसधारा क लिए खान बनती हैं। भागू गा नही म कवि पलायनवाद का विरोध

करता है। निरावरण म कवि मानवता को नरराज और शेषशायी बनने की प्रेरणा देता है यद्यपि शैली नयी है। शून्य पर उनकी 'सून अनय की सूज्ञा से भिन्न है शून्य को वह ऋण नहीं धन मानता है। कवि अपने अह की अस्पष्टता को स्वीकार करता है परन्तु उसे स्पष्ट करने और इस प्रक्रिया म हार न मानने की भी प्रवृत्ति स्पष्ट लक्षित होती है।

प्रकृति चित्रण म कवि पुन अपनी भावुकतावादी पद्धति को अपना लेता है अत कल्पना विलास भावसम्पृक्त हो जाता है काश! यह प्रवृत्ति प्रयोगवादियो म विकसित हो—

> सात वष पूव फागुन की एक सिहरन भरी रात मे
> मैंने और तुमने चादनी की बेला की कल्पना उरेही थी!
> जब हमन राख रग बजर ढेले म
> चादनी के बीजा को बिखरा था।

इस रचना म 'भैंसा' और नागफनी को प्रतीकरूप म चित्रित किया गया है (यह नागफनी इधर के प्रयोगवाद मे बुरी तरह प्रचलित हुई है, सब उसी को आज के व्यक्तित्व का प्रतीक बनाते हैं लक्ष्मीनारायणलाल के एक नाटक का नाम मादा कैक्टस है नागफनी के अलावा अन्य प्रतीक भी मिल सकते हैं पुनरावृत्ति बोर करती है) किन्तु चादनी की वषगाठ मे भाव प्रतीको से आवृत नही हो जाता!

जहाँ प्रकृति के सौन्दय को चित्रित करने का प्रयत्न है वहाँ प्रती कात्मकता द्वारा उस सौन्दर्य से पाठक का ध्यान नहीं हटाया गया है—

> रात बीत गयी! दीख रही घास हरी
> किरण कलित ओस भरी इन्द्र धनुषमयी!
> उतर रही तरतृण पर कुहाधूम्र म छिपकर
> धूप वधू नयी!
> धरती पर विहगरचित गूँज रहे गीत ध्वरित
> बनकर चम्पई!

सौंदय दशन की यह दृष्टि छायावाद की उज्ज्वल परम्परा को सकेत करती है इसका विकास ही कुरूपता का नाश कर सकता है!

किस प्रकार अथ की लय से नहीं किन्तु सगीतात्मक लय से काव्य मे प्रपणीयता और आनन्दतत्त्व का समावेश होता है, इसे देखिए—

मन का आकाश उडा जा रहा पुरवैया धीरे बहो !
बीती बातो पर सर टेक कर टर रहा मन भूली नींद को
धूपछाह की गगा यमुना मे डुबो रहा हूँस हस उम्मीद को !
अपना विश्वास टूटा जारहा पुरवैया धीरे बहो !
मैं वह पतझर जिसके ऊपर से धूल भरी अँखियाँ गुजर गयी।
दिन का खडहर जिसके माथे पर अधियारी साँझ की ठहर गयी !
जीवन का साथ छूटा जारहा पुरवैया धीरे बहो।

प्रयोगवादियो का प्रिय अवसाद यहाँ है परन्तु यह गद्यकाव्य नही कविता है क्योंकि इसमे लय है गति की लय सगीतात्मक लय अर्थ की लय से गद्यकाव्य ही लिखा जा सकता है।

सुरेन्द्र तिवारी की कतिपय कविताएँ ही पढने को मिली हैं परन्तु दैनिक जीवन के वास्तविक अनुभव को यथावत कहने की प्रवृत्ति उनमे अधिक है। दुहरा शासन मे यही प्रवृत्ति है फ्रायड और मार्क्स की और झुकता हुआ मन दुहरे शासन से पीडित हो उठता है कवि धारणाओं की घोषणा नही करता धारणा के प्रभाव को उनकी उत्पत्ति की वास्तविक परिस्थिति का ही कथन करता है। (कविताए १९५७)

सूने गलियारे म सुरेन्द्र खडित इच्छाओ के शूल की वास्तविक चुभन सहसूस करते है फिर भी यह कहना पडगा कि यह माग कवि का अपना माग नही प्रतीत होता ! दग्धता को व्यक्त करने मे थोडी सी विदग्धता भी आनी चाहिए ! कैलाश वाजपेयी के ढाई अक्षर म बुद्धि वादियो पर कठोर व्यग्य है पर यह माग उनके लिए भी अनजाना सा लगता है। घनश्याम अस्थाना ने प्रयोगवादी कथ्य के विरुद्ध ताज की छाया मे कतिपय अच्छी रचनाएँ प्रस्तुत की हैं *किन्तु रसनिर्झरिणी में कवि अधिक* सफलता के साथ अपने को प्रवाहित कर पाता है, उसका अपना क्षत्र गीत है। सश्लिष्ट और चुस्त शब्दमगम्न के भीतर कसमसाती हुई 'आसक्ति की व्यजना मे ही यह विशेष पटु है। देवेन्द्र इन्द्र ने ताज की छाया मे प्रयोग वादी रचना मे रोचक हास्यचित्रण किया है। निष्ठा मे प्रकाशित इस कवि की ललित एक लो रचना म शम्भूनाथसिंह की तरह भाव उष्मा की उपेक्षा नही की गई है— देवेन्द्र म कामावादी प्रवृत्ति अधिक है—

तुम अपनी चम्पई मुस्कान की इस साँझ के वीरान पथ मे
चाँदनी सी गध आने दो !

तुम अपने चाँद से मुख पर
मचलते मेघ सी
इस साँवली लट को, हटा लो ना !
कहीं ऐसा न हो मेरे, रूपहले स्वप्न के
इस कुमुदवन की, पाँखुरी सी आँख खुल जाए !

बालस्वरूप 'राही' की 'निष्ठा' मे प्रकाशित प्रयोगवादी रचना मे प्रयोगवादी 'कथ्य' नही है केवल शैली का अनुकरण है। पृजेन्द्रकुमार 'राकेश' ने प्रयोगवादी 'कथ्य' पर प्रशसनीय कठोर व्यग्य किया है—

साथियो, हम सब क्षुद्र हैं, बौने हैं
असहाय हैं, अशक्त हैं
आओ, घोषणा करें कि हम नये आदमी हैं।
(समूह स्वर प्रतिक्रिया)
आदमी तो मर गया
"हम महज डमी हैं ! ' (निष्ठा से उद्धृत)

त्रिलोकीप्रसाद शर्मा ने "दशाश्वमेधयज्ञ" मे 'रूपक' अलकार के माध्यम से नूतन जागरण और जन-जन के प्रति करुणा को कवित्वपूर्ण गद्य मे व्यक्त किया है—

मेरे मन की अतलान्त गहराई मे, दशाश्वमेध यज्ञ हो रहा है !
प्रज्वलित समिधाओ से जो कुछ अपावन है
धूम्रवलय बन कर उड़ा जा रहा है।
जो कुछ भी पावन है, ज्योति शिखाओ के कँगूरो पर
कचन सा चमक रहा है।
और किसी तपोवन की गायो के दुग्धदोहन रव सा
मन्त्रोच्चारण, सम्पूर्ण दिशाओ को ध्वनित कर रहा है !
आओ, मेरे साथ मिलकर पूर्णाहुति का मन्त्र दुहराओ !
देखो मेरी आँखो मे अग्निशमनार्थ जल छलछला रहा है !

'आदर्श' (कलकत्ता) मे प्रकाशित एक प्रयोगवादी यानी प्रगतिवादी-प्रयोग का एक नमूना इन पक्तियो के लेखक ने भी प्रस्तुत किया है—

कविता नैनीताल के चित्रण से सम्बधित है—

अभी सीज़न नही आया है।
रोमिल भुजाओ से पवत दो ओर
जादूगर के डिब्बो जैसे फैले हुए घर !
जिनसे पारावतो की जगह आदमी निकलते हैं !
जड से पूले हुए झाड़ के वृक्ष
तथाकथित अवसादयुग के अपवाद से लगते है !
पीन किसी कामिनी के चू पड नयन सी
नावें जिसमे सपने सी बहती हैं !
सूरज की किरनो मे लहरो की टकसाल मे
बूँद रुपयो सी ढलती हैं !
जल्दबाज़ क्लक के लिखे अक्षरो की तरह
ताल मे काई फैली है !
जिस पर नाव मे बैठ साहब की नजर पडती है
जैसे दस्तखत करने की जल्दी हो !
प्रयोगवादी कविता मे भूल से बन गई किसी अच्छी
पक्ति की तरह मालरोड यहाँ लेटी है !
बेंत के सहारे जिसका अथ समझते हुए से लोग
धीरे धीरे चलते है।
परदेश से चुराई हुई उपमाओ की तरह
नवेलियाँ दूर से ही दिखती हैं !
ऊपर से फ्लैट प्रोनोट सा लगता है
ऋण मे खुशियो को खरीदने के लिए
इसे किसने लिखा है ?
कुलियो के द्वारा माँगी हुई बख्शिश की तरह
जिन्दगी म कृताथता यहाँ क्यो है ?
कही ऊँची-ऊँची दीवानो से घिरा नैनीताल
हारे हुए दुर्योधनो के छिपने का स्थान तो
नही है ?
अभी सीज़न नहा आया है
दुर्योधन तो बहुत आगए पर अभी भीम नही आया है !

इसी प्रकार नूतन अप्रस्तुतविधान और गद्यात्मक शैली में प्रगतिशील दृष्टि और भावों का भी विधान हो रहा है। रांगेय राघव की बुलायराह कुछ गीतनुमा रचना ऐसी ही है (कविताएँ सन १९५७)। डा० रामविलास शर्मा की इलिया एथेनबुग के नागरा आगमन पर रचना प्रगतिवादी प्रयोगवाद का उदाहरण है। महेन्द्रकुमार मिश्र की लाज की ताज की छाया म रचनाएँ इसी कोटि म आती ह। इन गीतकारों की यह प्रयोगवादी परिणति शुभ है, वे गीत भी लिख रहे हैं और इस प्रकार की प्रचलित शैली का भी प्रयोग करते हैं।

प्रयोगवादी खण्ड काव्य—छायावादी शैली कामायनी म अपनी चरम सीमा प्रस्तुत कर गीतो के रूप म तथा सौन्दर्य चित्रण के रूप म आज भी प्रचलित है। प्रयोगवादी काव्य मे अधिकतर मुक्तक रचनाएँ ही प्रस्तुत की गई हैं। धर्मवीर भारती की कनुप्रिया किसी कदर खण्ड काव्य कही जा सकती है। अंधायुग काव्यात्मक नाटक कहा जा सकता है। लेखक के मत पर युद्धजनित आज की परिस्थिति छाई हुई है अत वह महाभारत के युद्ध को माध्यम बनाता है। द्वापर के बाद कलयुग को वह अंधायुग कहता है—

युद्धोपरात यह अंधायुग अवतरित हुआ।
जिसमे स्थितियाँ मनोवृत्तियाँ आत्माएँ सब विकृत हैं।
है एक बहुत पतली डोरी मर्यादा की
पर वह भी उलझी है दोनो ही पक्षो म
सिर्फ कृष्ण म साहस है सुलझाने का
वह है भविष्य का रक्षक वह है अनासक्त
पर शेष अधिकतर हैं
अध पथभ्रष्ट आत्महारा, विगलित
यह कथा उन्ही अधो की है
या कथा ज्योति की है अधो के माध्यम से।

धृतराष्ट्र के वैयक्तिक सत्य या निजी स्वार्थ के कारण विनाशक युद्ध हुआ आज भी धृतराष्ट्रो की संख्या बढ रही है। महाभारत की तरह आज विषम परिस्थिति है। इसे लेखक ने प्राचीन कथा के माध्यम से भलीभाँति दिखाया है। किन्तु प्रयोगवादी कथ्य अनास्था कुठा, अवसाद आदि को भी उसने उन प्राचीन पात्रो के मुख से कहलाया है। लेखक कृष्ण' की अनासक्त बुद्धि और मनुष्य और समाज के उदात्ततम मानवमूल्यो और मर्यादा का ज्ञाता

मानता है, यह भी शुभ पक्ष है। यह काव्यमय नाटक पढने मे एक दिलचस्प नाटक है। लेखक की मान्यताओ से असहमत होते हुए भी, यह कहा जाना चाहिए कि आज की विकट युद्ध-समस्या को सकेतित करने मे लेखक को सफलता मिली है। काव्य की दृष्टि से 'रागात्मकता' की पुकार होने पर भी वास्तविक हार्दिकता के स्थान पर लेखक की चिन्तनात्मक मुद्रा ही अधिक फलीभूत हुई है, जो प्रयोगवाद की सामान्य विशेषता भी है। 'महाभारत' को पढकर उसके पात्र बहके हुए, उलझनग्रस्त नही लगते, उनमे अपने विश्वासों और मूल्यो के लिए अत्यधिक पौरुष और दृढता है किन्तु इस नाटक मे पात्र बहके हुए, अपनी उलझन मे ग्रस्त दिखाई पडते हैं। बहरहाल, यह मानना होगा कि गद्य-पद्यमयी इस नई शैली मे प्रबन्ध काव्य लिखने की परम्परा शुरु हो गई है। अधिक सतुलित दृष्टि से और अधिक रागात्मकता के साथ आगे अन्य प्रबन्धकाव्यों की आशा बँधती दिखाई पडती है। वस्तुत: जीवन-दृष्टि और जीवन के समग्र चित्रण के लिए स्फुट रचनाएँ अक्षम प्रमाणित हो चुकी हैं।

कलियुग को 'अंधायुग' मानकर चित्रण हुआ है। अब देखना यह है कि इस अधकार मे जीवन के आलोक की रक्षा के लिए शाति के लिए सगठित 'आलोकयुग' की भी कल्पना हो पाती है या नही। महाभारतकार ने महाभारत मे स्पष्ट कहा था कि 'कलियुग' मे "कल्कि" का अवतार होगा, क्या 'कल्कि' को माध्यम बनाकर इस युद्ध की आशका से ग्रस्त कलियुग को शान्ति के लिए सगठन का, दुर्योधनो के विरुद्ध शातिमय सघर्ष का मार्ग नही सुझाया जा सकता? गाधी और विनोवा भयकर से भयकर ब्रह्मास्त्रो के विरुद्ध जनता-जनार्दन की एकता को अधिक सक्षम सिद्ध कर गये हैं, क्या सम्पूर्ण विश्व मे युद्ध विरोधी अभियान के लिये, प्राणोत्सर्ग के लिए सनद्ध जनता अपने-अपने शासको की "युद्धवादी" नीति का विरोध कर, "कल्कि-अवतार की सम्भावना को सत्य सिद्ध नही कर सकती? तब कलियुग को अधा-युग कह कह कर आत्म-प्रवचना से क्या लाभ? युद्ध का भय उन्हे सताता है, जिन्हें प्राणो का भय हो। विगतज्वर होकर शाति के लिए सघर्ष के लिए आलोकयुग के अवतरण के लिए भी प्रयोगवादी लिख सकते हैं।

अंधायुग नाटक है किन्तु कनुप्रिया काव्य है। इसमे 'राधा' के प्रेम का वर्णन है। 'राधा' को नए व्यक्तित्व देने का प्रयत्न लेखक ने किया है। राधा कृष्ण के युद्ध और सघर्ष का अर्थ नही समझती। वह अपनी जीवन-विधि की मधुरता और युद्ध की तैयारी की तुलना करती है—

अभी जमुना मे जहा घण्टा अपने को निहारा करती थी मैं ।
वहाँ अब शस्त्रो से लदी हुई अगणित नौकाओ की पक्ति ।।
रोज रोज कहा जाती है ?
धारा मे वह वह कर आते हुए टूटे रथ
जजर पताकाएँ—किसकी हैं ?
चारो दिशाओ से उत्तर को उड उडकर जाते हुए गृद्धो को
क्या तुम बुलाते हो ?
जैसे बुलाते थे भटकी हुयी गायो को ।

राधा का भावविभोर चित्रण न करके कवि राधा को बड-बड प्रश्नो की उलझनो मे ग्रस्त करता है फ्लत राधा प्रयोगवादी कवियत्री सी प्रतीत होने लगती है ।

मैं कल्पना करती हूँ कि अजु न की जगह मैं हूँ
और मेरे मन मे मोह उत्पन्न हो गया है ।
और मैं नही जानती कि युद्ध कौन सा है ?
और मैं किसके पक्ष मे हूँ ।
समस्या किस बात की है ?

बीच-बीच म राधा के केलिकलाप का स्मृति अथवा फैंसी के रूप मे चित्रण है ऐसे स्थला पर अनुराग और आसक्ति उलझनो और बौद्धिकता के मरु मे ओइसिस सी प्रतीत होती है—

तुम्हारा साँवरा लहराता हुआ जिस्म
तुम्हारी किंचित मुडी हुई श्वेत ग्रीवा
तुम्हारी उठती हुई चन्दन बाहे
तुम्हारी अपने मे डूबी हुई अधखुली दृष्टि
धीरे धीरे हिलते हुए तुम्हारे जादू भरे होंठ ।

गद्य मे लिखा हुआ यह काव्य रह रह कर अलकृति और कही-कही रागात्मकता से पाठक को आकर्षित करता है । किन्तु राधा को नया व्यक्तित्व देने अथवा राधा के माध्यम से युद्ध और प्रममय जीवन का द्वन्द्व प्रस्तुत करने का यह प्रयत्न राधा के समर्पित व्यक्तित्व के विरुद्ध बडा अजीब सा लगता है किन्तु प्रयोगवाद मे अजीब को ही नया माना जाता है और इस दृष्टि से लखक को अवश्य सफलता मिली है ।

हिन्दी मे प्रयोगवाद की सक्षेप मे यही कहानी है। बहुत से कवियो का ऊपर का परिचय नही दिया जा सका किन्तु उक्त प्रवृत्तियां ही अन्यो मे भी हैं। यथा बालकृष्णराव, मुद्राराक्षस, अजितकुमार, प्रभाकरमाचवे, जितेन्द्रपाठक विपिनकुमार, वीरेन्द्रकुमार जैन, अनाम, मनोहर जोशो, श्रीहरि, *शिवकुटीलाल,* नित्यानन्द तिवारी, श्याममोहन, महेन्द्रभल्ला, उमाकान्त मालवीय, रामशकर मिश्र, गिरधरगोपाल, प्रमोदगुप्त, मुक्त, सूर्यनरायण दीक्षित, राजेन्द्रयादव, मलयज, विष्णुस्वरूप, राधाकृष्ण, आदि अनेक कवि इस धारा मे लिख रहे हैं, खराद पर चढ रहे हैं, कुछ मे चमक आ रही है, कुछ खराद पर ही घिस कर टूट रहे हैं, पीछे छूट रहे हैं। कुछ सतुलन सीख रहे हैं, आलोचना से लाभ उठा रहे हैं, कुछ अपनी जडता मे ही मग्न हैं और बलात् अपनी 'रुचि' और 'कृतित्व' को 'पूर्ण' मानकर आगे बढ रहे हैं। सख्या को देखते हुए हिन्दी मे 'प्रयोगवाद' अब एक *निश्चित रूपधारण कर चुका है, हिन्दी साहित्य का* लेखक अब इसकी उपेक्षा नही कर सकता।

मैंने जान-बूझ कर योरोपीय प्रभाव का इस निबन्ध के प्रारम्भ मे विवरण नही दिया। आगे उसका थोडा सा परिचय मात्र दिया जाएगा ताकि पाठक इस उक्त विकास के "सन्दर्भ" को पहचान सकें किन्तु यदि यह मानकर चला जाय कि यह काव्य योरोपीय इलियट, एज़रापौंड, फ्रेंचप्रतीकवादी कवियो आदि से केवल प्रेरणा ग्रहण कर ही चला है, तो भी इस काव्य के उक्त विवेचन से इसके दोष और गुण स्पष्ट हैं।

(१) प्रयोगवाद की सबसे बडी दुर्बलता उसका सकीर्ण चिन्तन है, 'चिन्तन' जीवन दृष्टि है जो 'भाव' के लक्ष्य को निर्धारित करती है। 'दृष्टि' के ही प्रचार या उद्‌वमन के कारण 'भाव' की उपेक्षा हुई है।

(२) यदि प्रयोगवादी 'कथ्य' से सहमति और असहमति का प्रश्न न भी उठाया जाय तो भी काव्य की पद्धति यह है कि विचार और मानसिक-स्थितियो को 'राग' के माध्यम से व्यजित किया जाना चाहिए क्योंकि साहित्य इस रागात्मकसूत्र को ही स्पन्दित करता है। बात पुरानी है। परन्तु यह सत्य आगे भी सत्य रहेगा, यदि मनुष्य के प्राकृतिक हृदय के स्थान पर कृत्रिम हृदय न लगा दिए गए। (विज्ञान ने अब यह सम्भव कर दिया है और सुना है कि कृत्रिम 'दिल' मनुष्य मे रागात्मक अशाति नही उत्पन्न करता।) हिन्दी मे, 'सिद्धान्त वादिता' का काव्य पर प्रकोप, एक ओर सुमित्रानन्दन पन्त के नूतनकाव्य मे दिखाई पडता है और दूसरी ओर प्रयोगवाद मे। विद्वत्ता वास्तविक

हो या कृत्रिम वह स्वय अपनी विधि से व्यक्त होने पर काव्य नही बनती इसीलिए कहा गया है—ये विद्वान्स न कवय ।

(३) प्रयोगवाद का तीसरा दोष औचित्य का अभाव है जिन तत्वो पर प्रयोगवाद ने बल दिया है। इन बुद्धितत्व नूतन अप्रस्तुतविधान और गद्यमयता आदि का अतिनिर्वाह प्रारम्भ म नवीनता के कारण आकषक लगा किन्तु अब धीरे धीरे वह एक निश्चित रूपधारण कर पिष्टपेष्टित होकर आ रहा है। जिस प्रकार संस्कृत के उत्तर काल में कविशिक्षा सम्बन्धी पुस्तको मे उपमाओ रूपको की सूची पढकर कोई भी कविता लिख लेता था उसी तरह नूतन उपमाओ की सूची बनाकर साहश्य यानी गुण कम द्रव्य और रूप का ध्यान रख बिना उनका प्रयोग बढ गया है। जिस प्रकार इस अलकृति के आतिशय्य के विरुद्ध ध्वनिवादियो ने रस को श्रेष्ठ घोषित कर अलकार रीति और वक्रोक्ति-वादियो को औचित्य की शिक्षा दी थी उसी तरह हिन्दी मे अलकृति चमत्कार वार्दवैचित्य आदि के आतिशय्य के बाद अब नीरसता के विरुद्ध सघष छिडा हुआ है। प्रयोगवादियो के अप्रस्तुत विधान मे भी जो दोष है वे कभी इसी देश म अपने ढग से पहले भी बढ थे।

प्रयोगवाद म उपमा रूपक और विरोधमूलक अलकारो म उपमा के दो रूप मिलते हैं। (१) बौद्धिकउपमाएँ (२) भावात्मक। इनम बौद्धिक उपमाओ की प्रयोगवाद म भरमार है। बौद्धिक उपमा मे परस्पर असम्बद्धित और दूरस्थित दो धारणाओ और वस्तुओ मे तुलना की जाती है यथा जुए के पत्त सी इच्छा रिरियाने कुत्त की वासना आदि। मृच्छकटिक नाटक मे बौद्धिक उपमाएँ बहुत अधिक मिलती हैं और आकषक मिलती हैं यथा निद्रा का दयिता से उपमा देना या गरीब और धमनिष्ठ व्यक्ति को कुल वधू से उपमा देना—सक्तवा भक्षिता राजन शुद्धा कुलवधूरिव। ऐसी उपमाओ म आश्चर्यभूतत्त्व रहता है क्योकि अप्रत्याशित रूप मे दो वस्तुओ मे सम्बन्ध स्थापित कर दिया जाता है। किन्तु बौद्धिक उपमा मे कवियो द्वारा असावधानी से जब तुलना मे अस्पष्टता और दूरी (Far fetchedness) आ जाती है तो बौद्धिक उपमा हास्यास्पद हो जाती है, प्रयोगवाद म प्राय ऐसा हुआ है। जब साहश्य कवल एक बाह्य सामान्य बिन्दु पर ही आधारित होता है तब उपमा हास्यास्पद हो जाती है साहश्य की मात्रा की अधिकता उपमा को सफल बनाती है। डा० राघवन ने एक साहश्य के अभाव का एक सुन्दर उदाहरण दिया है—एक क्राइस्ट ड सेल काड मे

एक कुत्ते का चित्र था और वह अपनी कटी हुई पूँछ की ओर देख रहा था, इस चित्र के नीचे कार्ड पर लिखा था—

It will not be long now before chritmas as the dog said about its tail ![1]

यहां कुत्ते की पूँछ की अदीर्घता और बडे दिन की अवधि की अदीर्घता मे साहश्य स्थापित कर दिया गया गया है किन्तु साहश्य की मात्रा अत्यधिक कम होने तथा बडे दिन की पवित्रता कुत्ते के साथ सम्बन्धित होजाने पर 'उपमा' हास्यास्पद हो गई है। प्रयोगवादी "बौद्धिक उपमाओ" मे यह दोष बहुत अधिक है। बिना 'साहश्य' के उपमा देने मे और दो परस्पर विरोधी वस्तुओ को एकत्र कर देने मे "आश्चर्यभूतत्व" का गुण आ जाता है परन्तु वह केवल 'हास्य' को जन्म देता है। 'भावात्मक' उपमाओ मे प्रयोगवाद मे यह दोष अपेक्षाकृत काम पाया जाता है, पर यहां भी अनेक उदाहरण दोषमुक्त पाए जाते हैं।

अलकार के प्रयोग मे ध्वनिवादियो ने कहा था कि "समीक्षापूर्वक" अर्थात् विवेकपूर्वक अलकारो का सनिवेश होना चाहिए (समीक्ष्य विनिवे यह बात अब भी सच है। परम्परा का अनुशीलन न करने से ही प्रय अनाचित्य के शिकार हुए हैं।

(४) केवल क्षणविशेष मे कौंधने वाली 'मानसिक स्थितियो की व्यज से महान काव्य की हष्टि नहीं हो सकती, वस्तुत इन्हे किसी मुख्य मानसि स्थिति की सहायक "स्थिति" बनाकर ही व्यजित करने से ही महान काव्य की सृष्टि हो सकती है। भावोर्मियां समग्र और सम्बद्ध रूप मे इस काव्य मे व्यक्त नही हो सकी अत मानसिक जगत् का मुख्य और स्थायी अश वुभुक्षित अ उपेक्षित ही रह जाता है।[२]

(५) व्यक्तिनिष्ठा पर अत्यधिक बल देने से, सामूहिक स्पन्दनों की उपेक्षा हुई है।

(६) अभी तक प्रयोगवादियों के 'कथ्य' सम्बन्धित विचार निश्चत नहीं हो पाए हैं, इससे काव्य के क्षेत्र मे व्यर्थ ही उलझन, आपाधापी और

---

1. Some Aspects of Alankaras—page 61
२. अनुभव खण्डों पर ही अधिक बल देने के सम्बन्ध मे 'स्काट जेम्स' का मत, "मेकिंग आफ लिटरेचर" मे द्रष्टव्य है।

स्पष्टा की बुद्धि से नाना भ्रमों का सृजन हुआ है। पाठक पर इसकी प्रतिक्रिया इसलिए अप्रिय होती है कि अनिश्चित मानसिक स्थितियों और विचारों का काव्य में भी उन्वमन हो रहा है।

(७) अभिव्यक्ति के लिए गद्य का माध्यम चुना गया है लय की अब तक उपेक्षा ही हुई है। निराला के मुक्तछंदों का काव्य पढ़ते समय जो 'प्रवाह' मुक्तकाव्य का प्राण प्रतीत होता था उसी की क्षति हुई है। अतः प्रयोगवादी काव्य को समग्रतः न गद्यकाव्य कहा जा सकता है न पद्यकाव्य यह वस्तुतः गद्य पद्यकाव्य या गद्य काव्य ही है (Poetic Prose)। रामस्वरूप चतुर्वेदी ने नयी कविता में ही गद्य कविता नाम सुझाया है मैं इससे सहमत हूँ। बुद्धि और भाव के सुखद सामञ्जस्य की पुकार उठने लगी है अतः इस गद्यमयता से प्रयोगवाद को मुक्त होना पड़ेगा।

(८) संस्कृत की दीर्घ समासग्रस्त तत्सम शब्दावली का प्रयोग गद्यमयता के कारण ही बढ़ रहा है। निराला की भाषा का प्रयोग काव्य में चल नहीं सकता।

(९) 'वाच्य' अथवा अभिधा का अत्यधिक तिरस्कार प्रयोगवाद का गुण नहीं दोष है। संकेतों प्रतीकों आदि का औचित्यपूर्ण प्रयोग ही होना चाहिए।

(१०) शब्दों में जितना अर्थ समा सके उतना ही अर्थ भरने का प्रयत्न नहीं किया गया है। अतः शब्द ही काव्य का माध्यम है। इस दोष से काव्य अस्फुट और अनभिव्यक्त हो जाता है। चित्रकाव्य के प्रचार का भी यही कारण है।

(११) अर्थ पर अधिक ध्यान देकर आस्वादन की उपेक्षा की गई है। अर्थ की नवीनता पर ही बल दिया गया है उसकी प्रपणीयता पर नहीं।

(१२) सौंदर्य और कुरूपता को एक करने का प्रयत्न किया गया है। उदात्तता' की पूर्ण उपेक्षा की गई है।

प्रयोगवाद के मुख्य दोष ये ही हैं। इन्हें द्वादशनिदान भी कहा जा सकता है। गौतम बुद्ध ने कहा था कि दुःख का कारण तृष्णा है प्रयोगवादी कवियों यानी तथाकथित प्रयोगवादी कवियों के दुःख का कारण यश तृष्णा है। प्यास का शमन के बाद जल का आनन्द अनुभव होता है इसी प्रकार अधिक सन्तुलन, काव्य प्रक्रिया में आन्तरिक अनुशासन और काव्याङ्गों

के समुचित निबन्धन के बाद जो यश जन मिलेगा वह इस जन से मधुर होगा जो यशकामातुरता म प्रयोगवादियो को मिल रहा है।

किन्तु यह प्रयोगवादियो के प्रति अ याय होगा यदि यह कहा जाय कि उनकी कुछ भी उपलब्धि नही है। हम कह चुके हैं कि वक्रोक्ति स्वाभावोक्ति और रसोक्ति इन तान उक्तियो मे प्रथम म प्रयोगवाद सफल हुआ है। काव्य भणितिभगिमा पर निभर करता है प्रयोगवाद ने *अपनी विशिष्ट* कथनभगिमा को हिन्दी मे प्रतिष्ठित किया है अ य भाषाओ मे भी यह प्रवृत्ति पाई जाती है। इसके लिए अफसोस करने मे हमारी ही हानि है।

(२) प्रगतिवाद के समानान्तर विकसित प्रयोगवादी काव्य मे वर्णित मानसिक स्थितियो के विस्तार स वण्य वस्तु का अवश्य विकास हुआ है। अब हिन्दी काव्य मे छोटे छोटे अनुभव एन्द्रिक सवेदन और देशकाल निरपेक्ष नलित कल्पना या फैसी की अभिव्यक्ति अधिक मात्रा मे हुई है। चिन्तानात्मक (Refective) काव्य का एक विशिष्ट रूप हिन्दी मे आया है।

(३) हिन्दी मे गद्यकाव्य भारते दु युग से ही निखा जाने नगा था। इस गद्यकाव्य के क्षत्र मे प्रयोगवादी गद्य काव्य से एक विशिष्ट गद्य काव्य का अच्छा विकास हुआ है जो मार्मिक चाहे न हो किन्तु चमत्कारक अवश्य है।

(४) कुकुरमुत्ता नएपत्त के व्यग्य जैसा प्रयोगवाद म व्यग्यकाव्य का अच्छा विकास हुआ है। व्यग्यो मे प्रयोगवादी अप्रस्तुत विधान का एक सीमा तक औचित्य भी दिखाई पडता है।

(५) अलकारो म सादृश्यमूलक अलकारो म उपमा और विरोध मूलक अलकारो म विरोधाभास का व्यापक विकास हुआ है। बहुत सी उपमाए सुन्दर भी है और मार्मिक भी। प्रतीको का तो ढर ही लग गया है। प्रत्येक वस्तु इस काव्य मे प्रतीक बन गई है। इससे एक प्रकार की गहराई भी आइ है।

(६) नाककाव्य से प्रभावित प्रयोगवाद का अश मार्मिक भी है।

(७) वस्तुव्यजना की दृष्टि से प्रयोगवादी प्रकृतिचित्रण अत्यधिक आकषक हुए हैं। स्वाभावोक्ति न अपना कर इन कवियो ने अलकार द्वारा वस्तु की प्राय व्यजना की है।

(८) पुराने कवि कविप्रौढोक्ति द्वारा कल्पितकल्पना का विधान करते थ। प्रयोगवाद म वैज्ञानिक जगत् म पदार्थों को लेकर कविप्रौढोक्ति-विधान आरम्भ हुआ है।

(९) वार्तालापात्मक शैली प्रयोगवाद की अपनी उपलब्धि है।

(१०) 'कथ्य' की दृष्टि से प्रयोगवाद कम से कम 'अध्यात्मवाद' का विरोधी है, यह स्मरणीय है। उदाहरणत पन्तजी के 'दार्शनिककाव्य' की पीठिका मे स्थित अंधविश्वास को वह स्वीकार नहीं करता।

(११) 'प्रगतिवादीप्रयोगवाद' मे समग्रत शैली का ही अनुकरण है, 'कथ्य' का नही, यह भी स्मरणीय है।

(१२) प्रयोगवादियों की घोषणाओ, भूमिकाओ और रचना-प्रक्रिया मे सर्वत्र साम्य नहीं है, यह शुभ पक्ष है!

इस प्रकार प्रयोगवाद का यह 'द्वादशनिदान' उपलब्धि से सम्बन्धित है। 'प्रयत्न मे निष्ठा' प्रयोगवाद मे अवश्य है, इसी का यह फल है। प्रयोगवाद के सगठित प्रयत्न और वैचारिक सघर्ष से कोई भी प्रेरणा ले सकता है।

प्रयोगवाद मे 'कथ्य', सौंदर्य-बोध और भावबोध की दृष्टि से स्पष्टतः दो धाराएँ दिखाई पड़ती है, मैंने इसीलिए प्रगतिवादी प्रयोगवाद और तथा-कथित 'प्रयोगवाद' को अलग करके देखा है। प्रगतिवादी-प्रयोगवाद के कवियो मे अज्ञेय की प्रारम्भिक रचनाएँ, डा० रामविलास, गजानन मुक्ति-बोध, नेमिचन्द जैन, भवानीप्रसाद मिश्र, शमशेर नरेशमेहता, सर्वेश्वर, मदन वात्स्यायन, रामावतार चेतन, दुष्यन्तकुमार, कीर्ति चौधरी, रमासिह, भारतभूषण अग्रवाल, केदारनाथ सिंह, प्रयागनरायण त्रिपाठी तथा प्रयोगवादी शैली के प्रयोक्ता गीतकार हैं। तथाकथित समाजविरोधी, इलियट, एज़रापौंड, जीनपाल सार्त्र आदि के "कथ्य" का भी अनुकरण करने वाले कवियो मे अज्ञेय, भारती, कुँअर नारायण, जगदीश गुप्त, विजयदेवनारायणसाही, राजेन्द्रकिशोर, लक्ष्मी-कान्त आदि हैं। उक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि प्रतिक्रियावाद का गढ भारती-जगदीश गुप्त, साही और लक्ष्मीकान्त वर्मा का "इलाहाबादी" कविमण्डल ही अधिक है! इन पर योरोप के ध्वसशील पूँजीवाद की विचारधारा का निश्चित रूप से अत्यधिक प्रभाव पडा है।

पाश्चात्य साहित्य मे नयी कविता—स्वच्छन्दतावादी काव्य के बाद अँगरेजी काव्य मे "ज्यौरिजयन कवि" दैनिक जीवन (भग्नचर्च, क्रिकेट, बर्लैविटग बौक्स आदि) पर अधिक लिखते हुए दिखाई पडते है। किन्तु इस का प्रभाव परवर्ती काव्य पर कम पडा है। इस "ज्यौरिजयन काव्य" का सग्रह १९११-१२ ई० में एडवर्ड मार्श द्वारा प्रकाशित हुआ। इसमे रूपर्ट ब्रुक, डैविस, जॉन ड्रिंगवाटर, फ्लेकर, गिब्सन, मैसीफील्ड, मनरो, टर्नर आदि कवियों की

रचनाएँ थी। इन रचनाओ म कइ प्रवृत्तिया प्रधान थी जिनम एक दो बाद के विम्ववादियों और इमेजिस्टवादियों म भी दिखाइ पडती हैं। इनम कुछ कवि टेनीसन वर्ड्सवर्थ मिल्टन आदि से प्रेरित थे और पुरान वर्ण्य विषयो और छन्दो को अपनाते थ। कुछ धार्मिक विषयो पर लिखते थ और मुक्त छन्द अपनाते थ। कुछ सौन्दर्यवादी थे जो शाब्दिक व्यजना प्रतीक और शाब्दिक सगीत म दिलचस्पी अधिक लेते थ। ज्योरजियन कविता की यह प्रवृत्ति आगे भी विकसित हुइ। कुछ यथार्थवादी प्रभाववाद (Realistic Impressionism) के अभ्यासी थे। ये कवि आधुनिक जीवन को कल्पनात्मक प्रेरणा के लिए अपनाते थ। और गद्यात्मक चित्र-कल्पना (Prosaic imagery) और अव्यवस्थित छन्दो का प्रयोग करते थ। यह प्रवृत्ति भी आगे बढी जसा कि बैब्ज न स्वीकार किया है कि बीसवीं शताब्दी सामान्यता की शताब्दी है।[१] ज्योरजियन कविता म देहातियो के सामान्य जीवन समुद्र, खेती मछली जसे विषय काव्य विषयो के रूप म इसीलिए दिखाई पड़े।

ज्योरजियन कविता में समसामयिकता की प्रवृत्ति अधिक थी। अभिव्यक्ति की दृष्टि से इन कविता मे रोमाटिको की उदात्त शैली के स्थान पर सामान्य वार्तालापात्मक शैली का विकास हुआ यह प्रवृत्ति आगे और बढी। The trend of modern poetry का लेखक तो इस प्रवृत्ति को पुरानी कविता से अलग करने का भेदक लक्षण बताता है (The general lowering of poetic pitch that marks our age from its predecessors)।[२]

फिर भी इनर की कविता पर विम्ववादियो का प्रभाव अधिक दिखाई पडता है। विम्ववादियो के सग्रह १९१४ १९१५ १९१६ और १९१७ म म प्रकाशित हुए। इनम टी० इ० ह्यूमी (T E Hulmi) फ्लिण्ट रिचार्ड एल्डिंग्टन एज्रा पौंड एच० डी० तथा लावेल प्रमुखतम विम्ववादी कवि थ। इनम ह्यूमी आदि गुरु थ। उसने १९०८ म पोइट्सक्लब स्थापित किया था और बिम्बवाद के सिद्धान्त प्रतिपादित किए थ। जापानी तका और हैका (Tanka and Haikai) पद्धति का अँगरेजी कविता म प्रचार कर सवथा नूतन काव्य की सृष्टि इसकी उद्देश्य था।

---

१ Twenteth Century was full of an unsatisfied hunger for the Commonplace—(Poetry in our time—Babette Deutsch Page 20)

२ Geoffrey Bullough Page 66

'ह्यूमी" के विचार 'Speculation' नामक पुस्तक मे प्रकाशित हुए थे। यह स्मरणीय है कि 'ह्यूमी' बर्गसाँ के दर्शन मे विश्वास करता था यानी 'तर्क' के स्थान पर स्वयप्रकाश्यज्ञान" का अनुगामी था ! फ्रेंच लेखकों से प्रोत्साहित होकर उसने "शब्द-सम्प्रदाय" (The cult of word) चलाया। यह मूलत रोमाटिक काव्य का विरोधी आन्दोलन था। यह 'ह्यूमी' जर्मनी के वौरिंगर (worringer) नामक लेखक की तरह मानता था, कि आधुनिक सभ्यता ने मनुष्य और प्रकृति म असामाञ्जस्य उत्पन्न कर दिया है। ह्यूमी' रोमाटिको के इस मानववाद का भी विरोधी था कि मनुष्य अनन्त सम्भावनाओ का केन्द्र है और उसकी उन्नति के लिए सामाजिक व्यवस्था मे परिवर्त्तन आवश्यक है—वह मनुष्य को असाधारण रूप से स्थिर' और 'सीमित' पशु मानता था अत 'परम्परा' और व्यवस्था' द्वारा ही वह उसकी उन्नति मानता है।

तात्पर्य यह है कि बिम्बवाद का प्रवर्तक प्रतिक्रियावादी विचारक था ! वह समाज मे 'परिर्तन' या क्रान्ति का विरोधी था !

अभिव्यक्ति की दृष्टि से ह्यूमी स्पष्ट निरीक्षण, यथावत् चित्रण और बिम्बो के शुद्ध विधान पर बल देता है। वह किसी भी प्रकार की अलङ्कृति और सज्जा को पसन्द नही करता। दृश्यमान् पदार्थों के रूप, ध्वनि, सुगन्धि, स्पर्श, और रस अर्थात् ऐन्द्रिक सवेदनो (Sen suous experience) के चित्रण पर उसने बहुत जोर दिया है। रोमाटिक कवियो मे वर्णित 'उदात्त' (Sublime) के लिए उसके यहाँ कोई स्थान नही दिखाई पडता ! वह वस्तु के भावात्मक वर्णन के स्थान पर यथावत् चित्रण अथवा वस्तु-व्यजना पर अधिक बल देता है (The accurate description is a legitimate object of verse)।

ह्यूमी के अनुसार यह 'एक्यूरेसी' शब्द विशेष के प्रयोग से उत्पन्न होती है। 'प्रत्येक शब्द मे एक 'मूर्त्ति' होनी चाहिए। 'विचार' की 'मूर्त्तिमत्ता' पर भी वह बल देता है। उसके लिए भाव भी यथार्थ विजन अथवा 'ध्वनि' पर आधारित है।[1] इस प्रकार ह्यूमी ने विषय का प्रत्यक्ष वर्णन, सक्षिप्तता, मूर्त्ति के सिद्धान्त और आन्तरिक लय पर विशेष ध्यान दिया है।

---

1 "Poetry is no more nor less than Mosaic of words, so great exactness is required for each one always hard definite, personal word each word with an image sticking on to it, never as a flat word all emotion depends on real solid vision or sound It is physical" (The trend of Modern Poetry—Page 81)

एज़रा पौंड ने इमेज की परिभाषा यह दी है कि जो एक क्षण में एक बौद्धिक और भावात्मक मिश्रित मूर्ति को चेतना में प्रस्तुत करे वही इमेज है।[1] एज़रा पौण्ड स्पष्ट इमेज पर ही बल देता है और दार्शनिक तथा वर्णनात्मक कविताओं से दूर रहने का उपदेश देता है। परिणामत बिम्बवाद में विचार का अनादर हुआ है। बिम्बवादी प्रभाववादियों (इम्प्रैशनिस्ट) की तरह पदार्थों के चेतना पर प्रथम प्रभाव का ही अधिक चित्रण करते हैं अत यह काव्य प्रथम संवेदनों (Immediate emotions) का काव्य है स्थायीभावों का काव्य नहीं जैसा कि पूर्ववर्ती काव्य में मिलता है। प्रयोगवाद में यह प्रवृत्ति प्रबल है। उच्चकोटि के विचारों उदात्तभावनाओं आदि का इस कलावादी सम्प्रदाय में कोई महत्व नहीं है। बिम्बवादी शुद्ध कविता के स्रष्टा अधिक हैं। वे काव्य का उद्देश्य क्षणिक उत्तेजना को मानते हैं। इनका मत है कि उत्तेजना लम्बी कविता में अधिक देर तक नहीं रक्षित हो सकती अत केवल मूर्ति को जन्म देने वाले शब्दों का संक्षिप्त प्रयोग करना चाहिए।

अत बिम्बवादियों ने अत्यधिक संक्षिप्त रचनाएँ प्रस्तुत कीं। शमशेर बहादुर में यह प्रवृत्ति सबसे अधिक मिलती है। बिम्बवाद के प्रभाव से एक नयी शैली का जन्म हुआ जिसमें तर्कपूर्ण अन्वितियुक्त लेखन के स्थान पर प्रतीक और मनोविज्ञान की साहचर्य पद्धति का प्रयोग बढ़ने लगा। अस्पष्टता को गुण माना जाने लगा। संक्षिप्त इमेजरी का प्रसिद्ध उदाहरण यह है जिसे जापानी-पद्धति पर ही ढाला गया है—

> एक पुराना तालाब !
> और एक उछलते मेंढक की आवाज़
> पानी के भीतर !

इसका अर्थ भी दिया गया है। प्रथम यह तथ्य का वर्णन है ! दूसरे तथ्य से भाव को ग्रहण किया गया है ! यह आध्यात्मिक प्रतीक भी है !

जापानी भाषा में शब्द एक से अधिक व्यंजना देते हैं अत मूर्तिमत्ता के लिए सुविधा रहती है किन्तु अंगरेज़ी और हिन्दी में यह कला चल नहीं

1 An image is that which presents an intellectual and emotional complex in an instant of time

सकती । इसी तरह एक "स्टापशॉट" पद्धति चीनी भाषा मे प्रचलित है, उसे भी अपनाया गया है। इसमे शब्द रुक जाते है और अर्थ आगे बढ जाता है। 'शमशेर' की प्रयोगवादी कला मे इसका भी प्रयोग है—

चित्रकारी के रगो मे बन
स्वय
फैल—फैल मैं गया
हूँ, कहाँ—कहाँ ?

यहाँ "या" के बाद रुक कर 'हूँ' पढा जाएगा। जिससे एक विशिष्ट अर्थ घोषित होगा। इसी तरह अतिम "कहाँ' से अनन्तप्रश्नात्मकता ध्वनित होगी।

मतलब यह कि शब्दो से 'व्यजना' की इतनी अधिक आशा करना प्रयोगवाद की विशेषता है किन्तु अत्यधिक आशय की इस अपेक्षा मे कविता समाप्त हो जाती है, उसे शुद्ध कविता कह सकते हैं, वास्तविक कविता नही। जहाँ बडे विवरण हैं भी, वहाँ 'नई उपमाओ' और वस्तु के यथावत चित्रण पर बल अधिक है। एक बिम्बवादी कवि (Walsh) का एक विवरण द्रष्टव्य है—

वह पोस्ट आफिस बहुत बडा था।
गरमधूप मे दिनभर इसका फटा हुआ श्वेत मुख।
स्ववायर मे फव्वारा से आते जाते को देखा करता था।
फव्वारा एक मित्र साधु है जो हर बात सुनता है।
स्ववायर मे ऐसा लोग कहते थे।
यह पुरानी औरत बहुत से गुप्त भेदो को जानती थी
जिन्हे कहते लोग डरते थे।
और उसने उन भेदो को अपने पास ही रखा
वे उस बडे पोस्ट आफिस के सामने से गुजरे।
वह गाँव का कुत्ता इन गाँव के बच्चो से देखने मे
स्वच्छन्र, कोमलतर और अधिक भद्र था।
जो बदरो की तरह एकत्र हो जाते थे।
वह बुड्डा जिसके मुख पर पुराने सिक्के जैसा गौरव था।
जनता के सफाईघर से स्त्रियाँ, झाड़ू की तरह निकली।
ऐसी झाड़ू जा फेंकी जाने के लिए प्रस्तुत हो।

फिर भी किसी तरह सूप उसरे करबे से गुजरता है।
वृद्ध भद्र व्यक्ति के उन हाथ की तरह
जो किसी चिन्ता रहित मुख पर फिरता है।[1]

ऐसी रचनाओ के लिए नए मापदण्ड की क्या आवश्यकता है यह शुद्ध वस्तु व्यजना है। सक्षिप्त चित्रणा म उत्तविवरण का आवरण भी नही आपाता क्योकि जापानी और चीनी भाषा की शक्ति भिन्न है। सक्षिप्त रचनाओ म बिम्बवादियो द्वारा प्रतीकात्मकता उत्पन्न नही की जा सकी—

As cool as the pale wet leaves of lily of the valley She lay beside me in the dawn (एजरा पौंड)

यहा प्रतीकात्मकता गायब हो गई है। इसी तरह जगदीशगुप्त द्वारा सम्पादित नयी कविता की कई कविताओ मे प्रतीकात्मकता गायब हो गई है केवल हास्यास्पदता अवशेष रह गई है जैसे तोता शीर्षक रचना मे।

बिम्बवादियो पर फ्रास क प्रतीकवादियो का भी प्रभाव था। मलार्मे जसे प्रतीकवादी मानसिक स्थितियो की एक सकुल अवस्था को अप्रत्यक्ष प्रतीकात्मक पद्धति द्वारा व्यजित करते थ जिन्ह विवरणात्मक भाषा मे व्यक्त नही किया जा सकता था। मलार्मे ने इस अप्रत्यक्षता पर बरावर बल दिया है—

to evoke an object in deliberate shadow without ever actually mentioning it by allusive words never by direct words

बिम्बवादियो स फ्रेंच प्रतीकवादी अधिक सफल हुए। बिम्बवादियो ने आतरिक गठनात्मक सगीत पर बल दिया है किन्तु वास्तविक सगीत और लय की उपेक्षा की है। वार्तालापात्मक सगीत उनम अधिक है। सांस लेने के लिए ही वह पक्ति को विराम देते हैं न कि छन्द के आग्रह के लिए। गद्य से भिन्नता इस काव्य में सिर्फ यह है कि बिम्बवादी पद्य म स्वराघात और ध्वनि के घुमाव अधिक होते हैं प्रयोगवाद म भी यही प्रवृत्ति मिलती है। अत काव्यपक्तियाँ लय पर नहा पठनकाल म टायमयूनिट पर आधारित की जाती हैं। फिर भी जगदीश गुप्त की अर्थ की लय से उक्त सिद्धान्त वही

---

१ Poetry in our time म उद्धृत।

Three you are
Moss you are
you are Violets with wind above them
A child—So high—you are

अनुप्रास से शब्द संगीत को पुष्ट किया गया। लय का बहिष्कार किया गया।

बिम्बवादियों के प्रयोगों से प्रवाहहीन मुक्तछन्द का प्रयोग बहुत बढ़ा। १९१४ के बाद की अँगरेजी कविता में यही प्रवृत्ति है। किन्तु प्रायः कवियों ने अपने अव्यवस्थित और अधपचे विचारों को व्यक्त करने के लिए इस पद्धति का दुरुपयोग किया। एंद्रिक संवेदना को व्यंजित करने में इस पद्धति से कुछ सहायता अवश्य मिली किन्तु भाव का अनादर हुआ। कुछ कवियों में बौद्धिकता का आधिक्य बढ़ा जिससे कल्पनात्मक सामञ्जस्य को हानि पहुँची।

प्रथम युद्ध-काल और उसके बाद अँगरेजी काव्य में आधुनिक सभ्यता पर व्यंग्य-काव्य का भी विकास हुआ। व्यंग्यकाव्य में छन्द के क्षेत्र में व्यग्र आपाधापी उतनी नहीं मिलती अतः इस व्यंग्यकाव्य से काव्य का वास्तविक रूप सुरक्षित रहा। प्रगतिवाद और प्रयोगवाद में भी व्यंग्यकाव्य का अच्छा विकास हुआ है और प्रयोगवादी व्यंग्य में कला की अस्पष्टता भी अपेक्षाकृत कम है।

प्रथमयुद्धकाल के बाद हर्बट रीड लारेंस और इलियट का प्रभाव दिखाई पड़ता है। प्रयोगवाद पर टी० एस० इलियट का प्रभाव अधिक पड़ा है यह हम कह चुके हैं। इलियट की आलोचना पर मैथ्यू आर्नल्ड और टी० ई० ह्यूम (बिम्बवादी) का प्रभाव अधिक है। इलियट के लिए रोमांटिक काव्य आत्मशोषण था। अतः वह परम्परा पर बल देता है। परम्परा में उसने ध्वंसोन्मुख पूँजीवादी समाज के लिए समाधान भी खोज लिया जो उसके फोरक्वारटट्स में मिलता है। जो व्यक्ति इतिहास और विज्ञान से भागता है वह धर्म में ही शरण ले सकता है। इलियट के साथ भी यही हुआ। भावात्मक भव्य और क्रांति के स्वर से युक्त स्वच्छन्दतावादी काव्य के विरुद्ध इलियट ने काव्य को व्यक्तित्व से पलायन की अभिव्यक्ति घोषित किया जिसकी शब्दशः प्रतिध्वनि अज्ञेय में मिलती है।

"Poetry is not a turning loose of emotion but
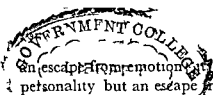
an escape from emotion, it is not the expression of personality but an escape from personality

यह स्वर स्वच्छन्दतावादी काव्य के विरुद्ध है। हिन्दी में नयी कविता इसी भाव विरोध से आक्रान्त हो रही है। अनुकृति का परिणाम यही होता है। इलियट ने अपने काव्य में इतिहास विज्ञान पुराण धर्म दर्शन आदि से प्रसग इतने अधिक भर दिये हैं कि अतिशय प्रसग-गर्भत्व के कारण वह अत्यधिक दुरूह हो गया है नाना कुतर्कों से इस प्रवृत्ति का समर्थन इलियट का मुख्य वक्तव्य रहा है किन्तु वेस्ट लैण्ड के बाद यह प्रवृत्ति उसमे कम दिखाई पड़ती है। इलियट के अनुसार कवि का विद्वान और भूतकाल के प्रति निष्ठावान होना चाहिए। इलियट प्राचीन साहित्य को समसामयिक अनुभव करता हुआ चला है। युद्ध के बाद भविष्य की असुरक्षा और शकाशीलता से से युक्त ध्वसशील पूजीवादी समाज की प्रतिक्रिया का चित्र इलियट ने पूरी ईमानदारी से प्रस्तुत किया है।

काव्य की दृष्टि से इलियट प्रगतिवादी दृष्टि के विरुद्ध प्रतिक्रियावादी दृष्टि का प्रचारक है। युद्ध के पूर्व जो आदर्शवाद कवियो मे था लगता है उसके प्रति उनमें वितृष्णा उत्पन्न हुई और बहुत से प्रगतिशील लेखकों ने रूस की साम्यवादी प्रगति और राजनीति को देखकर यह समझा कि साम्यवादी समाज में भी निष्ठुरता कम नहीं है वहा आजादी का अभाव है युद्ध में वह कम क्रूर नहीं है राजनैतिक दावपेंच में साम्यवादी स्टालिन कम अवसरवादी नहीं है अत कवियो के मन में साम्यवाद को जो एक सुनहले स्वप्न के रूप में देखने की प्रवृत्ति थी वह नष्ट होने लगी और उन्हे लगा कि अब तक की सारी बौद्धिक धारणाएँ और मतवाद व्यर्थ साबित हुए हैं अत मानवता की मुक्ति के लिए इलियट अपने प्रिय ईसाई रहस्यवाद में मग्न होते गए। भविष्य का कोई रूप तथा सामाजिक व्यवस्था सम्बन्धी कोई सिद्धान्त इन इलियटवादियों में नहीं मिलता किन्तु इनके विरुद्ध आडन और उनकी परम्परा के कवि ((Left Wingers) प्रगतिशील भावनाओं का वर्णन करते हैं।

प्रश्न यह होगा कि इलियट के इस विश्वव्यापी प्रभाव का कारण क्या है? काव्य की दृष्टि से साम्यवाद और विज्ञान के विकास से जो प्रश्न पैदा हुए हैं उनके कारण प्रत्यक्ष देश में बहुत से लोग सन्देह में पड़ गए हैं। शिक्षितमध्यवर्ग एक ओर पूँजीवाद की मनमानी और शोषण को देखता है तो दूसरी ओर वह साम्यवाद में एक ही राजनैतिक दल की

निरकुशता देखना है। ऐतिहासिक दृष्टि से न देखकर यह वग दोना ओर से निराश होकर या तो अपने म लीन होकर रह जाता है या फिर धर्म और अध्यात्म' म शरण खोजता है। अत इलियट को काव्य की दृष्टि से एक बहुत बडा वग मिल गया है।

कला की दृष्टि से इलियट फ्रेंच प्रतीकवादियो और बिम्बवादियो से प्रभावित है परन्तु बिम्बवाद का सतुलित रूप ही उसने अपनाया है। मूर्त्तिमत्ता का अपनाकर वह दीर्घ रचनाओ मे प्रतीकात्मक पद्धति अपनाकर अधिक चला है। वह आधुनिक सभ्यता पर व्यग करता है क्योंकि वह उसे ठीक ठीक समझ नही पाता। उसम आत्मनिन्दा के स्वर हैं क्योकि वह व्यक्ति की सामाजिक उमग का परिणाम युद्ध के रूप म देख चुका है। भावुकता उसम नही है क्याकि उससे अन्त म रिक्तता का अनुभव होता है। अत वह अपनी भ्रमरहित मानसिक स्थितियो (disillusioned mental state) का विश्लेषण करता है वातावरण के प्रति अपनी समझ और प्रतीति की गहराई स व्यजना करता है इसके लिए वह वार्तालापात्मक पद्धति अपनाता है। असम्बद्ध मूड्स को वह नाना पौराणिक ऐतिहासिक और नृवैज्ञानिक सन्दर्भों द्वारा सकेतित करता है इसके लिए वह समसामयिक सामग्री का भी प्रयोग करता है यथा सूने कमरे सैलून सूनसान सडकें खिडकी धुआ ट्रन आदि। इनसे वह मानसिक स्थितियो और आधुनिक विकट परिस्थिति की व्याकुलता और उलझन को व्यक्त करता है। फिर भी वह समझता है कि वह जो कह रहा है वह अधूरा है उलझन की चरमसीमा का रूप यह है—

It is impossible to say just what I mean!

But as if magic lantern threw the nerves in patterns on a screen

मध्यवग की इस उलझन को इलियट ने जादू की लालटेन से पर्दे पर दिखाया है अत जादू की लालटेन का यह प्रकाश हिन्दी की प्रयोगवादी कविता पर भी पडा है। अज्ञेय' ने अपने मन के सन्देहो की प्रतिच्छवि वैसे ही इलियट म पाई है जैसे सुमित्रानन्दन पत ने अपनी उलझनो का अन्त अरविन्ददशन म पा लिया है। जिस प्रकार इलियट की फोरक्वाटरटैटस से अधिक उसकी अन्य रचनाओ का और विशेषकर वेस्ट लैण्ड' का प्रभाव यहाँ अधिक पडा है उसी तरह पत जी के आध्यात्मिक काव्य का प्रचार कम हुआ है क्याकि सदेहग्रस्त मध्यवग सदेह मे ही रहना चाहता है। वह निणय

नहीं करना चाहता, अत इलियट और अरविन्द की निर्णीत स्थिति उसे प्रिय नही लगती ! अत 'इलियट' की आवृति-सकेतात्मकता के द्वारा 'शतश अनिश्चयों" (Hundred Indecisions) को वाणी देनी वाली कविता प्रिय हुई है। उच्चवर्ग को भी वह प्रिय है क्योकि वह प्रगतिवाद के विरुद्ध पडती है ! सामान्य व्यक्ति जो 'तथ्य' के महत्त्व को नही भी समझता, वह इलियट की शैली के आकर्षण पर ही मुग्ध हो जाता है। हिन्दी कविता मे "चाय के प्याले मे दिन की छाया" अथवा "जीवन को काफी के चम्मचो से नापना" जैसी उपमाएँ इलियट से ही ली गई है—

I have measured out my life with coffee spoons
I grow old ····· ··I grow old ···

I shall wear the bottoms of my trousers rolled.

इलियट की कला आकर्षक है, उसमे एक प्रधान मानसिक स्थिति, मुक्तसाहचर्यपद्धति द्वारा पुष्ट होती हुई चलती है। इस 'साहचर्य, (Associations) को समझ लेने पर मुख्य मानसिक स्थिति भी स्पष्ट होने लगती है, नवीन उपमाओ के द्वारा वह अपने विचार को व्यजित करता है अत. 'प्रयोगवाद' जैसा प्रदर्शन उसमे नही है। यहाँ तक कि उसमे उपमाओ की पुनरावृत्ति भी मिलती है। इलियट ने "पौंड" का अधानुकरण नही किया, परम्परागत छन्द को भी उसने आजमाया है। इलियट मे एक "व्यग्यपरक तटस्थता" है जो उसे भावुकता से बचाती है, क्योकि उद्गारात्मक रोमाटिक शैली से उसे चिढ है। इलियट ने कविता मे 'श्रम' के साथ-साथ रचना मे शब्द-अपव्यय से बचाव और वक्तव्यता से अपनी रक्षा करने का प्रयत्न किया है। अज्ञेय जिस "आतरिक अनुशासन" पर इतना बल देते हैं, वह न उनकी अपनी रचनाओ मे है, न उनके शिष्यो मे। जो 'तटस्थ अप्रत्यक्षता' और 'विट' इलियट मे है, वह अभी प्रयोगवाद मे नही मिलती। रोमानी कवियो—शेली, कीट्स, बायरन और वर्ड्सवर्थ की तुलना मे प्रसाद, पन्त, निराला और महादेवी 'समकक्ष' नजर आते हैं जब कि इलियट की तुलना मे अज्ञेय, भारती, जगदीश गुप्त, विजयदेव साही और लक्ष्मीकान्त शर्मा 'बौने' हैं, अपने समाज की उपेक्षा का यही परिणाम हो सकता है। जिस 'इतिहास' और परम्परा से लक्ष्मीकान्त को चिढ है, इलियट उस इतिहास के उत्थान, पतन को (अपनी दृष्टि से) उपमाओं और सन्दर्भों के द्वारा सकेतित करता है—

He compressed into two or three stanzas a

whole history of decline and fall, and his poem, far from seeming a mere mosaic of quotations, became a light of incredible intensity, showing past and present in perspective [1]

इतिहास और परम्परा के प्रति इलियट की धारणा पूँजीवादी है परन्तु अपनी दृष्टि से सही, उसने इतिहास और परम्परा का अनादर नहीं किया, यहाँ यही द्रष्टव्य है।

इलियट के दोष हिन्दी में अधिक आए हैं, अन्वित का अभाव (With a minimum of explicit correlation), अत्यधिक सन्दर्भ और प्रसगप्रियता, अर्थ की अनभिव्यक्ति, भाव की उचित मात्रा की कमी, प्रतीकात्मता का अतिनिर्वाह आदि। किन्तु जो 'विट' और गहराई से देखने की शक्ति इलियट मे है, उसमे ऐद्रिक सवेदना से ऊपर उठने का जो प्रयत्न है, वह कम कवियों मे मिलता है। इलियट के a music of ideas का अनुवाद "अर्थ की लय" के रूप मे करके अपने को मौलिक सिद्ध कर लेना सहज है, किन्तु अपने काव्य मे वही "अर्थ की लय" उत्पन्न कर देना कठिन है।

इलियट की 'वेस्ट लैंड' रचना मे आधुनिक सभ्यता को 'परती भूमि' माना गया है। हम इस सभ्यता को तभी हरा भरा बना सकते हैं, जब कि साहसी यात्रा करें, अपनी वर्तमान स्थिति पर विचार करें और गलतियो से सबक लें। इस रचना मे दान्ते, बौद्धमत, उपनिषद् पुराण, नृविज्ञान (From Ritual to Romance) आदि का ज्ञान आवश्यक है। इस पांडित्य के कारण यह रचना अत्यधिक 'दुरूह' होगई है। और 'दुरूहता' काव्य का गुण नहीं, दोष है। जो 'चित्रकला' का उदाहरण देकर यह कहना चाहते हैं कि काव्य भी विशेषज्ञ के लिए है, वे भूल करते हैं। 'कविता' को इतना दुरूह बनाने से उसका उद्देश्य ही समाप्त हो जाता है। कवि केवल 'द्रष्टा' नहीं होता, वह 'भोक्ता' भी होता है। इलियट म द्रष्टा' का तत्त्व 'भोक्ता' के ऊपर छा जाता है, यही कमी प्रयोगवाद मे है—

The waste Land does not carry within itself all that is necessary for understanding [२]

---

1 The trend of modern Poety Page 156

२ वही १६५।

वेस्टलैंड म कवि आधुनिक सभ्यता के पतन को सकेतित करता है। किन्तु इसके बाद यह 'अभावात्मक दृष्टि' कम होती जाती है। वह 'शाश्वत-व्यवस्था' की ओर उन्मुख हाता जाता है। "जरनी आफ मागी" मे एक मद्र व्यक्ति ईश्वर' के दशन करता है। Ash Wednesday मे कवि रहस्यमय माग का वणन करता है। Four Ouartets म इलियट 'निष्कामसाधक' जैसे दिखाई पडत है। इसम प्रहेलिका-शैली का भी प्रयोग है, जो अज्ञय म दिखाई पडती है।

time present and time past
Are both perhaps perent in time future
And time future contained in time Past !

'फोरक्वारटेट्स मे कवि काल के भीतर रहकर ही 'काल विजय' का उपदेश देता है। Only through time time is conqured ! साधना की स्थिति के वणन म विरोधाभास-शैली को अपनाया गया है परन्तु अन्विति का जैसा अभाव वेस्ट लैंड' मे है, वैसा यहाँ नही है। चत्मकार के बावजूद कवि इस कविता मे भी अनुभव करता है—

That was the way of puttign it—not very Satisfactory
A periphrastic study is a worn out poetical fashion !

घोर निराशा के क्षण भी यहाँ कम मिलते हैं क्योकि कवि 'गीता' के कृष्णाजु न सवाद से प्ररणा लता है अन कालातीत स्थिति को समझाते हुए कवि कृष्ण के इस आशावादी स्वर को अपनाता है—

So krishna, as when he admonished Arjuna
on the field of battle
Not farewell
But fare forward !

लक्ष्मीकान्त मानवमूल्यो के लिए 'परम्परा' से कुछ भी ग्रहण नही करना चाहत जब कि इलियट हमारे देश से प्रेरणा लेता है 'वेस्ट लैंड' की भी अतिम पक्तियाँ उपनिषद्' की हैं।

लगता है कि इलियट "फारक्वारटेट्स म अपनी मानसिक उलझन और निराशा पर विजय पालता है उसका हल वैयक्तिक है रहस्यवादी है, परन्तु वस्ट लैंड व इलियट से फोर क्वारटेट्स के इलियट म अन्तर है,

यह स्पष्ट है। हिंदी के प्रयोगवाद में इलियट का समाज के विषय में दृष्टिकोण अपनाया गया है किन्तु उसकी उक्ति मार्मिकता को नहीं अपनाया गया।

इलियट के विरुद्ध अंगरेजी साहित्य में उग्र प्रतिक्रिया हुई। १९३० ई० के कुछ पूर्व से प्रगतिशील कवियों ने इलियट के विरुद्ध जनवादी काव्य का निर्माण किया। इनमें आडन लेविस और स्पेण्डर के नाम उल्लेखनीय हैं। घोर अतमुखता और अतिशय व्यक्तिवाद इलियटवाद की विशेषता थी इसके विरुद्ध इन कवियों ने लारेंस के यौनवाद और इलियट के रहस्यवाद के विरुद्ध सामाजिक आदर्शवाद की प्रतिष्ठा की।

Their optimism and Vigour came like a breath of fresh air after a generation of self love and self disgust of determinism and frustration

इन कवियों ने मार्क्सवाद और रोमांटिक कवियों वर्डसवर्थ शेली आदि से प्रेरणा ली उसी प्रकार जिस प्रकार हिंदी के प्रगतिवादी कवि छायावाद की श्रेष्ठ परम्पराओं को स्वीकार करते हैं। इनका सिद्धान्त था कि काव्य सब से अलग होकर नहीं लिखा जा सकता अपितु सबके साथ रहकर ही लिखा जा सकता है ग्रीक सभ्यता की सगठित सामाजिकता से भी प्रेरणा ली गई—

not from exterme detachment but from solidarity with others It is nearer to the greek conception of good citizenship than to the stoical of austerity rcent times (Roberts)

इन कवियों ने समसामयिक सामग्री का अप्रस्तुत विधान के लिए प्रयोग किया है किन्तु कथ्य और भाव जनवादी है अर्थात ये हिन्दी के प्रगतिवादी प्रयोगवाद से मिलते जुलते हैं। ये कवि भी रिम्बा मैलर्विनी आदि की शैली से सीखते हैं परन्तु अपनी दृष्टि और भाव को नहीं छोड़ते—

And no one exists alone

We must love one another or die!

इलियटवादियों और उक्त प्रगतिशील-परम्परा के कवियों में मानव मूल्यों का सम्बन्ध या तो अलौकिक सत्ता के साथ सम्बन्धित है (इलियट) अथवा समाज के विकास के साथ (आडन स्पेण्डर आदि) किन्तु मनोविज्ञान

से प्रेरणा लेने वाले अतियथार्थवादियों (Surrealists) ने 'मूल्यों' की चिन्ता न कर इच्छाशक्ति के अनुशासन से रहित 'चेतना' की मुक्तगति का वर्णन किया। अतियथार्थवाद चित्रकला में प्रचलित 'दादावाद' (dadaists) की एक शाखा थी। 'दादावाद' समाज, जीवन और कला के विषय में पूर्व निश्चत सिद्धान्तों का विरोधी था। इसके प्रयोक्ताओं में Man Ray, Frrancis Picabia, Max Ernst, Breton आदि थे। १९२० के आस पास पेरिस और जर्मनी में इसका प्रचार अधिक बढ़ा, यद्यपि इसके प्रवर्तक १९ वीं शताब्दी के अन्त में सक्रिय थे। Ander Breton तथा Philippe Soupault ने बताया कि यदि कवि अपने स्वभाव के अनुसार बिना बौद्धिक अनुशासन के मन की प्रत्येक तरंग को त्वरितगति से लिख दे तो अवचेतन मन पर सुन्दर प्रकाश ही नहीं पड़ता, सुन्दर उपमाओं और भाषा को एक आवर्षक रूप भी प्राप्त होता है। १९२० ई० में लिखित Magnetic fields ऐसी रचना है। "नई कविता" (New Verse) नामक संग्रह में ऐसी रचनाएँ प्रकाशित भी हुई। हमारी "नई कविता" में यत्र तत्र अतियथार्थवादी प्रवृत्तियाँ अवश्य मिलती हैं क्योंकि बौद्धिकता का नारा लगाने पर प्रायः 'बुद्धि' का अनुशासन लिखते समय कम हो जाने पर परस्पर असम्बद्ध गद्यांश निकल पड़ते हैं। 'दुष्यन्त कुमार' को कमरे में 'टूटी कुर्सी' पूँजीपति सी दिखाई पड़ती है। एक कवि को अपनी प्रेमिका का मुख "लोमड़ी का मुख" जैसा दिखाई पड़ा है—"प्रेमिका का मुख चन्द्रमा नहीं लोमड़ी का मुख है"—(अज्ञात) अँगरेज़ी साहित्य में भी अतियथार्थवादी रचनाएँ अनेक हैं।

हिन्दी के प्रयोगवाद पर उक्त प्रभाव के अतिरिक्त प्रतीकवादियों, मलार्मे, बोदलेयर, रिम्बाँ और रिल्के आदि का सीधा प्रभाव भी दिखाई पड़ता है किन्तु अधिकांशतः यह प्रभाव अँगरेज़ी काव्य के माध्यम से ही आया है। रोमांटिक कवियों के बाद अंगरेज़ी और हिन्दी दोनों में 'नवीनता' के कारण ही यह आपाधापी अधिक हुई है। 'नवीनता' शैली में तो आनी ही चाहिए किन्तु विचारों के क्षेत्र में जिस प्रकार उच्छृंखलता दिखाई पड़ी, उसी प्रकार 'स्थायी-भावों' का भी तिरस्कार हुआ और "आयामविस्तार' के नाम पर प्रत्येक मानसिक स्थिति की व्यंजना के लिए कवि आतुर दिखाई पड़ने लगे। Kenneth Allott ने यह ठीक ही लिखा है कि शैली के क्षेत्र में 'नवीनता' के लिए प्राचीन से पूर्ण विद्रोह करने के कारण सम्भवतः नए कवियों में पुराने छन्दों में काव्य लिख सकने की क्षमता भी नहीं थी। शायद यह

आवश्यक था कि पुराने छन्दो को थोड़ा विश्राम मिल जाय ताकि १९३० और १९४० ई० के आसपास के कवि उनका पुन प्रयोग कर सकें। हिंदी मे 'मुक्त छन्द' की जगह जिस उच्छृखलछन्द का प्रयाग नयी कविता मे बढ़ रहा है उससे लगता है कि कुछ समय तक इस आपाधापी के बाद पुन सतुलन आएगा। या नयी कविता के समानान्तर गीत और पुराने छन्दो का भी प्रयोग साथ साथ चल रहा है यह शुभ लक्षण है। अँगरेजी साहित्य मे भी 'इलियट' को इसोटेरिक और बुकिश कहा जाता है और इलियट के विट' 'आयरनी' और सैटायर से ही सतोष नही हो रहा है। इलियट का यह कथन पसन्द नही किया जा रहा है कि काव्य को दुरूह ही होना पडेगा—

'We can only say that it appears likely that poets in our civilisation must be difficult

श्री Allott ने ठीक ही कहा है कि इलियट की कविता मे चतुरता टिक गम्भीरता और पाण्डित्य का अतिनिर्वाह है ऐसी कविता कविता का का अन्त करने के लिए है। (a poem to end poems)[१]। दुरूहकाव्य के विरुद्ध New signatures (१९३२) मे Robert ने स्पष्टत इलियट विरोध म लिखा था—

The solution of some too insistent problems may make it possible to write Popular poetry again the poems in this book represent reaction aganist esoteric poetry in which it is necessary for the reader to catch each recondite allusion![२]

इसका अर्थ यह नही कि द्वितीय विश्वयुद्ध मे एक बार पुन विनाश देखकर इलियट के 'फोरक्वारटेंटस' की प्रशसा म वृद्धि न हुई हो परन्तु साथ ही यहाँ स्मरणीय यह है कि 'न्यूरोमाटीसिज्म' का विकास अँगरेजी काव्य मे भी हो रहा है। डा० देवराज प्रयोगवादी काव्य की पुनरावृत्ति, नवनिर्माण की भावना के अभाव, व्यय की शकाओ के आधिक्य और निष्क्रियता की अतिमात्रा के कारण यह महसूस करते हैं कि हिन्दी म नूतनस्वच्छन्दता

---

1 Contemporary Verse—Kenneth Allott, Preface Page 17

२ वही, पृष्ठ २०,

वाद का पुन आगमन होगा किन्तु गीतकारो मे वह स्वच्छन्दतावाद आज भी प्रचलित है और प्रयोगवाद मे लोककाव्य के प्रति आकर्षण प्रकृति को मुग्ध हो हो कर देखने की प्रवृत्ति जैसी प्रवृतियो से यह आशा होती है कि सकीर्ण और अमानवीय प्रवृत्तियो तथा अभिव्यक्ति मे अनुशासन के अभाव आदि प्रवृत्तियो की कमी होगी और नए की शोध मे वास्तविक काव्य की अपेक्षा न होगी।

हिन्दी काव्य की उपलब्धि—हिन्दी म आधुनिक काव्य प्रवाह भारतेन्दु युग से प्रारम्भ होता है तब से अब तक हिन्दी काव्य निरन्तर उन्नति की ओर उन्मुख है। उसकी सबसे बडी विशेषता यह है कि वह सामाजिक दायित्व के प्रति जागरूक रहा है भारतेन्दु युग और द्विवेदी युग छायावाद युग और आज के प्रगतिवादी युग म कवि समाज को इच्छित रूप देने के लिए हमारे हृदयो मे प्ररणा भरता रहा है। उसने नूतन शैली के नए नए रूप खोज हैं और हिन्दी भाषा म वैविध्य की सृष्टि की है। हिन्दी काव्य की इसी जागरूकता के कारण कतिपय श्रेष्ठ कृतियो को आज हम विश्वसाहित्य के सम्मुख रखसकते है। पन्त जी का पल्लव निराला की राम की शक्ति पूजा तुलसीदास प्रसाद की कामायनी और महादेवी की दीपशिखा को विश्व साहित्य के सम्मुख सगर्व रखा जा सकता है। छायावाद के बाद का काव्य-निर्माण के पथ पर अग्रसर है। काव्य म गतिरोध का स्वर मिथ्या है यह उक्त विवेचन स प्रमाणित हो जाता है। प्रयोगवाद ने हिन्दी भाषा की दृष्टि से वैविध्य की कमी को अवश्य पूरा किया है। यह सम्भव है कि अधिक अनुशासित होने पर इस आन्दोलन से भी कोई कृति हमे प्राप्त हो जिसे हम विश्व-साहित्य के सम्मुख रख सकें। किन्तु यह तभी सम्भव होगा जब प्रयोगवादी कवि इस देश की नब्ज पहचानने का प्रयत्न करें और जो भावनाएँ ध्वसशील पूँजीवादी समाज म प्रचलित हैं उनम और इस देश की वास्तविक भावनाओ म अन्तर को समझा जाय। अब तक जो श्रेष्ठ कृतियाँ हम मिली हैं उनकी पृष्ठभूमि म कवियो की व्यापक सहानुभूति उदात्त जीवन-दृष्टि और सामूहिक भावनाओ का आदर अवस्थित है। काव्य की महानता और सौन्दर्य कवि की अपनी दृष्टि की महानता और स्वस्थसौन्दयबोध पर आधारित होती है।

हिन्दी म प्रगतिवादी काव्य गीतिकाव्य प्रयोगवादी काव्य से चुनी हुई रचनाओ की श्रेष्ठता हम स्वीकार करनी ही होगी। इसके अतिरिक्त हिन्दी

मे 'कामायनी' के बाद 'महाकाव्यो' की सख्या मे विपुल वृद्धि हुई है। यद्यपि महाकाव्यकारो मे 'कथ्य' और शैली के प्रति जागरूकता का अभाव दिखाई पड़ता है परन्तु यह काव्य परम्परा को नए युग मे प्रतिष्ठित करने मे अवश्य सफल हुआ है। इन महाकाव्यो मे रसमय और मार्मिक स्थलो का अभाव नही है। तक्षशिला[1] नूरजहाँ, कृष्णायन, उर्मिला[2] वैदेही वनवास, साकेत सन्त, सिद्धार्थ[3] वर्द्धमान[4] देवयश[5] विक्रमादित्य[6] तथा पार्वती[7] आदि अनेक प्रबन्ध काव्यो म कवियो का श्रम व्यर्थ नही गया है। वस्तुत मे काव्य हिन्दी काव्य के विभिन्न युगो के सेतु रूप मे दिखाई पडते हैं। इधर गान्धी, प्रेमचन्द, मीरा सीता आदि पर जो जीवनी काव्य लिखे गए हैं, उनसे यह आशा बँधी है कि नए ढग से, नए विषयो और आधुनिक उदात्त जननायको पर अच्छे काव्य लिखे जा सकते है। समग्रत 'कामायनी' के बाद श्रेष्ठता की दृष्टि से 'पार्वती' को उल्लेखनीय कृति माना जा सकता है।

इस प्रकार हिन्दीकाव्य का आधुनिक काव्य विभिन्न धाराओ का एक सम्मिलित प्रवाह है, जिसमे विकास क्रम भी है, और साथ ही छायावाद के बाद अनेक धाराओं का सम्मिश्रण भी है। समग्र दृष्टि से देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी-काव्य मे 'प्रतिक्रियावादी' स्वर बहुत कम हैं, यहाँ तक कि स्वय प्रयोगवाद मे प्रगतिवादी प्रयोगवाद के अभ्यासी कवियो की सख्या कम नही है। हिन्दी काव्य प्रवाह गतिमान है। जो आवर्तों को देखकर स्थिति-शीलता अथवा गतिरोध की कल्पना करते हैं, उन पर हिन्दी काव्य प्रवाह की विभिन्न लहरें जैसे अट्टहास करती हुई कहती हैं—"हमे देखो, और हमारे भगीरथो को देखो, गतिरोध कहाँ है ?" यह सही है कि अभी प्रसाद, निराला, पन्त और महादेवी के बाद की नयी पीढी मे ऐसे ही नाम नही गिनाए जा सकते किन्तु 'प्रतिभा' की प्रतियोगिता मे सलग्न काव्य-स्रष्टाओ मे अपनी

---

१. उदय शकर भट्ट।
२. बालकृष्ण शर्मा नवीन।
३ तथा ४—अनूप शर्मा।
५. हरदयालुसिंह।
६ गुरुभक्तसिंह।
७ रामानन्द तिवारी।

चुनी हुई रचनाओ को छायावाद के श्रेष्ठ अश के सम्मुख रखने मे कई कवि समर्थ हैं, यह नि सकोच कहा जा सकता है। हिन्दी के आधुनिक काव्य के विषय मे हीनता के भाव का कोई आधार नही है, यह उक्त विवेचन से स्पष्ट है।